श्रीमातृवाणी

माताजी के वचन

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी

श्रीमातृवाणी

माताजीके वचन

Volume 16

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

प्रथम संस्करण १९९२
मूल अंग्रेजी भाषा में 'सम आन्सर्स फ्रॉम दि मदर' के नाम से
सन् १९८७ में प्रकाशित
स्वत्वाधिकार श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट, १९८७
हिन्दी अनुवाद © श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट, १९९२
सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य १५०.००

खंड १६

ISBN 81-7060-069-3

श्रीअरविंदाश्रम ट्रस्ट की ओर से
श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी द्वारा प्रकाशित
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी द्वारा भारत में मुद्रित
वितरक :
शब्द : श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी, पांडिचेरी—६०५००२

श्रीमाताजी

जन्म

२१ फरवरी, १८७८

भारत में आगमन

२९ मार्च, १९१४

महासमाधि

१७ नवम्बर, १९७३

शताब्दी

२१ फरवरी, १९७८

मेरे वचनों को एक शिक्षा के रूप में न लो। वे हमेशा क्रियाशील शक्ति होते हैं जिन्हें एक निश्चित उद्देश्य के साथ कहा जाता है और उन्हें उस उद्देश्य से अलग कर दिया जाये तो वे अपनी सच्ची शक्ति खो बैठते हैं।

—श्रीमां

Do not take my words for a teaching. Always they are a force in action, uttered with a definite purpose, and they lose their true power when separated from that purpose.

श्रीमाताजी — १९७०

पत्रमाला १

पत्रमाला १

[अपने पुत्र आंद्रे के नाम माताजी के पत्र]

हमारा समाज अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। अब हम लगभग ३० हैं (इनमें उनकी गिनती नहीं है जो सारे भारत में फैले हुए हैं) और मैं इन सबके लिये जिम्मेदार बन गयी हूं। मैं इस संगठन के केंद्र में हूं—भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दिशाओं में—और तुम आसानी से कल्पना कर सकते हो कि इसका क्या मतलब है। हमारे पांच मकान हैं जिनमें से एक तो हमारा अपना है और बाकी चार भी हमारे हो जायेंगे। दुनिया के सभी हिस्सों से नये रंगरूट आ रहे हैं। इस विस्तार के साथ नये क्रिया-कलाप पैदा हो रहे हैं, नयी जरूरतें उठ रही हैं जिनके लिये नये कौशलों की जरूरत है।

१६ जनवरी १९२७

मेरा ख्याल है कि मैंने तुम्हें अपने पांच मकानों के बारे में बतलाया था। उनमें से चार मकान एक ही समचतुष्कोण खंड में जुड़े हुए हैं जिसके चारों ओर सड़कें हैं। कई इमारतें, आंगन और बगीचे हैं। हमने अभी हाल में इनमें से एक मकान खरीद लिया है, उसकी मरम्मत करवा ली है और आराम-देह तरीके से उसे सज्जित कर लिया है। श्रीअरविंद और मैं अपने कुछ निकटतम शिष्यों के साथ उसमें बस गये हैं।

हमने इन मकानों को आपस में जोड़ दिया है, कुछ दीवारों और उपगृहों को तोड़कर दरवाजे बना दिये हैं ताकि मैं बाहर सड़क पर गये बिना अपने छोटे-से राज्य में आजादी से घूम सकूं—यह अच्छा है लेकिन अब मैं पहले की अपेक्षा कहीं अधिक व्यस्त रहती हूं और मैं कह सकती हूं कि इस समय मैं तुम्हें जल्दी में पत्र लिख रही हूं।

१६ फरवरी १९२७

यह सच है कि एक लंबे अरसे से मैं सोने के सामान्य अर्थ में नहीं सोयी हूं।[1] यानी मैं कभी निश्चेतना में नहीं जा गिरी जो सामान्य नींद का चिह्न है। लेकिन मैं अपने शरीर को आवश्यक आराम जरूर देती हूं अर्थात् दो तीन घंटे के लिये शरीर की एकदम निश्चल अवस्था में लेटती हूं जिसमें सारी सत्ता—मानसिक, चैत्य, प्राणिक और भौतिक—पूर्ण विश्राम की अवस्था में चली जाती है जो पूर्ण शांति, पूर्ण निश्चल-नीरवता और समग्र सुस्थिरता होती है। चेतना पूरी तरह जाग्रत् रहती है या मैं सत्ता की

[1] किसी अखबार में छपा था कि माताजी महीनों तक नहीं सोयी थीं, उसके बारे में।

किसी एक या दूसरी स्थिति या अनेक स्थितियों की आंतरिक क्रियाओं में लगी रहती हूं। यह क्रिया गुह्य कार्य होती है और यह कहने की जरूरत नहीं कि वह पूर्णतया सचेतन होती है। अतः मैं पूरी सच्चाई के साथ कह सकती हूं कि मैं पूरे चौबीस घंटों में कभी चेतना नहीं खोती और ये एक अविच्छिन्न शृंखला बन जाते हैं और अब मैं कभी सामान्य नींद का अनुभव नहीं करती, साथ ही अपने शरीर को उतना आराम देती हूं जितने की उसको जरूरत हो।

३ जुलाई १९२७

इस पत्र के साथ मैं तुम्हें आश्रम के कुछ चित्र भेज रही हूं जिनमें तुम्हें जरूर मजा आयेगा क्योंकि इनसे तुम्हें यह अंदाज लग सकेगा, चाहे जितना अधूरा और अयथार्थ क्यों न हो, कि मैं किस वातावरण में रह रही हूं। बहरहाल वे बहुत ही सीमित छाप दे सकेंगे। आजकल आश्रम में सत्रह मकान हैं जिनमें पचासी या नब्बे व्यक्ति रहते हैं, लोगों के आते-जाते रहने से संख्या बदलती रहती है।

मैं तुम्हें चौदहवां और पंद्रहवां वार्तालाप भी भेज रही हूं। मैं आशा करती हूं कि तुम्हें किस्तों में करके पहले तेरह वार्तालाप मिल चुके होंगे। मैंने छपने के साथ-ही-साथ तुम्हें भिजवाये थे।[1]

२५ अगस्त १९२९

मैं वार्तालाप के बारे में तुम्हारी राय का जवाब देने की कोशिश नहीं करूंगी, यद्यपि मुझे लगता है कि तुम कई बातें पूरी तरह पकड़ नहीं पाये हो। लेकिन मेरा ख्याल है कि बाद में, समय मिलने पर जब तुम इन्हें पढ़ोगे तो जो भाग पहली नजर में तुमसे बच निकले हैं वे भी समझ में आ जायेंगे। और फिर ये वार्तालाप अपने विषय पर पूरा-पूरा विवेचन का या उनपर भली-भांति प्रकाश डालने का दावा नहीं करते। बल्कि ये ऐसे संकेत हैं जिनका उद्देश्य उपदेशात्मक नहीं, व्यावहारिक है; ये एक प्रकार से मार्ग पर चलनेवालों को उत्तेजित करने के लिये अंकुश या प्रेरक हैं। यह ठीक है कि मेरे उत्तरों में प्रश्न के कई पहलुओं की उपेक्षा हुई है जिन्हें ज्यादा रुचिकर ढंग से जांचा जा सकता था—यह फिर कभी।

२१ अक्तूबर १९२९

आश्रम अधिकाधिक मजेदार संस्था बनता जा रहा है। हमने अब अपना इक्कीसवां

[1] ये १५ वार्तालाप श्रीमातृवाणी खंड ३ में छपे हैं।

मकान ले लिया है। आश्रम के वैतनिक कर्मचारियों की संख्या (मजदूरों और नौकरों की) साठ-पैंसठ तक हो गयी है और आश्रम के सदस्यों की संख्या (जो श्रीअरविंद के शिष्य हैं और पांडिचेरी में रहते हैं) पचासी और सौ के बीच बदलती रहती है। यहां पांच मोटरें, बारह बाइसिकलें, चार कपड़ा सीने की मशीनें, एक दरजन टाइपराइटर, कई गराज, एक मोटरों की मरम्मत करनेवाला कारखाना, विद्युत्-सेवा, भवन-निर्माण विभाग, सिलाई के विभाग (यूरोपीय और भारतीय दरजी, कशीदाकारी आदि), पुस्तकालय, वाचनालय—जिनमें हजारों पुस्तकें हैं, फोटो-विभाग, सर्व-सामान्य भंडार—जिसमें बहुत प्रकार की चीजें हैं, जिनमें से अधिकतर फ्रांस से आयी हुई हैं, फूलों, फलों और तरकारियों के लिये बड़े-बड़े बगीचे, गोशाला, बेकरी आदि-आदि हैं। तुम देख सकते हो कि यह कोई छोटी बात नहीं है और चूंकि मैं सबकी देखभाल करती हूं इसलिये मैं सचमुच कह सकती हूं कि मैं व्यस्त हूं।

२३ अगस्त १९३०

मुझे ग्रां रिव्यू[1] भी मिल गयी है और मैंने यह लेख पढ़ लिया है जिसके लिये तुमने लिखा था, मुझे तो यह नीरस-सा लगा, लेकिन बहुत खराब नहीं है। लेकिन वहां जिस मुखर्जी का जिक्र है वह बहुत वर्षों से हिंदुस्तान के बाहर (शायद अमरीका में) रहा होगा और पूरी तरह पाश्चात्य बन गया होगा अन्यथा वह गांधी और रवींद्रनाथ को हिंदुस्तान के सबसे ज्यादा लोकप्रिय व्यक्ति न बताता। इसके विपरीत वे हिंदुस्तान के बाहर सबसे अधिक लोकप्रिय हैं और ऐसा लगता है कि विदेशियों के लिये यही दो भारतीय प्रतिभा के प्रतिनिधि हैं, यह सत्य से बहुत दूर है। अगर वे पश्चिम में इतने अधिक लोकप्रिय हैं तो शायद इसलिये कि उनकी महिमा पाश्चात्य मन की समझ से परे नहीं है।

भारत में इन दो की अपेक्षा विभिन्न क्षेत्रों में, जैसे वैज्ञानिक, साहित्यिक, दार्शनिक, और आध्यात्मिक क्षेत्रों में, कहीं अधिक प्रतिभावान् लोग हैं। यह ठीक है कि शांतिनिकेतन से बड़े सुसंस्कृत युवक निकलते हैं लेकिन उपलब्धि के लिये शक्ति या ऊर्जा के बिना। रही बात गांधी के युवकों की तो उनमें क्रिया के लिये काफी अधिक शक्ति और ऊर्जा हो सकती है पर वे कुछ थोड़े-से संकीर्ण भावों और सीमित मन की चारदीवारी में बंद होते हैं।

मैं फिर से कहती हूं, हिंदुस्तान में अधिक अच्छा, कहीं अधिक अच्छा है परंतु यह भारत अंतर्राष्ट्रीय प्रशंसा की परवाह नहीं करता।

४ अगस्त १९३१

[1] एक फ्रेंच मासिक।

तुमने टिप्पणी की है कि मानवजाति को चलाते रहने के लिये बच्चे पैदा करना एकमात्र उपाय है, इसके बारे में दो शब्द : मैंने कभी इससे इंकार नहीं किया लेकिन मैं साथ ही यह कह देना चाहती हूं कि इस बारे में डरने की कोई बात नहीं है। अगर प्रकृति की योजना है कि मानवजाति को बनाये रखा जाये तो वह इतने लोग पा लेगी जितनों की उसकी योजना को पूरा करने के लिये जरूरत है। धरती को निश्चय ही कभी आदमियों की कमी न होगी।

२८ सितंबर १९३१

जिन चीजों की प्रतीक्षा है . . . केवल वे ही वस्तुओं की उस दुःखद स्थिति का उपचार कर सकती हैं जिनका तुमने अपने ९ अक्तूबर के पत्र में जिक्र किया है। और निश्चय ही यह स्थिति केंद्रीय यूरोप के छोटे-मोटे राज्यों तक सीमित नहीं है। तुमने जैसा वर्णन किया है, लगभग वैसी ही स्थिति सारे संसार की है : अव्यवस्था, अस्त-व्यस्तता, अपव्यय और दुर्गति।

यह कहते हुए रोने-धोने का कोई लाभ नहीं कि तुम किस ओर बढ़ रहे हो! अंतिम विध्वंस, व्यापक दिवालियापन काफी स्पष्ट मालूम होता है . . . यदि, . . . और पृथ्वी के इतिहास में ऐसे 'यदि' हमेशा आते रहे हैं और हमेशा जब कभी अस्तव्यस्तता और विनाश अपनी चरम सीमा पर मालूम होते हैं तो कुछ होता है और एक नया संतुलन स्थापित हो जाता है जो और कुछ शताब्दियों तक चलता है, ह्रासोन्मुख सभ्यताओं और प्रलाप में पड़े मानव समाजों का जीवन चलता रहता है।

यह सोचना शुरू मत करो कि मैं निराशावादी हूं। निश्चय ही चीजें जैसी हैं वे मुझे पसंद नहीं हैं। लेकिन फिर भी मैं यह नहीं मानती कि वे पहले कई बार जितनी खराब हो चुकी हैं उससे ज्यादा खराब हैं। लेकिन मैं चाहती हूं कि वे भिन्न हों। मैं चाहती हूं कि वे अधिक सामंजस्यपूर्ण और अधिक सत्य हों। कैसा वीभत्स है मिथ्यात्व का सारी धरती पर फैलाव और अपने अंधकार के विधान द्वारा सारे जगत् पर उसका शासन! मुझे लगता है कि उसका शासन काफी लंबे समय तक चल चुका। अब हमें इस स्वामी की सेवा करने से इंकार कर देना चाहिये। यही महान् और एकमात्र उपचार है।

३ नवंबर १९३१

लंबे समय के बाद तुम्हारा ५ जनवरी का पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। विशेष रूप से इसलिये क्योंकि तुम सोचते हो कि पांडिचेरी एक आदर्श विश्राम-स्थल है। सचमुच मेरा ख्याल है कि यह बेचैन लोगों के लिये उपचार का आदर्श स्थान हो सकता

है—यहां तुम खोजो तो भी मनोरंजन के स्थान नहीं हैं। दूसरी ओर समुद्र सुंदर है, देहात विस्तृत है और शहर बहुत छोटा। तुम पांच मिनट मोटर चलाकर उससे बाहर हो सकते हो, और इसके केंद्र में है आश्रम, क्रियाशील और सक्रिय शांति का घनीकरण; यहांतक कि जो लोग बाहर से आते हैं वे ऐसा अनुभव करते हैं मानों वे एक और ही जगत् में आ गये, एक ऐसे जगत् में जहां भीतरी जीवन बाहरी जीवन पर शासन करता है, एक ऐसा जगत् जहां चीजें पूरी की जाती हैं, जहां काम निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं बल्कि एक आदर्श को चरितार्थ करने के लिये निःस्वार्थ भाव से किया जाता है। यहां हम जो जीवन जीते हैं वह संन्यासी के त्यागमय जीवन से उतना ही दूर है जितना शक्तिह्रासक आराम से। यहां का नियम है सादगी लेकिन ऐसी सादगी जो विभिन्नता से भरी हुई है—व्यवसायों की, कार्यों की, रुचियों की, प्रवृत्तियों की, स्वभावों की विभिन्नता। हर एक अपने जीवन को अपनी मरजी के मुताबिक व्यवस्थित करने के लिये स्वतंत्र है। अनुशासन इतना कम-से-कम कर दिया गया है जितना ११०-१२० लोगों के रहने के लिये और ऐसी गतिविधियों को रोकने के लिये अनिवार्य है जो हमारे योग के उद्देश्य की उपलब्धि में हानिकर हों।

क्या कहते हो तुम इस बारे में ? यह मोहक नहीं है क्या ? क्या तुम्हें कभी यहां आने का अवसर मिलेगा ? ऐसी संभावना होगी ? एक बार तुमने मुझे यहां अगने की आशा-सी दिलवायी थी।

मैं तुम्हें अपनी घर-गृहस्थी दिखाना चाहूंगी। इसने अभी चार और मकान प्राप्त किये हैं जिन्हें मैंने कानूनी बारीकियों को सरल बनाने के लिये अपने नाम से खरीदा है अन्यथा यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि मैं **उनकी स्वामिनी नहीं हूं**। मेरा ख्याल है कि मैं पहले तुम्हें यह स्थिति समझा चुकी हूं और मैं तुम्हें फिर से इसकी याद दिलाने के इस अवसर का लाभ उठा रही हूं। अपनी समस्त भूसंपत्ति और चल-संपत्ति के साथ आश्रम श्रीअरविंद का है। उनका धन ही मुझे आश्रम के बड़े खर्च चलाने योग्य बनाता है (आजकल हमारा वार्षिक खर्च एक लाख रुपये है, जो आजकल के मुद्रा विनिमय के हिसाब से लगभग ६५०,००० फ्रैंक के बराबर होगा।) और अगर बैंक के हिसाब-किताब में, मकानों, मोटरों के क्रय-विक्रय में मेरा नाम आता है तो यह केवल कागजों और हस्ताक्षरों की सुविधा के लिये क्योंकि मैं सारी चीज की व्यवस्था करती हूं; इसलिये नहीं कि वे सचमुच मेरी हैं। तुम आसानी से समझ जाओगे कि मैं तुमसे यह सब क्यों कह रही हूं। ताकि,तुम इसे मन में रखो ताकि अगर . . .

१० फरवरी १९३३

तुम्हारा पिछला पत्र वर्तमान घटनाओं की ओर ध्यान खींचता है और उसमें कुछ चिंता झलकती है जो निश्चय ही निराधार नहीं है। अपनी अज्ञानमय निश्चेतना में लोग ऐसी

शक्तियों को चला देते हैं जिनके बारे में वे अभिज्ञ तक नहीं होते और शीघ्र ही ये शक्तियां उनके वश से अधिकाधिक बाहर हो जाती और संकटपूर्ण परिणाम लाती हैं। ऐसा लगता है कि धरती पूरी तरह से राजनीतिक और सामाजिक मिरगी के भयंकर दौरे में आन पड़ी है जिसके द्वारा विनाश की सबसे अधिक भयंकर शक्तियां अपना काम कर रही हैं। यहां, इस छोटे से नगण्य कोने में भी हम इस व्यापक रोग से नहीं बच सके हैं। तीन-चार दिन तक ये क्रियाशील शक्तियां अनिष्ट और भद्दी और उचित रूप से चिंताजनक थीं और एक महान् अस्तव्यस्तता शुरू हो रही थी। मुझे कहना चाहिये कि उन परिस्थितियों में यहां के राज्यपाल (सोलमिएक) ने साथ-ही-साथ बहुत कृपा और दृढ़ता दिखलायी। उसकी सद्भावना की जितनी प्रशंसा की जाये कम है। अंत में परिस्थितियों को देखते हुए सारी चीज ठीक तरह समाप्त हो गयी लेकिन चौदह हजार से अधिक मजदूर बेकार हैं, सबसे बड़ा कारखाना बंद है—पता नहीं कब तक के लिये—और दूसरा जला दिया गया है।

सामान्य बुद्धि का एकदम अभाव इस युग का चिह्न मालूम होता है। लेकिन शायद हम ऐसा इसलिये देखते हैं क्योंकि नजदीक होने के कारण हम सब ब्योरे में देख सकते हैं। दूर से देखने पर ब्योरे मिट जाते हैं और केवल मुख्य रेखाएं दिखलायी देती हैं जो परिस्थितियों को अधिक तार्किक रूप देती हैं।

हो सकता है कि पृथ्वी पर जीवन हमेशा दुर्व्यवस्थापूर्ण रहा है। बाइबल चाहे जो कहे, प्रकाश अभीतक प्रकट नहीं हुआ है। हम आशा करें कि उसके आने में बहुत देर न लगेगी।

२३ अगस्त १९३६

जेनेवा में एक छोटी-सी पुस्तिका छप रही है जिसमें मेरा १९१२ का दिया हुआ एक भाषण है। वह अब पुराना हो गया पर मैं उनके उत्साह पर ठंडा पानी नहीं डालना चाहती थी। मैंने उसे शीर्षक दिया था 'केंद्रीय विचार' लेकिन उन्हें यह बहुत ज्यादा दार्शनिक मालूम हुआ और उन्होंने उसे 'परम आविष्कार' में बदल दिया है। मेरी रुचि के लिये यह ज्यादा आडंबरपूर्ण है परंतु . . .

२४ अप्रैल १९३७

हाल की कुछ घटनाओं का जिक्र करते हुए तुम पूछते हो कि "क्या यह खतरनाक झांसा-पट्टी थी" या हम किसी "विध्वंस से बाल-बाल बच गये हैं।" दोनों को एक साथ मान लेना सत्य के अधिक नजदीक होगा। यदि तुम सुननेवालों को डराने-धमकाने और उनसे जितना हो सके निकलवा लेने के लिये चीखने-चिल्लाने और

धमकियां देने को झांसा देना कहो तो हिटलर निश्चय ही झांसा दे रहा है। दांव-पेच और कूटनीति का उपयोग किया गया लेकिन दूसरी ओर हर मानव इच्छा-शक्ति के पीछे ऐसी शक्तियां कार्यरत होती हैं जिनका मूल मानवीय नहीं होता और जो सचेतन रूप से किन्हीं लक्ष्यों की ओर गति करती हैं। इन शक्तियों की लीला बहुत जटिल होती है और सामान्य मानव चेतना से बच निकलती है लेकिन समझाने और समझने की सुविधा की दृष्टि से उन्हें दो मुख्यतः विरोधी प्रवृत्तियों में बांटा जा सकता है। एक वे जो धरती पर भागवत कार्य की परिपूर्ति के लिये कार्य करती हैं और दूसरी वे जो इस परिपूर्ति के विरुद्ध हैं। पहली के हाथ में थोड़े से सचेतन यंत्र होते हैं। यह सच है कि इस मामले में गुण संख्या की क्षतिपूर्ति से अधिक कर देता है। भगवान्-विरोधी शक्तियों के पास चुनने के लिये बहुत अधिक संख्या होती है और उन्हें हमेशा ऐसी इच्छाशक्तियां मिल जाती हैं जिन्हें वे अपना गुलाम बना लेती हैं और ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं जिन्हें वे आज्ञापरायण परंतु प्रायः सदा निश्चेतन कठपुतलियों में बदल देती हैं। हिटलर इन भगवान्-विरोधी शक्तियों का चुना हुआ यंत्र है जो हिंसा, उथल-पुथल और युद्ध चाहती हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है कि ये चीजें भगवान् की शक्तियों के कार्य में बाधा डालती और देर लगाती हैं। इसीलिये यद्यपि कोई मानव सरकार उसे न चाहती थी फिर भी महाविपदा बहुत ही नजदीक थी। लेकिन चाहे किसी कीमत पर क्यों न हो युद्ध नहीं होना चाहिये और युद्ध को कम-से-कम अभी के लिये टाल दिया गया है।

२२ अक्तूबर १९३८

पत्रमाला २

पत्रमाला २

[उन्नीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशक के शुरू में जो साधक आश्रम के भवन-निर्माण विभाग का अध्यक्ष था ये पत्र उसके नाम लिखे गये हैं।]

पाप योग की नहीं, संसार की चीज है।

*

अपने सोचने, अनुभव करने और क्रिया करने से हर एक अपने अंदर से स्पंदन निःसृत करता है जिससे उसका वातावरण बनता है और स्वभावतः वह समान प्रकृति और गुणों के स्पंदनों को आकर्षित करता है।

*

जबतक तुम किसी और को पीटने योग्य हो, तुम अपनी पिटाई की संभावना के लिये दरवाजे खोलते हो।

*

तुम यह आशा करते हो कि जो लोग तुम्हारे साथ काम करते हैं वे प्रतिभासंपन्न होंगे। यह उचित नहीं है।

*

तुमने कपड़े धोने के साबुन के लिये जो पर्ची लिखी है, उसे मैंने देखा। पिछली बार तुम्हें २२ मार्च को साबुन मिला था। ये तो सोलह दिन ही हुए, जब कि साबुन तीस दिन चलना चाहिये। यह स्पष्ट है कि तुम्हारा नौकर साबुन चुराता है। उसके लिये साबुन देने का मेरा कोई इरादा नहीं है। उसे रोकने की कोई तरकीब खोजनी होगी। शब्दों से कोई लाभ नहीं होता।

(इस बार के लिये मैंने साबुन की स्वीकृति दे दी है।)

'क' ने नयी कापी शुरू कर दी है पर ऐसा लगता है कि उसने अपनी पहले की कापी खतम नहीं की।

हर महीने कापी बदलने की मुझे कोई जरूरत नहीं मालूम होती। तुम जरा देखो कि क्या सचमुच पहली कापी खतम हो गयी है, और उसके अनुसार करो।

आगे से मैं नयी कापी की स्वीकृति देने से पहले समाप्त कापी मांगने के लिये बाधित होऊंगी। यानी जब कभी नयी कापी लेनी हो तो नयी के लिये परची के साथ-साथ **समाप्त कापी** को मेरे पास ऊपर भेजना होगा।

मुझे कापी के शुरू में एक पृष्ठ कोरा छोड़ने की जरूरत नहीं मालूम होती।

*

'ख' को शिकायत है कि जब बरामदे में सीमेंट तैयार की जाती है तो उसकी धूल जानवरों के भोजन में आ गिरती है।

शायद इसी कारण बैल बीमार हैं। उनमें से एक बेचारा बहुत ही अधिक दुबला हो गया है। मैंने आज सवेरे उसे देखा था।

जरा देखो, इस मामले में अच्छी व्यवस्था कैसे की जा सकती है।

*

(स्नानागार को बड़ा करने के बारे में)

मुझे लगता है कि वह पर्याप्त रूप से बड़ा है। मैं आशा करती हूं उनका विचार स्नानगृह को नृत्य-गृह बनाने का नहीं है।

*

यह कैसी बात है कि दो दिन हो गये फिर भी तुमने मुझे बेकरी की आटा गूंधने की मेज के बारे में नहीं बतलाया। अगर उसकी तुरंत मरम्मत न की गयी तो हमें खाने के लिये रोटी न मिलेगी। यह काम तुरंत होना चाहिये।

*

भोजनालय के बारे में मैं बहुत संतुष्ट नहीं हूं। केवल यह कहने भर से कि "कुछ नहीं होगा" दुर्घटना से बचा नहीं जा सकता। तुम्हारा मानसिक रूपायण मजबूत हो सकता है लेकिन उसका विपरीत रूपायण भी कम-से-कम उतना ही मजबूत है जितना तुम्हारा—और हमें कभी विरोधी शक्तियों को प्रलोभन न देना चाहिये।

मैं तुमसे हठ छोड़ने के लिये और **पूरी तरह** सच्चे बनने के लिये कहती हूं। पूर्व धारणाओं के बिना वहां जाकर देखो।

जाओ और ईमानदारी से, सावधानी से चारों ओर जगह को देखो। यह ख्याल रखो कि लगभग तीस व्यक्ति वहां भोजन करते हैं और अगर वहां कुछ हो जाये तो कैसी भयंकर बात होगी। अपने उत्तरदायित्व के पूरे भाव के साथ कल सवेरे अंतिम, निश्चित उत्तर लेकर आओ। मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करूंगी।

पुनश्च:—स्वभावतः मैं तुमसे आज रात को ही नहीं, कल जाने के लिये कह रही हूं।

१४ दिसंबर १९३१

साइकल हाउस में एक लकड़ी की बेंच टूट गयी, उस बेंच पर एक तख्ता रखे एक राजमजदूर काम कर रहा था, वह गिर पड़ा लेकिन उसके कहीं चोट नहीं आयी। इससे 'क' को याद हो आया कि गुरुवार को १.३० से ३.३० तक राहु काल'[1] होता है।

ऐसे अंधविश्वासों को याद न रखना हमेशा अच्छा होता है। इन मामलों में **सुझाव** कार्य करता है—बहुधा अवचेतन मन में सुझांव; लेकिन सचेतन होने से वह ज्यादा मजबूत हो जाता है।

९ जून १९३२

पश्चिमी छत की कड़ी के उत्तरी छोर पर चार चमगादड़ पाये गये। उनमें से दो पूरी तरह सोलिग्नम[2] में नहाये हुए थे।

कितनी बुरी बात है! चमगादड़ दीमकों को खाते हैं!

१४ जून १९३२

सोलिग्नम छिड़कते समय मिस्त्री की आंख में भी एक फुहार पड़ गयी।

[1] स्थानीय अंधविश्वास के अनुसार यह अनिष्टकर होता है और हर रोज अलग-अलग समय पर आता है।

[2] सोलिग्नम एक दवाई है जो लकड़ी को दीमक से बचाती है।

सावधानी, **बहुत अधिक सावधानी** रखनी चाहिये ताकि ऐसी चीज फिर से न **होने पाये**। क्या तुम जानते हो कि इसमें हमारी कितनी बड़ी जिम्मेदारी है और अगर कोई गंभीर चीज हो जाये तो उसका **क्या अर्थ होगा** ?

सावधानी का अभाव जल्दबाजी और अधैर्य की गति का भाव है।

मैंने देखा है कि जहां माताजी को हमारी जरूरतों का पता होता है वहां भी हमें चीजें देने से पहले माताजी चाहती हैं कि हम उनकी मांग करें।

सभी मामलों में और विशेष रूप से सबके साथ ठीक ऐसा नहीं होता।

अपने अनुभव के आधार पर मैं इसे यूं समझता हूं : मैं माताजी से कुछ मांगते हुए संकोच का अनुभव करता हूं; लेकिन सचमुच माताजी के साथ व्यवहार करते समय हमारे अंदर कोई संकोच न होना चाहिये। सभी गतियां, जिनमें मांगने की क्रिया भी आ गयी, आनंद से भरी होनी चाहियें लेकिन चूंकि इसकी कमी है अतः माताजी हमें आनंद के साथ मांगने का प्रशिक्षण दे रही हैं।

बात ठीक ऐसी नहीं है। संभवतः हर एक के लिये कोई विशेष कारण होता है। एक चीज जो स्थिर है वह है आवश्यकताओं के आग्रह के मूल्यांकन में और उनकी परिपूर्ति को दिये गये महत्त्व में फर्क। मैं कल्पना-शक्ति, अनुकूलन, भौतिक कठिनाई पर विजय पाने की कठिनाई के कारण विकसित उपयोग या अन्वेषण करने की शक्ति को भी कुछ महत्त्व देती हूं।

मांगने में संकोच का कारण यह है कि मनुष्य कामनाओं से भरा होता है, अगर वह अपनी सभी कामनाओं को प्रकट करे—जिन्हें वह आवश्यकताएं मानता है—तो उसका मोह-भंग हो जायेगा। वह मोह-भंग करने की अपेक्षा उनका उल्लेख न करना ही ज्यादा पसंद करता है।

हां, जबतक कामनाएं हैं तबतक सच्ची घनिष्ठता नहीं स्थापित हो सकती।

१५ जून १९३२

एक खास तरह का पेंट था 'ग्री आंत्रतिएं' (ग्रे पेंट) जिसे माताजी के आदेशानुसार श्रीअरविंद के कमरे की चीजों के लिये ही सुरक्षित रखा गया था। माताजी का एक स्टूल उस पेंट से रंग दिया गया, इसपर माताजी लिखती हैं :

लेकिन यह पेंट देने के लिये जिम्मेदार कौन है ? क्या जो इसकी देख-भाल करते हैं (!) उन्हें यह नहीं बतलाया गया था कि उसका उपयोग केवल श्रीअरविंद के कमरे की खिड़की-दरवाजों पर ही किया जाना चाहिये ?

तब फिर इसका उपयोग मेरे स्टूल के लिये हुआ ही क्यों ? जहांतक मुझे याद है मैंने धूसर रंग के लिये नहीं कहा था।

इस मामले में पेंट इसलिये हाथ से खिसक गया क्योंकि माताजी के स्टूल के लिये मांगा गया था।

नियम नियम होता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे **हस्ताक्षर** की परची लाये बिना स्टूल नियम के बाहर कैसे निकल गया।

"तेरी ओर अभिमुख होना, तेरे साथ एक होना, तेरे अंदर और तेरे लिये जीना, परम सुख, शुद्ध आनंद और निर्विकार शांति है . . . लोग इन वरदानों से ऐसे क्यों भागते हैं मानों वे इनसे डरते हों।"

(माताजी की 'प्रार्थना और ध्यान' से)

मैं अब भी आश्चर्य करती हूं कि ऐसा क्यों होता है और मेरे पास इसके सिवा कोई उत्तर नहीं कि जगत् पर मूर्खता का शासन है।

२५ जून १९३२

पिछले कुछ दिनों से मेरा मन बहुत दिन पहले के दृश्यों और घटनाओं में रमा रहता है। वह इस तुलना से सुख का अनुभव करता है कि मैं उस समय जो था उससे अब कितना भिन्न हूं।

तुमने जो प्रगति की है उसकी पुष्टि करने के लिये कभी-कभी पीछे मुड़कर देखना अच्छा होता है, लेकिन उस हालत में जब वह तुम्हें अभी जो प्रगति करनी बाकी है उसके लिये प्रयास को प्रोत्साहन देने के लिये उत्तोलक का काम करे।

२७ जून १९३२

'क' जिस कापी का उपयोग करता है उसके पीछे के आवरण पर महीने के प्रत्येक दिन के राहुकाल के अशुभ घंटों की तालिका दी गयी है। मैंने उसके ऊपर एक कोरा कागज चिपका दिया है।

कृपा करके कुछ ऐसा लिख दीजिये जो इस अंध-विश्वास को जड़ से उखाड़ दे।

क्या तुम सोचते हो कि किसी मूर्खता की जड़ पर आघात करना इतना आसान है? मूर्खताओं की जड़ हमेशा अवचेतना की गहराई में होती है।

१ जुलाई १९३२

"हर क्षण समस्त अदृष्ट, अप्रत्याशित, अज्ञात हमारे सामने होता है।" ('प्रार्थना और ध्यान' से) इसका इलाज क्या है?

नमनीय और जागरूक, सावधान और सतर्क—ग्रहणशील रहो।

१८ जुलाई १९३२

और हां, प्रसंगवश मैंने पेंटर को बैठक की मेज पर रेगमाल करते देखा और मैं त्रस्त हो उठी। **वह जो कर रहा था उसके सिवाय** इस तरफ उस तरफ देखते हुए, एक या दूसरे हाथ से बड़ी उग्रता के साथ घिसे जा रहा था। बेचारी मेज, कैसा व्यवहार!! इतनी अधिक निश्चेतना और लापरवाही का क्या परिणाम होगा, यह न सोचना ही मैं ज्यादा पसंद करूंगी।

२० जुलाई १९३२

"तेरे दिव्य प्रेम की एक बूंद भर, इस समस्त पीड़ा को आनंद के सागर में बदल सकती है!

वर दे कि सभी आंसू पुंछ जायें, सारी पीड़ा शांत हो जाये, समस्त परिताप दूर हो जायें और प्रत्येक हृदय में स्थिर शांति निवास करे।

मैं दुःखी हूं मेरे ऊपर दया कर।

ओ तू जो समस्त दुःख-दर्द को शांत करता है और समस्त अज्ञान को दूर करता है, ओ तू, परम चिकित्सक, मुझ पर दया कर।

इस प्रतिरोध को तोड़ दे जो मुझे परिताप से भर देता है; क्यों, आखिर यह रात किसलिये?"[1]

[1] साधक की यह प्रार्थना माताजी की लिखी प्रार्थनाओं के अंशों को इधर-उधर से लेकर बनी है।

मैं बहुत-सी व्याख्याएं दे सकती हूं। क्यों और कैसे का आसानी से वर्णन किया जा सकता है, लेकिन क्या यह सचमुच जरूरी है ? यह तो रोग-मुक्त नहीं करता। रोग-मुक्ति सिर से नहीं हृदय से आती है।

समझना अच्छा है पर **इच्छा करना** ज्यादा अच्छा है।

आत्म-प्रेम बड़ी बाधा है।

भागवत प्रेम महान् उपचार है।

२० जुलाई १९३२

मैं रो रहा हूं। न जाने क्यों।

मन करे तो रो लो। परंतु चिंता न करो। वर्षा के बाद सूर्य ज्यादा तेजी से चमकता है।

मैं नींद की आशा में बिस्तर पर करवटें बदल रहा हूं।

शांति, शांति, मेरे बालक, अपने-आपको यातना न दो।

लेकिन यह अंधेरा क्या था ? पिछले चार घंटों में मैं अपने-आपको न पहचान सका। मैं कड़ा हो गया था, गरमी से जल रहा था, सब अंधेरा ही अंधेरा था।

विरोधी शक्तियों के आक्रमण के ठीक-ठीक चिह्न।

मैं कल्पना कर रहा था कि माताजी इस कापी को वितृष्णा से फेंक देंगी या श्रीअरविंद मुझे आश्रम छोड़ने के लिये कहते हुए दो पृष्ठ लिख देंगे या कम-से-कम कल से काम बंद कर देने के लिये कहेंगे। माताजी कहेंगी, यह सवेरे के समय अपने-आप में इतना मग्न रहता है यह उसी का फल है! इसे तो लात मारकर बाहर निकाल देना चाहिये आदि, आदि।

वही हमेशा की बेवकूफी।

प्रसंगवश, मुझे नहीं लगता कि विरोधी शक्तियों में बहुत कल्पना-शक्ति होती है। वे हमेशा वह की वही चालाकियां दोहराती रहती हैं! अभीतक तो उन्हें घिस जाना चाहिये था।

ओ मधुर, मधुर मां, तेरी शांति मेरे अंदर है, तेरी शांति मेरे अंदर है, तेरी शांति मेरे अंदर है।

सोओ बालक, सोओ, मधुर मां को अपने हृदय में लिये हुए !

जागो बालक, जागो, मधुर मां को अपने हृदय में लिये हुए !

२१ जुलाई १९३२

''हे प्रेम, दिव्य प्रेम, उर्वर नीरव निश्चलता में मैं तुझे नमन करती हूं''. . .

('प्रार्थना और ध्यान' से)

मैं अपने-आपको तेरे प्रति खोलता हूं और पूर्ण निष्ठा के साथ तेरी आज्ञा का पालन करूंगा।

२८ जुलाई १९३२

सच्ची **महानता** सच्ची **श्रेष्ठता, दयाभाव** और **सद्भाव** में है।

मुझे विश्वास है कि 'क' सचमुच उत्तेजित नहीं करता। **मुझे यह बिल्कुल पसंद न आयेगा। हर एक में अपने दोष होते हैं और दूसरों के साथ व्यवहार करते समय उसे यह कभी न भूलना चाहिये।**

२९ जुलाई १९३२

मैंने जो कुछ लिखा है उसे औरों को बहुत ज्यादा दिखाना अच्छा नहीं है। मैं हर एक के साथ एक ही तरह से व्यवहार नहीं करती और मैं एक से जो कह सकती हूं दूसरे से वह नहीं कहूंगी।

समस्त व्यक्तिगत निश्चय से सावधान, वह मनमाना हो सकता है।

३० जुलाई १९३२

''मेरी आराधना का समस्त उत्साह और भक्ति तेरे प्रति।''

('प्रार्थना और ध्यान' से)

यह कर्म में अपने-आपको प्रकट करती हुई आराधना है—और भी अधिक मूल्यवान्।

३१ जुलाई १९३२

मुझे तेरी चेतना की प्यास है, हे मधुर मां, मैं तेरे साथ एक हो जाऊं।

यह प्यास तब शांत होगी जब यह ("हे मधुर मां, मैं तेरे साथ एक हो जाऊं") मनोवैज्ञानिक रूप से उपलब्ध हो जायेगा।

२ अगस्त १९३२

आज शाम को जब 'क' ने मुझसे कहा कि 'ख' बीमार है तो मैं बोल पड़ा, उसने माताजी के प्रति विद्रोह किया होगा। उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं यह मानता हूं कि हमेशा ही बीमारी का कारण विद्रोह या गलत मनोवृत्ति होती है। मैंने कहा, हां। उसने एक ठोस उदाहरण मांगा तो मैंने वह घटना सुनायी जब माताजी ने मेरे काम में दोष निकाला और मेरे अंदर दबा हुआ विद्रोह जागा और परिणाम हुआ रोग। उसने अपनी अंगुलियां दिखलायीं और कहा, मुझे किसी ऐसे विद्रोह या गलत मनोवृत्ति का पता नहीं है जो मेरी अंगुलियों के दर्द के लिये जिम्मेदार हो।

गलत वृत्ति स्वयं **शारीरिक चेतना** में हो सकती है (श्रद्धा या ग्रहणशीलता का अभाव) और तब उसे पकड़ना बहुत कठिन होता है क्योंकि वह किसी गलत **विचार** या **अनुभूति** के साथ मेल नहीं खाती। अधिकतर प्रायः सभी में शारीरिक चेतना **अवचेतन** होती है।

क्या जैसे ऊपर उल्लेख किया गया है, अपनी अनुभूतियों के बारे में बातचीत करना अच्छा है?

इसके लिये कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता क्योंकि हर व्यक्ति अलग है। बातचीत के पीछे का भाव महत्त्वपूर्ण है। जो कुछ दिव्य सत्य की वेदी पर उत्सर्ग के रूप में शुद्ध और निष्कपट रूप से कहा जाता है उसीका सच्चा मूल्य हो सकता है।

६ अगस्त १९३२

आज सवेरे आपके चेहरे के भाव में हल्कापन, प्रसन्नता और आनंद था मानों वह मेरी गंभीरता की अनुभूति को प्रभावहीन करने के लिये था।

जो कुछ मैं कह रही थी उसमें से डांट-फटकार या बुरा भला कहने की समस्त

संभावना के भाव को दूर करने के लिये यह था, क्योंकि मेरा इरादा ऐसा बिल्कुल न था। मैं केवल जगत् की गति-विधि के बारे में एक मजेदार टिप्पणी व्यक्त कर रही थी कि कैसे वह हमारे तरीकों को, गलत समझे बिना नहीं रह सकता, **जब कि हम बहुत अधिक सचाई के साथ सत्य की ऐसी अभिव्यक्ति को खोज रहे हैं जिसे सामान्य लोग भी आसानी से समझ सकें।** यह खोज ही संकोच, अनिश्चितता, असफल प्रयास इत्यादि की छाप देती है।

१० अगस्त १९३२

"वर दे कि हम तेरी विजय को चरितार्थ करें" अगर समय आ गया है . . . लेकिन इसका उत्तर तो मधुर मां, तुम्हें देना होगा।

अपनी इच्छा-शक्ति की एकाग्रता और अपनी अभीप्सा की तीव्रता द्वारा हम विजय के दिन को जल्दी ला सकते हैं।

१३ अगस्त १९३२

प्यारी मां,

प्रार्थना की क्षमता के बारे में मेरा विश्वास है कि वह तभी प्रभावोत्पादक हो सकती है जब माताजी को संबोधित हो, मेरा मतलब उन माताजी से है जो उस कमरे में, रक्त-मांस सहित निवास करती हैं। अगर हम अपनी प्रार्थना किसी अज्ञात, अज्ञेय या अदृश्य भगवान् को संबोधित करें तो मैं केवल दर्शन कहकर उसका मजाक उड़ाता हूं।

मुझे तुम्हारा उत्तर बिल्कुल ठीक लगता है लेकिन 'क' चाहे तो अदृश्य, नीरव मां (जो कभी खुलकर तुम्हारी बात नहीं काटती) से अधिक सहायता पाने की आशा करने के लिये बिल्कुल स्वतंत्र है।

१५ अगस्त १९३२

मैं कभी-कभी स्वप्नों में ऐसी चीज क्यों करता हूं जिसे मैं जागते हुए न करूंगा?

यह गति एक अवचेतन स्तर से आती है जिसे दिन के समय अपने-आपको प्रकट नहीं करने दिया जाता।

क्या यह इसलिये है कि स्वप्नावस्था में मानसिक नियंत्रण नहीं रहता इसलिये प्राणिक सत्ता मनमानी करने के लिये स्वतंत्र होती है ?

अभीतक उस भाग में सच्चा और सतत नियंत्रण स्थापित नहीं हो पाया है।

एक परीक्षण : आज सवेरे काम की देख-भाल करते हुए मैंने एकाग्रता के साथ प्रार्थना की कि हर मजदूर इस बारे में सचेतन हो जाये कि वह माताजी के लिये काम कर रहा है और उसके आनंद का अनुभव करे। लगभग घंटे भर इस तरह एकाग्र होने के बाद मैं थक गया और एकाग्रता छितर गयी। इस तरह के अनुभव और इस थकान का कारण क्या है ? इस तरह की एकाग्रता को चौबीस घंटे बनाये रखने में क्या कठिनाई है ?

जब कभी भौतिक सत्ता से इस तरह की एकाग्रता को चिरस्थायी रखने के लिये कहा जाता है तो वह हमेशा थक जाती है।

एकाग्रता को हमेशा बनाये रखा जा सकता है परंतु मानसिक निर्णय द्वारा नहीं। यह भागवत निर्णय होना चाहिये।

१६ अगस्त १९३२

कौन-सी क्रिया सभी ऊर्जाओं का पूरा-पूरा उपयोग कर सकती है ?

वह जो उत्सर्ग के अधिकतम पूर्ण भाव के साथ की जाये।

२० अगस्त १९३२

एक संकोच : आज सवेरे माताजी ने कहा कि स्नानगृह का काम पूरा करने में डेढ़ महीना लगेगा। मैंने कह दिया, जी हां। वस्तुतः मैं आशा कर रहा था कि वह एक महीने के अंदर समाप्त हो जायेगा। जब मैंने हां की तो मेरे मन में दो विचार तेजी से दौड़ गये : (१) जब माताजी कहती हैं डेढ़ महीना तो स्वभावतः यही ठीक होना चाहिये, हो सकता है कुछ ऐसे कारणों से देर हो जाये जिन्हें मैं नहीं देख सकता, (२) लेकिन मैं यह क्यों न कहूं कि मेरे हिसाब से यह तीस दिन का काम है ?

यह अच्छा है, यह अनिवार्य है कि तुम यही सोचो कि इस काम में केवल तीस दिन ही लगेंगे अन्यथा वह दो महीनों से भी अधिक में फैल सकता है !

लेकिन मैं चाहती हूं कि यह तेज की अपेक्षा ज्यादा अच्छा काम हो।

मैं प्रार्थना करता हूं कि आकस्मिक देर न लगे।

मैं भी यही आशा करती हूं, लेकिन मैंने देखा है कि काम हमेशा तुम्हारे अंदाज से ज्यादा समय लेता है और सप्ताह पर सप्ताह धकेला जाता है। मैं ज्यादा बड़े पैमाने पर हिसाब लगाना चाहती हूं ताकि निराशा न हो।

माताजी, उचित मनोवृत्ति क्या है? अगर मैं एक सुझाव सुनूं (१)—मुझे लगता है कि मैं छिपाकर रख रहा हूं, (२)—मुझे लगता है कि मैं माताजी की बात काट रहा हूं। मुझे क्या करना चाहिये?

तुम क्या **सोच रहे** हो यह बतलाना विरोध करना नहीं है। मैं तुमसे **पैगंबर** होने की आशा नहीं करती कि जो कुछ तुम सोचो वह हमेशा ठीक ही निकले।

२५ अगस्त १९३२

माताजी,

कल मैंने आपसे कहा, 'सब चले गये'। वास्तव में बढ़ई जा रहा था, गया नहीं था और मैंने हिसाब लगाया कि जबतक मैं बाहर आया और मैंने दरवाजा बंद किया तबतक वह चला गया होगा इसलिये मैंने उत्तर दिया, 'जी हां माताजी, आखिरी आदमी भी चला गया।' लेकिन वह रहा! वह अभी पॉलिश करने के पत्थरों को ठीक करके रख रहा था! अगर मैंने तेजी से उत्तर देने की जल्दबाजी न की होती और एक क्षण के लिये मैं रुका होता तो मैं ज्यादा ठीक उत्तर दे पाता। मुझे इस मामले में जरा बेचैनी हो रही है।

इसमें बेचैन होने की कोई बात नहीं है। बाहरी चेतना के सहज रूप से आनेवाले उत्तर हमेशा अस्पष्ट और कुछ-कुछ गलत होते हैं। उसे ठीक करने के लिये बहुत जागरूकता की जरूरत होती है—और बहुत ही दृढ़ निश्चय की भी। शायद यह घटना तुम्हारे अंदर इसी निश्चय को उठाने के लिये हो।

५ सितंबर १९३२

भगवती मां,

आज मैं थक-सा गया हूं। मैंने कोई श्रम नहीं किया, न नींद या आराम में कंजूसी की है। मुझे उबकाई-सी आ रही थी लेकिन अब ठीक है।

मुझे आश्चर्य नहीं है। तुम आंतरिक प्रगति के ऐसे बिंदु तक पहुंच गये हो जब तुम गुस्से के ताव में आकर परिणाम भुगते बिना नहीं रह सकते। तुम्हें एक बार, हमेशा के लिये यह प्रण कर लेना और उसे निभाना चाहिये '**कभी गुस्से में न आओ**।'

मैंने तुमसे पहले ही कह रखा है कि इससे मजदूरों पर तुम्हारी पकड़ घटने की जगह बढ़ेगी।

२६ *सितंबर* १९३२

चालाक होने की अपेक्षा बिल्कुल निष्कपट होना ज्यादा अच्छा है।

३१ *अक्तूबर* १९३२

भगवान् के साथ प्रेम करने का अर्थ है, उनसे प्रेम पाना।

२ नवंबर १९३२

अचानक वर्षा होने के कारण हम खिड़कियां बंद करना चाहते थे और हमने कुछ असुविधा के साथ देखा कि **एक भी ठीक तरह बंद नहीं होती**। अगर तुम हर्क्यूलीस या पहलवान न हो तो उन्हें बंद करने की कोई आशा न रखो। मेरा ख्याल है कि वे सद्भावना से बंद तो रहती हैं लेकिन, साथ ही मैं समझती हूं कि तेज आंधी के झोंके के आगे यह सद्भावना टिकी न रह सकेगी।

मरम्मत की सख्त जरूरत है। कल सवेरे मैं तुम्हें स्थिति दिखलाऊंगी।

९ नवंबर १९३२

मधुर मां,

'क' ने आज सवेरे मुझसे कहा, "क्या तुमने 'ख' का पलस्तर देखा है? कितना बढ़िया है! हम लोगों ने जो काम किया है वह इतना अच्छा नहीं है।" मैंने जवाब दिया, "इसका एक कारण तो मैं जानता हूं, तुम सारे समय अपने मजदूरों के साथ नहीं रहते। आज सवेरे साढ़े नौ से साढ़े दस तक तुम अपने स्थान पर न थे।" उसने जवाब दिया, "लेकिन 'ख' भी तो कभी-कभी छुट्टी ले लेता है।"

मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूं, अगर कोई अपने काम में कर्तव्यनिष्ठ होने से इंकार

करे तो मैं क्या कर सकती हूं ? यह सच है कि काम की क्षति होती है लेकिन स्वयं उसकी क्षति और भी ज्यादा होती है, क्योंकि चाहे जितना ध्यान क्यों न किया जाये वह भगवान् की सेवा में सचाई और निष्कपटता का स्थान नहीं ले सकता।

३ दिसंबर १९३२

मधुर मां,

''तुम्हें निर्विकार विश्वास में उड़ना जानना चाहिये। निश्चित उड़ान में ही पूर्ण ज्ञान है।'' ('प्रार्थना और ध्यान' से) *मैं यह वाक्य नहीं समझ पाया। हम कैसे उड़ सकते हैं ? इस रूपक का क्या अर्थ है ?*

इसका सीधा-सा अर्थ है सामान्य चेतना से ऊपर उठना (हवा में उड़ना), उच्चतर चेतना में जाना जहां से तुम चीजों को ऊपर से देख सकते हो और इस तरह उन्हें ज्यादा गहराई से देख सकते हो।

९ दिसंबर १९३२

अगर तुम भगवान् से कोई चीज छिपाना चाहो तो ठप्प से नाक के बल जा गिरोगे !

१० दिसंबर १९३२

भगवान् पर **संपूर्ण भरोसा** करने में ही आनंद है।

२ जनवरी १९३३

क्यों, जब तुम तकलीफ में होते हो तो क्या तुम भागवत कृपा की सहायता नहीं मांगते ? फिर भी तुम अनुभव से जानते हो कि उसका परिणाम कितना अमोघ और अद्‌भुत होता है !

१६ जनवरी १९३३

मधुर मां,

मैं अभीतक काम के लिये कामना और आवश्यकता में फर्क नहीं कर पाता। इसलिये मैंने यह तरीका अपनाया है : जब मुझे लगता है कि मुझे

किसी चीज की जरूरत है तो मैं प्रतीक्षा करता हूं। अगर उस चीज के न होने के कारण असुविधा बनी रहती या बढ़ती है तो मैं उसकी मांग करता हूं।

तब कामना कटु और तीव्र हो जाती है और निवेदन एक प्रकार के खट्टे क्रोध से मिला होता है।

कभी-कभी मैं इससे ठीक उल्टी तरकीब अपनाने की सोचता हूं। जैसे ही मुझे लगे कि इस चीज की जरूरत है, उसे तुरंत मांग लूं, न तो उसके बारे में सोचूं न उसे स्थगित करूं। लेकिन इस तरकीब को अपनाने की हिम्मत नहीं होती।

एक और भी तरकीब है जो इन दोनों से कहीं अधिक मजेदार है : किसी चीज की मांग न करो और देखो कि क्या होता है।

मुझे कोई अचूक तरकीब बतलाइये।

मेरे पास नहीं है।

२६ मार्च १९३३

मधुर मां ने कहा है, "एक और भी तरकीब है।" मैं थोड़ा चकरा गया कि मधुर मां के उत्तर का अक्षरशः पालन कैसे करूं। मैंने उनकी सलाह का अनुसरण शुरू कर दिया। मैंने किसी चीज की मांग न की। अप्रैल की पहली[1] को भी कुछ न मांगा और यह मेरे चकराने का एक और कारण है।

मुझे शंका है कि "अक्षरशः" आज्ञापालन करने में तुम "भाव" को खो बैठे। मैं भंडार से दी जानेवाली चीजों के बारे में नहीं कह रही थी। और मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि तुमने पहली तारीख के लिये कुछ भी नहीं मांगा। अच्छा यह होगा कि तुम ठीक वही चीजें मांगो **जिनकी तुम्हें जरूरत हो**।

५ अप्रैल १९३३

चूंकि दूसरे लोग कमीने हैं इसलिये यह कोई कारण नहीं है कि तुम भी कमीने बनो !

२४ अप्रैल १९३३

[1] आश्रम में हर महीने की पहली तारीख को तेल, साबुन, कपड़े आदि आवश्यक वस्तुएं 'प्रॉस्पेरिटी' (योगक्षेम) नामक भंडार से मिला करती हैं। इसके लिये पहले से परची देनी होती है। उन दिनों स्वयं माताजी ये परचियां देखा और स्वीकृत किया करती थीं।

मधुर मां,

पुरानी नौकरानी 'क' अपने छोटे बच्चे के लिये (जो मेरे ख्याल से आठ वर्ष से कम का होगा) काम मांगती है। क्या मैं उसे गणपति गृह में कूड़ा साफ करने का काम दे दूं?

आठ वर्ष से कम के बच्चे को काम देना असंभव है। यह अपराध होगा।

९ जून १९३३

हम महान् विजय के लिये वफादार कार्यकर्ता होना चाहते हैं।

२६ जून १९३३

मधुर मां,

बढ़ई 'क' ने फिर से शादी करने के लिये दस दिन की छुट्टी ली है। वह चालीस रुपये पेशगी मांगता है जिन्हें वह आठ रुपये महीने के हिसाब से लौटा देगा। मैंने उससे कह दिया है कि माताजी विवाह या पुनर्विवाह पसंद नहीं करतीं और उसके लिये उधार को तो बिल्कुल नहीं।

वह माताजी से पूछने के लिये आग्रह कर रहा है। हे अद्‌भुत जननी, क्या आज्ञा है?

हम क्या कर सकते हैं? वह अच्छा और नियमित कार्यकर्ता है, है न? मैं आशा करती हूं कि यह नयी शादी उसे अनियमित न बना देगी।

क्या उसे रुपये देने चाहियें? अगर तुम्हें जरूरी लगे तो, मैं ना न करूंगी।

६ जुलाई १९३३

मधुर मां,

नापने का फीता : सामान्य बुद्धि कहती है कि यह फीता अनिवार्य नहीं है। लेकिन मेरे अंदर कहीं पर असंतोष है। मैं उस अक्खड़ स्थान पर उंगली नहीं रख सकता। क्या यह मेरा मन है? क्या मन ही इस मांग के वाहियातपन को नहीं दिखलाता?

यह मानसिक रूपायण है जिसे प्राण की कामना प्रोत्साहित करती है, जो अपने पूरे न हो सकने के कारण विरोध और विद्रोह करती है। ये रूपायण स्वशासित सत्ताएं होते

हैं। इसलिये एक बार उनके बन जाने पर सचेतन इच्छा शक्ति उनपर पूरा अधिकार खो बैठती है जबतक कि एक **प्रति-रूपायण न बनाया जाये जो उन्हें नष्ट कर दे**। उदाहरण के लिये "मुझे नापने का फीता नहीं चाहिये, मैं गंभीरता से आशा करता हूं कि माताजी मुझे फीता देकर शर्मिंदा न करेंगी, इससे मैं शर्म और उलझन से भर जाऊंगा। ऐसी अज्ञान-भरी और हठीली कामनाएं माताजी के बालक के अयोग्य हैं।"

१२ सितंबर १९३३

मधुर मां,

लोहार : उसकी आंख में लोहे का टुकड़ा घुस गया। क्या इसका इस तथ्य के साथ कोई संबंध है कि मैंने उसे 'क' की कशीदाकारी के फ्रेम के लिये छड़ें बनाने का काम आपसे बात किये बिना ही दे दिया था? जब लोहार इस दुर्घटना के बाद मेरे पास आया तो मुझे लगा कि इसका कोई संबंध है, कि आपने कहा था कि आपको इस तरह के फ्रेम के बारे में शंका है, तब तो मेरी बेचैनी दोगुनी हो गयी। मधुर मां, इस विषय पर प्रकाश डालिये।

ये गतिविधियां कामना और अज्ञान से उछलती हैं (फ्रेम **कैसे** बने इस बारे में जाने बिना 'क' की उसके लिये कामना) और वे सामंजस्य के बिना, अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता में विकसित होती हैं और कभी-कभी इस घटना की तरह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम लाती हैं। मैं समझाती हूं: बड़े फ्रेम का **विचार** बहुत अच्छा है लेकिन उसे कार्यान्वित करना कठिन है। अगर **कामना तुरंत काम पूरा करने के लिये** आग्रह न करती तो इस योजना को पूरा करने से पहले उसकी भली-भांति जांच की जाती तब उसका कार्यान्वयन ज्यादा सामंजस्यपूर्ण होता।

१३ सितंबर १९३३

[झूलती हुई छलनी को सहारा देने के लिये एक कसा हुआ फ्रेम बनाने के बारे में]

तुम जानते हो झूला क्या होता है?

यह एक तरह का खिलौना होता है, बचपन में मैं इसमें बहुत मजा लिया करती थी। यह लकड़ी का बना होता है और वह तख्ता जिसपर तुम झूलते हो, ऊपर एक छड़ से लगे छल्लों के साथ रस्सियों से बंधा होता है। सहारा देनेवाले खंभे जमीन में अच्छी तरह गड़े होते हैं। मैं सोच रही थी कि छलनी के लिये ऐसी ही कोई चीज बनायी जा सकती है।

१९ सितंबर १९३३

हे भगवती मां,

मैंने आलोचनात्मक दृष्टि से काम के ब्योरे की परीक्षा शुरू की है और हर चीज से यही प्रमाणित होता है कि वास्तव में मैं कुछ नहीं जानता, मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं बेकार हूं। यह पहचान लेने के बाद काम का आनंद जाता रहा है।

इस तथ्य का सरलता के साथ स्वागत करो कि तुम पूर्णता की कमी के बारे में अभिज्ञ हो उठे हो, क्योंकि यह अभिज्ञता तुम्हें **और आगे प्रगति करने के योग्य बनाती है**। वस्तुतः प्रगति करना, कठिनाई पर विजय पाना, कुछ सीखना, अचेतना के किसी तत्त्व के अंदर स्पष्ट रूप से देखना—ये हैं वे चीजें जो तुम्हें सचमुच सुखी बनाती हैं।

२२ सितंबर १९३३

मधुर मां,

लोग इतनी आसानी से मेरा अपमान कैसे कर सकते हैं, मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है। क्या मेरे चेहरे-मोहरे में बल या तेज की कमी है? क्या मैं औरों के लिये घृणा से भरा हूं इसलिये और लोग भी मेरे साथ घृणापूर्ण व्यवहार करते हैं? मैं बार-बार कोशिश करने पर भी कोई संतोषजनक उत्तर नहीं पा सकता।

शारीरिक रूप-रंग का इसके साथ कुछ संबंध हो सकता है लेकिन सच कहा जाये तो इसका बहुत मूल्य नहीं है। मैं इसकी जगह वातावरणों के प्रभाव पर अधिक विश्वास करती हूं। हर एक के चारों ओर एक वातावरण होता है जो उन स्पंदनों से बना होता है जो उसके चरित्र, मनोदशा, सोचने, अनुभव करने, कार्य करने के तरीके से आते हैं। ये वातावरण छूत के द्वारा एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। ये स्पंदन संक्रामक होते हैं, यानी, हम जिस किसी से मिलते हैं उसके स्पंदनों को आसानी से ले लेते हैं, विशेष रूप से अगर वह स्पंदन मजबूत हो। अतः यह समझना आसान है कि जो अपने अंदर या अपने चारों ओर शांति और सद्भावना लिये रहता है, वह एक तरीके से दूसरों पर अपनी शांति और सद्भावना का कुछ भाव तो आरोपित कर ही देगा; जब कि घृणा, चिड़चिड़ाहट और क्रोध औरों में इसी तरह की गतिविधियां जगायेंगे। बहुत-सी घटनाओं की व्याख्या इसी लीक पर चलने से मिल जायेगी—लेकिन यही एकमात्र व्याख्या नहीं है!

३० अक्तूबर १९३३

मधुर मां,

आज सवेरे प्रणाम के समय मेरे हृदय से आपकी ओर एक प्रार्थना उठी, ''वर दे कि आज के दिन मुझे ऐसा अवसर मिले कि मैं उत्तेजना के सामने भी शांत रह सकूं।'' यह बहुत ही सहज प्रार्थना थी।

लेकिन यह एक उद्धत प्रार्थना है! यह ऐसा है मानों तुम जान-बूझकर अप्रिय अनुभूति को अपनी ओर खींच रहे हो।

(इसके बाद साधक ने किसी के साथ अपनी गरमा-गरम बहस का जिक्र किया।) मुझे दुःख है कि आखिरी वाक्य बोलते समय मैं आपे से बाहर हो गया था, मैंने देखा है कि जब मैं सचेतन होता हूं तब भी अगर मैं मुंह खोलूं तो आत्म-संयम खो बैठता हूं। मैं एक वाक्य से दूसरे वाक्य तक अधिकाधिक क्रुद्ध होता चला जाता हूं।

तो निष्कर्ष स्पष्ट है : ज्यादा अच्छा होगा कि तुम अपना मुंह ही न खोलो। इस मामले की तरह कुछ मामलों में ज्यादा अच्छा है कि **मुंह खोलने की जगह पीठ मोड़ लो**।

३ नवंबर १९३३

मधुर मां,

'क' के कमरे में विभाजक आलमारी के बारे में : मैंने इस आलमारी के खाने लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों से बनवाये हैं। इस तरह बहुत-से पुराने तख्ते काम में लग गये लेकिन जब 'क' ने ये खाने देखे तो उसने असंतोष प्रकट किया।

हां, यहां हर एक केवल खर्च, खर्च और अधिक खर्च के बारे में सोचता है, जितना कर सके उतना अधिक खर्च। कोई भी बचाने और अपव्यय को रोकने की नहीं सोचता। यह अहंकार की विजय है। तुम यह उन्हें दिखला दो और कहो कि मैंने ही कहा था कि जहांतक बन पड़े लकड़ी के पुराने टुकड़ों का उपयोग किया जाये।

१३ नवंबर १९३३

जरूरी—आरूमे (रसोई घर)

मैं एक महत्त्वपूर्ण बात पूछना भूल गयी। चूंकि पकाने के लिये काम में आनेवाले बरतन बहुत बड़े हैं इसलिये चूल्हों का ऊपरी हिस्सा जमीन की सतह से बहुत ऊंचा न

होना चाहिये। रसोई घर की मरम्मत के समय ही इसकी जांच कर लेना जरूरी है। चूल्हे का ऊपरी हिस्सा जमीन से पचास सेंटीमीटर से अधिक ऊंचा न होना चाहिये, ताकि बरतनों को बिना किसी खतरे के उठाया और रखा जा सके।

५ दिसंबर १९३३

(साधक ने अपने काम की तालिका देते हुए कहा :) इसके बाद मेरे पास सब केंद्रों को देखने के लिये काफी समय नहीं बचता। मैं क्या करूं? मधुर मां, मैं आपकी सहायता मांगता हूं।

तुम्हें शांत और एकाग्र रहना चाहिये। बिना जरूरत के एक वाक्य भी न बोलो और भगवान् की सहायता पर श्रद्धा रखो।

१२ दिसंबर १९३३

मधुर मां,

एक प्रयोग : अगर तुम देखो कि तुम्हारी आवाज ऊंची हो रही है तो तुरंत बोलना बंद कर दो, मधुर मां को बुलाओ कि वे तुम्हारे छिपे विकार के बारे में तुम्हें अभिज्ञ कर दें—क्या यह ठीक है मधुर मां?

यह ठीक है।

इस अच्छी-खासी प्रगति के लिये मेरे साधुवाद।

९ फरवरी १९३४

"सन् ४३४ में हुणों के राजा अटिला ने गोल के शहरों को तहस-नहस कर दिया लेकिन सेंट जांविऐव द्वारा रास्ता बदलवाने की वजह से लूटेसिया बच गया।" मैं "सेंट जांविऐव द्वारा रास्ता बदलवाने" का अर्थ नहीं समझा। क्या सेंट जांविऐव ने लूटेसिया की ओर से एटिला का रास्ता बदल दिया था जिससे वह बच गया?

एटिला को लूटेसिया को छोड़ना पड़ा सेंट जांविऐव की गुह्य क्रिया के कारण जिन्होंने अपनी प्रार्थनाओं के उत्ताप द्वारा भागवत कृपा के हस्तक्षेप को बुला लिया। इसकी वजह से एटिला को अपनी सेनाओं का रास्ता बदलना पड़ा और वह उस शहर को छोड़कर दूर निकल गया।

११ फरवरी १९३४

मधुर मां,

पिछले तीन-चार दिनों से मेरी छाती के दाहिनी ओर और पीठ के बाईं ओर दर्द रहता है। मैंने ठीक किया था कि मैं इसे सह लूंगा और आपको नहीं बताऊंगा। लेकिन कल से दर्द और भी बढ़ गया है।

उसके बारे में कुछ न कहने में बहुत बुद्धिमानी नहीं थी। अगर तुमने मुझे तुरंत बता दिया होता तो दर्द अभी तक जा चुका होता।

१३ फरवरी १९३४

[साधक ने माताजी को बतलाया कि एक स्थानीय फ्रेंच अफसर 'ख' के साथ उसकी बातचीत हुई जिसका अंतिम अंश यूं है :]

ख : मैंने सुना है कि श्रीअरविंद दूर से संपर्क स्थापित कर सकते हैं। क्या यह सच है ?

साधक : यह तो कुछ भी नहीं है। उन्हें गुह्य शक्तियों में रस नहीं है। यह उनका लक्ष्य नहीं है।

ख : फिर भी क्या वे कलकत्ते के किसी आदमी के साथ संपर्क कर सकते हैं ?

साधक : हां, अगर वह आदमी ग्रहणशील हो। मान लो मेरे काम में कोई कठिनाई आती है और माताजी से संपर्क साधने का कोई उपाय नहीं है, मुझे कोई समाधान नहीं मिलता तो मैं माताजी का ध्यान करता हूं और उनसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे राह दिखलायें और समाधान बतलायें। यह कोई असामान्य बात नहीं है। यह बहुत बार हो चुका है।

ख : क्या श्रीअरविंद भाषण देते हैं ?

साधक : नहीं, हम माताजी के साथ ध्यान करते हैं।

ख : आप किस चीज पर ध्यान करते हैं ?

साधक : हर एक अपनी अभीप्सा पर, और माताजी हमारा पथप्रदर्शन करती हैं। वे हमें अनुभूतियां और अंतःप्रकाश देती हैं।

ख : आप बोलते नहीं हैं !

साधक : हां, हम सब भ्रम में नहीं होते !

ख : क्या आपको विश्वास है कि आप भ्रम में नहीं होते ?

[माताजी ने बहुत-से वाक्यों पर लाल पेंसिल से निशान लगा दिये]

मैंने जिन बातों पर लाल पेंसिल से निशान लगाया है उन्हें न कहना ज्यादा अच्छा

होता। इसकी गिनती उन "शक्तियों" में है जिनका उल्लेख न करना अच्छा है। या तो तुम जिस व्यक्ति से बात कर रहे हो वह कुछ भी नहीं समझता और तुम्हें एक ऐसा मूर्ख मान लेता है जो भ्रम से पीड़ित है या वह समझता है और **भयभीत** हो जाता है और यह हमेशा खतरनाक चीज होती है।

अगर कोई तुमसे श्रीअरविंद की शक्तियों के बारे में पूछे तो हमेशा यह उत्तर देना ज्यादा अच्छा रहता है, मैं नहीं जानता, वे हमें इस बारे में कुछ नहीं बताते।

और जबतक अनिवार्य न हो मेरे बारे में बात न करो। मैं 'ख' के लिये वार्तालाप की एक प्रति रख रही हूं।

२७ मार्च १९३४

मधुर मां,

जब मैं कोई उपन्यास या कोई और छपी हुई चीज पढ़ता हूं तो मैं स्पष्ट रूप से लगभग अस्सी प्रतिशत समझ लेता हूं। लेकिन जब कोई बोलता है तो मुझे समझने में बड़ी कठिनाई होती है। आधे से ज्यादा तो बह ही जाता है।

तो क्या इसका मतलब है कि 'ख' के साथ अपनी बातचीत का जो अहवाल तुमने दिया था वह गलत था? यह बहुत गंभीर है। तुम्हें उसके मुंह से ऐसे शब्द नहीं कहलवाने चाहियें जो उसने नहीं कहे। तुम्हें बातें ठीक उसी तरह बतलानी चाहियें जैसी तुमने सुनी थीं और जब तुम्हें विश्वास न हो तो तुम्हें वह भी कह देना चाहिये।

२ अप्रैल १९३४

मधुर मां,

एक प्रार्थना: मुझे अमोघ उपाय बतलाइये जिससे मैं मधुर मां का स्वास्थ्यदायक और सुखकर चुंबन पा सकूं।

तुम मेरे प्रेम का बाहरी चिह्न क्यों चाहते हो? क्या तुम्हें इतना जानकर संतोष नहीं है कि वह है।

१६ अप्रैल १९३४

मधुर मां,

मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे 'क' से बहुत कुछ सीखना है। मैं 'क' के अंदर मधुर मां को नमन करता हूं। हमारे संबंध को ऐसा बना दे जिसके द्वारा मैं लाभ उठा सकूं और तुझे जान पाऊं।

मैं इस मनोवृत्ति और प्रयास की सराहना करती हूं। इससे तुम्हारी अभीप्सा की सचाई का प्रमाण मिलता है। लेकिन मेरे मन में यह विशेष बात न थी—मैं अधिक सामान्य रूप से "तुम सब" कह रही थी। तुम सब को एक-दूसरे के साथ संबंध में बहुत बदलना और बहुत सीखना है।

२० अप्रैल १९३४

ऐसा मालूम होता है कि छुट्टियों के बारे में सूचना केवल फ्रेंच में ही दी गयी है। मुझे नहीं लगता कि तुम्हें ऐसा करना चाहिये क्योंकि इसका अर्थ होगा जो लोग गृहनिर्माण-विभाग में काम करते हैं उन सब पर फ्रेंच-शिक्षा आरोपित की जाये—जो असंभव है।

उदाहरण के लिये एक बार 'क' ने मुझसे पूछा था कि क्या फ्रेंच सीखना अनिवार्य है। मैंने उससे कहा, "नहीं"। और लोग भी इसी स्थिति में हैं। मेरी राय है कि तुम्हें फ्रेंच के साथ-साथ उसका अंग्रेजी रूप भी देना चाहिये और फिर दोनों साथ-ही-साथ भेजे जा सकते हैं।

४ मई १९३४

'क' ने पूछा है कि क्या शाम को छः से सात तक जो अतिरिक्त काम होता है उसके लिये हम दोगुना वेतन दे सकते हैं। मैंने कह दिया है 'हां'। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि फ्रांस में सभी अतिरिक्त घंटों के लिये दोगुना वेतन दिया जाता है और यह युक्तियुक्त मालूम होता है।

४ मई १९३४

मधुर मां,

मुझे एक दोष स्वीकार करना है। मेरे मन में परस्पर विरोधों और संदेहों की बाढ़-सी आयी हुई है। मैंने इस चढ़ाई के विरुद्ध जी जान से संघर्ष किया है लेकिन अभीतक मुझे शांति नहीं मिली।

पिछली रात मैंने एक प्रयास किया। हमारी योजना के लिये जितने खर्च और मजदूरों की जरूरत होगी उसका मैंने अनुमान लगाया—जितना मेरी लघु और सीमित पूर्वदृष्टि कर सकती थी। मैं पूरी तरह विषाद से भर गया। मुझे क्या करना चाहिये ?

इन चीजों को सावधानी से सोचना चाहिये, उस तरह नहीं जैसे तुम खेल की या फ्रेंच-उच्चारण की बातें करते हो।

जैसे ही योजना पूरी तरह तैयार हो जाये, जब तुम हर चीज कार्यान्वित कर लो और मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सको तो एक दिन मैं तुम्हें 'क' के साथ सवेरे के समय अपने छोटे कमरे में बुलाऊंगी और हम लोग शांति के साथ इस विषय पर बातचीत करेंगे। तुम जरा-सी बाधा आने पर **साहस और विश्वास न खोना कब सीखोगे**, जब चीजें, **मेरी ही क्रिया के कारण** ठीक वैसी नहीं हैं जैसी तुम्हारी योजना के अनुसार होतीं ? मेरा ख्याल है कि अब समय हो चुका है जब तुम्हें यह जान लेना चाहिये; लेकिन मैं देखती हूं कि तुम मुझे बहुत ही कम श्रेय देते हो, उससे भी कम जितना तुम एक साधारण घर बनानेवाले ठेकेदार को दोगे, जो तुम्हारी दृष्टि में अपना काम जाननेवाला मालूम होता है और जिसमें साधारण बुद्धि भी है।

[इसके बाद साधक ने अपनी काम की योजना-संबंधी और कार्यकर्ताओं-संबंधी कई कठिनाइयों के उदाहरण दिये।]

तुमने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है और इन सबके अतिरिक्त और भी बहुत-सी चीजें हैं जो तुमने नहीं कही हैं परंतु मैं जानती हूं। सारी तकलीफ को यूं संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है :

१) बहुत अधिक कार्यकर्ता।

२) एक ही समय में बहुत अधिक योजनाओं को हाथ में लेना।

३) कुछ निरीक्षकों में चेतना का अभाव।

स्वभावतः नं० २ को निरीक्षकों की संख्या बढ़ाकर ठीक किया जा सकता है, बशर्ते कि वे सच्चे और ईमानदार हों और यही नं० ३ के लिये भी उपचार होगा। लेकिन मेरा ख्याल है कि सभी उपचारों में से इसे पाना (यानी ईमानदार, सच्चा और सचेतन होना) सबसे अधिक कठिन है।

कई बार हमने सामान्य रूप से मजदूर कम करने के बारे में बात की है और मैंने हमेशा हामी भरी है। मुझे जहांतक संभव हो खर्च कम करने में बहुत खुशी होगी।

लेकिन जब कभी हम इसे क्रियान्वित करने की बात पर आये तो हमेशा एक कठिनाई सामने आयी कि किसे निकाला जाये ? और तुम्हारे उत्तरों से ऐसा लगा कि इस कठिनाई को पार करना असंभव है।

अब मेरा प्रस्ताव है कि सूचना-पट्ट पर इस प्रकार की एक सूचना लगा दी जाये जिसे 'क' लिख सकता है :

"स्थानीय लोगों की दुर्भावना ने मुझे मकान खरीदना बंद करने के लिये बाधित कर दिया है और परिणाम-स्वरूप हमारे पास इतना काम नहीं है कि अपने सभी

मजदूरों को काम में लगाये रख सकें। मुझे इसके लिये दुःख है, लेकिन मैं इसके लिये बाधित हूं कि कुछ लोगों को (यहां तुम संख्या दे दो) अलग कर दूं, और चूंकि वे सभी मेहनती और वफादार रहे हैं इसलिये चुनाव करना और भी ज्यादा कठिन है। इसलिये मैं तीन सप्ताह पहले से सूचना दे रही हूं कि पहली जुलाई से मजदूरों की संख्या (तुम ठीक-ठीक संख्या दे दो) कम कर दी जायेगी। इससे उन्हें और कहीं काम पाने में आसानी होगी। जिन्हें काम मिल जाये वे हमें सूचना दे दें।''

यह सूचना लगाने से पहले तुम उन कार्यकर्ताओं (राज, बढ़ई, पेंटर और मजदूर आदि) से बात कर लो **जिन्हें तुम निश्चित रूप से रखना चाहते हो** और उनसे कह दो कि तुम जो सूचना लगानेवाले हो वह उनके लिये नहीं है और **हर हालत में हम उनकी सेवाएं रखना चाहते हैं** अतः उन्हें और कहीं काम ढूंढ़ने की जरूरत नहीं। कोई संभव गलत-फहमी न होने पाये इसके लिये ज्यादा अच्छा यह होगा कि 'क' या 'ख' तुम्हारी उपस्थिति में उनसे बात करें।

और पहली जुलाई से हमें निरीक्षण की कठिनाई से बचने के लिये एक समय हाथ में ली जानेवाली योजनाओं की संख्या को भी कम करना होगा।

यह चीज मैं इस समय बहुत स्पष्ट रूप से देख रही हूं।

५ जून १९३४

मधुर मां,

आज रात तक मैंने जितने भी दुःख-दर्द सहे हैं, वे मधुर मां के आगे संकोच के कारण हैं। क्या मेरा निदान ठीक है ? अगर हां, तो मैं मधुर मां का विरोध किये बिना या उन्हें उलझन में डाले बिना इन संकोचों को कैसे दूर कर सकता हूं ?

मैं पहले तुम्हें एक छोटी-सी कहानी सुनाने से शुरू करती हूं और बाद में उत्तर दूंगी।

तुमने वह नयी घड़ी देखी होगी जिसके लिये कहा जाता है कि उसे छः महीने चलना चाहिये। जब उसे पहले-पहल चलाया गया तो वह बहुत तेज दौड़ती थी। 'क' ने तरकीब निकाली कि उसे कैसे ठीक किया जाये और उसने एक तरह का पेंच देखा जिसे लोलक को लंबा या छोटा करने के लिये काम में लाया जाता है। मैंने अपनी **अंतर्दृष्टि** से घड़ी को देखा और 'क' से कहा, ''इसकी गति को धीमा करने के लिये तुम्हें इसके लोलक को जरा छोटा कर देना चाहिये। उसने चकराये हुए भाव से मेरी ओर देखा और फिर मुझे समझाया कि यांत्रिकी में लोलक जितना लंबा हो, गति उतनी ही धीमी होगी। (मुझे यह बात अच्छी तरह मालूम थी लेकिन यह साधारण लोलक न था, वह रोटरी-गति से चलता था)। जैसा कि मैं हमेशा करती हूं मैंने उत्तर

दिया, "जो तुम्हें ठीक लगता है वही करो।" उसने लोलक को लंबा कर दिया और घड़ी और भी तेज हो गयी। एक दिन तक देखने के बाद वह सहमत हो गया कि लोलक को छोटा करना चाहिये और अब घड़ी बिल्कुल ठीक चल रही है।

मैं बाहरी दृष्टि की अपेक्षा आंतरिक दृष्टि की श्रेष्ठता पर विश्वास करती हूं और यह विश्वास केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर नहीं बल्कि उन हजारों उदाहरणों पर निर्भर है जो मेरे जीवन में, जो काफी लंबा है, मेरे सामने आये हैं। दुर्भाग्यवश मैं ऐसे लोगों से घिरी हूं जो यहां हैं तो योगाभ्यास के लिये परंतु जिन्हें विश्वास है, एक फ्रेंच मुहावरे के अनुसार "बिल्ली बिल्ली ही है," और यह कि हम देखने और अवलोकन करने के लिये केवल भौतिक आंखों पर और निश्चय और निर्णय करने के लिये अपने भौतिक मानसिक ज्ञान पर ही निर्भर कर सकते हैं, और यह कि प्रकृति के विधान **विधान** हैं—दूसरे शब्दों में, उनमें कोई अपवाद चमत्कार ही हो सकता है। यह गलत है।

सारी गलतफहमियों और संकोच की जड़ में यही है। तुम पहले से ही जानते हो और मैं केवल तुम्हें याद दिलाने के लिये फिर से कह रही हूं कि संकोच और शंका के भाव से किया गया परीक्षण परीक्षण नहीं होता और बाहरी परिस्थितियां हमेशा इन संदेहों को उचित ठहराने के लिये षडयंत्र करती रहेंगी और यह ऐसे कारण से जिसे आसानी से समझा जा सकता है : संदेह चेतना को और अवचेतन सचाई को ढक देता है और क्रिया में कुछ ऐसी छोटी-मोटी चीजें घुस आती हैं जो महत्त्वहीन दीख सकती हैं लेकिन जो समस्या के सभी घटकों को इस तरह बदल देने के लिये काफी हैं कि ऐसे परिणाम को ले आयें जिसका संदेह के कारण पूर्वाभास मिला था।

मुझे इसके सिवा और कुछ नहीं कहना। जब 'क' के कमरे में डिस्टेम्पर करने की बात हुई तो मैंने आंतरिक चक्षु से सावधानी के साथ कई बार यह देखा : एक लोहे के बुरुश से दीवारों को साफ करो ताकि जो कुछ ढीला है वह गिर जाये और बाकी को डिस्टेम्पर की मोटी तह से ढक दो। वह अपनी मोटाई के कारण अनियमितताओं को ढक देगी। प्रक्रिया आसान, तेज और पूरी तरह संतोषजनक मालूम होती थी। मैंने आवश्यक शक्ति भर दी ताकि वह प्रभावकारी रूपायण बन जाये जिसमें चरितार्थ होने की सामर्थ्य हो और मैंने कहा कि काम शुरू हो सकता है। वह कैसे किया जाये इस विषय में भी कुछ शब्द जोड़ दिये (यह बहुत पहले की बात है, जब पहली बार 'क' के कमरे की दीवारों पर डिस्टेम्पर करने का निश्चय किया गया था। शायद एक वर्ष से अधिक हो गया) मेरा रूपायण इतना जीता-जागता, इतना वास्तविक और सक्रिय था कि मैं यह भूल कर बैठी कि काम शुरू होने से पहले तुम्हें उसकी याद नहीं दिलायी। मेरे अंदर एक खेद-जनक प्रवृत्ति है कि मैं मान लेती हूं कि मेरे इर्द-गिर्द के लोगों में भी कम-से-कम आंशिक रूप में और अपनी सीमित क्रिया में वैसी ही चेतना है जैसी मेरी है। मैं समझाऊंगी। मैं जानती हूं कि मेरी चेतना की तुलना में तुम में से प्रत्येक की चेतना बहुत कम और सीमित है। मुझे यह भ्रम रहता है कि उसकी **प्रकृति** मेरे

जैसी ही है, पर है अपनी सीमाओं में, इसलिये बहुत-सी चीजें ऐसी होती हैं जो मैं नहीं कहती, क्योंकि मेरे लिये वे **इतनी स्पष्ट** होती हैं कि उनका जिक्र करना बिल्कुल बेकार होगा। यहां तुम्हारी ओर से प्रेममय विश्वास से उठती हुई क्रिया और वाणी की स्वाधीनता आनी चाहिये लेकिन अगर कोई ऐसी चीज है जिसके बारे में तुम अनिश्चित हो तो तुम्हें उसके बारे में मुझसे पूछना चाहिये, अगर तुम **बहुत स्पष्ट रूप में मेरा अभिप्राय नहीं देख पाते** तो तुम्हें उसके बारे में पूछना चाहिये, अगर तुम मेरे रूपायण को एकदम ठीक-ठीक नहीं पकड़ पाते तो तुम्हें मुझसे समझाने के लिये कहना चाहिये। जब मैं ऐसा नहीं करती तो इसका कारण यह होता है कि मैं समझती हूं कि तुम रूपायण के बारे में काफी ग्रहणशील हो जिससे कि वह मेरे बोले बिना क्रिया कर सकता और अपनी परिपूर्ति कर सकता है, और वस्तुतः ऐसा बहुत बार होता भी है। केवल जब मन और प्राण किसी-न-किसी कारण से बीच में आते हैं तब क्रिया त्रुटिपूर्ण हो जाती है।

इसे सावधानी से पढ़ो, इसका अध्ययन करो, और आज जब तुम आओगे तो मैं तुमसे वहां से पढ़कर सुनाने के लिये कहूंगी जहां मैंने लाल निशान लगाया है, मेरा ख्याल है कि यह वहां के सभी लोगों के लिये उपयोगी होगा। संभव है मैं तुमसे अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिये भी कहूं ताकि मुझे विश्वास हो जाये कि तुम इसे अच्छी तरह समझ गये हो।

शांति तुम्हारे साथ रहे—मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं।

७ जून १९३४

हे मधुर मां,

मैं तुम्हारे प्रेम के लिये प्यासा हूं, प्यासा हूं!

केवल अपने हृदय को खोलना होगा और तुम्हारी प्यास शांत हो जायेगी, क्योंकि प्रेम के जल कभी सूखा नहीं करते।

३ जुलाई १९३४

अच्छी तरह सोओ और मेरे आशीर्वाद की संरक्षक छाया में विश्राम करो।

११ जुलाई १९३४

मधुर मां,

आज सवेरे आपने कहा था कि जब किसी को संकट का आभास हो रहा है तो इसका कारण यह होता है कि कहीं पर संकट का छिपा कारण है।

मैंने ठीक यह नहीं कहा था। मैंने कहा था कि अगर तुम वस्तुओं की अवस्था के लिये **जिम्मेवार** हो तो संकट के भाव को हमेशा गंभीरता से लेना चाहिये। तुम्हें यह न कहना चाहिये कि "यह कुछ नहीं है," जबतक तुम्हें **दस बार विश्वास न हो जाये** कि वह कुछ नहीं है।

२२ अगस्त १९३४

मधुर मां,

भंडार का निरीक्षण करते हुए मैंने देखा कि किसी भी चीज को फेंके बिना सभी को जुटाकर रखने का सिद्धांत एकदम निर्दोष नहीं है। बहुत सारी बेकार चीजों के ढेर के नीचे अच्छी चीजें खराब हो जाती हैं क्योंकि उनकी देख-भाल नहीं की जा सकती।

अगर केवल अच्छी चीजें ही रखी जातीं तो उनकी देख-भाल ज्यादा सावधानी से की जाती। क्या मेरी बात ठीक है, मधुर मां?

मुझे ऐसा लगता है। लेकिन सबसे बढ़कर, व्यवस्था और क्रम का अभाव इस सारे अपव्यय का कारण है। निश्चय ही अगर चीजों को व्यवस्था और क्रम में रखने के लिये काफी जगह नहीं है, जिसमें अच्छी चीजें एक ओर और बुरी चीजें दूसरी ओर हों, तो ज्यादा अच्छा है कि बुरी चीजों को अलग कर दिया जाये। लेकिन यह बहुत सावधानी से करना चाहिये ताकि दूसरे छोर तक जाकर उपयोगी चीजों को भी न फेंक दिया जाये।

२० सितंबर १९३४

मधुर मां,

'क' ने मेरे पास एक राजमिस्त्री को उसे सेवा-मुक्त कर देने के लिये परची के साथ भेजा है। मुझे 'क' से पता चला कि जब उसने मिस्त्री से कहा कि वह उसके काम से संतुष्ट नहीं है तो वह हंस पड़ा। इस और ऐसे अन्य मामलों में मजदूरों के भाग्य का निर्णय किस तरह किया जाये?

तुम किसी आदमी को इस आधार पर नहीं निकाल सकते कि वह हंसा था। उसे कोई और काम दिया जाये और सलाह दी जाये कि आगे से ज्यादा शिष्ट व्यवहार करे।

२४ अक्तूबर १९३४

मधुर मां,

मैंने सुना है कि हम चेतना के तादात्म्य द्वारा किसी चीज के सभी गुणों को जान सकते हैं। क्या यह सच है? क्या यह संभव है? उदाहरण के लिये अगर किसी छत में तरेड़ है और मैं ठीक कारण जानना चाहता हूं तो मैं छत के साथ कैसे तादात्म्य स्थापित कर सकता हूं? क्या इसकी कोई निश्चित प्रक्रिया है? क्या यह तरीका प्राप्त अनुभव के आधार पर मानसिक तर्क की प्रक्रिया से ज्यादा सरल और निश्चित है?

सिद्धांत रूप में यह ठीक है कि **तादात्म्य द्वारा सब कुछ जाना जा सकता है**, लेकिन व्यवहार में इसे काम में लाना कठिन है। सारी प्रक्रिया एकाग्रता की शक्ति पर निर्भर है। तुम्हें ज्ञेय वस्तु पर एकाग्र होना चाहिये (जैसे यहां छत के साथ) यहांतक कि सारी दुनिया गायब हो जाये और केवल वह विषय ही रहे। तब इच्छा-शक्ति की जरा-सी गति द्वारा तुम तदात्म होने में सफल हो सकते हो। लेकिन यह करना बहुत आसान नहीं है। और फिर तर्कणा के सिवाय जानने के और भी तरीके तो हैं, जैसे अंतर्भास, जो प्रभावकारी है।

१ नवंबर १९३४

हे मधुर मां,

मैं तुम्हारे गुणगान करता हूं। मैं कभी न भूलूंगा कि जब कोई तुम्हें तीव्रता के साथ पुकारता है तो तुम कैसे उत्तर देती हो, और न ही तुम्हारी उपस्थिति के चमत्कार को, जो औरों की मनोवृत्ति को भी बदल देता है।

यह वक्तव्य बिल्कुल सच है।

मैं तुम्हें नमन करता हूं मधुर मां, हमेशा और सदा के लिये मेरे अंदर उपस्थित रहो।

हां, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं, लेकिन तुम्हें मुझे बुलाना कभी न भूलना चाहिये, क्योंकि मुझे बुलाने से ही उपस्थिति प्रभावकारी होती है।

१५ दिसंबर १९३४

मधुर मां,

मैं जानता हूं कि मैं 'क' को अपने फैसले के बारे में उत्तर देने के लिये

बाधित न था। उसकी मुद्रा में प्रश्न तो था पर मैं आसानी से उसकी अवहेलना कर सकता था। मैंने यह दुर्बलता क्यों दिखलायी ? हे मधुर मां, ऐसे मामलों में हमें कैसे व्यवहार करना चाहिये ?

'क' की इच्छाशक्ति प्रबल है और वह उसे दूसरों पर आरोपित करना जानता है। एकमात्र उपाय है उसकी इच्छाशक्ति से अधिक प्रबल इच्छाशक्ति का होना और बहुत अधिक अचंचलता और साथ ही बहुत अधिक निश्चय के साथ उसका उपयोग करना।

२५ दिसंबर १९३४

मधुर मां,

आंतरिक सुझावों के इन दो अहवाल को सुनिये :—(यहां दो बातें दी गयी हैं) इन दोनों से स्पष्ट है कि पहले सुझाव के लिये अच्छे आधार थे जब कि दूसरा दुराग्रही था। सुझावों के इन दो प्रकारों में भेद कैसे किया जाये ?

यह केवल लंबे अनुभव से, जिसकी सावधानी से बहुत बार जांच की गयी हो, तुम विभिन्न प्रकार के सुझावों में, **उनके साथ आनेवाले स्पंदनों द्वारा**, फर्क कर सकते हो।

१२ जनवरी १९३५

मधुर मां,

'ख' को दिये गये मेरे अस्पष्ट उत्तर के लिये क्षमा करें, मैं पश्चात्ताप के साथ आपको नमन करता हूं।

पश्चात्ताप बेकार है। तुम्हें और अधिक प्रगति करने की संभावना के आनंद का अनुभव करना चाहिये।

२६ फरवरी १९३५

(एक सहकारी के साथ संपर्क से साधक के सिर में दर्द हो गया) मैं अपने अंदर इन दो बिल्कुल अलग-अलग गतियों को नहीं समझ पाता (१) जो निश्चय करती है कि मुझे 'क' के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी तरह का संबंध न रखना चाहिये (२) जो हमारे बीच सामंजस्य के किसी भी संबंध को विजय

का एक निश्चित चिह्न मानती है—लेकिन इसे सिरदर्द के बिना कैसे पाया जाये, मधुर मां ?

शायद इन दो गतियों का परस्पर विरोध सिरदर्द का कारण हो। पहली **न्यूनतम प्रयास के साथ** शांति चाहती है और दूसरी कठिनाई से भागना नहीं, उसपर विजय पाना चाहती है। मेरा प्रस्ताव है कि अभी के लिये, जहांतक हो सके तुम 'क' के साथ संपर्क से बचो। लेकिन अगर संपर्क स्थापित हो जाये तो अवचेतन प्रतिक्रियाओं के बारे में सावधान रहो और बहुत जागरूक रहो।

३ मई १९३५

(एक साथी कार्यकर्ता ने प्रचलित कार्य-पद्धति का उल्लंघन किया) जब मैंने 'क' को कारखाने में से बाहर आते देखा तो मेरे अंदर दो सुझाव आये, १. अगर उसने मेरी जानकारी के बिना कुछ किया है तो मैं क्यों दखल दूं ? और २. चूंकि मैं इस बारे में सब कुछ जानता हूं इसलिये मैं उपेक्षा नहीं कर सकता, मुझे उससे कहना चाहिये कि यह ठीक नहीं है। मैंने दूसरे सुझाव का अनुसरण किया।

तुमने जो किया वह, कम-से-कम सिद्धांत रूप से ठीक था क्योंकि वास्तव में बहुत कुछ तुम्हारे शब्दों के चुनाव और बात करने के लहजे पर निर्भर है।

१५ मई १९३५

मधुर मां,

'आवाज को सुनने' का क्या अर्थ है ? क्या यह उच्चारित शब्दों को सुनने की तरह है ? एक बना बनाया वाक्य, 'अनुमान में जो कुछ है उसे लिख डालो' मेरे मन में बाधा डाल रहा था, मुझे पता नहीं वह कहां से आया। क्या वह मेरा अपना विचार था जो शब्दों में प्रकट हुआ या वह वह था जिसे 'आवाज' कहते हैं ? इन दोनों में कैसे भेद किया जा सकता है मधुर मां ?

स्पष्ट है कि यह आंतरिक आवाज थी। व्यक्ति शब्दों की **आवाज** कम ही सुनता है, उसकी जगह मन में वह संदेश शब्दों के रूप में अथवा हृदय में अनुभव के रूप में **प्रकट** होता है।

२३ मई १९३५

मधुर मां,

मैंने निश्चय किया है कि 'क' के साथ इस तरह की वृत्ति अपनाऊंगा। अगर मुझे काम के बारे में कोई सुझाव देना है या बात करनी है तो उसे बहुत सरल रूप से बता दूंगा। अगर वह स्वीकार कर ले तो बहुत अच्छा और न करे तो मैं चुप रहूंगा, बहस किये बिना वह जो करना चाहता है करने दूंगा। क्या यह वृत्ति ठीक है ?

नहीं, यह ठीक नहीं है। मुझे लगता है कि तुम उस दिन मेरी बात का तात्पर्य नहीं समझे। अगर तुम देखो कि कोई चीज अमुक तरीके से करनी चाहिये तो तुम्हें बस यह कहना चाहिये, ''मैं समझता हूं कि यह चीज यूं की जानी चाहिये।'' अगर वह तुम्हारा विरोध करे या तुमसे भिन्न राय दे तो तुम्हें बस यही उत्तर देना चाहिये, ''ठीक है, हम दोनों अपनी-अपनी बात माताजी के सामने रखेंगे, **वे ही फैसला करेंगी।**''

इस तरह उसके और तुम्हारे बीच व्यक्तित्व का टकराव न होगा। यह केवल मेरे प्रति आज्ञाकारिता का प्रश्न है।

६ जून १९३५

मधुर मां,

आपने मुझे उन अवचेतन गतिविधियों के बारे में अभिज्ञता दी है जो मेरी क्रियाओं पर शासन करती हैं। जब कभी ऐसा कोई अवसर आये तो क्या आप मुझे अधिकाधिक अभिज्ञ बनायेंगी ? जब आप मुझे दुःखी देखें तो मुझसे पीछे मत हटिये। हे मधुर मां, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, मैं आपको वचन देता हूं कि आपकी कृपा से कुछ ही समय में मैं स्वयं अपना आप बन जाऊंगा।

मैं उस मंगल दिवस के लिये अभीप्सा करता हूं जब यह संघर्ष, यह क्षणिक श्रद्धा का आभास हमेशा के लिये समाप्त हो जायेगा और आप मेरा उपयोग उसी तरह कर सकेंगी जैसे अपने चरणों का करती हैं, हे मधुर मां।

मैं आनंद-भरी कृतज्ञता के साथ तुम्हें नमन करता हूं।

तुमने इस मामले को जिस तरह लिया है उससे मैं बहुत खुश हूं। जब मैं तुम्हारे साथ इतनी स्पष्टता से बोलती हूं तो मैं तुम्हें विश्वास का एक बहुत बड़ा प्रमाण देती हूं।

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१६ जुलाई १९३५

*

[साधक ने किसी के कमरे से कीलें निकालने से इंकार कर दिया और अपने फैसले की सफाई देते हुए माताजी को लिखा।]

हां, विश्लेषण के रूप में यह ठीक है, लेकिन कोई चीज ऐसे किसी व्यक्तिगत लिहाज के कारण नहीं करनी चाहिये। जो काम करना है उसे व्यक्तिगत प्रश्नों से अलग अपने-आपमें देखना चाहिये। अगर चीज ठीक और अच्छी है तो उसे करना चाहिये। अन्यथा उसे करने से बचना चाहिये।

ठीक उसी कारण कि तुम्हारे मना करने में कोई **सच्चा कारण न था** इसलिये उसमें वह शक्ति न थी कि दूसरे की इच्छा को अभिभूत कर ले।

इसलिये तुम्हें कीलें निकलवा देनी चाहियें।

१७ जुलाई १९३५

मधुर मां,

कल 'क' ने मुझसे पूछा कि क्या उसकी दीवार की कीलें निकाल दी जायेंगी। इस विषय पर किसी निश्चित आज्ञा के बिना मैंने कहा, 'माताजी से पूछो'। उसके बाद मधुर मां ने फैसला किया कि उन्हें न निकाला जाये।

हां, मैंने आशा की थी कि इस विषय में उसकी इच्छा को नीचे उतारा जा सकेगा क्योंकि मैंने सोचा था कि यह **बिल्कुल सच** है कि कीलें निकालने से दीवारों को नुकसान पहुंचेगा। लेकिन यह केवल बहुत ही **सापेक्ष सत्य** था इसलिये रूपायण में सत्य की वह शक्ति न थी जो 'क' के प्रतिरूपायण को समाप्त कर सके। (यह सच्ची ''गुह्य विद्या'' है)

मेरा ख्याल है कि चीज अच्छी है या नहीं इसका निर्णायक मैं नहीं हो सकता, क्योंकि मेरी दृष्टि संकुचित है।

मैंने कभी नहीं कहा कि तुम्हें निर्णायक होना चाहिये। मैं सभी मामलों में निर्णायक होने के लिये राजी हूं क्योंकि मैं जानती हूं कि जबतक कि तुम चीजों के पीछे सत्य के विधान को न देख सको यह जानना बहुत कठिन है कि चीज उचित और अच्छी है या नहीं।

अगर आपने मुझसे कहा होता कि कीलें निकालने में कुछ भी नहीं है, है न? तो मैं जवाब देता, 'जी, ज्यादा कुछ नहीं है'। अगर आपने कहा होता 'क्या!

व्यर्थ में कीलें निकालना और दीवार को नुकसान पहुंचाना ? तो मैं कहता, 'बेकार बात।'

यह ठीक नहीं है, जब मैं कोई प्रश्न पूछती हूं तो **ठीक-ठीक** तथा **वस्तुनिष्ठ** जानकारी पाने के लिये। मैं यह बात कई बार कह चुकी हूं। मेरा कोई पहले से बना हुआ विचार नहीं होता, कोई पसंद नहीं होती, चीजों के बारे में कोई राय नहीं होती। अगर मैं अपने-आप शारीरिक रूप से घूम-फिरकर सब कुछ देख सकती तो मुझे किसी से जानकारी मांगने की जरूरत न होती लेकिन बात ऐसी नहीं है और इसीलिये मैं अपने चारों ओर के लोगों से सलाह करती हूं क्योंकि वे इधर-उधर घूम-फिर सकते हैं। मैं नहीं चाहती कि वे उसकी प्रतिध्वनि बनें जो वे समझते हैं—और गलत तरीके से—कि मैं सोचती हूं। मैं चाहती हूं कि वे अपनी निरीक्षण-शक्ति और तकनीकी ज्ञान का उपयोग करके मुझे, जहांतक बन पड़े, ठीक-ठीक, यथार्थ सूचना दें और मैं उस सूचना के आधार पर फैसला करूं।

१८ जुलाई १९३५

मधुर मां,

आपने मुझे लिखा है, "ठीक इस कारण कि तुम्हारी अस्वीकृति में कोई वास्तविक कारण न था, इसलिये उसमें दूसरे व्यक्ति की इच्छा-शक्ति को अभिभूत करने की शक्ति न थी, इसलिये तुम्हें कीलें निकलवा देनी चाहियें।" इस वाक्य ने मुझे बहुत क्षुब्ध कर दिया है। सच्चा कारण क्यों न था ? क्या छेद दीवार को खराब न कर देंगे ?

यह सब इसपर निर्भर है कि 'खराब करने से' तुम्हारा क्या मतलब है। तुमने जो लिखा था उससे मैंने समझा **बहुत अधिक क्षति** होगी और 'क' ने जो लिखा उससे मैंने समझा कि कीलें ढीली पड़ गयी थीं और जरा-सा खुरचना या खींचना उन्हें निकाल देने के लिये काफी होगा। इन दोनों का औसत निकालने पर मैंने देखा कि मैंने 'क' को कीलें रहने देने के लिये जो युक्तियां दी थीं वे इतनी सच न थीं कि उसकी वृत्ति के विरोध को अभिभूत कर सकें।

क्या मैंने किसी और कारण से इसका आविष्कार किया था ?

अपने हृदय में देखो, पूरी सचाई के साथ, और तब तुम देखोगे कि अगर कोई ऐसा व्यक्ति होता जिसे तुम पसंद करते हो और वह तुमसे कीलें निकालने के लिये कहता

तो तुम्हें यह इतना कठिन न लगता और तुम इस विषय को इस तरह न रखते।

मेरा ख्याल था कि मेरे इंकार का कोई असर नहीं हुआ क्योंकि उसे मधुर मां का समर्थन प्राप्त न था और मैं पूरी तरह से यह मानता हूं कि मधुर मां के समर्थन के बिना कोई भी चीज सच या प्रभावकारी नहीं हो सकती।

जब हम विरोधी शक्तियों के आगे हों तो केवल निरपेक्ष सत्य की शुचिता ही उन्हें जीत सकती है।

लगभग शब्दशः यही युक्ति है जिसने मुझे परेशान कर दिया और अभीतक मुझे इसका समाधान नहीं मिला है। मधुर मां, कृपया मुझे प्रबुद्ध कीजिये।

तुम्हारी युक्ति ठीक मालूम होती है लेकिन चूंकि उसमें आरंभ-बिंदु गलत है इसलिये वह टिक नहीं सकती। मैंने जो कुछ लिखा है उसे फिर से पढ़ो, जरूरत हो तो बार-बार पढ़ो; उसके एक-एक शब्द पर विचार करो ताकि तुम ठीक-ठीक वह समझ सको जो मैं कह रही हूं। कुछ और नहीं।

२० जुलाई १९३५

जब कोई कुछ टिप्पणी करता है तो मधुर मां हमेशा मुझसे सफाई मांगे बिना ही मुझे क्यों दोष देती हैं?

हमेशा वही भूल—तुम सोचते हो कि लोग मुझसे जो कहते हैं, मैं उसके आधार पर निर्णय करती हूं! जब कभी किसी तथ्य के साथ मेरा सामना प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में होता है तो मैं किसी और की राय के हस्तक्षेप के बिना अपने-आप देखती और फैसला करती हूं।

१ सितंबर १९३६

'आरोग्य हाउस' की आलमारी के बारे में, जब 'क' ने मुझसे कहा कि वह उसपर रोगन नहीं करवाना चाहता तो मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने कहा कि 'ख' ने जोर देकर कहा था कि 'क' ही रोगन करवाना चाहता था।

एक सामान्य नियम के रूप में यह अच्छा है कि किसीने जो कुछ कहा है उसे किसी

और के आगे न दोहराओ। इससे हमेशा अस्तव्यस्तता पैदा करने और कठिनाई बढ़ाने का भय रहता है।

११ दिसंबर १९३६

हे मधुर मां,

"मेरी समस्त सत्ता में प्रवेश कर, उसे यहांतक रूपांतरित कर कि हमारे अंदर और हमारे द्वारा तू ही जिये।" ('प्रार्थना और ध्यान' से)

तुम्हारी सत्ता का मुख्य द्वार खुला है लेकिन अभीतक कुछ अन्य द्वार नहीं खुले हैं। तुम्हें उन सबको खोलना चाहिये क्योंकि मैं वहां हूं और प्रतीक्षा कर रही हूं।

मेरे आशीर्वाद सहित।

१ अप्रैल १९३६

'क' ने अभी लिखा है कि उसने काम छोड़ने में अपनी भूल पहचान ली है और वह आज सवेरे से काम पर वापिस आ रहा है। अतः तुम इस तरह व्यवहार करो मानों कुछ हुआ ही नहीं और उसका लौटने पर स्वागत करो। मैं आशा करती हूं कि 'ख' भी कोई अनावश्यक टिप्पणी न करेगा।

२३ सितंबर १९३६

शायद मधुर मां मुझसे किसी कारण नाराज हैं। मैं बेचैन हूं।

मैं बिल्कुल नाराज नहीं हूं। लेकिन कैसी अजीब-सी बात है कि अपने-आपको ऐसी छोटी-सी बातों से बेचैन होने दिया जाये! तब फिर योग के बारे में क्या?

तुम्हें इस सब को झाड़ फेंकना और चेतना की ज्यादा अच्छी स्थिति में लौट आना चाहिये।

आशीर्वाद।

८ जुलाई १९३७

मधुर मां,

पता नहीं मैं आत्म-संयम और शांति क्यों खो बैठा हूं।

दुःख की बात है, शायद तुम थके हुए हो। मैं आशा करती हूं कि तुम अच्छी तरह सोते हो। मैं चाहती हूं कि तुम जल्दी सोया करो। क्या ध्यान के बाद का सारा काम (विचार-विमर्श, हिसाब-किताब, आदि) सचमुच अनिवार्य है ? आत्म-संयम रखने के लिये तुम्हें आराम करने के लिये काफी समय चाहिये ताकि तुम अपने अंदर प्रवेश करके स्थिरता और अचंचलता पा सको।

१९ अक्तूबर १९३८

मधुर मां,

मैं किसी को नाराज किये बिना गृह-निर्माण के सारे काम में भाग लेना चाहता हूं। मैं इसके लिये क्या करूं ? मैं भूतकाल को कैसे धो सकता हूं ?

तुम एक बार, हमेशा के लिये यह भाव धो डालो कि तुम औरों से 'उच्च' हो—क्योंकि भगवान् के आगे कोई भी उच्चतर या निम्नतर नहीं है।

६ दिसंबर १९३८

मधुर मां,

पिछले कुछ दिनों से जब कभी मैं 'क' से मिलता हूं तो वह मुझसे कतराता है। मैंने अपने अंदर देखा कि कहीं मैंने कोई ऐसी चीज तो नहीं की जिससे वह नाराज हो गया हो, लेकिन मुझे ऐसा कुछ नहीं मिला। अगर मैंने कोई भूल की हो तो मुझे बताने की कृपा करें।

मैं इस मामले में कुछ नहीं जानती। 'क' ने मुझे इस बारे में कुछ नहीं लिखा।

लेकिन एक बात निश्चित है। तुम इस बात को **बहुत अधिक महत्त्व** देते हो कि लोग तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं। अधिकतम गलत-फहमियों का कारण है यह अतिसंवेदनशीलता।

मार्च १९३९

मधुर मां,

'क' के साथ मैत्रीपूर्ण सहयोग के सभी प्रयासों के बावजूद मैं असफल रहा हूं। मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे विस्तार से बतलायें कि मेरे कौन-से दोष मुझे इस प्राप्ति से दूर रखते हैं। मैं आपको वचन देता हूं कि मैं उन्हें दूर करने की पूरी कोशिश करूंगा। और मुझे विश्वास है कि आपकी सहायता से मुझे सफलता मिलेगी।

मैंने सपने लिये थे कि 'क' और मैं दोनों वर्तमान और भावी काम के बारे में विचार-विमर्श और विनिमय करेंगे जैसे मैं 'ख' के साथ मिलकर बातचीत करता हूं; लेकिन मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि 'क' मुझे दूर रखता और मुझसे अलग रहता है और जब वह बोलता भी है तो कठोर होता है।

यह चीज मेरे अंदर विद्रोह की प्रतिक्रिया जगाती है और मैं शांत और स्थिर रहने का जो प्रयास करता हूं वह मेरे बूते से बाहर का मालूम होता है।

शायद यह प्राण और यहांतक कि मन में सादृश्य के अभाव के कारण है। इन चीजों पर विजय पाना बहुत कठिन होता है क्योंकि इसके लिये जरूरत इस बात की है कि तुम दोनों उच्चतर चेतना की ओर खुलो। इसके लिये समय और तुम दोनों की ओर से साधना के सतत प्रयास की जरूरत है।

वर्तमान परिस्थितियों में ज्यादा अच्छा यह होगा कि तुम उसके साथ मैत्रीपूर्ण संबंध का आग्रह न करो क्योंकि इससे उसमें केवल महत्त्व का भाव बढ़ता है।

रही बात काम के बारे में तुम्हारी दृष्टि और राय के विनिमय की, तो मुझे अब भी इसपर विश्वास नहीं है। मेरा ख्याल तो यह है कि लोग जरूरत से बहुत ज्यादा बोलते हैं और यह कि अच्छा काम शब्दों के द्वारा नहीं किया जाता।

बहरहाल अचंचलता और धैर्य नितांत आवश्यक हैं और तुम्हें उनको पाना चाहिये क्योंकि मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१० अक्तूबर १९३९

नीरवता और प्रत्याशा का वर्ष . . . हे प्रभु वर दे कि हम अपना पूर्ण सहारा केवल तेरी कृपा में ही पायें।

१९४०

[साधक ने ऐसे बहुत-से उदाहरण दिये जिनमें एक साथी कार्यकर्ता ने उसकी सलाह नहीं मानी और वह परेशान हो गया।]

रोग : मन में संकीर्ण, अहंकारमय महत्त्वाकांक्षा जो अपने-आपको प्राण में प्रबल दर्प के रूप में प्रकट करती है और इस तरह वस्तुओं के बारे में तुम्हारे विचारों और तुम्हारी प्रतिक्रियाओं को विकृत करती है।

इलाज : उस सबका निश्चित रूप से और पूर्णतया 'मधुर मां' को समर्पण।

मेरी प्रेममय शुभ चिंता और मेरे आशीर्वाद सहित।

५ मार्च १९४०

मैं खुश हूं कि तुमने प्रकाश देख लिया, लेकिन इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। मुझे विश्वास था कि तुम एक दिन समझ जाओगे।

प्रकाशमय चेतना की ज्योति तुम्हारे अंदर प्रवेश करे। अपने-आपको उस बृहत् चेतना में विस्तारित करो ताकि प्रत्येक छाया सदा के लिये लुप्त हो जाये।

मेरे आशीर्वाद सहित।

५ जून १९४०

मेरे बालक, यह बहुत अच्छा है, मुझे पूरा विश्वास था कि इसका अंत इसी तरह आयेगा क्योंकि मैं तुम्हारे हृदय की भलाई को जानती हूं।

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१५ अक्तूबर १९४०

पत्रमाला ३

पत्रमाला ३

['मेरी नन्हीं मुस्कान के नाम', यह उन पहले बच्चों में से थी जिन्हें आश्रम में प्रवेश मिला था। वह चौदह वर्ष की अवस्था में आयी थी। नन्हीं मुस्कान बहुत वर्ष तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रही और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयी। उसने सतरह वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।]

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हें धीरज और साहस न खोना चाहिये। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

'नीरवता'[1] का फूल काढ़ते समय तुम जिस स्थिति में थी वह पहले की तरह वापिस नहीं आ सकती क्योंकि इस जगत् में चीजें ठीक पहले की तरह दोबारा कभी नहीं आया करतीं—हर चीज बदलती और प्रगति करती है। लेकिन जिस मानसिक शांति की स्थिति का तुमने अनुभव किया है वह उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है जिसे तुम आगे जान पाओगी—वह बहुत अधिक गहरी और पूर्ण होगी।

तुम्हें अपनी अभीप्सा को और सभी बाधाओं को जीतने की इच्छा को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहिये। तुम्हें भागवत कृपा और निश्चित विजय पर अटल श्रद्धा रखनी चाहिये।

श्रीअरविंद तुम्हारे रूपांतर के लिये काम कर रहे हैं—वे जीतेंगे, इस बारे में कोई शंका ही कैसे हो सकती है!

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१९३१

मेरे कहने का मतलब बस यही था कि तुम उस तरह प्रसन्न और विश्वस्त थी जैसे कोई बालक या पशु **कारण जाने बिना** होता है। अब तुम्हें कारण जानते हुए और अपनी प्रसन्नता तथा विश्वास का गहरा कारण समझते हुए प्रसन्न और आश्वस्त होना चाहिये।

१९३१

मेरी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हारी मुस्कान सचमुच 'शाश्वत' बन सके इसके लिये, जब तुम मेरे पास हो तो

[1] एक नीले रंग का फूल जिसे कृष्ण-चूड़ा कहते हैं। माताजी ने इसका अर्थ बतलाया है नीरवता।

तुम्हें मेरे साथ वैसी ही आजादी से बोलना सीखना चाहिये मानों तुम अपने कमरे में हो।

साथ ही ज्यादा अच्छा होगा कि क्रोध न करो। और अगर गुस्सा आ भी जाये तो उसे जल्दी से भूल जाना चाहिये और अगर वह भी संभव न हो तो तुम्हें बस मुझसे कह देना चाहिये कि क्या हुआ है ताकि मैं क्रोध को 'नन्हीं मुस्कान' की चेतना से हटा दूं और उसे वह आनंद और शांति लौटा सकूं जो मैं चाहती हूं कि हमेशा उसके साथ रहें।

मेरे अधिकतम प्रेममय आशीर्वाद के साथ।

१९३१

मैंने अपनी नन्हीं मुस्कान द्वारा काढ़ी गयी साड़ी देखी और वह मुझे बहुत सुंदर, पूरी तरह सफल मालूम हुई।

तुम्हें ऐसे लोगों की आलोचना पर कान न देना चाहिये जिनमें न सुरुचि है न पर्याप्त शिक्षा।

प्रेम सहित।

१९३१

प्यारी मां,

मैं आपको यह रुपया भेज रही हूं। मुझे अब जेब-खर्च की जरूरत नहीं है।[1]

मैं रुपया स्वीकार करती हूं और अपनी प्यारी नन्हीं बच्ची को अपने आशीर्वाद के साथ, जिस तरह वह अपनी फ्रेंच परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है, उसके लिये बधाई भेजती हूं।

सप्रेम

१० मई १९३२

मेरी नन्हीं मुस्कान,

मैं बहुत खुश हूं कि तुमने लिखा है; मुझे विश्वास है कि अब तुमको ज्यादा अच्छा लग रहा है।

[1] उन दिनों कुछ आश्रमवासियों को एक या दो रुपया महीना जेब-खर्च मिला करता था।

इन सब चीजों को बहुत ज्यादा महत्त्व न दो। ये एक ऐसे बालक की कल्पनाएं हैं जो जीवन के बारे में, उसके दुःख-दर्द और कुरूपता के बारे में कुछ नहीं जानता। क्योंकि जीवन ऐसा नहीं है जैसा उपन्यासों में चित्रित किया जाता है। दैनन्दिन जीवन छोटे-बड़े कष्टों से भरा है और केवल भागवत चेतना के साथ तादात्म्य साध कर ही सच्चे अपरिवर्तनशील आनंद को पाया और बनाये रखा जा सकता है।

अपना विश्वास और अपनी श्रद्धा बनाये रखो, मेरी नन्हीं मुस्कान, और सब कुछ ठीक हो जायेगा।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१ अगस्त १९३२

प्यारी मां,

हमारी फ्रेंच कक्षा में यह निबंध दिया गया था :

इस विचार को विकसित करो :

''भगवान् के प्रति उत्सर्ग ही जीवन का मर्म है, उनके साथ सायुज्य से ही शक्ति का सतत नवीकरण होता है।''

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम देखोगी कि यह बहुत ही सरल है।

१. अनंत अक्षय शक्तियों का भंडार है, व्यक्ति एक बैटरी है, एक संचायक सेल है जो उपयोग के बाद कमजोर पड़ जाती है। उत्सर्ग ऐसा तार है जो व्यक्तिगत बैटरी को शक्तियों के अनंत भंडार के साथ जोड़ता है।

या

२. अनंत वह नदी है जो बिना रुके बहती जाती है। व्यक्ति छोटी-सी तलैया है जो धूप में धीरे-धीरे सूख जाती है। उत्सर्ग वह नहर है जो नदी को तलैया के साथ जोड़ती है और तलैया को सूख जाने से बचाती है।

मेरा ख्याल है कि इन दो रूपकों से तुम समझ जाओगी।

कोमल प्रेम के साथ।

२८ अगस्त १९३२

माताजी;

मैंने बहुत बार देखा है कि जब मैं कहानियों की कल्पना नहीं करती—जैसा कि उन्हें माना जाता है—तो मुझे एक तरह की मंदता का अनुभव होता है, तब

मैं काम नहीं कर पाती और अगर करूं भी तो तेजी से नहीं। मेरा आज का पूरा दिन इस तरह की नीरसता में बीता क्योंकि अब मैं पहले की तरह कल्पना नहीं कर सकती।

माताजी, मैं जानना चाहूंगी कि अपनी नीरसता के बारे में मैं जो कुछ कह रही हूं क्या वह सच है—क्या वह कल्पना के अभाव के कारण है?

नीरसता 'तमस्' से आती है। कल्पना की क्रिया तुम्हारे तमस् को झाड़ देती थी और इस तरह नीरसता से छुटकारा दिलाती थी। लेकिन इससे छुटकारा पाने का यही एकमात्र उपाय नहीं है। ऊपर से आनेवाले प्रकाश और चेतना की ओर खुलना और उन्हें बाहरी चेतना में तमस् के स्थान पर बिठाना ज्यादा अच्छा और ज्यादा निश्चित तरीका है।

२२ नवंबर १९३२

प्यारी मां,

मैं तमस् नहीं चाहती। आज मैं सारे दिन काम करती रही।

लेकिन मेरे मन में तमस् नहीं है। वह सदा सक्रिय होता है और इधर-उधर पागल की तरह दौड़ता फिरता है।

मन हमेशा पागल की तरह दौड़ा करता है। पहला कदम है कि **अपनी चेतना को** उससे अलग कर लो और उसे अपने-आप दौड़ने दो, **तुम उसके साथ न दौड़ो**। इसमें उसे कम मजा आता है और कुछ समय बाद वह ज्यादा स्थिर हो जाता है।

२३ नवंबर १९३२

प्यारी मां,

मैंने देखा है कि 'क' की उपस्थिति में मैं कुछ चीजें नहीं कर पाती जैसे, जोर-जोर से बोलना या इसी तरह की कुछ असभ्य चीजें करना।

अपना अवलोकन करना अच्छा है ताकि तुम अपनी कमजोरियां देख सको और उन्हें सुधारने लायक बन सको।

२६ नवंबर १९३२

प्यारी मां,

आप जानती हैं कि डॉक्टर ने मुझसे 'क्ष' की देख-भाल करने के लिये कहा है। आश्रम में मैंने 'त्र' को डॉक्टर से 'क्ष' के बारे में कुछ पूछते सुना और डॉक्टर भी उससे बातचीत कर रहे थे। बाद में मैंने डॉक्टर से पूछा, 'आप 'त्र' के साथ 'क्ष' के बारे में बातचीत क्यों करते हैं? उन्होंने कहा, '' 'त्र' मुझसे पूछ रहा था कि 'क्ष' को क्या हो गया है, वह आजकल प्रणाम के समय नहीं दिखायी देती।'' मैंने उत्तर दिया, '' 'त्र' का इसके साथ कोई संबंध नहीं है। इस तरह की चीजों के बारे में लोगों से बात करना ठीक नहीं है क्योंकि वे उसके लिये कुछ नहीं कर सकते।'' डॉक्टर ने कहा, ''हां, मेरा ख्याल है कि उसने केवल उत्सुकतावश पूछा था। मैं उससे कुछ न कहूंगा।''

मेरी नन्हीं मुस्कान,

डॉक्टर को दिया गया तुम्हारा उत्तर बहुत अच्छा था और तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है। औरों के बारे में कभी बातचीत न करनी चाहिये—वह हमेशा बेकार होती है—और उनकी कठिनाइयों के बारे में तो बिल्कुल नहीं; यह अशोभनीय है क्योंकि यह उनकी कठिनाइयों पर विजय पाने में सहायक नहीं होती। रही बात डॉक्टरों की तो नियम तो यह है कि उन्हें अपने रोगियों के बारे में बात नहीं करनी चाहिये। डॉक्टर को यह बात मालूम होनी चाहिये। मैं आशा करती हूं कि 'क्ष' को जो हुआ है उससे तुम डरी नहीं हो। बहुत शांत और स्थिर रहो। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

२८ नवंबर १९३२

माताजी,

जब आप ऑरगन बजा रही थीं तो मुझे लग रहा था कि माताजी मेरे लिये ऑरगन बजा रही हैं और दूसरे लोग सुन रहे हैं। इससे मेरे अंदर घमंड आ गया। उस समय भी मुझे लग रहा था कि यह गलत भाव है और मैं इसे नहीं चाहती। परंतु मैं नहीं जानती कि इससे कैसे पिंड छुड़ाऊं।

माताजी, मुझे लगता है कि अगर मैं अकेली रहूं, जहां और कोई न हो तो मैं बहुत खुश रहूंगी। मैं बहुत बुरी हूं। पता नहीं ये बुरी चीजें मुझे कब छोड़ेंगी।

मेरे ऊपर दया कीजिये।

तुम्हें अतिशयोक्ति न करनी चाहिये। निश्चय ही गर्व की गतिविधियां होती हैं—बल्कि यूं कहो बचकानी—लेकिन केवल वे ही तो नहीं हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि जब तुम

संगीत सुन रही थीं तब तुम साथ ही साथ संगीत का, संगीत के लिये शुद्ध और सरल आनंद भी अनुभव कर रही थीं। और जब तुम मेरे नजदीक होती हो तो तुम मां के निकट रहनेवाले बालक के शुद्ध और सरल आनंद का अनुभव भी करती हो।

प्रकृति जटिल है और सदा सत्य और मिथ्या, शुभ और अशुभ आपस में मिले रहते हैं। अपने दोषों और दुर्बलताओं को स्पष्ट रूप से देखना बहुत उपयोगी है लेकिन केवल उन्हींको न देखना चाहिये क्योंकि यह बहुत ज्यादा एकांगी दर्शन होगा। तुम्हें उसके बारे में भी अभिज्ञ होना चाहिये जो प्रकृति में शुभ और सत्य है और उसकी ओर पूरा ध्यान देना चाहिये ताकि शुभ और सत्य-पक्ष बढ़ता रहे और अंततः बाकी सबको आत्मसात् कर ले और प्रकृति को रूपांतरित कर दे।

५ दिसंबर १९३२

माताजी,

आज सवेरे जब मैंने आपको प्रणाम के समय देखा तो ऐसा लगा कि आप बहुत गंभीर हैं।

मुझे आपसे जो कुछ कहना जरूरी लगता है वह मैं आपको लिख देती हूं, क्योंकि मैंने आपको वचन दिया है कि मैं अपने विचार और भाव आपको लिखूंगी और मैं आपको धोखा नहीं देना चाहती। मेरे पास आपसे कहने के लिये कोई अच्छी बात नहीं है। मेरे पास बहुत-सी बुरी, भद्दी, मूर्खतापूर्ण और शरारत-भरी चीजें हैं कहने के लिये। अगर कोई अच्छी बात है तो यही कि मैं आपके लिये काम करती हूं : (आपकी साड़ी) बस यही एक चीज है जिसे मैं अच्छा कह सकती हूं।

आज सारे दिन मैं दुःखी रही। मैं मुस्करा न सकी। आपको ऐसी बहुत-सी चीजें पढ़ने को मिलेंगी लेकिन अगर आप गंभीर हो जायें, जैसी कि आज सवेरे थीं तो मैं इस मामले को समाप्त करना पसंद करूंगी।

आज मैंने सात घंटे काम किया।

नहीं, मेरी बच्ची मैं 'गंभीर' नहीं थी। मैं सदा की तरह मुस्कराई थी। यह तो तुम खुद छोटा-सा दुःखी मुखड़ा बनाये हुए थीं और शायद तुमने अपने दुःख की छाया मेरी आंखों में देख ली। मैं जीवन को बहुत अच्छी तरह जानती हूं। तुम्हारी दोष-स्वीकृतियां मुझे 'गंभीर' नहीं बना सकतीं। और तुम अपनी दोष-स्वीकृति को चाहे जो समझो परंतु वह सचमुच ऐसी भयंकर नहीं होती। और जैसे ही तुम मुझे वे चीजें बतला दो जो तुम्हें तकलीफ देती हैं, तुम देखोगी कि वे सब गायब हो गयी हैं और तुम अपने-आपको मुक्त और प्रसन्न अनुभव करोगी।

अपनी मुस्कान बनाये रखो, नन्हीं बच्ची; यही तुम्हें अपना बल देती है।

७ दिसंबर १९३२

माताजी,

पता नहीं क्यों, दो-तीन दिन से मैं कुछ दुःखी हूं।

माताजी, कभी-कभी जब मैं अवसाद में होती हूं, जब मुझे लगता है कि संभवतः मैं योग न कर सकूंगी तो मेरा मन कल्पना करता है; ''अगर माताजी मुझसे कहें कि मैं योग नहीं कर सकती और मुझे यहां से चले जाने के लिये कहें तो मेरा कोई भी तो नहीं है जिसके यहां मैं जा सकूं, ऐसी कोई जगह नहीं है जहां मैं रह सकूं। मैं यहां भले नौकर की तरह रहूंगी, कहीं और रहना मेरे लिये असंभव है।''

ऐसी बातें सोचकर मैं और भी दुःखी हो जाती हूं।

मेरी मां, मुझे लगता है कि आज मेरा मन इतना स्थिर नहीं है कि मैं आपको कुछ लिख सकूं। आज मैंने ९ घंटों तक साड़ी का काम किया।

मेरी प्यारी नन्हीं बच्ची,

तुम्हें अवसाद को स्वीकार न करना चाहिये, कभी नहीं, और इस प्रकार के सुझावों को तो कभी नहीं। कैसी मूढ़ताभरी, मिथ्या बात है कि मैं तुमसे जाने के लिये कह सकती हूं ! तुम ऐसी बात का सपना भी कैसे ले सकती हो ? तुम यहां अपने घर में हो, क्या तुम मेरी नन्हीं बेटी नहीं हो ? तुम्हारा स्थान हमेशा मेरे साथ रहेगा, मेरे प्रेम और मेरी सुरक्षा में।

९ दिसंबर १९३२

मां,

मेरी 'क' के साथ सिर में काल्पनिक बातचीत हुई। मैं कोई ध्यान नहीं दे रही थी लेकिन अचानक एक समय मुझे ख्याल आया कि मुझे यह सब माताजी को लिखना होगा और अचानक बातचीत समाप्त हो गयी।

इसी तरह मैं लोगों के साथ अपने सिर में बातचीत करती हूं; मेरा मन, जैसे विचार उसके मन में आयें, जैसे विचार उसे अच्छे लगें, उन्हें किसी के मुंह में रख देता है और मेरे सिर में शोर मचाता है।

मैं ऐसी बुरी, मूढ़ता-भरी चीज लिखते-लिखते थक गयी हूं। पता नहीं यह विभ्रांत मन कब शांत होगा।

यह इतना भयंकर नहीं है। मन सदा किसी-न-किसी चीज के साथ व्यस्त रहना चाहता है और कहानियां बनाना (यह जानते हुए कि वे सच्ची नहीं हैं) चंचल मन का सबसे अधिक निर्दोष धंधा है। निश्चय ही उसे किसी दिन शांत और स्थिर होना होगा ताकि वह ऊपर से आनेवाले प्रकाश को ग्रहण कर सके; लेकिन इस बीच तुम निश्चय ही मुझे ये कहानियां सुना सकती हो। मैं इन्हें मूर्खतापूर्ण से अधिक रोचक पाती हूं और इनमें मुझे मजा आता है। इसलिये यह न कहो कि मैं माताजी से यह या वह नहीं कहूंगी, बल्कि यूं कहो कि मैं माताजी को सब कुछ खुलकर कह दूंगी।

११ दिसंबर १९३२

प्यारी माताजी;

आपने मुझे विरल अवसर प्रदान किया है फिर भी मैं कभी संतुष्ट नहीं होती। मेरी प्राणिक सत्ता हमेशा अधिक, और अधिक की मांग करती रहती है। आप जो देती हैं उससे वह कभी संतुष्ट नहीं होती।

मेरी बच्ची; मैं तुम्हें एक ऐसा रहस्य बताने जा रही हूं जिसे तुम समझने की कोशिश करो। तुम इसलिये असंतुष्ट नहीं हो कि मैं उतना नहीं देती जितने की तुम्हें जरूरत है बल्कि इसलिये कि मैं **तुम्हें ज्यादा देती हूं, जितना तुम ले सकती हो उससे कहीं ज्यादा। अपने-आपको खोलो,** अपने-आपको अधिक देकर अपनी **ग्रहण-शक्ति बढ़ाओ** और तुम देखोगी कि समस्त असंतोष गायब हो जायेगा।

१२ दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

मैं कहीं भी कोई प्रगति नहीं पाती। यहांतक कि अपने काम में भी मैं अभीतक नियमित नहीं हूं, तब मैं आपकी सहायता की आशा कैसे कर सकती हूं ?

मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा मतलब क्या है। मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहती है, इतनी पूर्ण जितनी कि हो सकती है। अब यह तुम पर निर्भर है कि तुम अपने-आपको खोलो और उसे ग्रहण करो। और निश्चय ही तुम विद्रोही बनकर या असंतुष्ट होकर यह न कर पाओगी।

कितनी बार मैंने निश्चय किया है कि नियमित रूप से काम करूंगी और कितनी

बार इसमें असफल हुई हूं ! अतः मैंने सोचा कि अगर मैं आपसे कह दूं तो मुझे आपकी मदद मिलेगी और मैं अपने काम में नियमित हो सकूंगी, लेकिन सब व्यर्थ।

तब मैं ऐसे अवसाद और असंतोष की अवस्था में आपको लिखना कैसे जारी रख सकती हूं ?

लेकिन इसके लिये मैं आपको दोष नहीं देती; दोष मेरा है, मेरे अंदर सबल इच्छा-शक्ति नहीं है, फिर मैं इससे कैसे पिंड छुड़ा सकती हूं ?

तुम्हारे अंदर सबल इच्छा-शक्ति की जरूरत नहीं है—तुम मेरी इच्छा का उपयोग कर सकती हो।

बच्ची, बहुत सावधान रहो। अवसाद, अनुत्साह और विद्रोह के लिये दरवाजा न खोलो, यह तुम्हें चेतना से दूर, बहुत दूर ले जाकर अंधकार की गहराइयों में डुबा देता है जहां सुख कभी घुस भी नहीं सकता। मुस्कान ही तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति थी; क्योंकि तुम जीवन के आगे मुस्कराना जानती थीं, साथ ही तुम साहस और स्थिरता से काम करना भी जानती थीं और इसमें तुम अपवाद रूप थीं। लेकिन तुमने और लोगों के उदाहरण का अनुसरण करना सीख लिया, तुमने उनसे असंतुष्ट, विद्रोही, अवसादग्रस्त होना सीखा और अब तुमने अपनी मुस्कान को भी खिसक जाने दिया और साथ ही मेरे ऊपर विश्वास और श्रद्धा को भी। इस स्थिति में अगर सभी दिव्य शक्तियां तुम्हारे ऊपर केंद्रित हो जायें तो भी बेकार होंगी—तुम उन्हें ग्रहण करने से इंकार करोगी।

इलाज एक ही है और तुम्हें उसे स्वीकार करने में देर न लगानी चाहिये; अपनी मुस्कान को वापिस ले आओ, अपनी श्रद्धा को वापिस ले आओ, फिर से वही विश्वस्त बालिका बन जाओ जो तुम थीं, अपने दोषों और कठिनाइयों पर एकाग्र न होओ—तुम्हारी मुस्कान उन सबको भगा देगी।

१६ दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

मैंने बहुत बार देखा है कि जब मैं नींद से उठती हूं तो मेरे सिर में एक तरह का शोर होता है मानों बहुत-से लोग एक साथ बोल रहे हैं और मैं कुछ नहीं समझ पाती कि वे क्या कह रहे हैं। और मुझे लगता है कि यह शोर सारी रात होता रहा है। यह बाजार की तरह होता है जहां लोग एक साथ बोलते हैं, उसमें से कुछ समझ में नहीं आता।

तुम अपनी नींद में उस शोर के बारे में सचेतन हो रही हो जो अत्यंत जड़-भौतिक मन के यांत्रिक विचार अपने क्षेत्र में पैदा करते हैं।

१८ दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

. . . 'क' के बारे में, अब मैं सोचती हूं, ''मैंने उसे मना क्यों नहीं कर दिया ?'' लेकिन बाद में सोचने का लाभ ही क्या !

जो हो चुका उसपर कुछ समय के बाद नजर डालने से एक लाभ होता है। दूर से, क्रिया से अलग होकर तुम ज्यादा स्पष्ट देख सकते और ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो कि क्या करना और क्या न करना चाहिये था।

२० दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

अगर आप चाहती हैं कि ये कल्पनाएं मेरे अंदर बनी रहें तो उन्हें रहने दीजिये, लेकिन अगर आप उन्हें नहीं चाहतीं तो उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकिये।

फिर एक बार, चिंता न करो; जिस चीज को गायब हो जाना चाहिये वह गायब हो जायेगी। केवल वही बनी रहेगी जो अच्छी है।

२५ दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

मेरा ख्याल है कि यह आखिरी चीज है जो मैं आपको लिख रही हूं। मैं अब लिखना बंद कर देना चाहूंगी क्योंकि मैं बहुत थकान महसूस कर रही हूं।

मैं जानती हूं कि आप इसे पसंद न करेंगी लेकिन मुझे कहना चाहिये कि मुझे एक ओर फेंक देना ज्यादा अच्छा है। मैं बिल्कुल बेकार हूं। फिर कुछ दिनों से मैं अपने काम में अनियमित हो गयी हूं। आपने एक बार कहा था कि आपके प्रति अपने-आपको खोलना मेरा काम है क्योंकि आपकी सहायता हमेशा मेरे साथ रहती है। लेकिन पता नहीं मैं अपने-आपको आपके प्रति कब खोलूंगी। मैं पत्थर की तरह कठोर हूं। अगर मुझे पहले से मालूम होता कि ये चीजें इतनी कठिन हैं तो मैं यहां आने के बारे में कभी न सोचती। मां, मैं

आशा करती हूं कि आप यह न कहेंगी कि मैं विद्रोह कर रही हूं। मैं यह नहीं सुनना चाहती।

पता नहीं माताजी, यह सब मैंने क्यों लिखा है। कृपया मुझपर नाराज न होइये, आपके सिवा मेरा कोई नहीं है।

यह अनुत्साह किसलिये ? हर एक की अपनी कठिनाइयां होती हैं, तुम्हारी औरों की अपेक्षा ज्यादा अनुल्लंघ्य नहीं हैं। तुम्हें केवल विश्वस्त और प्रसन्न रहना चाहिये।

२७ दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

''जिसे गायब हो जाना चाहिये वह गायब हो जायेगा। केवल जो अच्छा है वही रहेगा।''

एक दिन आपने मेरी कापी में यह लिखा था। लेकिन मैंने जिन-जिन चीजों के बारे में आपको लिखा था वे सब अभीतक गायब नहीं हुई हैं। शायद वे सब अच्छी हैं ! और शायद यह विद्रोह, असंतोष, अनुत्साह और चिड़चिड़ापन भी अच्छे है, क्योंकि वे मेरे अंदर बने हुए हैं, वे गायब नहीं हए। और शायद मुस्कान, नियमित काम और विश्वास बुरे हैं क्योंकि मैं देखती हूं कि वे, कम-से-कम अभी के लिये, गायब हो गये हैं।

और अगर मेरे अंदर कुछ भी बुरा नहीं है तो हम इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं ? शायद चुपचाप रहना ही ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि ''जिसे गायब होना है वह गायब हो जायेगा, सिर्फ जो अच्छा है वही बना रहेगा।''

माताजी, मैं जानती हूं कि मैंने यह सब जो लिखा है इसे आप पसंद न करेंगी पर मैं करूं क्या ? मुझे आपको यह सब लिखना ही पड़ता है।

मैं नाराज नहीं हूं क्योंकि तुमने यहां जो कुछ लिखा है उसका कोई अर्थ नहीं—मैं तुमपर दया करती हूं, बस इतना ही। क्या मैंने तुमसे कहा था कि वह सब तुरंत, **इसी क्षण** गायब हो जायेगा, विशेष रूप से तब जब कि स्वयं तुम उसे अस्वीकार करने की जगह बनाये रखने की ओर ज्यादा प्रवृत्त हो ?

२८ दिसंबर १९३२

प्यारी माताजी,

आज सवेरे नौ बजे के बाद 'क' मेरे कमरे में आया। उसने मुझे सलाह दी

कि मैं विरोधी सुझावों की ओर कान न दूं इत्यादि, इत्यादि। उसने मुझे एक भाषण दे डाला। उसने तो नहीं कहा लेकिन मेरा ख्याल है कि आपने ही उसे मेरे कमरे पर भेजा होगा।

लेकिन मुझे आपसे कह देना चाहिये कि मैं नहीं चाहती कि लोग मेरे कमरे पर आकर मुझे भाषण दें। क्या जो कुछ जरूरी हो वह आप स्वयं मुझे नहीं बता सकतीं? क्या मैं आपके साथ यहीं नहीं हूं? क्या मैं बहुत दूर हूं? तब मुझे औरों की सलाह क्यों सुननी पड़ती है?

तुम्हारा स्वमान और दर्प क्रुद्धावस्था में हैं इसलिये जहां स्नेह है वहां भी वे तुम्हें उसे देखने से रोकते हैं।

मुझे मालूम नहीं कि मैं जो कुछ लिखती हूं उसके बारे में आप 'ख' को बतलाती हैं या नहीं, लेकिन मैं चाहूंगी कि आप ऐसा न करें।

केवल श्रीअरविंद जानते हैं कि तुम मुझे क्या लिखती हो।

आपने एक बार मुझे इसी कापी में अपनी सहायता के बारे में लिखा था (१६ दिसंबर), "यह तुम्हारे बस का है कि तुम उसके प्रति खुलो और उसे ग्रहण करो और निश्चय ही विद्रोही और असंतुष्ट होकर तुम उसे प्राप्त न कर सकोगी।"

और फिर आपने और एक जगह लिखा था (७ दिसंबर): "जो चीजें तुम्हें कष्ट दे रही हैं उनके बारे में जैसे ही तुम मुझे बतलाओगी वैसे ही तुम देखोगी कि वे गायब हो गयी हैं और तुम मुक्त और प्रसन्न अनुभव करोगी।"

तो मैं आपसे कह रही हूं कि यह विद्रोह और यह चिड़चिड़ापन भी मुझे कष्ट दे रहे हैं।

और सब चीजों में ये **सबसे खराब** हैं।

मेरा ख्याल है कि मैंने आपको बतला दिया है कि कौन-कौन सी चीजें मुझे कष्ट दे रही हैं।

केवल **कह देना** काफी नहीं है। तुम्हें **इच्छा** करनी चाहिये कि ये गायब हो जायें।

माताजी, आज मैं दुःखी हूं, पता नहीं क्यों पर आज मैं रोयी भी थी।

और यह बिल्कुल सामान्य है; जब तुम केवल घमंड के कारण अपनी अंतरात्मा की ओर पीठ कर लो तो दुःखी हुए बिना कैसे रह सकती हो !

माताजी, कृपया मुझे इस अनुत्साह और विद्रोह से छुटकारा दिला दीजिये। क्या आप मुझे इन चीजों से नहीं बचायेंगी ?

अपनी सारी इच्छा के साथ मैं तुम्हें बचाना चाहती हूं लेकिन तुम्हें मुझे यह करने देना चाहिये। **विद्रोह करने का अर्थ है दिव्य प्रेम को अस्वीकार कर देना और केवल दिव्य प्रेम में ही बचाने की शक्ति है।**

२८ दिसंबर १९३२

प्यारी मां,

क्या मैं तुम्हारी बच्ची नहीं हूं ? हां। मैं जानती हूं कि मैं नटखट बच्ची हूं लेकिन मैं करूं क्या ? नटखट होऊं या न होऊं, हूं तो तुम्हारी बच्ची।

मुझे नहीं लगता कि तुम नटखट हो और मैं जानती हूं कि तुम मेरी बच्ची हो।

२९ दिसंबर १९३२

प्यारी मां;

मुझे लगता है कि मेरा मन (या स्वयं मैं) स्थिर नहीं होना चाहता। अगर मैं स्थिर होना चाहती तो स्वभावतः अपने-आपको अधिक स्थिर बनाने की कोशिश करती। है न ?

मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में केवल वही रोगी स्वस्थ नहीं होते जो स्वस्थ होना नहीं चाहते। शायद शारीरिक रोगों के लिये भी यही बात है ?

५ जनवरी १९३३

प्यारी मां,

यह मनोवैज्ञानिक और शारीरिक बीमारियों के बारे में क्या बात है ? मैं इसमें कुछ नहीं समझ पायी।

विचारों और भावनाओं की बीमारियां मनोवैज्ञानिक हैं जैसे अवसाद, विद्रोह, दुःख आदि। शारीरिक का मतलब है शरीर की बीमारियां।

६ जनवरी १९३३

प्यारी मां,

हां, मैं जानती हूं कि आप जानती हैं कि अब मैं आपसे कुछ नहीं छिपा सकती और आपके बिना जीना मेरे लिये असंभव है। इसीलिये मां, आप चाहती हैं कि मैं अधिक-से-अधिक, जितना संभव हो दुःख भोगूं, है न ऐसा ?

मैं बिल्कुल नहीं समझ पाती कि तुम क्या कहना चाहती हो। ऐसा लगता है कि तुम **यह कहना चाहती हो** कि मैं तुम्हें दुःखित होते देखना चाहती हूं; लेकिन यह इतनी वाहियात बात है कि मैं यह विश्वास नहीं कर सकती कि तुम्हारा यही **मतलब** है।

जब मैं अपनी पूरी इच्छा-शक्ति के साथ सारी दुनिया से दुःख-दर्द को गायब करने के लिये काम कर रही हूं तो यह कैसे हो सकता है कि मैं यह चाहूं, या यह पसंद करूं कि मेरे बालकों में से कोई पीड़ा सहे ! यह भयंकर बात होगी।

७ जनवरी १९३३

प्यारी मां,

पिछले दो दिनों से मुझे बहुत निराशा और दुःख का अनुभव हो रहा है—यहांतक कि मुझे लगता है कि अगर कुछ दिनों तक यही हालत रही तो मेरे लिये इन चीजों से छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जायेगा।

मुझे पता नहीं कि क्या होनेवाला है लेकिन मैं अपने-आपको यह सोचने से नहीं रोक सकती कि अगर मैं सारे समय इसी हालत में रही और कभी खुश न रही तो जल्दी ही मेरे लिये जीना असंभव हो जायेगा। इन दो दिनों में, निराशा और दुःख में मेरी आत्म-हत्या करने की इच्छा हुई। (डरिये नहीं, मैं आत्म-हत्या नहीं करूंगी, मैं आपको केवल अपनी अवस्था बतला रही हूं ताकि आपको इसकी जानकारी दे सकूं।)

जैसे बाहरी जगत् में चोर होते हैं उसी तरह सूक्ष्म जगत् में भी होते हैं। लेकिन जैसे कोई समझदार आदमी अपने मकान के दरवाजे अंदर से बंद करके चिटकनी लगा देता है उसी तरह तुम्हें उनके लिये अपने विचारों और भावों के दरवाजे बंद करने चाहियें।

दुःख, निराशा, आत्म-घात के ये सुझाव प्राणिक जगत् के उन्हीं चोरों से आते हैं, क्योंकि जब तुम विषादपूर्ण हो तो वे तुम्हें सबसे अच्छी तरह लूट सकते हैं। तुम्हें उनकी बात पर कान न देना चाहिये—उनके दुष्ट सुझावों को रद्द कर देना और फिर से अपने-आप यानी मेरी 'नन्हीं मुस्कान' बन जाना चाहिये।

९ जनवरी १९३३

प्यारी मां,

अब आप मुझे 'मेरी बच्ची' नहीं कहतीं। क्या मैं इतनी बुरी और अयोग्य हूं?

माताजी, मुझे लगता है कि मैं जितना कर सकती हूं कर रही हूं, फिर भी अगर मैं अच्छी नहीं बन पाती तो क्या करूं? हां, मैं जानती हूं कि मैं पहले जो थी वैसी अब नहीं हूं।

आज तीसरे पहर मैंने तुम्हें जो छोटा-सा पुरजा भेजा था उसपर 'मेरी बच्ची' न लिखने का कोई अर्थ न था, मैं बहुत जल्दी में थी और मैंने, जितने कम शब्द लिखे जा सकें उतने लिखे थे। सचमुच मुझे उस समय का अभाव खलता है जब तुम वास्तव में **शाश्वत नन्हीं मुस्कान थीं**, सहज रूप से, बिना किसी प्रयास के, जब तुम अपने काम से संतुष्ट रहती थीं, मेरे निकट रहने से प्रसन्न थीं, इतनी विश्वास-भरी और सरल थीं कि मैं जो कुछ भी करूं उसके मिथ्या अर्थ न लगाती थीं। किसने तुम्हारे हृदय में संदेह और असंतोष का यह विष उंडेला है? किसने एक साथ तुम्हारी प्रसन्नता, जीवन के सरल आनंद और सुंदर मुस्कान को छीन लिया है जिसे देखने से प्रसन्नता होती थी? मैं तुमसे उत्तर पाने के लिये प्रश्न नहीं कर रही, मेरा ख्याल है कि मैं जानती हूं। यह सिर्फ इसलिये है ताकि तुम समझ जाओ कि मैं इस परिवर्तन के लिये तुम्हें उत्तरदायी नहीं ठहराती जो **तुम्हारे ऊपर बाहर से आया है**। अब बस एक ही रास्ता खुला है, प्रगति का रास्ता—क्योंकि पीछे की ओर लौटना असंभव है, तुम्हें आगे बढ़ना होगा और जो **सहज वृत्तिमूलक** था उसे अब **सचेतन** और **स्वेच्छापूर्ण** बनना होगा।

और मेरे प्रेम के बारे में कभी संदेह न करो, जो हमेशा तुम्हारे साथ रहता है ताकि यह तुम्हारी अनिवार्य प्रगति करने में सहायता करे।

११ जनवरी १९३३

प्यारी मां;

आपने मुझसे हर रोज कुछ लिखने के लिये कहा था। लेकिन अब मुझे

कुछ नहीं मिलता और मेरी समझ में नहीं आता कि क्या लिखूं। आपने जब मुझसे लिखने के लिये कहा था तब से मैंने जो कुछ लिखा है उसके बारे में आपने कहा है कि सुखी और अच्छा बनने के लिये मुझे अपनी पूरी इच्छा-शक्ति के साथ उसके लिये चाह करनी चाहिये और पहले की तरह काम करना चाहिये। मैंने ऐसा करना शुरू कर दिया है।

लेकिन जब मेरे पास लिखने को कुछ भी न हो तो, जैसा आपने कहा था संपर्क बनाये रखने के लिये, मैं क्या लिखूं ?

माताजी, आप मुझे बतलाइये।

मेरी नन्हीं मुस्कान,

जब तुम्हारे पास लिखने के लिये और कुछ न हो तो तुम मुझे यही बतला सकती हो कि तुम कितने बजे उठी (उदाहरण के लिये यूं : आज सवेरे मैं इतने घंटे सोने के बाद इतने बजे उठी, नहा-धो कर मैंने नाश्ता किया फिर इतने बजे काम करना शुरू किया आदि) तुम मुझे बतला सकती हो कि तुम किनसे मिली और क्या-क्या बात की, तुमने क्या कहा इत्यादि। यह फ्रेंच का अच्छा अभ्यास होगा और साथ ही हमारे बीच अधिक घनिष्ठता पैदा करेगा।

१३ जनवरी १९३३

प्यारी मां,

आज सवेरे मैं पौने छः बजे उठी, स्नान किया, कपड़े बदले और फिर 'क' की खिड़की से अपनी कापी लेने गयी। (मैं हमेशा ऐसा ही करती हूं)। साढ़े छः बजे कोको पीकर पौने सात बजे मैंने अपना काम शुरू कर दिया। साढ़े सात बजे मैं आपको प्रणाम करने गयी और पौने आठ बजे फिर से काम शुरू कर दिया। साढ़े नौ बजे मैं 'ख' के घर गयी ताकि 'ग' के लिये कुछ काम ले आऊं, उसके बाद साढ़े ग्यारह तक फिर काम करती रही। फिर भोजन करके मैंने दस मिनट आराम किया। बारह बजे मैं फिर से काम पर लग गयी। साढ़े बारह बजे 'ग' काम करने आयी और दो बजे के लगभग उसने हम लोगों के लिये नींबू का रस तैयार किया। मैंने बारह बजे से आठ बजे तक काम किया। मैंने मुकुट की कशीदाकारी पूरी कर ली।

आह, यह तो सफलता है ! यह अच्छा वर्णन है और मुश्किल से कहीं कोई भूल है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुमने अपना दिन कैसे बिताया। इसी तरह जारी रखना अच्छा होगा।

१४ जनवरी १९३३

माताजी,

मैं आपको हर रोज उन्हीं चीजों के बारे में लिखती हूं, नींद, काम और बातचीत। क्या आपको हर रोज वह की वही चीजें पढ़ने में मजा आता है?

क्यों नहीं, मेरी नन्हीं मुस्कान? तुम एक ही बात को अलग-अलग तरह से कहना सीख सकती हो। यह लिखना सीखने के लिये और अपनी शैली गढ़ने के लिये अच्छा अभ्यास है। ऐसा लगता है कि तुम इन दिनों सुलेख का अभ्यास कर रही हो! तुम्हें इतने सुंदर अक्षर लिखना किसने सिखाया?

तुम्हारी स्नेहमयी मां।

२५ जनवरी १९३३

मेरी प्यारी मां,

मैंने देखा है कि 'क' ने अपना बुरा व्यवहार बंद नहीं किया है। मैं उससे घृणा करती हूं . . .

यह एक बहुत बड़ा शब्द है! कहा जाता है कि घृणा प्रेम का उल्टा रूप है। बहरहाल यह एक खतरनाक भाव है जो तुम्हें हमेशा उस व्यक्ति के अधीन रखता है जिससे तुम घृणा करती हो। घृणा करने का अर्थ है कि तुम अभीतक उससे आसक्त हो। सच्ची वृत्ति होगी पूर्ण उदासीनता।

२७ जनवरी १९३३

मेरी प्यारी मां,

आज मैंने आपसे दस घंटे तक शरीर से प्रार्थना की।'

अगली बार जब मैं आपसे मिलूंगी तो मैं आपको बतलाऊंगी कि कशीदाकार साड़ी को फ्रेम पर किस तरह जमाते हैं। फ्रेम साड़ी के जितना बड़ा होना चाहिये।

माताजी, क्या साड़ियों पर सचमुच अच्छी तरह कशीदा करने के लिये मुझे एक ऐसा बड़ा फ्रेम नहीं मिल सकता?

अगर मैं तुम्हें इतना बड़ा फ्रेम दूं तो फिर उसे रखने के लिये एक कमरा भी बनाना होगा जिसमें वह समा जाये!

१३ फरवरी १९३३

' माताजी का एक वाक्य है, 'भगवान् के लिये काम करना शरीर से प्रार्थना करना है।'

मेरी प्यारी मां,

मैंने दस घंटे एक साड़ी पर काम किया। मेरा ख्याल है कि मैं इसे २४ अप्रैल से पहले खतम कर लूंगी।

माताजी, मेरे पास आपसे कहने के लिये कोई नयी बात नहीं है।

तुम सुंदर और कुशल कार्यकर्ता हो, मेरी नन्हीं मुस्कान, और मुझे तुमपर और तुम्हारे काम पर गर्व है, वह कितना सुंदर है। मैं देख रही हूं कि तुमने एक भी भूल किये बिना लिखा है!

१४ फरवरी १९३३

प्यारी मां,

आज मैंने अपने शरीर द्वारा आपसे नौ घंटे प्रार्थना की। अब मैं फिर से अपने काम में पहले जैसी नियमित हो गयी हूं।

मां, कहिये, और क्या?

यह अच्छा है, मेरी नन्हीं मुस्कान, सत्ता का संतुलन नियमित कार्य पर आधारित होता है।

२७ फरवरी १९३३

क्या तुमने आज की तारीख पर ध्यान दिया—३.३.३३?

क्या तुम्हें पता है कि यह ग्यारह वर्ष में केवल एक बार होता है? ग्यारह वर्ष पहले १९२२ की फरवरी में २.२.२२ लिखना संभव था और अब से ग्यारह वर्ष बाद अप्रैल के महीने में ४.४.४४ लिखना संभव होगा और यह चलता रहेगा। है न मजेदार?

३ मार्च १९३३

मेरी प्यारी मां,

'भौतिक में अतिमानसिक सौंदर्य'[1] का क्या मतलब है? क्या ये सब चीजें—ये कलाकृतियां और भगवान् के लिये किये गये सुंदर काम—क्या ये भौतिक में अतिमानसिक सुंदरता की अभिव्यक्ति हैं?

[1] हल्के सुनहरे नारंगी जपा-कुसुम के लिये माताजी का दिया हुआ नाम।

नहीं, यह सब केवल वैश्व सामंजस्य की अभिव्यक्ति है, जो मानों सृष्टि के ठीक हृदय में स्थित है। अतिमानसिक सौंदर्य बहुत अधिक ऊंचा और बहुत अधिक पूर्ण है। वह ऐसा सौंदर्य है जिसमें कुरूपता का दाग नहीं है और उसे सुंदर दीखने के लिये कुरूपता के सामीप्य की जरूरत नहीं होती।

जब अतिमानसिक शक्तियां अभिव्यक्त होने के लिये जड़ भौतिक में उतरेंगी तो यह पूर्ण सौंदर्य अपने-आपको बिल्कुल स्वाभाविक और सहज तरीके से सभी रूपों में प्रकट करेगा।

६ मार्च १९३३

जब मैं तुम्हारी साड़ियां पहनती हूं तो मुझे बहुत खुशी होती है लेकिन मैं उन्हें वैसी ही सावधानी से रखना चाहती हूं जैसे कलाकृतियों को रखा जाता है, इसीलिये मैं उन्हें बहुत अधिक नहीं पहना करती।

९ मार्च १९३३

मेरी प्यारी माताजी;

आज सवेरे आपने मुझे एक फूल दिया जिसका अर्थ है, 'अतिमानसिक ज्योति की ओर मुड़ी हुई चेतना'[1] इसका अर्थ क्या है ? मैं समझ नहीं पायी ?

अगर 'अतिमानसिक' की जगह 'दिव्य' शब्द रख दिया जाये तो क्या तुम्हारे लिये बात ज्यादा स्पष्ट हो जाती है ?

इसका मतलब है ऐसी चेतना जो साधारण जीवन के प्रभावों और क्रियाओं से भरी नहीं है, जो भागवत प्रकाश, शक्ति, ज्ञान, आनंद के प्रति अभीप्सा में एकाग्र है।

अब आया समझ में ?

२३ मार्च १९३३

मेरी प्यारी मां,

क्या आपने अपने गाउन पर मेरे छोटे-छोटे गुलाब देखें हैं ? क्या वे अच्छे हैं ?

वे बहुत मोहक हैं ! यह कहना असंभव है कि कौन-सा असली है और कौन-सा नकली, और यह भी जरूर हो सकता है कि नकल असल से ज्यादा सुंदर हो। तुमने

[1] पीले नारंगी रंग का सूरजमुखी।

देखा था कि आज शाम को जब मैं छत पर टहलने गयी तो वही गाउन पहने हुए थी।

६ अप्रैल १९३३

मेरी प्यारी माताजी,

आज मैंने नौ घंटे तक शरीर से आपकी प्रार्थना की।

माताजी, पिछले दो दिन से मुझे कुछ थकान का अनुभव हो रहा है। मेरे हाथ कुछ धीमे पड़ गये हैं!

क्या तुम्हें नहीं लगता कि थोड़ा आराम करने का विचार ज्यादा अच्छा होगा? यानी या तो पूरे दिन आराम करो या हर रोज दो घंटे कम काम करो।

१३ अप्रैल १९३३

मेरी प्यारी मां,

नहीं, मैं आराम नहीं करना चाहती। आज मैंने अपने शरीर से दस घंटे तक आपकी प्रार्थना की।

तब कूए की पद्धति को अपनाओ और दोहराओ "मैं थकी नहीं हूं, मैं थक ही नहीं सकती क्योंकि मुझे रक्षा प्राप्त है!"

१४ अप्रैल १९३३

मेरी प्यारी मां,

'क' ने मुझे बतलाया कि फ्रेम आज शाम तक तैयार हो जायेगा।

आज मैंने ब्लाउज पर नौ घंटे काम किया।

मेरी नन्हीं मुस्कान, तुम्हें इतना अधिक काम न करना चाहिये कि थकान की हदतक पहुंच जाओ।

१० जून १९३३

मेरी प्यारी मां,

न केवल यह कि मैं सारे दिन काम करती हूं बल्कि मैं अधिक-से-अधिक

काम करना चाहती हूं और आशा करती हूं कि मुझे थकान न आयेगी। अगर मैं हर रोज पूरे दिन काम न करूं तो मैं अपनी प्यारी प्यारी मां के लिये जो बड़ी और सुंदर चीजें बनाना चाहती हूं उन्हें कैसे बना पाऊंगी ? मैं अपना समय नष्ट करूं तो मेरे सपने कैसे सिद्ध होंगे ?

माताजी, क्या आप जानती हैं कि मैं आपके कमरे के लिये बड़े-बड़े परदों पर कशीदा करनेवाली हूं। एक बार आपने मुझे बताया था कि जापानी लोग अपनी दीवारों को कशीदेवाले परदों से मढ़ देते हैं।

तुम्हारी बात ठीक है। अपने सबसे सुंदर सपनों को सिद्ध करने से अच्छा और कुछ नहीं है और, कोई और चीज हमें इससे ज्यादा मजबूत और सुखी नहीं बना सकती !

११ जून १९३३

मेरी प्यारी मां,

माताजी, क्या आप जानती हैं कि इन दो ब्लाउजों पर, मैंने उन्हें बिगाड़े बिना, इस्त्री की है। यह पहली बार है कि मैंने एक ब्लाउज पर इस्त्री की है। मां, मुझे इसके लिये 'शाबाशी' दो। कल मैं दूसरे ब्लाउज पर काम शुरू करनेवाली हूं।

यह तो "शाबाशी" से अधिक का पात्र है ! आज सवेरे सचमुच मैं सराहना से भर गयी थी। यह बहुत सुंदर है—चिड़ियां बहुत सुंदर और सजीव हैं। मुझे उनके प्यारे-प्यारे छोटे सिर, जिनपर चांदी की कलगियां हैं, बहुत सुंदर लगे, मूल चित्र की अपेक्षा बहुत ज्यादा सुंदर। छोटे-छोटे हीरे भी बहुत सुंदर हैं और साड़ी पर चांदी के साथ वे अद्‌भुत लगेंगे। तुमने इस्त्री कहां की थी ? अच्छा है कि तुम यह सीख रही हो।

२१ जून १९३३

मेरी प्यारी मां,

आज सवेरे मैंने आपके लिये एक "शेमीज" काटी। यह पहली बार है कि मैंने कोई 'शेमीज' काटी है। 'क' इसे सी देगी और जब यह तैयार हो जायेगी, आप इसे पहनकर मुझे बतायेंगी कि यह ठीक कटी है या नहीं। क्योंकि अगर यह ठीक तरह कटी हो तो मैं बिना हिचके और चीजें भी काट सकती हूं।

आज भी मैं सारे दिन काम करती रही।

मैं बहुत खुश हूं कि तुमने यह करना भी सीख लिया है। "सारे दिन" से तुम्हारा

मतलब क्या है ? मैं आशा करती हूं कि यह नौ घंटे से ज्यादा नहीं है, क्योंकि वह अपने-आपमें लंबी अवधि है और उसे बढ़ाना न चाहिये।

२६ जून १९३३

मां, आज सवेरे से मेरी बाईं आंख की पुतली में कुछ दर्द हो रहा है।

तुम्हें दिन में तीन बार अपनी आंख बोरिक एसिड के गरम पानी से धोनी चाहिये। और दो-तीन दिन तक कशीदे का काम कम करो। ठीक वैसा ही करो जैसा मैं कहती हूं और याद रखो कि तुम्हारा काम लगभग पूरी तरह तुम्हारी आंखों पर निर्भर है। अगर तुम्हारी आंखें किसी तरह खराब हो जायें तो यह तुम्हारी सुंदर कशीदाकारी की इतिश्री होगी! जब तुम्हारी आंखों में दर्द हो तो कुछ मिनटों के लिये उन्हें अपनी हथेलियों से ढक दो (दबाये बिना) तुम्हें इससे बहुत आराम मिलेगा।

२७ जून १९३३

मेरी प्यारी मां,

मुझे लगता है कि 'क' के लिये मैंने जो कष्ट उठाया वह सब व्यर्थ था। आज शाम को मैंने उसे यह समझाने में लगभग दो घंटे लगाये कि चीजें स्पष्ट रूप से कैसे लिखी जायें। लेकिन व्यर्थ।

जब तुम किसीके लिये इस तरह कष्ट उठाओ तो वह **कभी व्यर्थ नहीं जा सकता**। हो सकता है कि परिणाम तुरंत न दिखायी दे, लेकिन निष्काम कर्म एक-न-एक दिन अपना फल लाता ही है।

२६ जुलाई १९३३

मेरी प्यारी मां,

मैं आपको बतलाती हूं कि मैं सामान्यतः अपनी शाम कैसे बिताती हूं।

आपको छत पर जाते हुए देखने के बाद मैं खाना खाती हूं, फिर मैं घर लौटकर आपको चिट्ठी लिखती हूं और उसके बाद कभी-कभी अपने और 'क' के कपड़े धोती हूं (कभी-कभी 'क' धोती है) फिर मैं घंटा भर टहलती हूं फिर अपना पाठ तैयार करके सो जाती हूं।

लेकिन कल रात को टहलने के बाद साढ़े नौ बजे मैंने 'क' की सिलाई की

मशीन पर काम करने में सवा दस तक सहायता की, फिर पौने बारह तक सिलाई की मशीन पर काम करती रही; उसके बाद कुछ पाठ तैयार किया और साढ़े बारह बजे सो गयी।

आज मैंने ब्लाउज पर तीन घंटे काम किया।

तुम्हें इस तरह रात को देर में सोने की आदत न डालनी चाहिये। यह अच्छी चीज नहीं है। इससे तुम जल्दी ही आंखें बिगाड़ बैठोगी और यह तुम्हारी सुंदर कशीदाकारी की इतिश्री होगी। स्नायुएं भी थक जाती हैं और तब तुम्हारा हाथ ठीक-ठीक नहीं चलता और ठीक-ठीक गति नहीं होती। तुम अपना धीरज और अचंचलता, स्थिरता खो बैठती हो। उस समय किया गया काम साफ-सुथरा नहीं रहता। सब कुछ कामचलाऊ होने लगता है और किसी भी तरह की पूर्णता पाने की आशा छोड़ देनी पड़ती है। मुझे नहीं लगता कि तुम इस तरह का परिणाम चाहती हो!

३१ जुलाई १९३३

मेरी प्यारी मां,

आज १५ अगस्त है, मैंने कुछ भी काम नहीं किया। मैं कल से शुरू करूंगी।

मेरा ख्याल है कि आज तुम्हें अपनी 'शानदार' साड़ी को देखकर गर्व का अनुभव हुआ होगा। वह सचमुच राजसी है। और मुझे अपनी नन्हीं मुस्कान और उसके सुंदर काम पर गर्व है!

१५ अगस्त १९३३

मेरी प्यारी मां,

मैंने साड़ी को कशीदे के फ्रेम पर चढ़ाना शुरू कर दिया है और यह काम कल पूरा हो जायेगा, उसके बाद मैं कशीदा शुरू कर दूंगी।

मेरे पास आपको लिखने के लिये और कुछ नहीं है। एकमात्र समाचार जो मुझे आपको देना होता है वह मेरे काम के बारे में ही तो होता है।

तुम बहुत मेहनती और अध्यवसायी हो और अगर तुम्हारे पास अपने काम की खबर के सिवाय और कुछ कहने के लिये नहीं है तो मुझे तुमसे, अपनी प्यारी नन्हीं मुस्कान के लिये अपने समस्त स्नेह के बारे में कहना है।

२२ अगस्त १९३३

मेरी प्यारी मां,

आज भी मैं फ्रेम पर साड़ी लगाने में व्यस्त रही, लेकिन मैंने देखा कि साड़ी बिल्कुल सीधी नहीं है; इसलिये अब मुझे इसे खोलना पड़ेगा ताकि इसे ज्यादा अच्छी तरह किया जा सके—इसे करने में मेरे तीन दिन लगे थे।

यह मेरी नन्हीं मुस्कान के लिये थकानेवाला होगा ! लेकिन यह जीवन का सच्चा चित्र है, जहां ज्यादा अच्छा करने के लिये तुम्हें अपने किये कराये को अनकिया करना पड़ता है।

२४ अगस्त १९३३

मेरी प्यारी मां,

मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं काम करती हूं। मैं उन अद्‌भुत खिलौनों के साथ, जो मेरी मां ने मुझे दिये हैं, सारे दिन बच्चे की तरह खेलती रहती हूं। मुझे पता नहीं इसे और किस तरह से लिखा जा सकता है इसलिये 'मैं खेलती रही' की जगह 'मैंने काम किया' लिख देती हूं।

मां, मेरा ख्याल है कि आपने आज जो साड़ी पहनी, वह मेरी सबसे अच्छी कशीदाकारी है। क्या आपका भी यही ख्याल है ?

यह एक कलाकृति है। यह **शानदार** है। मुझे लगता है कि मैं प्रकाश पहने हुए हूं।

१ सितंबर १९३३

मेरी प्यारी मां,

मैं धूसर साड़ी पर काम कर रही हूं। और क्या ? मैं आपको और क्या लिख सकती हूं ?

संपर्क बनाये रखने के लिये केवल एक शब्द भी काफी है, और जब तुम्हें मुझसे कोई मजेदार बात कहनी है तो कह देनी चाहिये।

१६ अक्तूबर १९३३

मेरी प्यारी मां,

आपके पास बहुत काम है। मैं आपका समय नहीं लेना चाहती . . .

मेरी नन्हीं मुस्कान, जैसी तुम्हारी इच्छा। यह सच है कि मैं बहुत व्यस्त हूं लेकिन मैं तुम्हें कुछ मिनट देने की व्यवस्था कर सकती थी। यह बड़ी अच्छी बात है कि तुम मेरा काम बिना जरूरत के न बढ़ाने के बारे में सोचती हो। ऐसे लोग ज्यादा नहीं हैं।

१३ नवंबर १९३३

माताजी,

आज मैंने बहुत थोड़ा काम किया . . .

तुमने बिल्कुल ठीक चीज की !

कल[1] तुम्हारे लिये एक बहुत बड़ी प्रतिज्ञा आयी थी। यह प्रतिज्ञा कि तुम अपनी सभी कठिनाइयों से मुक्त हो जाओगी और तुम्हारा मन आलोकमय रूप से शांत और तुम्हारा हृदय स्थिरता के साथ संतुष्ट हो जायेगा। क्या तुमने कुछ अनुभव किया ?

२५ नवंबर १९३३

मेरी प्यारी मां,

दर्शन के बाद मैं शांत और प्रसन्न थी। आश्रम में मुझे 'क' और 'ख' मिलीं और हमने मजे से बातें कीं। 'क' ने मुझसे पूछा, "तुम्हारा क्या हाल है ?" मेरे पास कहने के लिये कुछ न था इसलिये मैंने पूछ लिया, "और तुम्हारा क्या हाल है ?" उसने कहा, "इस बार मैंने बहुत समय लगाया। श्रीअरविंद मेरे सिर पर बहुत देर तक हाथ रखे रहे" आदि। तब 'ख' ने भी कहा, "इस बार मैंने भी कुछ ज्यादा समय लिया, शायद दो तीन मिनट।"

दोपहर के भोजन का समय हो गया था इसलिये हम थाली लेने चले गये। मैं सबसे पहले थी और मैं ऐसी जगह जा बैठी जहां मेरे दाएं बाएं दोनों तरफ जगह खाली थी। मैंने सोचा था 'क' एक ओर बैठ जायेगी और 'ख' दूसरी ओर। लेकिन इतने में 'ग' आकर मेरे पास बैठ गयी। मैंने उससे कहीं और जाकर बैठने को कहा तो वह नाराज हो गयी। इतने में 'क' और 'ख' भी आ गयीं। उन्होंने 'ग' को मुझसे नाराज पाया तो वे भी मेरे साथ नहीं बैठीं। वे मेरे साथ नहीं बैठीं इससे मुझे बहुत चोट लगी।

अपने-आपको यंत्रणा न दो मेरी नन्हीं मुस्कान। यह सब तुम्हें यह सिखाने के लिये

[1] २४ नवंबर दर्शन दिवस। दर्शन के तीन (बाद में चार हो गये) दिन साधक श्रीअरविंद और माताजी के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये उनके सामने से गुजरते थे।

आया है कि ऐसे अवसरों पर, श्रीअरविंद के आशीर्वाद का आनंद पाने के बाद, ज्यादा अच्छा यह है कि एकाग्र रहा जाये और औरों के साथ घुल-मिलकर बातें करते हुए अपना हर्ष फेंक देने की जगह उसे अपने अंदर ताले चाबी में बंद करके रखा जाये। हम जिन अनुभूतियों के बारे में बातें करते हैं वे भाप बनकर उड़ जाती हैं और हमें उनसे जो लाभ हो सकता था हम उससे वंचित रह जाते हैं।

२६ नवंबर १९३३

बेचारी छोटी-सी 'क' बहुत दुःखी है . . . क्या तुम उसके साथ बहुत गंभीर हो गयी हो ?

२७ नवंबर १९३३

माताजी,

मैं 'क' से नाराज नहीं हूं। मैं हमेशा चुप रहने की कोशिश करती हूं। अतः मैं उसके और औरों के साथ भी केवल जरूरी चीजों के बारे में बात करती हूं; यानी अगर वह कुछ पूछती है तो मैं जवाब दे देती हूं और उसे बता देती हूं कि क्या करना चाहिये।

मां, मैं आपकी उपस्थिति चाहती हूं और मैं उसे सारे समय बनाये रखने की कोशिश करती हूं। मैं आपकी ओर अभीप्सा करती हूं और सारे दिन और सारी रात आपको चाहती हूं। मैं हमेशा आपके हृदय में निवास करना चाहती हूं जहां मैं सदा 'क' के और उन सबके साथ रह सकूं जो आपसे प्रेम करते हैं।

मैंने देखा है कि जब मैं एकाग्र होती हूं या एकाग्र होने की कोशिश करती हूं तो मैं किसी के आगे मुस्करा नहीं सकती और मुस्कराऊं तो वह कृत्रिम मुस्कान मालूम होती है।

माताजी, आज सवेरे मैं यह सब 'क' को बतला देना चाहती थी लेकिन मेरे ओठों ने इंकार कर दिया, वे मुस्कराना न चाहते थे।

माताजी, इस तरह न बोल सकना अच्छा है या बुरा मैं जानना चाहती हूं। अगर यह बुरा है तो मैं पहले की तरह बोलती रहा करूंगी।

चुपचाप होकर अपनी अभीप्सा में केंद्रित रहना बहुत अच्छा है और मुझे विश्वास है कि अगर तुम 'क' के लिये अपने हृदय में गहरा स्नेह रखो तो वह इसे अनुभव कर सकेगी और फिर दुःखी न रहेगी, लेकिन निस्संदेह, अगर तुम्हें लगता है कि तुम उसे प्रेम के साथ समझा सको कि तुम्हारे अंदर क्या हो रहा है तो यह बहुत अच्छा रहेगा।

२८ नवंबर १९३३

माताजी :

आप हमेशा मुझे सुंदर चीजों का वचन देती रहती हैं और मैं हमेशा उनका प्रतिरोध करती रहती हूं। तब मैं कभी सुखी कैसे हो सकती हूं ?

तुम्हें चिंता न करनी चाहिये—इससे वचनों के चरितार्थ होने में सहायता नहीं मिलती। और तुम्हें धीरज भी रखना चाहिये। इस भौतिक जगत् में चीजों के चरितार्थ होने में समय लगता है।

१२ दिसंबर १९३३

माताजी,

एक बार श्रीअरविंद ने ऐसे शब्दों में मुझे कुछ लिखा था जिन्हें मैं पढ़ न सकी, मैंने 'क' से उन्हें पढ़ने के लिये कहा। उसने कहा, ''तुम माताजी की बच्ची हो श्रीअरविंद की नहीं (यह एक मजाक था क्योंकि मैं आपकी लिखावट पढ़ सकती हूं, श्रीअरविंद की नहीं।)

क्या तुम इस बात पर विश्वास नहीं करतीं कि जब कोई मां का बालक है तो साथ ही साथ श्रीअरविंद का बालक भी है, और इसके विपरीत भी ?

१६ दिसंबर १९३३

मेरी प्यारी मां,

कल और आज मैं सारे दिन 'आइरिस' की साड़ी पर काम करती रही। आपके लिये काम करना मुझे बहुत ही प्रिय है। पता नहीं क्या लिखूं, मुझे कुछ कहना तो है नहीं।

इतना काफी है; मैं बस इतना चाहती हूं कि हम एक-दूसरे को रोज जरा 'बोंजूर' (सुप्रभात) कह लिया करें। जब तुम्हें कोई खास बात, जरूरी बात या मजेदार बात कहनी हो तो तुम मुझे लिख दिया करो।

मधुर प्रेम।

१८ दिसंबर १९३३

मेरी प्यारी मां,

आज भी मैंने सारे दिन 'आइरिस' की साड़ी पर काम किया; मैं यह नहीं

कहूंगी कि मैंने कितने घंटे काम किया क्योंकि अगर मैं लिखूं, ''मैंने दस घंटे काम किया'', तो आप मुझे लिखेंगी, ''यह आश्चर्यजनक है !''

तुम साहसी और ऊर्जस्वी बच्ची हो।

मधुर प्रेम।

१९ दिसंबर १९३३

माताजी,

'आइरिस' के फूल बहुत सुंदर हैं, वे किस चीज के प्रतीक हैं ?

''सौंदर्य का आभिजात्य''। यह एक अभिजात फूल है जो अपने डंठल पर सीधा खड़ा रहता है। उसके रूप को फ्रांस के राजाओं के प्रतीक 'फ्लर द लीस' में अभिकल्पित किया गया है।

२३ दिसंबर १९३३

माताजी,

आज भी मैं सारे दिन ब्लाउज पर काम करती रही।

मेरी मेहनती नन्हीं मुस्कान को मेरा समस्त स्नेह।

२९ दिसंबर १९३३

मां,

मैं क्या लिखूं, आज मैंने साड़ी पर काम किया।

मैं क्या कह सकती हूं ?—कि मैं तुम्हारे काम और आराम में, तुम्हारी नींद और जागरण में सदा तुम्हारे साथ हूं।

सस्नेह।

३ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी मां,

कल ब्लाउज पर इस्त्री करते हुए मैंने उसे कुछ जगहों पर झुलसा दिया।

मैंने ख्याल नहीं किया, इसलिये वह ज्यादा कुछ न होगा। शायद इसी कारण आज सवेरे प्रणाम के समय तुम इतनी गंभीर दीख रही थीं। तुम्हें अपने-आपको इतनी छोटी-छोटी बातों पर यंत्रणा न देनी चाहिये।

मधुर प्रेम।

११ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी नन्हीं बालिका, मैं संघर्ष और विजय—सारे समय तुम्हारे साथ रहूंगी।

१३ जनवरी १९३४

माताजी,

आज मैंने साड़ी पर नौ घंटे काम किया।

तब तो काम बड़ी तेजी से बढ़ रहा होगा। तुम्हारे अंदर काम के लिये अद्‌भुत क्षमता है, मेरी प्यारी बच्ची।

१८ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी बच्ची, आज सवेरे प्रणाम के समय तुम इतना अधिक रो क्यों रही थीं? मुझे बड़ा दुःख हुआ कि मैं तुम्हें दिलासा न दे सकी। तुम मुझे अपने दुःख के बारे में न बतलाओगी, ताकि अगर संभव हो तो मैं उसे दूर कर सकूं? तुम जानती हो कि मेरा समस्त प्रेम सदा तुम्हारे साथ रहता है और साथ ही मेरी समस्त इच्छा भी, ताकि वह तुम्हें अपनी कठिनाइयों में से बाहर आने में मदद दे सके।

२४ जनवरी १९३४

मां,

आज भी मैं सारे दिन साड़ी पर काम करती रही। कभी-कभी मैं शैतान बालिका बन जाती हूं न, है न मां?

शैतान नहीं, बेचारी नन्हीं जान, जरा दुःखी, और उससे मुझे कष्ट होता है, क्योंकि मैं तुम्हें हमेशा प्रकाश और आनंद से भरा देखना चाहूंगी।

२६ जनवरी १९३४

माताजी,

मैं जानती हूं कि मेरे छोटे-से हृदय में सुंदर चीजें हैं। जैसा कि आप जानती हैं, बुरी चीजें भी हैं—मां, मैंने उनके बारे में आपको बतलाया है।

लेकिन मां, यह छोटा-सा हृदय प्रेम से भरा है, सभी बुरी चीजों को हम इस हृदय के अंदर जला डालेंगे। तब मेरे हृदय में सिर्फ आपके लिये एक बहुत, बहुत अधिक मधुर प्रेम रह जायेगा।

तुमने जो यहां लिखा है वह बहुत सुंदर और साथ ही बहुत सच है। सुंदर चीजें गंदी चीजों से कहीं अधिक मजबूत हैं और वे निश्चय ही विजय पायेंगी। मैं सदा तुम्हारे साथ हूं, संघर्ष में भी और **विजय** में भी।

२९ जनवरी १९३४

माताजी,

आज सवेरे 'क' ने मुझे वह गुलाबी ब्लाउज दिखलाया जो उसने चांदी के तार से काढ़ा है। यह ब्लाउज बहुत, बहुत सुंदर है और साड़ी भी, हमारी काढ़ी हुई साड़ियों में से—जो आपके संग्रह में हैं—वह सबसे सुंदर होगी।

'क' के ब्लाउज को देखने से पहले मैं सोचा करती थी कि मेरी 'स्वर्ग के पक्षी' ('टाइगर क्लॉ प्लांट' के फूल को दिया हुआ माताजी का नाम) *वाली साड़ी बहुत ज्यादा सुंदर है; लेकिन यह ब्लाउज देखने के बाद मुझे लगता है कि 'क' जो तैयार कर रही है उसकी तुलना में 'स्वर्ग-पक्षी' साड़ी कहीं नहीं ठहरती।*

यह सच नहीं है; हर एक की अपनी विशेष सुंदरता और बनावट है। 'स्वर्गपक्षी' **बहुत** सुंदर साड़ी है।

उसका ब्लाउज निश्चय ही सबसे सुंदर है।

मैं नहीं कह सकती कि यह **सबसे** सुंदर है या नहीं। हर एक कशीदा की गयी साड़ी में अपना सौंदर्य है; परंतु यह सच है कि यह ब्लाउज बहुत सुंदर है।

३० जनवरी १९३४

माताजी,

एक बार मैंने आपसे कहा था कि अगर कोई आपके लिये कोई सुंदर चीज

बनाये तो हम सबको खुश होना चाहिये, फिर वह कोई क्यों न हो, मैं होऊं या कोई और। मेरा मतलब यह है कि किसी की भी बनायी हुई बहुत सुंदर चीज को देखकर हमें बहुत खुश होना चाहिये, और वे सब जो मेरी मधुर मां से प्रेम करते हैं स्वभावतः खुश होंगे।

क्या आप जानती हैं कि जब मैंने 'क' का ब्लाउज देखा तो मुझे लगा कि किसी और व्यक्ति ने मुझसे ज्यादा सुंदर चीज बना ली।

माताजी, मैं जानती हूं कि मुझे ऐसा क्यों लगा। अभीतक मेरे अंदर अपने काम का एक गर्व था : "मैं औरों से ज्यादा सुंदर चीजें बनाती हूं"—कुछ इस तरह का भाव था, इसलिये जब मैंने किसी और की बनायी हुई बहुत सुंदर चीज देखी तो मेरे गर्व को जबर्दस्त चोट लगी; यह सच नहीं है क्या? (माताजी, यहां मुझे एक वाक्य याद आता है जो 'क' ने किसीसे कहा था, "माताजी प्रहार करना जानती हैं।")

मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि मैं जान-बूझकर प्रहार नहीं करती।

माताजी,

मेरे अंदर ऐसी बेवकूफी-भरी चीजें क्यों हैं? मैं नहीं चाहती उन्हें। वे मेरे अंदर काफी रह चुकी हैं, अब मुझे नहीं चाहियें। मैं तबतक चैन न पाऊंगी जबतक आप मेरे हृदय में आकर वहां सतत निवास न करें।

मेरी मां, मुझे शुद्धि और अभीप्सा का सातत्य प्रदान कर।

हमारे अंदर की कुछ अवस्थाएं (और घमंड उनमें से एक है) अपने-आप इर्द-गिर्द की परिस्थितियों से प्रहारों को निमंत्रित करती हैं। और यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम इन प्रहारों का उपयोग अधिक प्रगति के लिये करें।

तुम्हारा यह चाहना ठीक है कि यह सारी क्षुद्रता और मूढ़ता गायब हो जाये। इस निश्चय में मैं पूरी तरह तुम्हारे साथ हूं और मुझे विश्वास है कि तुम्हारी विजय होगी।

३१ जनवरी १९३४

माताजी,

आज मेरे पास लिखने के लिये कुछ भी नहीं है। रोज की तरह आज भी मैंने दिन भर काम किया।

मैं आशा करती हूं कि यह नया महीना तुम्हारे लिये वह उपलब्धि लायेगा जिसके लिये तुम इच्छा करती हो—सुखद स्थिरता, अपरिवर्तनशील शांति, प्रकाशमय नीरवता।

मेरी यही इच्छा है और यही मेरा आशीर्वाद है।

१ फरवरी १९३४

माताजी,

मैं आपको अपने हृदय में पकड़ लूंगी। मुझे शांति और सुख के बारे में सोचने की जरूरत नहीं। अगर तुम हमारे हृदयों में निवास करो तो ये चीजें निश्चित रूप से रहेंगी।

मुझे पकड़ने के लिये तुम्हें कहीं दूर न जाना होगा क्योंकि मैं पहले से ही तुम्हारे हृदय में मौजूद हूं और जैसे ही तुम्हारी आंखें खुलेंगी कि तुम मुझे वहां देख पाओगी। अनुभव करने की अपनी क्षमता को बाहर छितराने की जगह भीतर मोड़ो, तो तुम मेरी उपस्थिति को उतने ही ठोस रूप में (बल्कि उससे भी बढ़कर) अनुभव कर सकोगी जैसे तुम सरदी, गरमी को अनुभव करती हो।

२ फरवरी १९३४

मेरी प्यारी मां,

यह सच है कि तुम पहले से ही मेरे हृदय में हो, लेकिन मुझे आंखें खोलना नहीं आता। वे सोते समय को छोड़ कर बाकी सारे समय तो खुली ही रहती हैं।

मैं तुम्हारी भौतिक आंखों की नहीं, भीतरी आंखों की बात कर रही हूं।

"अनुभव करने की अपनी क्षमता को बाहर छितराने की जगह भीतर मोड़ो।" माताजी, मैं जब कभी कुछ अनुभव करती हूं, अपने हृदय में ही अनुभव करती हूं। (मेरा ख्याल है कि हर एक अपने हृदय में ही अनुभव करता है) मैं बाहर से अनुभव करना नहीं जानती। 'बाहर' से आपका क्या मतलब है?

मेरा मतलब यह है कि अपनी इन्द्रियों के बोध में रहने की जगह, जो ऐकांतिक रूप से बाहरी चीजों में ही लगी रहती हैं, तुम्हें आंतरिक सत्ता पर एकाग्र होना चाहिये, जिसका जीवन इन्द्रियों से एकदम स्वतंत्र होता है (देखना, सुनना, सूंघना, चखना और छूना)।

३ फरवरी १९३४

माताजी,

आपने मुझे लिखा हुआ वह पत्र वापिस क्यों नहीं लौटाया जो मैंने आज सवेरे आपको अपने पत्र के साथ भेजा था ?

माताजी, मैं आपकी गोद में लेटना चाहती हूं।

बेचारी नन्हीं मुन्नी, मैं खुशी से तुम्हें अपनी गोद में लेती हूं और इस भारी दुःख को शांत करने के लिये, जिसका कोई कारण नहीं है, और इस बड़े विद्रोह को शांत करने के लिये, जिसका कोई कारण नहीं है, तुम्हें अपने हृदय में झुलाती हूं। आओ, मैं तुम्हें अपनी भुजाओं में ले लूं, अपने प्रेम से नहला कर, इस दुखद घटना की स्मृति तक को पोंछ डालूं। मैंने वह पत्र तुम्हारे पत्र के साथ श्रीअरविंद को दिखाने के लिये रख लिया था। अब इस कापी के साथ लौटा रही हूं।

२७ फरवरी १९३४

नहीं, मेरी बच्ची, मुझे विश्वास है कि मैंने तुमसे यह नहीं कहा कि तुम मुझसे कोई चीज छिपाना चाहती हो। जब मैं ध्यान के समय तुम्हारे मन और प्राण की बेचैनी को शांत करने के लिये तुम पर कुछ दबाव डाल रही थी तो तुमने रोना शुरू कर दिया। मैंने सोचा कि अगर तुम मुझे अपने दुःख का कारण बतला दो तो तुम्हें कुछ शांति मिल जायेगी और जब तुमने उत्तर न दिया तो मैंने सिर्फ इतना पूछा कि क्या तुम बोलना चाहोगी, मैं व्यर्थ में आग्रह करना नहीं चाहती थी। अगर तुमने यह सोच लिया कि मैं नाराजगी प्रकट कर रही थी तो यह तुम्हारी भूल थी।

खेद की बात है कि कुछ समय से तुम अपने अंदर बंद रहती हो और इसलिये मैं तुम्हें जितनी मदद देना चाहती हूं, नहीं दे पाती।

सस्नेह।

७ जुलाई १९३४

मेरी प्यारी बच्ची, इस अंतर्दर्शन का अर्थ लगाने का यह एकदम अप्रत्याशित तरीका है। मैंने उसका यह अर्थ हर्गिज न किया था। इन अंतर्दर्शनों में प्रायः प्रतीकात्मक रूपक होते हैं और उन्हें उसी तरह लेना चाहिये।

पहाड़ियां जड़ भौतिक प्रकृति का प्रतीक हैं, कठोर, अनमनीय फिर भी अपने अंदर जीवन-सरिता को छिपाये हुए। जड़ के प्रतिरोध के कारण यह जीवन-सरिता बड़ी मुश्किलों से मुक्त की जा सकती है और कठिनाई से प्रकाश में आ सकती है। लेकिन जरा एकाग्रता और आग्रह के साथ जड़ का प्रतिरोध कम पड़ जाता है और

जीवन-शक्तियां मुक्त हो जाती हैं। यह रूपक लगभग सभी पर लागू हो सकता है, लेकिन इस मामले में इसका संबंध तुम्हारे साथ था क्योंकि तुम उपस्थित थीं और मैंने उसे इस प्रतिज्ञा के रूप में लिया कि तुम्हारी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी और तुम जल्दी ही प्रकाशमय, मुक्त और सुखी चेतना में उभर आओगी।

मेरे प्रेम के साथ।

११ जुलाई १९३४

माताजी,

१० गज कपड़े का दाम है पच्चीस रुपये पंद्रह आने—यानी दो रुपये साढ़े नौ आने फी गज। आज शाम को 'क' और मैंने दस गज लंबे टुकड़े को रंगा लेकिन वह सफल नहीं हुआ और रंग ठीक ढंग से नहीं आया, कहीं गाढ़ा आया है, कहीं हल्का। आप कल सवेरे उसे देखेंगी।

मेरी प्यारी बच्ची, मैं पहले कपड़े को देख लेना चाहती थी इसलिये मैंने तुरंत उत्तर नहीं दिया। उसमें कुछ विषमताएं हैं अवश्य, पर मेरा ख्याल है कि उन्हें ठीक किया जा सकता है।

मेरा ख्याल है कि उसे फिर से रंगना ठीक न होगा, वह बहुत ज्यादा गाढ़ा हो जायेगा। हम इन विषमताओं को **पानी की लहरें** मान सकते हैं और उनके नीचे सुनहरा धागा दिया जा सकता है। तब ऐसा मालूम होगा कि इन्हें जान-बूझकर बनाया गया है और वह ज्यादा सुंदर हो जायेगा। अगली बार जब तुम मुझसे मिलोगी तो मैं तुम्हें समझा दूंगी कि मेरा ठीक-ठीक मतलब क्या है। चिंता न करो, वह बिल्कुल ठीक हो जायेगा। तुम अपना काम अभी से शुरू कर सकती हो।

६ *सितंबर १९३४*

माताजी,

अब मेरी मछलियां बनाने की इच्छा नहीं हो रही। मैं उन्हें पांच वर्ष में करूंगी।

मैं उसकी जगह सुनहरे और रुपहले परदार सांपोंवाली हरी साड़ी पर काम शुरू करूंगी—यह २१ फरवरी १९३५ के लिये होगी, आप किसी से चित्र बनाने के लिये कह दें। हरा कपड़ा और सुनहरे और रुपहले धागे तैयार हैं।

मुझे निराशा हो रही है। मैं अभी मछलियां नहीं बना सकती।

तुम 'क' से पूछ देखो कि क्या वह तुम्हारे लिये परदार सांपों के चित्र बनाना पसंद करेगा।

७ सितंबर १९३४

तुम मेरी नन्हीं बालिका हो और हमेशा नन्हीं बालिका रहोगी—यह निश्चित तथ्य है।

लेकिन जब छोटे बच्चे हठ ठानते हैं तो उनके साथ तर्क करना बहुत कठिन होता है। अगर तुम चाहो कि मैं तुम्हें बताऊं कि मैं क्या सोचती हूं तो यह लो: 'ग' ने बहुत कष्ट उठाकर एक सुंदर-सा चित्र बनाया। तीस रुपये का एक सुंदर कपड़ा खरीदा गया। तुमने और 'क' ने बड़ी मेहनत के साथ उसे रंगा, मैंने तुम्हें बतलाया कि मैंने एक तरकीब निकाली है जिससे रंगने की विषमताओं का उपयोग करके एक ऐसी साड़ी बनायी जा सकती है जो उससे कहीं अधिक सुंदर होगी जिसके बारे में हमने सोचा था, फिर भी बिना सोचे-समझे तुम बदमिजाजी के दौरे में आकर लिखती हो: "अब मैं इस साड़ी को तैयार नहीं करना चाहती, मैं एक और करूंगी" स्वभावतः मैंने सोचा कि अब मुझे 'क' से कहना पड़ेगा कि वह एक और चित्र बनाने का कष्ट करे और अचानक अगर उसमें भी कोई कठिनाई उभर आयी तो यह छोटी-सी लड़की फिर से कह देगी, "मैं निराश हो गयी हूं, मैं यह साड़ी नहीं करना चाहती," और 'क' का परिश्रम व्यर्थ जायेगा। इसीलिये मैंने तुमसे कहा कि तुम अपने-आप उससे चित्र के लिये बात कर लो। उसने आज ही मछलियों के साथ मुकुट का एक डिजाइन बनाकर भेजा है। वह बहुत, बहुत सुंदर है और अगर तुम मेरी राय मानो तो मेरा सुझाव है कि पहले मुकुट ले लो। वह तुम्हें साड़ी की ओर आगे बढ़ायेगा और तुम देखोगी कि सब कुछ ठीक, बिल्कुल ठीक हो जायेगा। मैं तुम्हें मुकुट का वह डिजाइन भेज रही हूं।

प्रेम सहित।

८ सितंबर १९३४

माताजी,

कल रात जब मैं रात के साढ़े नौ के करीब सोने गयी तो मुझे एक तरह का डर-सा लगा मानों कोई वहां था या आ सकता था। मैंने आंखें बंद कर लीं और थोड़ी देर बाद मुझे नींद में एक तरह का डर-सा लगा। मैंने आंखें खोलीं, आकाश की ओर देखा और फिर आंखें बंद कर लीं। मुझे ऐसा लगा मानों बादल जैसी कोई चीज मेरी ओर आ रही है और मैंने आंखें खोल दीं . . .

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हें डरना न चाहिये। अगर तुम कोई ऐसी चीज देखो जिससे तुम्हें डर लगता है या कोई अप्रिय भाव आता है तो तुम्हें मुझे बुलाना चाहिये और वह चीज गायब हो जायेगी। जागते समय निश्चय ही तुम बादल से या नजदीक आते हुए बिजली के बादल से नहीं डरतो ना ? तब वह तुम्हें रात को क्यों डरा पाये ?

बिना डरे अपने-आपको मेरी बांहों में दे दो और विश्वास रखो कि तुम्हें कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। मेरी शक्ति और मेरा संरक्षण हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

मेरे मधुर प्रेम के साथ।

१८ जून १९३५

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है। मैं कोई कारण नहीं देखती कि तुम मजेदार चीजें पढ़ने की जगह उबाऊ अभ्यास क्यों करो।

कोई भाषा सीखने के लिये तुम्हें पढ़ना, पढ़ना और अधिक पढ़ना चाहिये—और जितना हो सके उसे उतना बोलना चाहिये।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१० जुलाई १९३५

मेरी नन्हीं मुस्कान,

तुमने अपनी स्थिति का बड़ा अच्छा वर्णन किया है और चूंकि तुम उसके बारे में इतनी सचेतन हो इसलिये मुझे लगता है कि तुम जल्दी ही उसे वश में कर सकोगी।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि तुम्हारे अंदर शांति और नीरवता लाने के लिये हमारी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है और यह एकदम निश्चित है कि एक दिन तुम्हारे अंदर शांति और नीरवता इस तरह प्रतिष्ठित हो जायेंगी कि फिर वे तुम्हें कभी न छोड़ेंगी।

बहुत स्नेह के साथ।

८ अगस्त १९३५

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है, मुझे एक लेसवाले गाउन की अपेक्षा कशीदा की

हुई साड़ी बहुत अधिक पसंद है। यह संख्या या आवश्यकता का प्रश्न नहीं है। वर्षों तक मैं साल में दो साड़ियों से पूरी तरह संतुष्ट रही हूं—लेकिन मेरे प्यारे बच्चे मेरे लिये जो सुंदर चीजें बनाते हैं उनपर मुझे गर्व है और मैं उन्हें स्नेह और आनंद के साथ पहनती हूं।

मेरे आशीर्वाद और मेरा प्रेम सदा तुम्हारे साथ हैं।

१० दिसंबर १९३५

माताजी,

आपने मुझे बतलाया है कि मेरे अंदर कोई चीज बंद है जो आपकी ओर नहीं खुलती और इसीलिये जब मैं अपने हृदय में आपके प्रेम को अनुभव करना चाहती हूं (जिसके बारे में आपने कहा है कि वह हमेशा रहता है) तो मैं उसे अनुभव नहीं करती। मेरे अंदर ऐसी कौन-सी चीज है जो बंद रहती है? मेरा हृदय? या कोई और चीज है? मैं यह सब नहीं समझ पाती।

मैं चाहती हूं कि मेरा हृदय सदा खुला रहे और आपके प्रेम का अनुभव करे। लेकिन अगर वह सचमुच बंद है तो मैं उसे कैसे खोल सकती हूं? मुझे उसे खोलने के लिये क्या करना चाहिये? मैं सचमुच चाहती हूं कि वह आपके प्रति खुल जाये। और मैं हमेशा सुखी रहना चाहती हूं।

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

मैं केवल एक ही तरीका जानती हूं, अपने-आपको पूरी तरह, पूर्ण उत्सर्ग के साथ भगवान् को दे दो। तुम अपने-आपको जितना अधिक दोगी उतनी ही अधिक खुलती जाओगी और जितनी अधिक खुलती जाओगी उतना ही अधिक पाओगी; और आत्मदान की इस घनिष्ठता में तुम आंतरिक उपस्थिति और उसके साथ आनेवाले आनंद के बारे में सचेतन हो जाओगी।

तुम्हारी मां की ओर से मधुर प्रेम।

२५ जुलाई १९३६

माताजी,

मैं आपको स्पष्ट रूप से बता दूं कि मैं कब खुश नहीं रहती : जब कोई मुझे खुशी से अपनी सुंदर और सुखद अनुभूतियों के बारे में सुनाता है तो मैं अपने-आपको बहुत तुच्छ अनुभव करती हूं। मुझे लगता है कि मेरे अंदर वह चीज नहीं है जो होनी चाहिये।

और मैं हमेशा आपसे शांति और नीरवता की मांग करती हूं, (जैसा कि मैंने उस दिन कहा था) क्योंकि मैं जानती हूं कि अगर हम सदा उस शांति और नीरवता को रख सकें तो किसी भी कारण से अपने-आपको तुच्छ अनुभव न करेंगे।

मैं इतना तुच्छ नहीं होना चाहती, ऐसा अनुभव नहीं करना चाहती।

तुम्हें शांति और नीरव आनंद का यह अनुभव पहले ही हो चुका है; तुम जानती हो कि वह क्या है और वह निश्चित रूप से ज्यादा प्रबल और स्थिर रूप से वापिस आयेगा। विश्वास रखो, अपने-आपको यंत्रणा न दो—इस तरह तुम उसके आगमन को तेज कर सकती हो।

तुम्हारी मां की ओर से मधुर प्रेम।

३० जुलाई १९३६

माताजी :

मुझे लगता है कि मैं सब कुछ खो बैठी हूं। मेरे अंदर जो कुछ अच्छा था, सब खो गया। पहले मैं हमेशा यह अनुभव करती थी कि मैं जो कुछ करती हूं वह आपके लिये है, मैं जो कोई काम करती थी उसमें 'आपके लिये करने का भाव' हमेशा मेरे साथ रहता था।

अब मुझे लगता है कि मैं इस भाव को खो चुकी हूं।

मेरी प्यारी बच्ची,

क्या तुम इस परिवर्तन के किसी कारण को जानती हो ? निश्चय ही कोई कारण है; और फिर, आजकल जब कि आश्रम दर्शकों[1] से भरा है, बहुत अस्तव्यस्तता रहती है जो प्रायः चेतना को धूमिल कर देती है। तुम्हें इससे बहुत ज्यादा परेशान न होना चाहिये। केवल शांति और अध्यवसाय के साथ प्रकाश के फिर से आने की अभीप्सा करो। मेरा प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है जो इस बुरे समय को पार करने में तुम्हारी मदद करेगा।

सस्नेह।

३० अगस्त १९३६

माताजी,

जी हां, मेरा ख्याल है कि मुझे इस परिवर्तन का कारण मालूम है। क्या यह

[1] १५ अगस्त के दर्शन के आसपास का समय।

लोगों से प्रशंसा पाने की चाह नहीं है—अहंकार ? या यह कुछ और है ? अगर आप जानती हैं तो मुझे बतलाएं। उससे पिंड छुड़ाने से पहले मुझे पता तो होना चाहिये कि वह क्या है।

हां, मेरी प्यारी बच्ची, तुमने निश्चय ही कारण पा लिया है और क्या तुम इस कारण जरा चिढ़ नहीं गयी थी कि मैंने इन दिनों तुम्हारी कशीदा की हुई साड़ी नहीं पहनी ? निश्चय ही इसका यह कारण नहीं है कि मुझे उन्हें पहनना पसंद नहीं है—बात बिल्कुल उल्टी है। वे कुछ भारी और गरम हैं और मैं उन्हें नवंबर से जनवरी के बीच पहनने के लिये रखना चाहती हूं—उन दिनों छुट्टियों के कारण बहुत दर्शक होते हैं और तब मैं कशीदा की हुई साड़ियां बड़ी खुशी से पहनूंगी क्योंकि तब मौसम कुछ ठंडा होता है।

यह सच है कि तुम्हें इन तुच्छ और अज्ञानभरी गतिविधियों से छुटकारा पा लेना चाहिये, लेकिन साथ ही तुम्हें विश्वास होना चाहिये कि मैं तुम्हारे काम की बहुत सराहना करती और उससे प्रेम करती हूं। मुझे तुम्हारी कशीदाकारी के लिये बहुत अनुराग और तुम्हारे लिये बहुत प्रेम है।

तुम्हारी मां।

३१ अगस्त १९३६

मेरी नन्हीं 'शाश्वत मुस्कान',

मुस्कराती जाओ और विशेष रूप से जब कठिनाइयां आयें तो और भी अधिक मुस्कराओ। मुस्कानें सूर्य की किरणों की तरह हैं, वे बादलों को छितरा देती हैं . . . और अगर तुम आमूल उपचार चाहती हो तो यह रहा : **स्पष्टवादिता**, पूरी तरह स्पष्टवादी बनो, मुझे पूरी तरह बतलाओ कि तुम्हारे अंदर क्या चल रहा है और जल्दी ही उपचार आ जायेगा, एक संपूर्ण और सुखकर उपचार।

मेरी नन्हीं मुस्कान को बहुत-से स्नेह के साथ।

६ सितंबर १९३६

मेरी बच्ची,

मूढ़ होने का दिखावा न करो जब कि तुम सचमुच हो नहीं। केवल इतना ही नहीं कि मैं नाराज नहीं थी, बल्कि नाराज दीखने का मेरा जरा भी इरादा नहीं था।

मैंने केवल तुम्हारी अंतरात्मा में सीधी नजर डाली थी। और मैं उसमें तथा तुम्हारी बाहरी चेतना में फिर से संबंध जोड़ने की कोशिश कर रही थी। और मैंने तुम्हारी हंसी को परिवर्तन का चिह्न मान लिया !

झूठे गर्व से बचकर रहो—वह केवल विनाश की ओर ले जाता है। और भगवान्

के प्रेम को छोटा न समझो क्योंकि उसके बिना ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके लिये जिया जाये।

मैं जानती हूं कि तुम काफी समझदार और संवेदनशील हो और इस सत्य की अवहेलना नहीं कर सकती।

हमेशा प्रेम सहित।

६ *सितंबर* १९३६

शुभ जन्म दिवस !

मेरी नन्हीं मुस्कान को, जिसकी मूल्यवान् सहायता मेरे पैरों को रास्ते के कंकरों से घायल होने से बचाती है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित कि उसकी अभीप्सा इस वर्ष चरितार्थ हो।

६ *जनवरी* १९६३

पत्रमाला ४

पत्रमाला ४

[ये पत्र आश्रम के एक ऐसे साधक के नाम हैं जो तीसरे दशक में श्रीअरविंदाश्रम के गाय, बैलों और गाड़ियों की देखभाल करता था।]

ग्वाले ने बैलों के लिये विशेष नयी रस्सियां तैयार की हैं। जब बैल काम कर रहे हों तो ये रस्सियां ज्यादा सुरक्षित होंगी। जैसे ही काम पूरा हो जाये रस्सियां निकाल दी जायेंगी। ये रस्सियां सख्त नहीं, ढीली हैं इसलिये बैलों को तकलीफ न होगी।

कृपया स्वीकृति प्रदान करें।

मेरा ख्याल है कि बैलों ने रस्सी लगाने का सख्त विरोध किया था। हो सकता है कि वे सख्त न हों पर अधिक संभव यह है कि उनसे बैलों की नाक खराब हो जायेगी। इस मामले में भी मुझे लगता है कि यह प्रशिक्षण की बात है।

८ मई १९३२

मैं आपके अवलोकनार्थ यह तथ्य आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूं: 'क' के गाड़ीवालों में सबसे छोटे और दुर्बल बैल भी ६०० डेम रेत ले जाते हैं।

तुम उसकी बात ही कैसे कर सकते हो! क्या तुम जानते हो कि यहां के गाड़ीवान अपने बैलों को कुछ ही महीनों में या उससे भी कम में कैसे मार डालते हैं?

११ मई १९३२

कल छुट्टी होगी। गाड़ी की मरम्मत परसों की जा सकेगी।

कल शहर में **बहुत भीड़** होगी, इसलिये तुम्हें कृषि-वाटिका से बैल ले जाते और लाते समय **बहुत सावधान** रहना होगा।

१३ जुलाई १९३२

कल रात को मजदूर नहीं आया। वह बस खाने की नांदें बैलों के आगे रखकर चला गया। वह संतोष-जनक काम नहीं कर रहा। वह चीजों को साफ भी

नहीं रखता। चूंकि ज्यादा अच्छा आदमी नहीं मिल रहा इसलिये मैं इसीसे काम चला रहा हूं।

ऐसा लगता है कि बैलों को यह आदमी पसंद है और यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात है।

सफाई निरीक्षण पर निर्भर है।

१५ जुलाई १९३२

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि ओजस[1] ने कुछ तंग किया। ये बैल काफी बुद्धिमान हैं और आदमियों के हेर-फेर को अनुभव करते हैं। यह नया आदमी निष्णात नहीं है और फिर उसके चारों ओर कुछ पाशविक चीज है और तुम्हें उसपर ध्यान से नजर रखनी होगी। मुझे उसका बैलों के साथ व्यवहार करने का तरीका पसंद नहीं है।

मैं उसके बैलों की दुम मरोड़ने का बहुत जोर से विरोध करती हूं। अगर कोई इसी तरह उसका हाथ या पांव मोड़े तो वह क्या कहेगा ? और मुझे विश्वास है कि हमारे बैल उसकी अपेक्षा अधिक संवेदनशील हैं।

३ सितंबर १९३२

मैंने छत पर से सारी चीज देखी है और अंतर्दृष्टि से भी देखी। वहां जो हो रहा है उसके बारे में जरा भी संदेह नहीं है और मैं फिर से एक बार तुम्हें समझाने की कोशिश करूंगी।

बैल शरीर नहीं हैं। इसके विपरीत वे बहुत अच्छे और शांत जानवर हैं, लेकिन हैं बहुत संवेदनशील—शायद असाधारण रूप से संवेदनशील—(लेकिन इसके बारे में मुझे पूरा विश्वास नहीं है क्योंकि मैंने और बैलों को इस तरह नजदीक से नहीं देखा है)। सचाई तो यह है कि उन्हें वर्तमान गाड़ीवान पसंद नहीं है और वे उसपर विश्वास नहीं करते, और यह **बिना कारण के नहीं है**। जब वे पिछले गाड़ीवान के साथ काम करते थे तो वे सुखी और प्रसन्न थे और अच्छा काम करते थे। जबसे उन्हें इस आदमी ने हांकना शुरू किया है वे दुःखी और निरुत्साहित रहते हैं और अनमने होकर काम करते हैं। मैं और कोई उपाय नहीं देखती; इस आदमी को बदल दो और ज्यादा अच्छा आदमी तलाश करो।

उन्हें डरा-धमका कर वश में करने का प्रस्ताव स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस

[1] एक बैल का नाम।

तरह शायद एक प्रकार की वश्यता प्राप्त की जा सकती है लेकिन वह होगी बुरे-से-बुरे प्रकार की। पशु अधिकाधिक विश्वास, आनंद और शांति खो बैठते हैं और अंत में उनका बल और स्वास्थ्य भी जाता रहता है।

साधक होनेका लाभ ही क्या यदि, जब हम कुछ कार्य करें तो उसी तरह करें जैसे कोई साधारण अज्ञानी मनुष्य करता है ?

विषय को समाप्त करते हुए मैं तुमसे यह भी कह दूं कि छत पर से मैंने बैलों पर शक्ति एकाग्र की और उन्हें आज्ञा दी कि वे झुक जायें और आज्ञा मानें और मैंने उन्हें **काफी ग्रहणशील** पाया। **स्थिर, अचंचल, निष्कंप, सचेतन इच्छा-शक्ति** का उपयोग यही है, एकमात्र मार्ग, सच्चा और **वास्तव में प्रभावकारी** मार्ग जो दिव्य जीवन की अभीप्सा करनेवाले के योग्य है।

मैं आशा करती हूं कि इस बार मैंने अपनी बात स्पष्ट कर दी है।

१४ सितंबर १९३२

मुझे लगता है कि, कम-से-कम कुछ समय के लिये, हर रोज अधिक काम न करवाना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि 'ओजस' को सचमुच आराम की जरूरत होगी। मुझे नहीं लगता कि नया आदमी पिछले से कुछ ज्यादा अच्छा है। वह बहुत ज्यादा सशंक और बेचैन है। अगर वह बैलों के साथ व्यवहार में जरा अधिक स्थिर और शांत हो सके तो वे निश्चय ही कहीं अधिक मन लगाकर काम करेंगे।

२२ सितंबर १९३२

मेरा ख्याल है कि बैलों के लिये चक्की चलाने का काम बहुत ज्यादा घृणित है, और यह उनकी प्राण-शक्ति को कम कर देता है और उन्हें बहुत जल्दी बूढ़ा बना देता है। इसलिये मैं नहीं चाहती कि उन्हें यह काम दिया जाये।

११ जनवरी १९३३

शनिवार, १४वीं तारीख, पशुओं के त्यौहार का दिन है। साधारणतः सभी जगह इस दिन बहुत कुछ किया जाता है। सींग लाल और नीले रंगे जाते हैं, उन्हें कोई काम नहीं दिया जाता आदि। मैं ये बातें इसलिये नहीं कह रहा कि अपने जानवरों के साथ भी यही सब करने की स्वीकृति लूं। लेकिन मैं इसके साथ एक हार भेज रहा हूं और आप की अनुग्रहपूर्ण स्वीकृति मांगता हूं कि इस तरह की चीज उस दिन हमारे प्यारे 'रा'[1] के गले में पहनायी जा सके।

[1] एक बछड़ा।

हां, हार अच्छा है, तुम उसे पहना सकते हो परंतु सीगों पर रंगाई नहीं, वह बहुत भद्दी होती है ! और मेरा ख्याल है कि तुम्हें सावधानी बरतनी चाहिये कि उस दिन 'रा' को सड़क पर न निकालो क्योंकि सामान्यतः बच्चे बछड़ों के पीछे भागते और उन्हें बहुत डराते हैं और कभी-कभी घायल भी कर देते हैं।

१२ जनवरी १९३३

क्या १९ चक्कर बैलों के लिये बहुत ज्यादा नहीं है ? मुझे लगता है कि उन्हें बहुत आराम नहीं मिल रहा।

८ जून १९३३

बात क्या है ? अगर गाड़ीवान ने कोई भूल की है या बैलों के साथ दुर्व्यवहार किया है तो मुझे **मालूम होना चाहिये । मैं इस तरह के रहस्यों को** नहीं सह सकती।

७ अगस्त १९३३

> *मैं सफाई दे रहा हूं। 'क' गाड़ी के साथ था, लेकिन जैसा कि वह स्वयं कहता है, वह पूरी तरह से शतरंज की एक बाजी के बारे में सोचने में डूबा हुआ था, इसलिये उसे तबतक पता न लगा जबतक गाड़ी उतरकर जमीन पर न आ रही।*

मेरी समझ में नहीं आता कि शतरंज की समस्या का काम या साधना के साथ क्या संबंध है ? 'क' यहां शतरंज की समस्याएं हल करने के लिये है क्या ? यह तो वह कहीं अन्यत्र भी कर सकता है।

२६ अगस्त १९३३

> *मुझे खेद है कि 'क' के बारे में मुझे यह विवरण देना पड़ रहा है। शाम को ५.१० पर उसने बिना कारण 'रा' को अपने जूते के तल्ले से, उसके छप्पर के नीचे पीटा। मैंने यह 'बा' के छप्पर से देखा। उसने पांव से चप्पल खोलकर हाथ में ली और 'रा' के मुख पर और चेहरे पर मारी। उसने खाने की नांद के पास दो टोकरियां रखी थीं। एक में केले के छिलके थे, दूसरी में तरकारी के। 'रा' ने उस तरह नहीं खाया जैसे वह खिलाना चाहता था। यही उसकी भूल*

थी। जब मैंने दौड़कर उससे पूछा तो उसने कोई जवाब देने की परवाह न की। नौकरों का कहना है कि उसने पहले भी 'रा' को इस तरह पीटा है। ऐसा लगता है कि वह इस तरह उसे वश में करना चाहता है।

अगर वह सचमुच ऐसा करता है तो यह पाशविक और मूढ़तापूर्ण है। इस तरह वह उसका सिर खराब करने के साथ-साथ—जो पहले ही काफी खराब है,—उसे प्रतिशोधी और हिंसापूर्ण बना देगा जो और भी ज्यादा बुरा है।

१८ नवंबर १९३३

मुझे लगता है कि तेजस्[1] **बहुत दुबला हो गया है**। निश्चय ही वह बीमार है और उसकी ओर ध्यान देने की जरूरत है। मैं डॉक्टर से जानना चाहूंगी कि क्या उसके लिये यह ज्यादा अच्छा न होगा कि वह किसी चरागाह में स्वतंत्रता से कुछ समय तक घूमा करे ताकि उसे हवा, धूप और बिना काम किये गति मिल सके। यह प्रश्न डॉक्टर के सामने स्पष्ट रूप से रखा जाये और उससे ठीक-ठीक उत्तर मांगा जाये। अब तो यह भली-भांति जानी-मानी बात है कि बीमारियों का—चाहे वे कोई-सी क्यों न हों—**हवा** और **धूप** से अच्छा इलाज कोई नहीं है।

१ फरवरी १९३४

मेरा ख्याल था कि नगर-पालिकावालों को या औरों को इसमें कोई आपत्ति न होगी कि हम फुटपाथ की दीवार पर अपनी गाय बांधने के लिये एक छल्ला लगा दें। मैं एक ऐसा छल्ला लगाना चाहता हूं।

नगर-पालिका के नियमों में इसकी सख्त मनाही है और अगर हमने ऐसी कोई चीज की भी है तो यह एक **बड़ी भूल** थी और मेरा इरादा है कि उसे **फिर कभी न दोहराया जाये**।

१० मार्च १९३४

'क' नामक लड़के को, जो गृह-निर्माण विभाग में काम कर रहा था, दो दिन पहले निकाल दिया गया—चोरी के अपराध में नहीं बल्कि गाड़ी को

[1] एक बैल का नाम।

लापरवाही से चलाने के कारण, जिससे एक कुत्ते को जरा-सी चोट आ गयी थी। क्या मैं उसे उसके भाई के स्थान पर रख सकता हूं?

हर्गिज नहीं।

अगर आप स्वीकृति देने की कृपा करें, यह केवल एक ही दिन के लिये है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। वह बड़ा अच्छा काम करता है। मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में रहूंगा।

नहीं, वह बहुत जंगली है। जो लड़का लगभग जान-बूझकर कुत्ते को घायल कर सकता है वह गाय और बछड़े के साथ भी ऐसा ही कर सकता है।

इस लड़के को मेरी आज्ञा से निकाला गया है और उसे आश्रम में काम नहीं दिया जा सकता।

जो मनुष्य पशुओं के साथ क्रूर होता है वह पशु से बदतर है।

२ अप्रैल १९३४

पत्रमाला ५

पत्रमाला ५

[ये पत्र आश्रम में प्रवेश पानेवाले पहले बालकों में से एक के नाम हैं। यह दस वर्ष की उम्र में आश्रम में आया था। युवावस्था से ही उसे संगीत, चित्रकला और काव्य में रस था। बाद में वह श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र में संगीत का अध्यापक बन गया। उसने बारह वर्ष की उम्र में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।]

तुम्हें जो काम करना हो उसे हमेशा खुशी से करो।

आनंद से किया गया काम, अच्छी तरह किया गया काम होता है।

१४ मार्च १९३२

जब तुम्हारे अंदर कोई कामना होती है तो तुम, जिस वस्तु की कामना की जाती है उसके शासन में रहते हो। वह तुम्हारे मन और तुम्हारे प्राण पर अधिकार कर लेती है और तुम उसके दास बन जाते हो। अगर तुम्हें भोजन के लिये लालच है तो तुम भोजन के स्वामी नहीं रहते, भोजन तुम्हारा स्वामी बन जाता है।

२२ अगस्त १९३२

मेरी प्यारी मां,

आज जब मैं 'क' के साथ अपने संगीत-पाठ के लिये गया तो मुझे बेचैनी का अनुभव हुआ। मुझे यह भी लगा कि वह मुझसे बहुत खुश नहीं है। उस समय मेरे अंदर एक दुर्भावना-सी थी। मुझे यह बेचैनी क्यों हुई? वहां से घर आकर मैं थक गया और कुछ भी करने में रस न रहा। अब मुझे ऐसा लगता है कि जो अच्छी चीजें मेरे अंदर विकसित हो रही थीं वे संगीत की कक्षा के बाद टूट गयीं, टुकड़े-टुकड़े हो गयीं। क्या यह सच है?

ये सभी चीजें—यह बेचैनी, यह थकान, प्रगति के टूटने के संस्कार—ये सब चीजें प्राण से आती हैं जो विद्रोह करता है क्योंकि उसकी कामनाओं और पसंदों की संतुष्टि नहीं हुई। इन सबमें कोई सच्ची वास्तविकता नहीं है।

२ अप्रैल १९३३

हे मां,

गड़बड़ अभीतक गायब नहीं हुई है। मैं पहले से भी ज्यादा बुरी हालत में हूं। मेरे मन में कुछ खराबी है। और मुझे हर जगह बुरा लगता है। बतलाइये मैं क्या करूं।

किसी और चीज के बारे में सोचो। अपने-आपको व्यस्त रखो; कुछ न करते हुए अपने-आपको आलसी बनाकर न रखो।

१८ दिसंबर १९३३

प्यारी, प्यारी मां;

मैं अपनी हर एक गतिविधि में आपका स्पर्श अनुभव करना चाहता हूं, मैं आपकी उपस्थिति को हर जगह अनुभव करना चाहता हूं।

मां, मेरी प्रार्थना स्वीकार करो।

मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहती हूं मेरे बालक, इसलिये यह केवल संभव ही नहीं, बहुत आसान है कि मेरी उपस्थिति का सतत अनुभव किया जाये।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

६ मार्च १९३४

मां, ओ मां,

क्या मैंने कोई गलती की है? कृपया मेरी बात का उत्तर दीजिये। अगर मैंने कोई भूल की है तो मुझे क्षमा कीजिये। क्या आप मुझसे नाराज हैं? मां, मुझे अपना बना लीजिये।

यह प्रश्न ही क्यों? तुमने कोई भूल नहीं की है और मैं तुमसे जरा भी नाराज नहीं हूं। क्या आज रात को मैं बहुत गंभीर दिखायी दे रही थी? अगर ऐसा है तो उसका कारण यह है कि मैं इस गरीब दुनिया की बेवकूफी और अंधेपन के बारे में सोच रही थी, लेकिन निश्चय ही उसमें तुम्हारे साथ संबंध रखनेवाली कोई बात न थी।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

९ मार्च १९३४

मेरी नन्हीं मां,

कल मैंने आपसे कहा था कि 'हमने' एक लिफाफे पर चित्रकारी की थी। इसमें 'हम' का मतलब है मैं और आप। मुझे लगता है कि मैं काम नहीं करता इसलिये मैं 'हम' शब्द का प्रयोग करता हूं। मैं आपका बालक हूं।

यह **सचमुच अच्छी** बात है और मैं **बहुत खुश** हूं। हां, मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहती हूं, और अधिक विशेष रूप से तब जब तुम अपनी चित्रकला या संगीत में लगे होते हो। क्या तुम्हें पता है कि तुम बहुत प्रगति कर रहे हो? मुझे वे लिफाफे पसंद हैं **जिन्हें हम दोनों मिलकर चित्रित कर रहे हैं** और यह एक और प्रमाण है इस बात का कि हम मिलकर कर रहे हैं क्योंकि वे प्रायः हमेशा ठीक वैसे होते हैं जैसे मैं चाहती थी। आज सवेरे तुमने जो छोटा-सा लिफाफा भेजा है वह बहुत सुंदर है और रंगों का चुनाव भी बढ़िया है।

सप्रेम,
तुम्हारी नन्हीं मां।

१५ मार्च १९३४

मेरी मां,

मैं जगत् का गंवारू सुख नहीं चाहता। मुझे अपने हृदय में ले लो, मुझे अपनी भुजाओं में ले लो।

हां, मैं तुम्हें अपनी भुजाओं में लेती हूं और अपने हृदय में झुलाती हूं ताकि तुम सच्चा सुख और अमिश्रित शांति पाओ।

तुम्हारी नन्हीं मां की ओर से प्रेम, जो सदा तुम्हारे साथ रहती हैं।

१५ मार्च १९३४

मेरी नन्हीं मां;

शांति, शांति, मुझे अपनी अमिश्रित शांति प्रदान करो और मुझे तुम अपने बारे में सचेतन बनाओ।

शांति तुम्हारे साथ रहे, मेरे बालक, निश्चिंति और मेरे प्रेम पर विश्वास की शांति, जो तुम्हें कभी नहीं छोड़ती।

तुम्हारी मां।

१६ मार्च १९३४

मेरी नन्हीं मां,

यह कठिनाई आती ही क्यों है ? क्या मैं अपने-आपको उसकी ओर खोलता हूं या कोई और बात है ? मां, तुम्हारे इतने निकट आ जाने के बाद भी यह क्यों आती है ?

मैं तुम्हें जो लिखती या कहती हूं उसके बारे में तुम्हें औरों को न बतलाना चाहिये क्योंकि वे ईर्ष्या करने लगते हैं और उनकी ईर्ष्या एक बुरा वातावरण बना देती है जो तुम्हारे ऊपर आ गिरता है और कठिनाई को तुम्हारे लिये वापिस ले आता है। चूंकि तुम बोले थे इसलिये तुमने अपने-आपको खोल दिया और उसे ग्रहण कर लिया, शायद इस बारे में तुम्हारे अभिज्ञ हुए बिना ही।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

१७ मार्च १९३४

मेरी प्यारी मां,

मेरा हृदय तुम्हारी चरणों की ओर दौड़ना चाहता है और अपने-आपको तुम्हारे अंदर खो देना चाहता है। मैं यही चाहता हूं, लेकिन क्या मैंने यह कर लिया है ? मैं तुम्हारे हृदय के निकट होना चाहता हूं, मैं चाहता हूं . . . पर क्या यह संभव है ? मुझे पता नहीं।

मुझे शांत करो, मुझे अपनी दिव्य उपस्थिति का रस प्रदान करो।

हां, मेरे प्यारे बच्चे, यह पूरी तरह संभव है और चूंकि तुम सचाई के साथ यह चाहते हो इसलिये ऐसा हो जायेगा। तुम अपने-आपको हमेशा मेरे हृदय के निकट, मेरी भुजाओं में झूलते हुए अनुभव करोगे। और शांति तुम्हारी सत्ता को भर देगी और तुम्हें मजबूत और आनंदपूर्ण बनायेगी।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

२९ मार्च १९३४

मधुर मां,

मैं बल, इच्छा और ऊर्जा-विहीन अनुभव कर रहा हूं। मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूं। यह अवस्था जानी चाहिये, लेकिन मैं नहीं जानता कि कैसे। मेरे अंदर साहस नहीं है।

अपने-आपको कष्ट न दो। यह पिछले कुछ दिनों की बीमारी का परिणाम है—यह

चला जायेगा। तुम्हें अच्छी तरह और नियमित रूप से खाना चाहिये और अच्छी तरह सोना भी चाहिये। ख्याल रखो कि बहुत देर में न सोओ।

बहुत प्रेम के साथ।

३० मार्च १९३४

मेरे प्यारे नन्हें बालक,

मैं तुम्हारा भला-सा पत्र पाकर बहुत खुश हुई। तुम्हें यह जानना चाहिये कि मैं तुम्हारा भला और **केवल तुम्हारा भला** ही चाहती हूं। मैं तुम्हें एक मजबूत और सचेतन आदमी बनाना चाहती हूं, जो अपना स्वामी हो—यानी जो अपनी निम्न प्रकृति पर पूरा अधिकार रखता हो और अगर उसमें यह अभीप्सा हो तो सच्चा योगी बनने योग्य है। और जैसे-जैसे यह आदमी अपनी सच्ची सत्ता को अधिकाधिक चरितार्थ करता जायेगा वैसे-वैसे वह मेरा अतिप्रिय बालक बनता जायेगा।

इसी कारण, अभी जो इच्छा प्रकट हो रही है, जो निम्न प्रकृति की इच्छा है, मैं उसकी सनकों को संतुष्ट नहीं कर सकती क्योंकि यह बुरी-से-बुरी चीज होगी जो मैं तुम्हारे लिये कर सकती हूं।

सच्चा प्रेम वह है जो, और सब छोड़कर, अपने प्रेम-पात्र के लिये उसका उच्चतम शुभ चाहता है। यही प्रेम मेरे अंदर तुम्हारे लिये है और मैं इसी को रखना चाहती हूं।

तुम्हारी मां।

६ अप्रैल १९३४

मेरी मधुर मां,

शांति सदा-सर्वदा मेरे साथ रहे।

शांति, शांति तुम्हारे हृदय में और तुम्हारे प्राण में।

हां, शांति, ज्योति, शक्ति और आनंद हमेशा तुम्हारे साथ उस चेतना में हैं जो निरंतर तुम्हारे पास रहती है और मेरे प्रेम की शुभ-चिंता को लाती है।

९ अप्रैल १९३४

मेरे प्रिय बालक,

हां, तुम प्रकाश के बालक हो और हमेशा अधिकाधिक रहोगे। तुम्हारे अंदर से किसी भी अंधकार को प्रकट न होने दिया जाये।

१२ अप्रैल १९३४

प्यारे नन्हें बालक,

चित्र अच्छे हैं। वे जापानी चित्रों जैसे हैं। रही बात उस 'लोक' की जहां से वे आते हैं, तो निश्चय ही वे सूक्ष्म भौतिक से आते हैं जहां धरती पर चरितार्थ सभी कलाकृतियों की धारणाओं की स्मृति संचित है।

बहुत स्नेह के साथ तुम्हारी।

१६ अप्रैल १९३४

मां,

मैं शक्तिहीन जीवन नहीं चाहता।

बहुत अच्छा—तब तुम्हें शक्ति अर्जित करनी चाहिये, और आखिर यह इतना कठिन है भी नहीं, खास तौर पर यहां जहां तुम मानों शक्ति के सागर में नहाते हो। तुम्हें केवल खुलना और ग्रहण करना है।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

१७ अप्रैल १९३४

मधुर मां,

मुझे शांति, ऊर्जा और प्रेरणा दो।

शाश्वत स्रोत से पीना सीखो; उसमें सब कुछ है।

मेरे प्रेम सहित।

२१ अप्रैल १९३४

मेरे बालक, मेरे बालक इतना अधिक दुःख क्यों? क्या इसलिये कि किसीने, जिसे तुमने अपनी मैत्री दी थी, उसने ऐसे कारणों से अपने-आपको खींच लिया है जिन्हें वह बहुत गंभीर समझता है?

लेकिन क्या अब भी तुम्हें अपनी मां की मैत्री प्राप्त नहीं है? और साथ ही उसका समस्त प्रेम, तुम्हारे लिये उसकी समस्त शुभ-चिंता?

नहीं, सब कुछ दुःखमय और अंधकारपूर्ण नहीं है, न तो पेड़-पौधे, न आकाश और न यह सागर। हर चीज दिव्य उपस्थिति से भरी हुई है और उसके बारे में तुम्हें

बतलाने के लिये बहुत खुश होगी। अपने बचकाने अवसाद को झाड़ फेंको और अपने हृदय में उदित होते हुए सूर्य का चिंतन करो!

२८ अप्रैल १९३४

मां,

आप मुझसे जरा भी प्रेम नहीं करतीं, क्या यही तरीका है अपने बालक से प्रेम करने का?

मेरे बालक,

निश्चय ही मैं तुमसे उस तरह प्रेम नहीं करती जिसे तुम प्रेम समझते हो और मैं देख सकती हूं कि चीज अन्यथा कैसे हो सकती है। पहले तुम्हें दिव्य चेतना का अनुभव करना होगा—उसके बाद ही तुम जान सकोगे कि सच्चा प्रेम क्या है।

३० अप्रैल १९३४

मेरी मधुर मां,

मानव संपर्क ने मुझे बहुत हानि पहुंचायी है, लेकिन मैं इस आदत को नहीं छोड़ सकता। मैंने सभी मानव संपर्कों को समाप्त करने के लिये बहुत प्रयास किये हैं, लेकिन मैं कर नहीं पाता। मुझे पता नहीं कि क्या करना चाहिये।

मां, मैं केवल तुम्हारी ओर ही खुलूं और किसीकी ओर नहीं, सदा, सर्वदा। मुझे धीरज प्रदान करो।

मुझे नहीं लगता कि तुम्हारे लिये पूरी तरह निवृत्त होकर और केवल अपनी ही ओर मुड़ा हुआ जीवन अच्छा होगा। सारी बात तो यह है कि अपने लिये अच्छे संबंध चुनो। ऐसे लोगों के साथ संबंध स्थापित करो जिनका संपर्क **मेरी उपस्थिति को ढक नहीं देता**। यह एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात है जिसे कभी भूलना न चाहिये। वह सब जो तुम्हें विचार और भावना में मुझसे दूर ले जाता है, बुरा है। वह सब जो तुम्हें मेरे अधिक निकट लाता है, मेरी उपस्थिति का अनुभव और आनंद देता है, अच्छा है। तुम्हें वस्तुओं को इस नियम के प्रकाश में जांचना चाहिये। तुम देखोगे कि यह तुम्हारी बहुत-सी भूलों से रक्षा करेगा।

मैं तुम्हें बहुत-सा धीरज और अपना समस्त प्रेम भेजती हूं।

२ मई १९३४

मेरी मधुर मां,
तुम सब जगह हो, मेरे अंदर हमेशा बनी रहो।

मेरे प्यारे बालक,
तुम हमेशा मेरी भुजाओं में रहते हो और मैं तुम्हें सुख-सुविधा देने, तुम्हारी रक्षा करने, तुम्हें बल और प्रकाश देने के लिये अपने हृदय के पास रखती हूं। मैं तुम्हें कभी एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ती और मुझे विश्वास है कि अगर तुम जरा सावधान रहो तो तुम स्पष्ट रूप से अपने कंधों के चारों ओर मेरी भुजाओं की ऊष्मा का अनुभव कर सकोगे।
तुम्हारी मां।

४ मई १९३४

मेरे प्यारे बालक,
मुझे लगता है कि तुम बहुधा दुःखी और उदास रहते हो क्योंकि तुम्हारी स्नायुएं बहुत मजबूत नहीं हैं। तुम्हें ज्यादा खाना चाहिये, अधिक सोना चाहिये और खुली हवा में कसरत करनी चाहिये, इत्यादि।
सस्नेह।

९ मई १९३४

शांति, शांति मेरे नन्हें बालक, आंतरिक नीरवता और बाह्य स्थिरता की मधुर शांति। वह सदा तेरे साथ रहे।
सस्नेह।

१४ मई १९३४

देखो मेरे बालक, दुर्भाग्य की बात यह है कि तुम स्वयं अपने साथ बहुत ज्यादा व्यस्त रहते हो। तुम्हारी अवस्था में मैं हमेशा ऐकांतिक रूप से अपनी पढ़ाई-लिखाई में लगी रहती थी—चीजों को खोजने, सीखने, समझने और जानने में लगी रहती थी। इसीमें मुझे रस था और यही मेरा आवेश था। मेरी मां जो हमसे—मुझसे और मेरे भाई से—बहुत ज्यादा प्यार करती थी, हमें कभी बदमिजाज, असंतुष्ट या आलसी न होने देती थी। अगर हम उससे किसी एक या दूसरी चीज की शिकायत करने जाते, या यह कहते कि हम असंतुष्ट हैं तो वह हमारा मजाक उड़ाती या डांटती और कहती,

''यह क्या मूर्खता है ? चलो, हास्यास्पद न बनो। चलो, जल्दी करो ! अपने काम में जा लगो, और इसकी परवाह न करो कि तुम खुशमिजाज हो या बदमिजाज ! इसका कोई महत्त्व नहीं है।''

मेरी मां की बात बिल्कुल ठीक थी और मैं जो भी काम किया जाये, उसपर एकाग्र होने के द्वारा अपने-आपको भूल जाने की आवश्यकता और अनुशासन सिखाने के लिये उनकी बहुत कृतज्ञ हूं।

मैंने तुमसे यह बात इसलिये कही है क्योंकि तुम जिस चिंता की बात करते हो वह इस तथ्य से आती है कि तुम अपने बारे में बहुत ज्यादा चिंतित रहते हो। तुम्हारे लिये कहीं अधिक अच्छा होगा कि तुम ज्यादा ध्यान इस ओर दो कि तुम क्या कर रहे हो और उसे ज्यादा अच्छी तरह करो (चित्रकला या संगीत), अपने मन को विकसित करो, जो अभीतक बहुत अधिक असंस्कृत है, और ज्ञान के तत्त्वों को सीखो जो मनुष्य के लिये अनिवार्य हैं—यदि वह अज्ञानी और असंस्कृत नहीं रहना चाहता।

अगर तुम नियमित रूप से रोज आठ-नौ घंटे काम करोगे तो तुम्हें भूख लगेगी और तुम अच्छी तरह खाओगे, तुम्हें नींद आयेगी और तुम शांति से सोओगे और तुम्हारे पास यह सोचने के लिये समय न होगा कि तुम खुशमिजाज हो या बदमिजाज।

मैं ये सब चीजें तुमसे अपने पूरे स्नेह के साथ कह रही हूं और आशा करती हूं कि तुम इन्हें समझोगे।

तुम्हारी मां जो तुमसे प्यार करती है।

१५ मई १९३४

मेरे प्यारे नन्हें बालक,

मैं सदा तुम्हें अपनी शांति में लपेटे रहती हूं: तुम्हें उसे बनाये रखना सीखना चाहिये। मैं सदा तुम्हारे हृदय में रहती हूं: तुम्हें मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन होना चाहिये, उस शक्ति को ग्रहण करना और उसका उपयोग करना चाहिये जिसे मैं तुम्हारे अंदर उंडेल रही हूं ताकि तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पाने के योग्य बन जाओ।

प्रेम।

२१ मई १९३४

मेरे प्रिय बालक,

इस आनंद को, इस विश्राम को, विजय के इस आश्वासन को सावधानी से बनाये रखो। ये दुनिया भर की समस्त धन-संपदा से अधिक मूल्यवान् हैं और ये तुम्हें मेरे बहुत नजदीक रखेंगी।

तुम्हारी मां का प्यार।

२२ मई १९३४

मेरे प्यारे बालक,

केवल आध्यात्मिक शक्ति में ही यह बल है कि प्राण पर शांति आरोपित कर सके क्योंकि अगर उसपर उससे ज्यादा बड़ी शक्ति द्वारा शांति आरोपित न की जाये तो प्राण उसे कभी स्वीकार न करेगा।

अतः तुम्हें अपने-आपको आध्यात्मिक शक्ति की ओर खोलना और उसे अपने अंदर काम करने देना चाहिये। तब तुम अधिकाधिक सतत शांति और आनंद में निवास करोगे।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

२४ मई १९३४

मेरे प्यारे बालक,

मैं तुम्हें हमेशा अपनी बांहों में लिये रहती हूं, अपने हृदय से चिपकाये रहती हूं और मुझे इस बारे में कोई शंका नहीं है कि अगर तुम जगत् को भूलकर मुझपर एकाग्र होओ तो तुम उसके बारे में अभिज्ञ हो जाओगे। अपने विचारों को मेरी ओर मोड़कर तुम अपने-आपको मेरे अधिकाधिक निकटतर अनुभव करोगे और शांति तुम्हारे हृदय में निवास करने के लिये आ जायेगी।

प्रेम।

२५ मई १९३४

मेरे प्यारे नन्हें बालक,

आंतरिक तादात्म्य द्वारा ही सच्ची निकटता आ सकती है। मैं समस्त प्रेम के साथ सदा तुम्हारे साथ रहती हूं।

तुम्हारी मां।

२ जून १९३४

मेरे प्यारे बालक,

जब तुम यह समझ जाओगे कि विद्रोह करना सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ चीज है और जब तुम विद्रोह करने की इस बुरी आदत को छोड़ दोगे तब तुम देखोगे कि तुम्हारे दुःख-दर्द भी चले जायेंगे और उनके स्थान पर आयेगा अपरिवर्तित सुख।

अपनी समस्त सत्ता के साथ, मैं तुम्हारे लिये यह प्रगति और यह रूपांतर चाहती हूं।

सप्रेम।

१० जून १९३४

मेरी मधुर मां,

मैं वही बनूंगा जो तुम मुझे बनाना चाहती हो। प्यारी मां, मेरी इस बचकानी प्रार्थना को स्वीकार करो।

मैं तुम्हारे लिये चाहती हूं चेतना, ज्ञान, कलात्मक क्षमता, शांति और पूर्ण समता में आत्म-संयम और ऐसा सुख जो आध्यात्मिक उपलब्धि का परिणाम होता है। क्या यह बहुत अधिक महान् और विस्तृत कार्यक्रम है ?

तुम्हारी मां के आशीर्वाद के साथ।

१२ जून १९३४

मां,

मैं अनुशासन चाहता हूं।

यह बहुत अच्छी बात है और मैं इसे स्वीकार करती हूं। भीतरी और बाहरी अनुशासन के बिना तुम जीवन में कुछ भी नहीं पा सकते, न तो आध्यात्मिक तौर पर न जड़-भौतिक तौर पर। वे सब जो किसी सुंदर या उपयोगी चीज का सृजन करने में सफल हुए हैं, वे ऐसे लोग थे जो अपने-आपको अनुशासित करना जानते थे।

समस्त प्रेम के साथ सदा तुम्हारे संग।

२३ जून १९३४

हां, मेरे प्यारे बच्चे,

मैं तुम्हारी सच्ची मां हूं जो तुम्हारे अंदर की सच्ची सत्ता को जन्म देगी, ऐसी सत्ता को जो मुक्त, शांत, बलवान् और परिस्थितियों से अछूती सदा सुखी रहती है।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

२५ जुलाई १९३४

मेरी प्यारी मां,

अपने बालक को ऊर्जा और शक्ति प्रदान करो। मुझे अपने हृदय में ले लो मां, मैं तुम्हारे अंदर निवास करूं।

मेरे प्यारे बालक,

मैं हमेशा तुम्हें अपने हृदय में लिये रहती हूं और तुम ऊर्जा में स्नान करते हो, स्थिर और विश्वासपूर्ण अभीप्सा द्वारा तुम उसे ग्रहण करोगे। मेरा समस्त प्रेम तुम्हारे साथ है।

मैं आशा करती हूं कि तुम मेरे पत्र किसी को नहीं दिखाते। उन्हें अपने तक ही रखना अच्छा है अन्यथा, अगर तुम औरों को दिखलाओ तो मैं उनमें जो शक्ति रखती हूं वह उड़ जाती है।

११ अगस्त १९३४

मां, मेरी प्यारी मां,

तुम जानती हो कि मुझे क्या चाहिये, मुझे अपने हृदय में ले लो, मुझे घेर लो।

मेरे प्यारे बालक,

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम्हें क्या चाहिये—वह है मेरे प्रेम और मेरे संरक्षण से घिरा रहना। सचमुच मेरा प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है, तुम्हारे चारों ओर है परंतु तुम्हें अपनी ओर से, अपने-आपको उसकी ओर खोलना चाहिये, उसे तुम्हें अपने-आपको लपेट लेने और सहायता करने देना चाहिये।

१६ अगस्त १९३४

मेरी प्यारी मां,

मैं आज शाम को जो लिफाफा भेज रहा हूं, मैं उसपर बने सिंह के जैसा होना चाहता हूं।

मेरे प्यारे छोटे-से सिंह,

मैं तुम्हारे हृदय में हूं ताकि तुम खुश रहो, तुम्हारे सिर में हूं ताकि तुम शांत रहो और तुम्हारे हाथ में हूं ताकि उसमें कौशल आये।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

२१ अगस्त १९३४

मेरे प्यारे नन्हें बालक,

तुम्हारे सिंह बहुत सुंदर हैं। वे अपने बल में कितने स्थिर हैं। बलवान् सत्ता हमेशा स्थिर होती है। दुर्बलता ही चंचलता का कारण होती है। मैं तुम्हें (अपने लिफाफे पर, परंतु वास्तव में भी) वह विश्राम भेज रही हूं जो एकाग्र ऊर्जा से आता है।

विश्वास रखो कि तुम मजबूत और अचंचल बनोगे, पूर्ण उपलब्धि और उसे प्राप्त करने के लिये भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता पर श्रद्धा रखो। चेतना और शक्ति हमेशा तुम्हारे साथ हैं, साथ ही मेरा समस्त प्रेम भी।

तुम्हारी मां।

२१. अगस्त १९३४

मेरी प्यारी मां,

मुझे शुद्ध करो, छायाओं को दूर करो, मैं अब कभी विद्रोह न करूंगा।

तुम्हें मेरे स्थायी प्रेम में विश्वास को कभी न खोना चाहिये।

३० अगस्त १९३४

मां,

मेरे सिर में दर्द है। मैं बहुत थका हुआ हूं।

मेरे बालक, मेरा समस्त प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है; उसे धकेल न दो।

१ सितंबर १९३४

मेरे प्यारे बालक,

मुझे भोजनालय से सूचना मिली है कि तुमने कल शाम को और आज सारे दिन कुछ भी नहीं खाया। क्यों ? अगर तुम बीमार हो तो तुम्हारी देख-रेख होनी चाहिये। मैं डॉक्टर को तुम्हारे पास भेज दूंगी। लेकिन अगर तुम बीमार नहीं हो तो तुम्हें खाना चाहिये। अगर तुम नियमित रूप से नहीं खाओगे तो तुम्हारा मस्तिष्क क्षीण हो जायेगा और तुम बुद्धि खो बैठोगे, तब ?

अगर तुम नियमित रूप से नहीं खाते हो तो मुझे कष्ट होता है। क्या तुम अपनी मां को कष्ट देना चाहते हो जो तुमसे प्यार करती और केवल तुम्हारा भला चाहती है ?

सितंबर १९३४

मेरी प्यारी मां,

आज से मैं अनियमित नहीं रहूंगा। तुम भली-भांति जानती हो कि मैं बीमार नहीं हूं। तुम जानती हो कि बादल छाया हुआ था। अब मैं भोजनालय जा रहा हूं। मेरी मां, मैं अच्छा बनना चाहता हूं। अब सब कुछ चला गया है। मैं तुम्हारा नन्हा बालक बनना चाहता हूं।

मेरे प्यारे बालक,

तुम बहुत अच्छे बच्चे हो, और मैं यह जानकर बहुत खुश हूं कि तुमने कल शाम को भोजन कर लिया था और अब सब बादल छंट गये हैं। अब तुम्हें उन्हें कभी लौटकर न आने देना चाहिये और उसके लिये सबसे अच्छा तरीका यह है कि हमेशा मेरी भुजाओं में झूलते रहो, मेरे प्रेम की रक्षा में रहो जो तुम्हें कभी नहीं छोड़ता।

७ सितंबर १९३४

मेरी प्यारी मां,

क्या मैंने कोई ऐसी चीज की है जिससे तुम नाराज हो?

मेरा सिर दर्द कर रहा है। मैं थका हुआ अनुभव करता हूं।

तुम बिल्कुल गलती पर हो। मैं तुमसे बिल्कुल नाराज नहीं हूं। बस मुझे चिंता है क्योंकि तुम्हें हमेशा सिर-दर्द रहता है, तुम थके रहते हो।

मैं चाहती हूं कि यह सब चला जाये, मैं चाहती हूं कि तुम पूरी तरह स्वस्थ रहो। उसके लिये तुम्हें एक भौतिक अनुशासन पालना होगा। नियमित रूप से सोओ, नियमित रूप से खाओ, नियमित रूप से कसरत करो इत्यादि, इत्यादि। और दुःख की बात यह है कि तुम समस्त अनुशासन से इंकार करते हो। इससे मेरा काम बहुत कठिन हो जाता है।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

११ सितंबर १९३४

मेरी अधिक-से-अधिक प्यारी मां,

मैं बहुत थक गया हूं, मेरे सिर में दर्द हो रहा है। मां, मैं क्या करूं?

मेरे प्यारे बालक,

तुम जानते हो कि मेरा प्रेम सदा तुम्हारे साथ रहता है और मेरी इच्छा है कि तुम

स्वस्थ हो जाओ। तुम्हें स्वास्थ्य देने के लिये मेरी शक्ति तुम्हारे साथ रहती है। मैं तुम्हें अपनी भुजाओं में लेती हूं, मैं तुम्हें अपने हृदय से लगाती हूं।

२० सितंबर १९३४

मेरे प्यारे बालक,

मैं नहीं चाहती कि तुम बीमार होओ और तुम्हें रोग-मुक्त करने के लिये मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं—लेकिन तुम्हें भी तो रोग-मुक्त होने की इच्छा करनी चाहिये। अपने-आपको कष्ट न दो, हमेशा मेरी भुजाओं में चिपके रहो ताकि मेरे प्रेम और शक्ति को पा सको।

२३ सितंबर १९३४

मेरे प्यारे नन्हें बच्चे,

मैं तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूं कि अहंकार, दर्प, ईर्ष्या को गायब हो जाना चाहिये। सचमुच ये भद्दी, निकृष्ट और अज्ञानभरी चीजें हैं जो समस्त प्रगति को रोक देती हैं।

इन सब चीजों पर विजय पाने के लिये मेरी शक्ति तुम्हारे साथ है। और मेरा प्रेम तुम्हें कभी नहीं छोड़ता।

२५ सितंबर १९३४

मेरी प्यारी मां,

मैं दुःखी नहीं हूं। यह सब मिथ्यात्व है, मां, अपने छोटे-से बालक के साथ रहो।

मेरे प्यारे बालक,

हमेशा, हमेशा मैं तुम्हारे साथ रहती हूं। तुम जितने अधिक अचंचल-स्थिर और सुखी रहोगे, उतना ही अधिक इसका अनुभव कर सकोगे।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

३ अक्तूबर १९३४

मेरी नन्हीं मां,

मुझे शांति दो। काम में आनंद दो। मुझे अपना यंत्र बना लो।

मेरे प्यारे बालक,

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि तुम मेरे यंत्र बनना चाहते हो। मेरा यंत्र होने के लिये तुम्हें नियमित, ऊर्जा से भरा, साहसी, सहिष्णु और हमेशा खुशमिजाज होना चाहिये। मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि तुम ये गुण प्राप्त कर सकते हो।

हमेशा तुम्हारे साथ।

२५ अक्तूबर १९३४

मेरी नन्हीं मां,

मैं शांति चाहता हूं। मुझे लगता है कि सब कुछ अशांत है। मां, मुझे शांति दो।

मेरे बालक,

मैं तुम्हें हमेशा शांति और शक्ति में लपेटे रहती हूं, लेकिन बहुधा तुम अपने-आपको बंद रखते हो और मैं तुम्हें जो देती हूं उसे लेने से इंकार करते हो।

अगर तुम मेरे ऊपर विश्वास तक नहीं करते तो तुम मेरी सहायता का अनुभव कैसे करोगे और उसका लाभ कैसे पाओगे ? फिर भी मेरा प्रेम सदा तुम्हारे साथ है।

१ नवंबर १९३४

मेरी प्यारी, प्यारी मां,

क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी ? मुझे अपनी भुजाओं में ले लो।

मेरे बालक,

निश्चय ही मैं तुम्हें क्षमा करती हूं लेकिन अपनी ओर से तुम्हें भी इन बुरे विचारों को मन से बुहार फेंकना चाहिये जो तुम्हारे लिये हानिकर हैं।

मेरा प्रेम तुम्हारे साथ है।

२ नवंबर १९३४

मेरी प्यारी नन्हीं मां,

मैंने जो दोष किये हैं उन्हें क्षमा करो। मुझे शांति दो। हमेशा मेरे हृदय में निवास करो।

हां मेरे बालक, मैं तुम्हें क्षमा करती हूं; लेकिन मैं कितना अधिक चाहती हूं कि तुम अधिक अचंचल, अधिक समझदार, अधिक अध्ययनशील बनो !

क्या तुम्हें नहीं लगता कि अब समय आ गया है जब तुम्हें ये गुण विकसित करने चाहियें, अगर तुम जीवन में कुछ भी करना चाहो तो ये एकदम से अनिवार्य हैं ?

५ दिसंबर १९३४

प्यारी, प्यारी मां,

सदा मेरे संग रहो, तुम सब कुछ जानती हो।

हां, मैं सब कुछ जानती हूं और इसीलिये मुझे मालूम है कि मेरा नन्हा बच्चा हमेशा समझदार नहीं होता और इसी कारण उसके सिर में और पेट में दर्द रहता है।

२२ दिसंबर १९३४

मेरी प्यारी मां,

मैं हमेशा तुम्हें अपने नजदीक अनुभव करना चाहता हूं, मुझे शांति चाहिये।

मेरे नन्हें बालक,

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं, तुम्हारे लिये शांति, प्रशांति, अचंचलता और शक्ति लाती हूं। लेकिन मेरी उपस्थिति को अनुभव करने के लिये तुम जानते ही हो कि तुम्हें क्या करना चाहिये और विशेष रूप से क्या **नहीं** करना चाहिये।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

१ फरवरी १९३५

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हारे सिर-दर्द के लिये सबसे अच्छी चीज है बहुत-सी कसरत करना, उदाहरण के लिये बागबानी करना।

२५ फरवरी १९३५

मेरी मधुर मां,

मेरे विचारों को अपने-आपसे भर दो। हमेशा अपने नन्हें बालक के साथ रहो। मुझे गहरी और स्थायी शांति प्रदान करो।

मेरे प्यारे बच्चे,

मैं तुम्हारे हृदय में शांति रखती हूं; लेकिन उसके बारे में सचेतन होने के लिये, मन से मेरी ओर मुड़कर जितनी अधिक बार हो सके यह दोहराओ, "तुमने मेरे हृदय में शांति स्थापित की है; मुझे उसकी उपस्थिति के बारे में अभिज्ञ बनाओ।"

मेरे समस्त प्रेम सहित।

२७ फरवरी १९३५

मेरे प्यारे बालक,

यह न भूलो कि **मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं** और केवल वही करो जो तुम लज्जित हुए बिना मेरे सामने कर सकते हो। मेरा मतलब यह है कि ऐसी कोई चीज **कभी न करो** जिसे तुम मेरी भौतिक उपस्थिति में करने का साहस न करोगे, क्योंकि मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

प्रेम।

६ मार्च १९३५

मेरी मधुर मां,

पता नहीं मेरे अंदर कोई चीज दुःखी क्यों है। जब मैं बहुत खुश होता हूं सचमुच खुश होता हूं तब भी यह भाग दुःखी रहता है। मां, मेरे अंदर कौन-सा भाग ऐसा है ? हृदय, प्राण या कोई एकदम नगण्य-सा और सतही भाग ?

मेरे प्यारे बालक,

वस्तुतः यह कोई बहुत ही सतही चीज है फिर भी इसे ठीक होना चाहिये। तुम्हारा शरीर अपने-आपको बहुत मजबूत अनुभव नहीं करता और दुःखी रहता है क्योंकि उसमें स्वास्थ्य का समुचित संतुलन नहीं है। सबसे अच्छा उपचार है खुली हवा में कसरत और प्रचुर भोजन।

१६ मार्च १९३५

मेरी प्यारी मां,

पता नहीं, मैं अपनी सारी हंसी-खुशी और शांति क्यों खो बैठा हूं। पता नहीं वह मेरे हृदय में कब लौटकर आयेगी। हे मेरी मधुर मां, मैं क्या करूं ?

मेरे प्यारे बालक,

जब किसीका ध्यान हमेशा अपनी ओर लगा रहता है तो वह कभी सुखी नहीं

रहता। जब कोई हर गुजरते हुए आवेग को अपने ऊपर शासन करने देता है तो वह कभी शांत नहीं रहता।

काम और आत्म-संयम के द्वारा ही तुम सुख और शांति पा सकते हो।

२३ मार्च १९३५

मधुर मां,

मैं सुखी होना चाहता हूं। पर कैसे? काम के बीच दुःख आ जाता है और मैं उसे भूल नहीं सकता। मेरी प्यारी मां, हमेशा मेरे साथ रहो।

मेरे प्यारे बालक,

यह बिना कारण का दुःख काम करते समय भी आ सकता है परंतु बिना काम के तो अवस्था और भी खराब होगी। काम में ही तुम संतुलन और आनंद पा सकते हो।

तुम्हारी सहायता करने और तुम्हें सहारा देने के लिये मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहती हूं।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

१२ जून १९३५

मेरी मधुर मां,

मुझे बहुत थकान लगती है, मेरे अंदर कोई भाग है जो सुखी नहीं है, पता नहीं वह मेरे अंदर है या मेरे बाहर; कोई चीज अपने-आपको बिल्कुल हारा हुआ और निष्प्राण अनुभव करती है। मेरी मां, तुम तो सब कुछ जानती हो, क्या तुम मुझे बतलाओगी कि यह क्या है?

यह तुम्हारे प्राण में कोई चीज है जो किसी प्रकार की जरा-सी परेशानी को भी नहीं सह सकती। प्राण के इस भाग को ज्यादा मजबूत और अधिक सहनशील होना सीखना पड़ेगा।

४ अगस्त १९३५

मेरी प्यारी मां,

मैं बहुत थक गया हूं। मेरे सिर में हल्का-सा दर्द भी है।

मेरे प्यारे बालक,

मुझे तुम्हें यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि यह सिर-दर्द कहां से आता है; मेरा ख्याल है कि तुम जानते हो। केवल तभी जब तुम भौतिक जीवन में पूरी तरह नियमित हो पाओगे, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

६ सितंबर १९३५

मेरी मधुर मां,

तीन दिनों से मैं शाम के समय दुःखी रहता हूं। आज सवेरे भी मैं दुःखी था। मुझे ठीक पता नहीं कि यह क्यों आता है ? दो दिन तो मैंने बहुत आनंद का अनुभव किया लेकिन अब आनंद जा चुका है। ये चीजें कब जायेंगी ?

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हें इन प्रत्यावर्तनों के बारे में चिंता न करनी चाहिये। जब चैत्य सत्ता सतह पर आती है तो वह अपने साथ अपना आनंद लेकर आती है; लेकिन जब मन और प्राण ऊपर आते हैं तो ऐसा लगता है कि आनंद पीछे हट गया, यद्यपि वह हमेशा, पीछे, मौजूद रहता है ताकि फिर से अभिव्यक्त होने के लिये तैयार रहे। लेकिन सबसे बढ़कर, तुम्हें अक्षमता और असफलता के सुझावों पर विश्वास न करना चाहिये; वे एक विरोधी स्रोत से आते हैं और उनपर विश्वास न करना चाहिये। निश्चय ही पथ पर कठिनाइयां हैं लेकिन अध्यवसाय के साथ विजय निश्चित है।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

१६ दिसंबर १९३६

मधुर मां,

तुमने मुझसे कहा है कि मैं प्रगति कर रहा हूं। क्या तुम यह कहकर मुझे सांत्वना देना चाहती थीं ? जब मैं अपने अंदर देखता हूं, आज नहीं, पिछले दो वर्षों से, तो मुझे कुछ नहीं मिलता। कभी-कभी मुझे लगता है, ''ये सब प्रयास किसलिये ? ये बेकार होंगे।'' तुमने मुझसे कहा था कि अपने हृदय को खोलो और सब कुछ ठीक हो जायेगा; लेकिन तुम जानती हो मां, मेरे अंदर कोई चीज नहीं टिकती।

मेरे प्यारे बालक,

नहीं, तुम्हें दिलासा देने के लिये मैंने यह नहीं कहा था कि तुमने प्रगति की है।

प्रगति के बारे में इंकार नहीं किया जा सकता, भले वह प्रत्यक्ष न हो। निश्चय ही योग-मार्ग बहुत कठिन है और तुम्हें तीन चार-वर्षों में ही उसके फल पा लेने की आशा न करनी चाहिये। इसमें इससे बहुत ज्यादा समय लगता है। लेकिन अभी तो तुम छोटे ही हो और तुम्हारे आगे सारा जीवन पड़ा है; तुम्हें अधीर होने की जरूरत नहीं है।

तुम कहते हो कि तुम प्रायः उदास रहते हो। जब प्राणिक सत्ता की कामनाएं पूरी नहीं की जातीं तो वह उदास हो जाती है।

सामान्य जीवन में आदमी को अपनी कामनाएं पूरी करने के लिये संघर्ष करना पड़ता है, यहां तुम्हें ऐसा न करने के लिये संघर्ष करना पड़ता है। वास्तव में, तुम जिस किसी पथ का अनुसरण करो, सफलता उन्हींको मिलती है जो बलवान्, साहसी और सहिष्णु हैं। और तुम जानते हो कि यहां हमारी शक्ति और हमारी सहायता तुम्हें हमेशा प्राप्त रहती हैं, तुम्हें केवल उनका उपयोग करना सीखना होगा।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

२६ जुलाई १९३७

मेरी प्यारी मां,

नहीं, मैं वे सब चीजें नहीं कर सकता। तुमने ऐसा सोचा ही क्यों? क्या कोई विशेष कारण है? क्या तुम मुझे एक बात बतलाओगी : अब तुम मुझसे इतनी दूर क्यों हो?

मेरे प्यारे बालक,

मैं बिल्कुल नहीं जानती कि तुम्हारा मतलब किन 'सब चीजों' से है। मैंने तुमसे जो कहा था वह बस इतना ही था कि अपनी कला की क्षमताओं को विकसित करने के लिये कहीं बाहर की अपेक्षा तुम यहां ज्यादा अच्छी स्थिति में हो। मैंने यह भी कहा था कि अगर तुम शादी करना चाहते हो तो तुम्हें आश्रम छोड़ना पड़ेगा।

लेकिन तुम जानते हो कि मैं कभी किसी को शादी करने की सलाह नहीं देती, यह भयंकर बंधन है।

मैंने कभी नहीं सोचा कि तुम सचमुच शादी करना चाहते हो, लेकिन यह अच्छा है कि कभी-कभी मैं तुम्हें याद दिलाती रहूं कि तुम स्वतंत्र हो और निश्चय तुम्हें ही करना है; बस इतना ही।

मुझे नहीं लगता कि तुम मुझसे दूर हो। मेरे लिये तो तुम हमेशा मेरी भुजाओं में ही रहते हो। अतः अगर तुम्हें लगता है कि तुम मुझसे दूर हो तो यह गलत भाव है जो सत्य के साथ मेल नहीं खाता।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

२८ जुलाई १९३७

मेरी मधुर मां,

तुमने मुझसे कहा था कि जब मैं बजा रहा था तो तुमने दो चीजें देखी थीं, 'गरुड़' और महल तथा नदी। उनका मतलब क्या है ?

महल और नदी तुम्हारे किसी पिछले जन्म के एक मुहूर्त के बिंब थे।

तुम्हारे पीछे पंख फैलाये हुए अचल खड़ा हुआ विशाल पक्षी 'गरुड़' विष्णु का वाहन है। वह सर्प-नाशक है। ऐसा लगता था कि वह तुम्हारी रक्षा करने और तुम्हें प्रेरणा देने के लिये खड़ा था।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

२८ अगस्त १९३७

चंद्रमा आध्यात्मिक ज्योति का प्रतीक है जो अपने मूल में एक और अभिव्यक्ति में अनेक है। चंद्रमा केवल एक है पर चंद्रमा का हर एक बिंब भिन्न है। मैं यही बात काव्यमय रूप में कहना चाहती थी।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

९ सितंबर १९३७

मैं कल जो कहना चाहती थी उसका मतलब यह है कि बहुत संवेदनशील सभी मनुष्य बहुतेरे प्रभावों के प्रति खुले रहते हैं और इसलिये उनके लिये स्थिर होना मुश्किल होता है।

लेकिन विवेक के साथ अच्छे और बुरे प्रभावों को अलग किया जा सकता और बुरों को निरंतर त्यागा जा सकता है।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

१३ सितंबर १९३७

मेरे प्यारे बालक,

मैं तुम्हारी कठिनाई को भली-भांति समझती हूं। यह बहुत सामान्य है और इसका समाधान इच्छा में बहुत-सी सहिष्णुता और धैर्य से ही आ सकता है।

क्योंकि एक ओर तो तुम अपने-आपको भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना और बनते हुए दिव्य जीवन में भाग लेना चाहते हो।

दूसरी ओर तुम सामान्य जीवन के संतोष और प्राण के सुख चाहते हो—यह सोचे

बिना कि ये सुख बहुत संघर्ष और प्रयास द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं और वे हमेशा चिंता और दुःख के साथ गलबहियां किये रहते हैं।

पहले मार्ग पर व्यक्तिगत अक्षमता का कोई प्रश्न ही नहीं होता क्योंकि हमारी सहायता और रक्षा हमेशा साथ होती है। वस्तुतः, तुम्हें अपने-आपको इस सहायता और रक्षा की ओर खोलना और उस विरोधी को जीतने के लिये उनका उपयोग करना सीखना चाहिये जो तुम्हें निचली पशु-चेतना की ओर खींचने की कोशिश कर रहा है।

तुम्हारी मां का प्यार, जो तुम्हें कभी नहीं छोड़ती।

१५ मई १९३८

मेरी मधुर मां,

पिछले दिनों मैंने अनुभव किया कि मैं कदम-कदम करके नीचे जा रहा हूं। ऐसा लगता था कि हर चीज मुझे घेर रही थी, मेरे हृदय को घेर रही थी। मुझे अब भी लग रहा है कि मेरा दम घुट रहा है।

क्या तुम मुझे अपने बिना जीवन का अनुभव करा रही हो, यह देखने के लिये कि मैं इस जीवन को चाहता हूं या नहीं ? मां अगर तुम नहीं जानतीं कि मेरा पथ कौन-सा है, तो कौन जानता है ?

मेरे प्यारे बालक,

मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूं कि तुम्हारे लिये सच्चा जीवन क्या है और तुम्हारी नियति क्या है। लेकिन **तुम्हें** इसके बारे में अभिज्ञ होना चाहिये और उसे समझना चाहिये ताकि तुम उसे पा सको। तुम किस तरह से अपने-आपको नीचे जाते हुए अनुभव करते हो ? क्या तुम्हारे अंदर कामनाएं ज्यादा प्रबल हो रही हैं ? जो कुछ भी हो, तुम हमेशा मेरी सहायता पर निर्भर रह सकते हो। उसे मांगते हुए संकोच न करो।

तुम्हारी मां का प्यार।

२९ मई १९३८

मेरी मधुर मां,

मुझे पूरी तरह से दम घुटता-सा लग रहा है। संघर्ष अधिक भयंकर हो उठा है। मुझे इस तरह कितने दिन तक चलते रहना पड़ेगा ?

मेरे प्यारे बालक,

निराश न होओ और अधीर न बनो, इन चीजों के गायब होने में लंबा समय

लगता है। तुम जानते हो, नहीं जानते क्या कि हमारी शक्ति, हमारी सहायता और हमारे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं?

काम में रस बनाये रखो—यह भी कठिन घड़ियों में से गुजरने में तुम्हारी सहायता करेगा।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

२८ जून १९३८

मां,

आंतरिक अवस्था अच्छी होने की जगह खराब, और अधिक खराब होती जा रही है। तुमने मुझसे धीरज धरने को कहा है, लेकिन वर्तमान अवस्था में मैं पत्थर जैसा होता जा रहा हूं जिसमें ऊर्जा नहीं है, जो जड़ और अधिकाधिक बंद है। मैं तुम्हारे प्रकाश और तुम्हारी शक्ति को अपने चारों ओर अनुभव करता हूं लेकिन मैं उन्हें ग्रहण नहीं कर पाता। मैं यह नहीं पूछ रहा कि मैं क्या करूं—तुमने धीरज धरने के लिये कहा है और मैं धीरज धरूंगा। मैं तुम्हें केवल अपनी अवस्था बतला रहा हूं, और बस।

तुम्हारा मुझे बतलाना ठीक है, मेरे प्यारे बालक, इससे तुम्हें अपने-आपको खोलने में सहायता मिलती है। मैं जानती हूं कि अपने अंदर इस प्रतिरोध को अनुभव करना कष्टकर है, लेकिन इसे जीतने के संकल्प में डटे रहो और वह अचानक टूट जायेगा।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

१० जुलाई १९३८

मेरी मधुर मां,

मैं तुमसे अपनी कविता के बारे में कुछ पूछना चाहता हूं। आजकल वह बंद है, क्या कोई आंतरिक तैयारी हो रही है जो उच्चतर प्रेरणा की प्रतीक्षा में है?

मेरे प्यारे बालक,

हां, मुझे लगता है कि वस्तुतः तुम्हारी कविता इसलिये रुकी है कि तुम अपने-आपको उच्चतर प्रेरणा के लिये तैयार कर सको। तुम उन्हीं छंदों में बार-बार गोल-गोल घूमते चले जा रहे थे। कोई नयी चीज आनी चाहिये थी।

हां, अगर तुम्हें ऐसा लगे कि कोई चीज अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती है तो तुम्हें प्रयास करना चाहिये।

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं, मेरे प्यारे बालक और मेरा प्रेम तुम्हें कभी नहीं छोड़ता।

तुम्हारी मां।

१७ जुलाई १९३८

तुम्हें कविता लिखने के लिये मेरी पूरी स्वीकृति है और श्रीअरविंद कहते हैं कि तुम्हारी कविता लिखने की क्षमता के बारे में कोई संदेह नहीं है। आज की कविता बहुत अच्छी है। लेकिन जब तुम हर रोज लिखने की कोशिश करते हो तो वह अधिकाधिक मानसिक बन जाती है और तुम सच्ची प्रेरणा से संपर्क खो बैठते हो। इसलिये तुम्हें केवल तभी लिखना चाहिये जब तुम्हें लगे कि प्रेरणा आ रही है।

२० जुलाई १९३८

मेरी मधुर मां,

क्या तुम मुझसे इसलिये नाराज हो कि मैंने आश्रम छोड़ने का निश्चय कर लिया है? मैं आगे बढ़ना चाहता हूं—तुम्हारे विरुद्ध विद्रोह नहीं करना चाहता, नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं। लेकिन मुझे अपने मार्ग के बारे में निश्चित होना है।

मुझे एक अवसर दो, मां, मेहरबानी करो।

एक बात मैं और पूछना चाहता हूं, क्या तुम हमेशा मेरे हृदय में रहोगी?

मैं जरा भी नाराज नहीं हूं, लेकिन चूंकि तुमने चले जाने का निश्चय कर लिया है इसलिये मैं तुम्हें रोक भी नहीं सकती और ऐसी चीज नहीं कर सकती जो तुम्हें जाने की शक्ति से वंचित कर सके। मैं तुम्हारे हृदय में हूं और हमेशा रहूंगी; इसलिये अगर तुम उसके अंदर काफी गहरे जाओ तो निश्चय ही मुझे वहां पाओगे।

तुम्हारी मां का प्यार।

३० अगस्त १९३८

[अक्तूबर १९३८ में अठारह वर्ष की अवस्था में साधक आठ वर्ष के लिये आश्रम छोड़ गया। निम्नलिखित पत्र उन दिनों के हैं जब वह आश्रम के बाहर था।]

मेरे प्यारे बालक,

मुझे २५ तारीख का तुम्हारा पत्र आज मिला। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आखिर तुम स्वस्थ हो गये हो।

तुम अपने पत्र में कहते हो, "मां, मैं संसार को नहीं चाहता, इसलिये नहीं कि मैं अपने कर्तव्य से डरता हूं, बल्कि इसलिये कि मैं तुम्हें चाहता हूं!" मैं इस बारे में तुम्हें कुछ बताना चाहती हूं। इस बारे में निश्चित होने के लिये कि तुम आश्रम-जीवन के लिये हो, यह जरूरी है कि आध्यात्मिक जीवन और उससे संबद्ध अनुशासन—संक्षेप में कहें तो भगवान् की खोज और प्राप्ति—तुम्हारे लिये सबसे महत्त्वपूर्ण चीज होनी चाहिये, यही जीने योग्य एकमात्र चीज होनी चाहिये।

मुझे चाहने का भाव तुम्हें बहका भी सकता है। क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम मेरे अंदर भगवान् को चाहते हो? जब तुम यहां वापिस आओगे और मुझसे न मिल सकोगे (क्योंकि श्रीअरविंद की हड्डी टूटने के बाद से मैंने प्रणाम या मुलाकातें देना बंद कर रखा है) तो क्या फिर से तुम्हें यह न लगेगा कि मैं सामान्य जीवन से मिलनेवाली सभी सुख-सुविधाएं छोड़ रहा हूं लेकिन उसके बदले में कुछ अधिक नहीं पाता?

निस्संदेह अगर तुम किसी भी कीमत पर आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हो तो बात अलग है। लेकिन उस हालत में तुम्हें **आंतरिक** सहायता पर निर्भर होना पड़ेगा, बाहरी या सतही सहायता पर नहीं।

मैं तुमसे यह सब इसलिये कह रही हूं ताकि तुम यहां आकर फिर से एक बार निराश न होओ।

मेरे पत्र को **बहुत सावधानी** से पढ़ो। इसपर फिर से एक बार विचार करो और निश्चित हो जाओ कि तुम उसे पूरी तरह समझ गये हो और जब तुम अपने अंदर स्पष्ट रूप से देख सको तब फिर मुझे लिखना।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है।

तुम्हारी मां जो तुमसे प्यार करती है।

३० मार्च १९३९

मेरे प्यारे बालक,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है और मुझे तुम्हारे तीन वर्ष के लिये लखनऊ जाकर संगीत सीखने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि तुम यही तो चाहते हो।

फिर भी मुझे लगता है कि तुम्हारा फरवरी में पांडिचेरी आना बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा क्योंकि एक बार आ जाओ तो फिर से तुम पीड़ित और अनिश्चित हो सकते हो और इससे तुम्हारे अंदर फिर से अनावश्यक संघर्ष उठ सकता है।

लखनऊ जाओ, तुम वहां जो कुछ सीख सकते हो सीखो और तब तुम समस्या पर विचार करने योग्य बनोगे और अपने भविष्य के बारे में निश्चित फैसला कर सकोगे।

मेरा प्रेम, मेरी सहायता और मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं।

तुम्हारी मां।

११ जनवरी १९४०

मेरे प्यारे बालक,

अगर तुम आश्रम आने के लिये इतने उत्सुक हो तो आ सकते हो। लेकिन मैं तुम्हें दो बातों के बारे में चेतावनी दे दूं:

१. यहां तुम्हारे प्राण को कोई संतोष न मिलेगा क्योंकि आजकल यहां का जीवन वर्तमान युद्ध की परिस्थितियों के कारण बहुत प्रतिबंधों से भरा है।

२. तुम्हें यहां, हम सब की तरह, दिन-रात अचानक बमबारी की सतत आशंका में रहना होगा।

अगर तुम इन दो खतरों की परवाह नहीं करते तो आ सकते हो।

मेरा प्यार और आशीर्वाद।

१० अप्रैल १९४२

[१९४६ में यह साधक आश्रम लौट आया और फिर अंत तक यहीं बना रहा। ये पत्र उसके बाद के हैं]

हे मेरी मधुर मां,

मुझे सच्चा रास्ता दिखलाने के लिये मेरी कृतज्ञता स्वीकार करो। मुझे बाहर से आनेवाली हर चीज को अस्वीकार करने का बल प्रदान करो। तुम्हारी इच्छा पूरी हो।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद मार्ग पर तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करने के लिये तुम्हारे साथ हैं।

४ जून १९४६

हे मेरी मधुर मां,

मैं अपने हृदय और अपनी सारी सत्ता में तुम्हारे अधिक निकट होना चाहता

हूं। मुझे शक्ति दो कि मैं अपने-आपको पूरी तरह तुम्हारे अर्पण कर सकूं। हमेशा मेरे साथ रहो।

हां मेरे प्यारे नन्हें बालक, मैं तुम्हारी सहायता करने के लिये, तुम्हें सहारा देने और रास्ता दिखाने के लिये हमेशा तुम्हारे साथ हूं। चेतना, ईमानदारी और अध्यवसाय के साथ अपना काम करने से तुम मेरी उपस्थिति को अपने अधिकाधिक निकट पाओगे।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

२९ जून १९४६

मेरी मधुर मां,

मैं जितना ही अपने अंदर देखता हूं उतना ही अधिक निरुत्साहित होता हूं। पता नहीं मेरे लिये प्रगति करने का कोई अवसर है भी या नहीं। ऐसा लगता है कि सभी अंधकार और मिथ्यात्व हर दिशा में, ऊपर नीचे उठ रहे हैं और मुझे निगल जाना चाहते हैं। ऐसे अवसर आते हैं जब मैं सत्य और मिथ्यात्व में फर्क करने में असमर्थ होता हूं, तब मुझे लगता है कि मैं अपना दिमाग खो बैठूंगा।

फिर भी मेरे अंदर कोई चीज है जो धीरे से कहती है कि सब कुछ ठीक हो जायेगा; लेकिन यह आवाज इतनी धीमी होती है कि मैं उसपर भरोसा नहीं कर सकता।[1]

मेरे दोष इतने बड़े और इतने अधिक हैं कि मुझे लगता है कि मैं असफल होऊंगा। दूसरी ओर मेरे अंदर न तो साधारण जीवन के लिये प्रवृत्ति है न क्षमता और मैं जानता हूं कि मैं इस जीवन को कभी न छोड़ पाऊंगा। इस समय मेरी यह हालत है। संघर्ष अधिकाधिक तीव्र होता जा रहा है और सबसे बुरी बात तो यह है कि मैं तुम्हारे आगे झूठ नहीं बोल सकता। अब मैं क्या करूं?

मेरे बालक, अपने-आपको यातना न दो, जितना हो सके उतने शांत-स्थिर रहो। संघर्ष को छोड़ देने और अपने-आपको अंधेरे में जा गिरने देने के प्रलोभन के आगे न झुको। डटे रहो और एक दिन तुम अनुभव करोगे कि मैं तुम्हें दिलासा देने के लिये और तुम्हारी सहायता करने के लिये तुम्हारे पास हूं और तब सबसे कठिन काम समाप्त हो जायेगा।

मेरे समस्त प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ सितंबर १९४७

[1] माताजी ने 'सब कुछ ठीक हो जायेगा' के नीचे लकीर लगा दी और लिख दिया : ''यह सत्य की वाणी है, तुम्हें इसीको सुनना चाहिये।''

सच्चे रहो, हमेशा सच्चे, अधिकाधिक सच्चे।

सचाई हर एक से यह मांग करती है कि वह केवल अपनी सत्ता के सत्य को अभिव्यक्त करे।

२६ जनवरी १९५०

मधुर मां,

मुझे लगता है कि कुछ गड़बड़ है और आप मुझसे बहुत नाराज हैं।

पहला प्रस्ताव ही गलत है। मैं तुमसे नाराज **नहीं** हूं—अतः इसके बाद जो कुछ आता है वह ठीक नहीं हो सकता।

मुझे आपके असंतोष का सच्चा कारण जानकर बहुत खुशी होगी और मैं उसे हटाने का भरसक प्रयास करूंगा। मैं बता नहीं सकता कि यह जानकर मुझे कितना कष्ट होता है कि आप किसी कारण मुझसे नाराज हैं।

कोई सच्चा कारण नहीं है क्योंकि कोई असंतोष नहीं है। तुम्हारा कष्ट बिल्कुल निर्मूल है अतः ज्यादा अच्छा यह है कि तुम उसे तुरंत निकाल बाहर करो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१२ दिसंबर १९५३

मधुर मां,

मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे पत्र से नाराज न हों। मैं आपकी नाराजगी के सिवा सब कुछ सह सकता हूं। मुझे लगता है कि आप किसी-न-किसी कारण मुझसे बहुत नाराज हैं। आप मुझसे क्या करवाना चाहती हैं? आपकी इच्छा क्या है? मैं कह नहीं सकता कि मैं आपकी नाराजगी को कितनी गहराई से अनुभव करता हूं। क्या आप मुझसे ज्यादा काम, ज्यादा अनुशासन, ज्यादा उचित मनोवृत्ति चाहती हैं? मैं असफलताओं का गट्ठर हूं। कृपया उनके लिये क्षमा कीजिये, मैं आखिर मानव हूं। कृपया जो कुछ मैंने किया हो उसके लिये क्षमा कीजिये और मुझे बतलाइये कि मैंने क्या भूलें की हैं।

मैं अप्रसन्न **नहीं** हूं, मैं नाराज **नहीं** हूं। तुम्हारा यह विचार एकदम मिथ्या और काल्पनिक है। हो सकता है कि यह किसी असद्विवेक का परिणाम हो। लेकिन तुम्हें

हमेशा के लिये यह समझ लेना चाहिये कि लोग चाहे जो भूलें किया करें वे मुझे परेशान या नाराज नहीं कर सकतीं। अगर कहीं दुर्भावना या विद्रोह हो तो काली आकर दंड दे सकती है लेकिन वह हमेशा प्रेम के साथ दंड देती है।

अतः इस सारी मूर्खता को फेंक दो और शांत और खुश रहने की कोशिश करो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२३ मार्च १९५४

मेरे प्यारे बालक,

"जो शाश्वत को चुनता है उसे शाश्वत ने चुन लिया है।"

श्रीअरविंद के इस वचन को कभी न भूलो और सभी कठिनाइयों के बावजूद साहस बनाये रखो। तुम निश्चय ही लक्ष्य तक जा पहुंचोगे, और तुम जितना ही अधिक विश्वास रखोगे उतनी ही जल्दी पहुंच पाओगे।

मेरे प्यार और आशीर्वाद के साथ।

२६ जनवरी १९५६

[निम्नलिखित पत्र बिना तारीख के हैं। इनमें से अधिकतर १९३२ से ३८ के काल के लिखे हुए हैं।]

मेरे प्यारे बालक, अपने-आपको यातना न दो और किसीसे न डरो। मेरी कृपा हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी और तुम्हें कभी धोखा न देगी। और फिर यह मानने का कोई कारण नहीं है कि तुम इस जीवन में सफल न होगे। इसके विपरीत, मैं तुम्हारे अंदर आह्वान के चिह्न देखती हूं और चूंकि तुमने धीरज रखने का निश्चय कर लिया है इसलिये कठिनाइयां अवश्य पराजित होंगी।

तुम्हारी मां की ओर से प्रेम।

*

तुम्हारे चले जाने से जरा भी लाभ न होगा। बाहरी साधन व्यर्थ होते हैं। यह तो 'भीतर' को बदलना होगा। अपने निश्चय को बनाये रखो और मेरी सहायता काम करेगी।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

*

मेरी नन्हीं मां,

मैं कैसा खुश होऊंगा जब सभी बादल और छायाएं छितर जायेंगी। मैं एक नया जीवन चाहता हूं।

मेरे प्यारे बालक,

तुम एक नये जीवन की चाह करने में बिल्कुल न्यायोचित हो और तुम विश्वास कर सकते हो कि तुम्हें सहायता देने के लिये मैं अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करूंगी। मुझे विश्वास है कि अध्ययन में डटे रहना और काम के अनुशासन को स्वीकार करना और जीवन में व्यवस्था लाना अपने-आपको नया बनाने में तुम्हारे लिये बहुत बड़ी सहायता होगी।

मेरा समस्त प्रेम तुम्हारी सहायता करने और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करने के लिये तुम्हारे साथ है।

*

मेरे प्यारे बालक,

जैसे मांसपेशियों को कसरत द्वारा प्रशिक्षित किया जा सकता है उसी तरह इच्छा-शक्ति और ऊर्जा को भी प्रशिक्षित किया जा सकता है। तुम्हें धीरज धरने के लिये अपनी इच्छा-शक्ति को और अवसाद को त्यागने के लिये अपनी ऊर्जा को लगाना चाहिये। मैं हमेशा अपने समस्त प्रेम के साथ तुम्हारी सहायता करने के लिये तुम्हारे पास हूं।

*

तुम्हें चिंता न करनी चाहिये और जैसे कर रहे हो करते चलो, बस शायद तुम्हें अपनी सतही और बहुत अधिक हल्की-फुल्की बाहरी सत्ता को हस्तक्षेप करके तुम्हारे प्रयास को बिगाड़ न देना चाहिये। उदाहरण के लिये जैसा वह मार्चिंग के समय करती है।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है स्थिर, शांत सहिष्णुता जो तुम्हारी प्रगति में किसी गड़बड़ या अवसाद को हस्तक्षेप नहीं करने देती। विजय का आश्वासन है अभीप्सा की सचाई।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

*

मेरी मां,

ऊर्जा का अभाव मुझे चित्रकारी से रोक रहा है। मुझे प्रबल ऊर्जा दो। मैं भीतरी और बाहरी नीरवता चाहता हूं—अपनी समस्त सत्ता में—अंतर्तम से एकदम बाहरी तक में शांति, शांति, मेरी सारी सत्ता में शांति। मैं इसे उचित शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाता और यह नाटकीय हो रहा है। मेरी भूल के लिये क्षमा कीजिये।

मैं तुम्हारी अभिव्यक्ति को नाटकीय नहीं पाती और क्षमा करने की कोई बात ही नहीं है। मैं जानती हूं कि ऊर्जा के अभाव में तुम चित्रकारी नहीं कर पा रहे। लेकिन मैं तुम्हें जितनी ऊर्जा की जरूरत है उतनी दे सकती हूं; तुम्हें बस अपने-आपको खोलकर उसे ग्रहण करना है और तुम देखोगे कि स्रोत कभी न सूखनेवाला है। शांति तथा अन्य सभी सच्ची चीजों के लिये भी यही बात है जिनकी तुम अभीप्सा कर सकते हो।

तुम्हारी मां की ओर से प्यार।

*

मेरी प्यारी मां,

मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं। मैं तुम्हारी ओर खुलना चाहता हूं। लेकिन कोई चीज मुझे खुलने से रोकती है।

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हें खुलना इसलिये कठिन लगता है क्योंकि तुमने अभीतक यह निश्चय नहीं किया है कि अपनी इच्छा को नहीं, मेरी इच्छा को अपने जीवन पर शासन करने दोगे। जैसे ही तुम इसकी आवश्यकता समझ जाओगे, हर चीज ज्यादा आसान हो जायेगी और अंततः तुम उस शांति को पाने योग्य हो जाओगे जिसकी तुम्हें इतनी अधिक जरूरत है।

इस प्रयास और अभीप्सा में मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

*

मां,

प्राण बहुत, बहुत बुरा हो गया है। आज तो यह विशेष रूप से विद्रोही हो उठा है।

आपने मेरे पिछले पत्र का उत्तर नहीं दिया। क्या आप यह मानती हैं कि प्राण को शांत करने की जरूरत नहीं है?

मैंने उत्तर इसलिये नहीं दिया क्योंकि ऐसा लगता है कि मैं जो कहती हूं उसका कोई असर नहीं होता। अगर तुम स्पष्ट रूप से, **यथार्थ रूप से**, विद्रोह के स्वरूप का वर्णन करो तो इससे तुम्हें उससे पिंड छुड़ाने में बहुत अधिक सहायता मिलेगी, क्योंकि यह अपने-आपको खोलने का एक तरीका है जो प्रकाश को अंधकार के अंदर प्रवेश करने देता है और उसे आलोकित करता है।

*

मां,

एक अवसाद है, और बहुधा मुझे लगता है कि मेरा मन बहुत थक गया है। पता नहीं क्यों, आज मेरा प्राण भी भयंकर विद्रोह कर रहा है। मैं क्या कर सकता हूं ?

यह वही थकान है जो मांसपेशियों में तब आती है जब वे काफी काम नहीं करतीं। निष्क्रियता ठीक उसी तरह थकानेवाली होती है जैसे अत्यधिक सक्रियता। एकदम काम न करना उतना ही बुरा है जितना अत्यधिक काम करना।

प्राण बहुत अधिक तंग करनेवाला चरित्र है जो उपेक्षित रहने की अपेक्षा दुष्ट होना ज्यादा पसंद करता है। तुम्हें उसे सिखाना चाहिये कि वह गृह-स्वामी नहीं है।

*

मां,

मैं नहीं जानता कि प्राण के साथ क्या करूं। क्या आप उसे रोकने की कृपा करेंगी ?

श्रीअरविंद—जब वह आये तो उसे स्वीकार न करो और जो कुछ वह कहे उसपर विश्वास न करो। उसके आदेशों के अनुसार क्रिया न करो। तब उसे रोकना कठिन न होगा।

माताजी—और जब श्रीअरविंद तुमसे कुछ कहते हैं, तो करने लायक पहली चीज, और अगर तुम कठिनाई को जीतना चाहते हो तो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है—उनकी **आज्ञा मानना**।

*

मेरे प्यारे बालक,

प्रबल अनुभूतियों के लिये लालसा प्राण की चीज है। यह प्रवृत्ति उन लोगों में बहुत अधिक होती है जिनका प्राण पर्याप्त रूप से विकसित नहीं होता और अपने भारीपन तथा जड़ता से पिंड छुड़ाने की आशा में उग्र संवेदनों की खोज करता है। लेकिन यह अज्ञान-भरी गति है क्योंकि उग्र संवेदन कभी उपचार नहीं हो सकते। इसके विपरीत, वे अस्तव्यस्तता और अंधकार को बढ़ा देते हैं।

एकमात्र उपचार है उच्चतर शक्तियों की ओर खुलना ताकि वे प्राण में व्यवस्था का, वर्गीकरण का, प्रकाश और शांति का काम कर सकें।

तुम्हारी मां का प्रेम जो हमेशा तुम्हारी मदद करने के लिये तैयार रहती है।

*

मेरी प्यारी मां,

तुम मुझसे नाराज हो, हो न? मुझे बहुत दुःख होता है। मैं कर ही क्या सकता हूं। मैं पग-पग पर ठोकरें खाता हूं।

नहीं, मेरे नन्हें बालक, मैं नाराज नहीं हूं—मैं क्यों नाराज होऊं? मैं तुम्हारी कठिनाइयों को समझती और तुम्हारी सद्भावना को जानती हूं। मैं जानती हूं कि तुम अच्छा करना चाहते हो, कि तुम विजय पाना चाहते हो, कि तुम दुर्बलताओं पर विजय पाने के लिये अभीप्सा करते हो। जब कठिनाइयां आयें तो यह न सोचो कि मैं नाराज हूं, बल्कि इसके विपरीत कि मैं सदा तुम्हारे साथ हूं, तुम्हें सहायता देती, तुम्हारी रक्षा करती, स्थायी प्रेम और माधुर्य के साथ तुम्हें प्रोत्साहित करती हूं।

*

मेरे प्यारे बालक,

मैं तुम्हारी मदद करने और तुम्हारी रक्षा करने के लिये हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

अपने ऊपर व्यर्थ की कल्पनाओं का प्रभुत्व न होने दो। तुम्हारे हृदय की गहराइयों में शांति मौजूद है। वहां एकाग्र होओ और तुम उसे पा लोगे।

तुम्हारी मां का प्यार।

*

मेरी प्यारी मधुर मां,

मेरी सारी प्रकृति को रूपांतरित कर दो। मैं वही होऊंगा जो तुम मुझे बनाना चाहो। मेरे हृदय में अपनी शांति और अपनी नीरवता प्रदान करो। मैं सभी

बातें शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता, लेकिन मां, तुम सब कुछ जानती हो।

हां, मैं तुम्हें भली-भांति समझती हूं मेरे प्यारे बच्चे, और मेरा स्नेह हमेशा तुम्हारे साथ रहता है और वह तुम्हारे लिये विस्तृत और स्थायी शांति, गहरी, आलोकमयी नीरवता, निश्चल-स्थायी, एकाग्र शक्ति तथा वह निर्विकार आनंद चाहता है जो ज्योति के साथ सतत संपर्क से आता है।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

*

मेरी मधुर मां,

मैं गहरी शांति, बहुत गहरी शांति चाहता हूं। मुझे लगता है कि मैं हमेशा तुम्हारी भुजाओं में रहता हूं।

हां, मेरी भुजाओं में रहना अच्छा है। वहां तुम्हें वह शांति मिलेगी जिसके लिये तुम्हें इतनी अभीप्सा है; और वह विश्राम मिलेगा जिसमें से सच्ची ऊर्जाएं आती हैं।

मेरा प्रेम तुम्हें घेरे रहता और सदा आलिंगन में रखता है।

*

मेरी मधुर मां,

प्रकाश, और अधिक प्रकाश। मुझे आलोकित करो। अब मैं जानता हूं कि तुम सबसे बड़ी शक्ति हो। मेरी मां, मुझे अपने हृदय में ले लो, सभी कठिनाइयों को विगलित कर दो।

मेरे प्यारे बालक,

हमेशा मेरे हृदय में दुबके रहो जो हमेशा तुम्हारा स्वागत करने के लिये तैयार है, हमेशा मेरी भुजाओं में लिपटे रहो जो तुम्हें अपनाने के लिये तैयार हैं और किन्हीं बाधाओं से न डरो—हम उन सबको तितर-बितर कर देंगे।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

*

हे मेरी प्यारी मां,

मुझे अपने हृदय में ले लो। नहीं, नहीं, मैं ये मनहूस मिथ्यात्व नहीं चाहता। मुझे अपने हृदय में ले लो।

मैं हमेशा तुम्हें अपने हृदय में लिये रहती हूं लेकिन तुम ही वहां से भाग जाओ तो मैं क्या करूं? अगर तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारी सहायता कर सकूं तो तुम्हें मेरी भुजाओं में चुपचाप स्थिर रहना चाहिये।

*

मां, मुझे अधिक शांत बनाओ।

हर बार जब तुम्हें बेचैनी का अनुभव हो तो तुम्हें बाहर आवाज दिये बिना, साथ ही मेरे बारे में सोचते हुए, अपने अंदर बोलते हुए यह दोहराना चाहिये :

"शांति, शांति, हे मेरे हृदय!" तुम इसे लगातार कहो और परिणाम से तुम्हें खुशी होगी।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

*

मेरे प्यारे बालक,

शांति तुम्हारे ऊपर है; उसे अपने अंदर प्रवेश करने दो और शांति में तुम प्रकाश पाओगे और प्रकाश तुम्हारे लिये ज्ञान लायेगा।

मेरे समस्त प्रेम के साथ। तुम्हारी मां।

*

मेरे प्यारे बालक,

उस दिन मैं कितनी खुश होऊंगी जब तुम सदा, सभी परिस्थितियों में बलवान् और प्रसन्न अनुभव करोगे।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

पत्रमाला ६

पत्रमाला ६

[ये पत्र एक ऐसे साधक के नाम लिखे गये हैं जो बाद में श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र में अध्यापक बन गया था। यहां पत्रों को विषयवार तेरह भागों में रखा गया है जब कि अन्य पत्र मुख्यतः तारीख के हिसाब से रखे गये हैं। इनमें से अधिकतर पत्र १९३३ और १९३५ के बीच लिखे गये थे।]

(१)

मैं आशा और विश्वास करता हूं कि आपका कार्य मनुष्यों पर निर्भर नहीं है।

नहीं, वह मनुष्यों पर बिल्कुल निर्भर नहीं है। जो किया जाना है वह सभी संभव प्रतिरोधों के बावजूद किया जायेगा।

क्या मेरी इच्छा को आपकी इच्छा के साथ एक करने का कोई तरीका नहीं है? शायद आपकी कोई विशेष इच्छा नहीं है क्योंकि आप कुछ भी नहीं चाहतीं।

मैं बड़ी अच्छी तरह जानती हूं कि मुझे क्या चाहिये या भागवत इच्छा क्या है और यह भी कि समय आने पर उसीकी विजय होगी।

*

हम जिस चीज को धरती पर लाना चाहते हैं उसे "**क्रांति**" नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यह कभी, किसी भी समय देखे गये परिवर्तनों की अपेक्षा अधिकतम अद्‌भुत परिवर्तन होगा। बहरहाल इसकी तुलना उन रक्तरंजित क्रांतियों के साथ नहीं की जा सकती जो व्यर्थ में देशों को चीर डालती हैं, लेकिन अपने बाद कोई महान् परिवर्तन नहीं छोड़ जातीं, क्योंकि वे मनुष्य को पहले की तरह ही मिथ्या, अज्ञानी और अहंकारपूर्ण छोड़ जाती हैं।

मुझे विश्वास है कि एक दिन आयेगा जब भगवान् को एकदम स्वाभाविक रूप से उसी तरह देखा जा सकेगा जैसे भौतिक चीजों को देखा जाता है और तब यह कहने की जरूरत न रहेगी कि 'भगवान् हर जगह हैं'—क्योंकि यह एक सामान्य अनुभव होगा।

अगर उपलब्धि यहीं तक सीमित रहे तो उसका बहुत मूल्य न होगा। आशा तो पार्थिव जीवन के समग्र रूपांतर की की जा रही है।

*

प्यारी मां, हर क्षण मैं अपने अंदर एक महान् रूपांतर होते हुए अनुभव करता हूं। क्या यह सच नहीं है ?

यह बिल्कुल सच है। लेकिन मुझे लगता है कि तुम जैसा कहते हो उसकी अपेक्षा बाहरी रूप और आभास भी बहुत ज्यादा बदल रहे हैं। हां, इसे बहुत आसानी से देखा नहीं जा सकता क्योंकि यह किसी मनमाने मानसिक निश्चय के अनुसार नहीं, वस्तुओं के सत्य के विधान के अनुरूप सामान्य रूप से होता रहता है।

*

निश्चय ही भागवत कृपा हमेशा काम कर रही है, यह तो जड़ भौतिक जगत् और उसमें रहनेवाले मनुष्य उसे नहीं चाहते !

*

भगवान् मुझसे क्या चाहते हैं ?

वे चाहते हैं कि पहले तुम अपने-आपको पा लो, कि तुम अपनी सच्ची सत्ता, अपनी चैत्य सत्ता द्वारा निम्नतर सत्ता पर अधिकार कर लो, उसपर शासन करो और तब तुम पूरी तरह स्वाभाविक रूप से महान् भागवत कार्य में अपना स्थान पा लोगे।

*

मेरी सच्ची सत्ता कहां है ?

बहुत दूर, भीतर गहराई में या बहुत ऊपर, भावों के दूसरे पक्ष में, मन के परे।

*

मुझे गुस्सा आ रहा है, मां, क्योंकि मैं अपनी 'आत्मा' को नहीं पा सकता। जैसे ही मैं उसे तलाश करना शुरू करता हूं, मुझे इस शरीर के सिवा कुछ नहीं दिखायी देता जो तुच्छ विचारों और उपद्रवी कामनाओं की मांद जैसा है।

तुम्हें निरुत्साहित हुए बिना लगे रहना चाहिये और सबसे पहले शरीर को ही अपनी

'आत्मा' मान लेने से इंकार करना चाहिये। वस्तुतः जो भावनाएं और विचार उसे अनुप्राणित करते हैं उनके बिना वह क्या होगा ? एक जड़, निर्जीव राशि।

*

मां, ऐसी कौन-सी चीज है जो मुझे हमेशा यह याद रखने में सहायता देगी कि मैं आध्यात्मिक जीवन जी रहा हूं ?

सभी चीजों में और सदा भागवत उपस्थिति की अभिज्ञता।

*

आपने अपने 'वार्तालाप' में कहा है कि अपने-आपको योग के लिये तैयार करने के लिये सबसे पहले हमें सचेतन होना चाहिये। अपने अंदर भागवत उपस्थिति के बारे में सचेतन होना हमारा लक्ष्य है। मैं नहीं समझ पाता कि मैं शुरू से ही कैसे सचेतन हो सकता हूं।

मैंने 'दिव्य उपस्थिति के बारे में सचेतन' नहीं कहा है। मैंने कहा है "सचेतन"; जिसका मतलब है तुम्हारे अंदर जो कुछ हो रहा है उसके बारे में पूरी तरह अज्ञान में न रहना।

*

मैं अचंचल और स्थिर हृदय के साथ उस सब को स्वीकार नहीं कर सकता जो हो रहा है।

फिर भी योग के लिये यह अनिवार्य है; और जिसका भगवान् के साथ संयुक्त होने और उन्हें अभिव्यक्त करने के जैसा महान् लक्ष्य है वह जीवन की सभी व्यर्थताओं और मूर्खताओं से कैसे प्रभावित हो सकता है ?

*

कुछ लोग कहते हैं कि हमें बाहरी प्रकृति के साथ बहुत निकटता के साथ एक हो जाना चाहिये ताकि हम उस आनंद का रस पा सकें जिसे अभिव्यक्त जगत् इतनी सफलता के साथ छिपाये है।

मुझे नहीं लगता है कि यह सच है; बाहरी प्रकृति के साथ ऐक्य आनंद की जगह अधिक निश्चित रूप से दुःख लाता है !

*

जैसा कि तुम कहते हो, अगर तुम सांसारिक आदमी होते तो तुम यहां न होकर संसार में होते। सत्ता के अंदर ये कुछ पुराने तत्त्व हैं जो अपने पुराने क्रिया-कलापों से चिपके रहते हैं और बदलने से इंकार करते हैं। एक-न-एक दिन उन्हें झुकना और रूपांतरित होना होगा।

मैं आपसे फिर से पूछता हूं मां, वह कौन-सी चीज है जो मेरी सत्ता को विभक्त करती है ?

संघर्ष है उसके बीच जो चेतना के लिये अभीप्सा करता है यानी सत्ता का 'सात्त्विक' भाग और दूसरा है सत्ता का 'तामसिक' भाग जो अपने ऊपर निश्चेतना का आक्रमण और शासन होने देता है, एक वह जो ऊपर की ओर धकेलता है और दूसरा वह जो नीचे की ओर खींचता है, अतः वह सब प्रकार के बाहरी प्रभावों के आधीन है।

*

मां, आपका जगत् मुझे कष्ट पहुंचा सकता है लेकिन यह मुझे कोई भोग नहीं दे सकता, स्वयं मैं भी यह नहीं चाहता।

संसार जो भोग दे सकता है उनसे ऊपर होना अच्छा है, लेकिन उससे चोट खाना क्यों स्वीकार किया जाये ?

*

बिना किन्हीं आसक्तियों के यह जीवन मुझे अच्छा नहीं लगता।

अगर सचमुच तुम किसी चीज से आसक्त नहीं हो तो यह एक बहुत बड़ी यौगिक उपलब्धि है और तुम्हारा इसके बारे में शिकायत करना गलत होगा।

*

सारा जगत् मेरे विरुद्ध है और मैं निराश हूं।

तुम यह क्यों सोचना चाहते हो कि सारा जगत् तुम्हारे विरुद्ध है ? यह बचकानी बात है।

*

मेरे भौतिक मन को अभीतक यह विश्वास नहीं हुआ है कि मानव जीवन समस्त दुःख-दर्द और मृत्यु को भी जीतने में सक्षम है।

हो सकता है कि वास्तव में मानव जीवन इसके लिये अक्षम हो; लेकिन दिव्य जीवन के लिये कुछ भी असंभव नहीं है।

*

इसमें आश्चर्य की क्या बात है कि आदमी को इस जगत् से घृणा हो जाये ? वह-का-वही चक्कर हमेशा घूमता रहता है—यह अपने-आपमें मृत्यु है।

यह चीजों को देखने का एक तरीका है लेकिन एक और तरीका भी है जिसमें तुम देखते हो कि जगत् में कोई दो चीजें, कोई दो क्षण ठीक एक जैसे नहीं हैं, कि हर चीज अनवरत परिवर्तन में है।

*

मैं आपकी प्रार्थनाओं का यह वाक्य नहीं समझ पाया, ''और यह कि शाश्वत के आगे सभी समान हैं—चाहे वे धूल के अत्याणविक कण हों या एक से तारे।''

(आध्यात्मिक रीति से) सभी तारे समान हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम मनुष्य को धूल का कण कह सकते हो या उनकी तुलना तारों से कर सकते हो, दोनों हालतों में वे शाश्वत के आगे आकार और मूल्य में एक समान हैं।

(२)

प्यारी मां, मेरे चरणों को रास्ता दिखा, मेरे मन को आलोकित कर और मैं प्रार्थना करता हूं मेरे और अपने बीच कोई दूरी न छोड़।

मैं भी हम दोनों के बीच कोई अंतर नहीं चाहती लेकिन संबंध सच्चा होना चाहिये यानी दिव्य चेतना में आधारित ऐक्य।

*

अपने हृदय को ज्यादा विस्तृत, ज्यादा अच्छी तरह खोलो तो दूरी गायब हो जायेगी।

यह कारा जो मुझे तुमसे और भगवान् से दूर करती है, तोड़ी जानी चाहिये। हे मां, मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिये।

यह अचंचल तथा स्थिर इच्छा द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है।

*

वर दे कि मेरी सारी सत्ता केवल वह प्रेम हो जो अपने-आपको देना चाहता है और जो मुझे तेरी ओर ले जाता है।

इस अभीप्सा को बनाये रखो और तुम्हारी विजय निश्चित होगी। एक दिन तुम मुझे ऐसे प्रेम के साथ प्यार करोगे जो तुम्हें बल और आनंद से भर देता है।

*

मेरी मां, अपनी सारी इच्छा और अपने सारे प्रयास के साथ मैं उस प्रेम को चरितार्थ करना चाहता हूं जिसका तुमने अपने दिव्य अंतर्दर्शन में पूर्वानुभव किया है।

तुम्हारे इस प्रयास में मैं सदा तुम्हारे साथ रहूंगी।

*

मेरी प्यारी माताजी, मैं यह नहीं कहता कि मैं तुमसे प्यार करता हूं और तुम्हारा हूं। मुझे यह बात अपनी क्रियाओं में प्रमाणित करनी चाहिये। उसके बिना ये व्यर्थ के शब्द होंगे जिनके पीछे मनुष्य छिपता और रक्षा ढूंढ़ता है। लेकिन फिर भी, मैं सदा तुम्हारा बालक हूं।

यह अच्छा है। वास्तव में तुम हमेशा मेरे बालक हो और मैं चाहती हूं कि तुम और भी अधिक अच्छे बच्चे बन जाओ जो पूरी सच्चाई और निष्कपटता के साथ मुझसे कह सकेगा : "मैं तुमसे प्रेम करता हूं और शाश्वत काल के लिये तुम्हारा हूं।"

*

हे मां, मुझे अपने साथ ले लो, मैं तुम्हें हमेशा के लिये अपने हृदय में बिठाऊंगा। मैं तुम्हें खो न सकूंगा।

मुझे खोने का सवाल ही नहीं है। हम अपने अंदर एक शाश्वत चेतना लिये रहते हैं और हमें इसीके बारे में अभिज्ञ होना चाहिये।

*

कारण कुछ भी क्यों न हो, जैसे ही मेरी चेतना तुम्हें खो बैठती है, मैं सुखहीन और ऊर्जाहीन हो जाता हूं।

मैं किसी क्षण भी तुम्हें नहीं भूलती। क्या तुम मेरे और अपने बीच बहुत सारे अन्य प्रभावों को नहीं आने देते?

*

मां, तुम्हारी उपस्थिति को सदा अपने पास अनुभव करना इतना कठिन क्यों है? अपने हृदय की गहराई में मैं भली-भांति जानता हूं कि तुम्हारे बिना मेरे लिये जीवन का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन मेरा मन जरा-सा अवसर पाते ही इधर-उधर चल पड़ता है।

ठीक इसी कारण तुम उपस्थिति का अनुभव खो बैठते हो।

*

मैं सदा तुम्हारे साथ हूं और साधना की सबसे महत्त्वपूर्ण बातों में से एक है आंतरिक उपस्थिति के बारे में सचेतन होना। तुम 'क' से पूछ देखो, वह तुम्हें बतलायेगा कि उपस्थिति श्रद्धा का कोई विषय या मानसिक कल्पना नहीं है, वह एक

तथ्य है और चेतना के लिये पूरी तरह ठोस और उसी तरह वास्तविक और मूर्त है जिस तरह अत्यधिक भौतिक तथ्य।

*

मेरी प्यारी मां, काश मैं अपनी अज्ञानी सत्ता को यह विश्वास दिला पाता कि तुम्हें अपने हृदय के केंद्र में पाना संभव है।

यह तुम्हारे हृदय को विश्वास दिलाने का प्रश्न नहीं है, तुम्हें इस उपस्थिति का अनुभव होना चाहिये और तब तुम जान पाओगे कि अपनी गहराइयों में तुम्हारा हृदय सदा इस उपस्थिति के बारे में सचेतन रहा है।

*

मेरे अंदर से उस समस्त अंधकार को निकाल दो जो मुझे अंधा बना देता है और हमेशा मेरे साथ रहो।

मैं तुम्हारे हर विचार और हर अभीप्सा में हूं जिसे तुम मेरी ओर मोड़ते हो। अगर तुम हमेशा मेरी चेतना में उपस्थित न होते तो तुम कभी मेरे बारे में सोच ही न पाते। इसलिये तुम मेरी उपस्थिति के बारे में निश्चित हो सकते हो। मैं अपने आशीर्वाद जोड़ती हूं।

*

प्यारी मां, मैं प्रेम के उस स्रोत को कैसे पा सकता हूं जो मुझे यह अनुभव कराये कि दिव्य उपस्थिति सदा और सर्वत्र मेरे साथ है?

पहले तुम्हें भगवान् को पाना होगा, चाहे आभ्यन्तरीकरण और एकाग्रता द्वारा या श्रीअरविंद के और मेरे अंदर प्रेम और आत्मोत्सर्ग द्वारा। एक बार तुम भगवान् को पा लो तो स्वभावतः तुम उन्हें सभी चीजों में और सब जगह देखोगे।

*

भगवान् के साथ एक होने के दो तरीके हैं। एक है हृदय में एकाग्र होना और

इतनी गहराई में जाना जहां उनकी उपस्थिति मिल जाये। दूसरा है अपने-आपको उनकी भुजाओं में डाल देना, वहां, छोटा बच्चा जैसे अपनी मां की गोद में चिपट जाता है उसी तरह **पूर्ण समर्पण** के साथ चिपट जाना। और मुझे लगता है कि इन दोनों में से दूसरा ज्यादा आसान है।

*

मेरी प्यारी मां, अगर भगवान् मेरे प्रेम और मेरी आत्मा के समर्पण के बदले में अपने-आपको मुझे दिखला दें तब तो यह काम मेरे लिये बहुत आसान होगा।

नहीं, केवल अंतरात्मा नहीं समस्त सत्ता के निःशेष समर्पण के बदले में।

*

कौन है जो मुझे तुम से दूर रखता है?

स्वयं तुम।

यह कहना बिल्कुल गलत है कि मैं तुमसे दूर रहना चाहती हूं; लेकिन मेरे नजदीक आने के लिये तुम्हें चढ़कर मेरे नजदीक आना होगा, यह आशा न करो कि मैं तुम्हारे पास उतर कर इतना नीचे आऊंगी।

*

मेरी प्यारी मां, एक दिन तुमने मुझे लिखा था कि तुम्हें घनिष्ठ रूप से पाने के लिये मुझे उस स्तर तक चढ़ना होगा जहां तुम हो और मुझे यह आशा न करनी चाहिये कि तुम नीचे उतरकर आओगी, लेकिन मां, तुम इतनी महान् हो और इतने ऊंचे स्तर पर रहती हो कि वहांतक चढ़ना मुझे लगभग असंभव लगता है। हमारे दोनों के स्तरों के बीच तो भेद की एक दुनिया खड़ी है। मैं तो उस क्षण का स्वप्न भी नहीं देख सकता जब मैं तुम्हारे पास होऊंगा। तुम हमेशा ज्यादा ऊंची रहोगी और मैं तुम्हारे लिये अभीप्सा किया करूंगा। मैं एक स्तर से दूसरे स्तर तक तुम्हारे पीछे लगा रहूंगा लेकिन तुम हमेशा मुझसे दूर बनी रहोगी। यह छवि मुझे बुरी नहीं लगती क्योंकि मैं जानता हूं कि खोजने में बड़ा आनंद है; लेकिन यह भी सच है कि मेरा हृदय हमेशा प्यासा बना रहेगा।

एक दृष्टिकोण से जो तुम कह रहे हो वह सच है; लेकिन चेतना के उल्टाव की भी

एक स्थिति है जिसमें वह अपने अंधे और मिथ्या बनानेवाले अज्ञान से बाहर निकल कर सत्य की अवस्था में प्रवेश करती है और जब वह उल्टाव सिद्ध हो जायेगा, वह परिवर्तन हो जायेगा तो तुम अपने-आपको सदा मेरे पास अनुभव करोगे।

*

मेरी प्यारी मां, क्या इस भौतिक स्तर को छोड़कर तुम्हें किसी और स्तर पर मिलना संभव नहीं है? मैं शरीर-त्याग की बात नहीं सोच रहा, इस शरीर में रहते हुए भी क्या किसी उच्चतर स्तर पर मिलना संभव नहीं है?

निश्चय ही, यह बिल्कुल संभव है। लेकिन तुम्हें उन स्तरों की चेतना की ओर जागना होगा।

*

माताजी, मैं इस शरीर को छोड़कर जाना चाहता हूं। यह शरीर ही मुझे आपसे अलग रखता है।

यह कहना कि तुम्हारा शरीर ही तुम्हें मुझसे अलग रखता है, निरी मूढ़ता है। वास्तव में मुझे लगता है कि बात बिल्कुल उल्टी है, क्योंकि मुझे प्रत्येक दिन देखने की संभावना के बिना—अपनी चेतना की वर्तमान स्थिति में—तुम्हारा मेरे साथ क्या संपर्क रह जायेगा? क्या तुम उस योग्य हो कि जब तुम्हारी भौतिक आंखें मुझे न देख सकें तब भी तुम मुझे अनुभव कर सको, ठोस रूप से मेरी उपस्थिति का अनुभव कर सको? मुझे नहीं लगता क्योंकि अगर ऐसा होता तो तुम अलगाव की शिकायत न करते। इसके विपरीत तुम जानते कि कोई अलगाव नहीं है और तुम्हारी सत्ता के सत्य में हम सदा एक हैं।

यह सोचना कि अपना शरीर छोड़ने से तुम मेरे ज्यादा नजदीक आ जाओगे, एक बड़ी भूल है क्योंकि प्राणिक सत्ता जो है वही बनी रहेगी, चाहे शरीर सजीव हो या मृत, और अगर तुम्हारी जीवित अवस्था में प्राणिक सत्ता निकटता, अंतरंग घनिष्ठता का अनुभव करने में असमर्थ है तो तुम किस औचित्य से यह आशा करते हो कि वह अचानक यह कर पायेगी क्योंकि तुमने शरीर छोड़ दिया है? यह अज्ञानपूर्ण बचकानी बात है।

और दूसरे यह विचार भी भूल-भरा है कि अगर यह शरीर बदल जाये तो अगला शरीर जरूर ज्यादा अच्छा होगा। केवल तभी जब तुम भौतिक शरीर द्वारा दिये गये

प्रगति के अवसर का पूरा-पूरा और **अधिकतम** लाभ उठा लो तभी तुम उच्चतर शरीर में जन्म लेने की आशा कर सकते हो। इसके विपरीत, सभी अपसरण सत्ता की क्षति लाते हैं।

केवल वर्तमान जीवन में साहस के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करने, उन्हें पराजित करने का प्रण ही तुम्हारे अभीष्ट ऐक्य को पाने का निश्चित साधन है।

*

मेरी एकमात्र आशा है कि यथासंभव अधिक-से-अधिक प्रगति करूं ताकि मेरा अगला जन्म इस जन्म की तरह व्यर्थ न हो।

यह सब बेवकूफी है। हमें अगले जन्म के बारे में नहीं बल्कि, इसी जन्म के बारे में व्यस्त रहना चाहिये जो **हमारे अंतिम श्वास तक** हमें सभी संभावनाएं प्रदान करता है। जो कुछ इस जन्म में किया जा सकता है उसे अगले जन्म के लिये स्थगित कर देना ऐसा ही है जैसा जो आज किया जा सकता है उसे कल पर टालना। यह सुस्ती है। संपूर्ण सिद्धि की संभावना केवल मृत्यु के साथ समाप्त होती है। जबतक तुम जिंदा हो तबतक कुछ भी असंभव नहीं है।

*

जो चीज जीवन में प्राप्त याँ हस्तगत नहीं की जा सकती निश्चय ही उसे मृत्यु के बाद नहीं पाया जा सकता। यह भौतिक जीवन ही प्रगति और उपलब्धि का सच्चा क्षेत्र है।

*

प्यारी मां, या तो मैं रूपांतरित हो जाऊं या समाप्त हो जाऊं।

समाप्त होना असंभव है। अभिव्यक्त जगत् की कोई भी चीज आध्यात्मिक्त मुक्ति यानी **रूपांतर** के द्वार के सिवा उसमें से बाहर नहीं जा सकती।

(३)

मैं प्रायः अपने-आपसे पूछता हूं कि क्या आपके निकट आने की इस इच्छा में कोई सत्य है।

हां, इसके पीछे भगवान् के साथ चेतना और इच्छा के तादात्म्य में पूर्ण ऐक्य का सत्य है।

*

मेरी मधुर मां, क्या तुम कहती हो कि मुझे भौतिक रूप से तुम्हारे निकट आने की इच्छा को जीतना चाहिये ?

मैंने कभी ऐसी कोई बात नहीं कही। लेकिन तुम्हें अपने-आपको तैयार करना और अपने-आपको अंदर से शुद्ध करना चाहिये ताकि यह निकट आना उपयोगी और लाभप्रद हो।

*

अगर तुम कहो कि मैं केवल तुम्हारे लिये हूं तो स्पष्टतः यह बात अहंकारपूर्ण और मिथ्या है; लेकिन अगर तुम सोचो कि मैं अपने सभी बालकों के लिये हूं और मैं उन्हें अपने हृदय में लिये रहती हूं और उन्हें भगवान् की ओर ले जाना चाहती हूं और अगर वे उनसे भटक जाएं तो मैं दुःखी होती हूं—तो यह बिल्कुल ठीक है।

*

मेरा तुम्हें अपने से दूर रखने का इरादा बिल्कुल नहीं है। मैं तुम्हें बस इतना याद दिलाना चाहती थी कि आश्रम में तुम अकेले नहीं हो और मुझे अपना समय उन सब में बांटना होता है जिन्हें मेरी जरूरत है।

*

अगर तुम भौतिक रूप से मुझसे दूर हो पर सारे समय मेरे बारे में सोचते रहते हो तो निश्चय ही तुम उस अवस्था की अपेक्षा मेरे ज्यादा नजदीक होगे जब तुम बैठे तो रहो मेरे पास परंतु सोचो और चीजों के बारे में।

*

माताजी, जब मेरा शरीर आपसे दूर हो तब भी मैं अपने-आपको ठोस रूप से आपके नजदीक कैसे अनुभव कर सकता हूं ?

अपने विचारों को एकाग्र करके।

प्यारी मां, दिन में चौबीस घंटे होते हैं परंतु मैं आपके चरणों के पास कुछ सेकेंड से अधिक नहीं रह सकता तो मैं जिंदा कैसे रहूं ?

अपने भीतर जाओ, अपने चैत्य पुरुष को पा लो तो साथ-ही-साथ तुम मुझे भी अपने अंदर रहते हुए पा लोगे—तुम्हारे जीवन का जीवन, सर्वदा उपस्थित और सदा निकटस्थ, पूरी तरह ठोस और सुनिश्चित।

*

बहुत स्थिर रहो। अपने हृदय और मन को श्रीअरविंद के और मेरे प्रभाव की ओर खुला रखो, अपने-आपको भीतरी नीरवता में खींच लो (जिसे सभी परिस्थितियों में पाया जा सकता है), इस नीरवता की गहराई में से मुझे पुकारो और तुम मुझे वहां—अपनी सत्ता के केंद्र में खड़ा देखोगे।

*

चूंकि मैंने दो दिन के लिये प्रणाम बंद कर दिया था इसलिये यह न सोचो कि मैं तुम्हारे नजदीक नहीं थी। जहां कहीं तुम काम करते हो, भौतिक रूप से पास या दूर, **मैं हमेशा तुम्हारे साथ तुम्हारे काम में और तुम्हारी चेतना में रहती हूं।** तुम्हें यह जानना चाहिये।

*

अगर मैं यह न जानूं कि आप मेरे साथ हैं तो मेरे लिये जीवन का कोई आकर्षण न रहेगा।

लेकिन मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

*

मेरे हृदय को खाली न छोड़ो, मां।

मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में रहती हूं।

*

चैत्य पुरुष सतत निरपवाद रूप से, भगवान् के साथ संपर्क में रहता है और इस संपर्क को कभी नहीं खोता।

*

भगवान् चैत्य सत्ता में सतत उपस्थित रहते हैं और चैत्य सत्ता इसके बारे में पूरी तरह से सचेतन होती है।

*

मेरे अंदर चैत्य पुरुष सोया हुआ है।

चैत्य सोया हुआ नहीं है। उसके साथ संबंध ठीक तरह से नहीं बना है क्योंकि मन बहुत ज्यादा शोर मचाता है और प्राण बहुत बेचैन है।

*

माताजी, यदि चैत्य सदा भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करता है तो मनुष्य क्यों उस उपस्थिति के लिये रोता-झींकता रहता है?

मैं तुम्हें पहले ही बतला चुकी हूं कि यह इस कारण है कि बाहरी चेतना और चैत्य में ठीक तरह संयोजन नहीं हुआ है और चैत्य चेतना ठीक तरह प्रतिष्ठित नहीं हुई है। जिसमें संयोजन ठीक तरह स्थापित हो जाता है वह सदा प्रसन्न रहता है।

*

हम जो दुःख भोगते हैं वह प्रमाणित करता है कि चैत्य पुरुष भगवान् से बहुत दूर है।

चैत्य पुरुष दुःखी नहीं होता, मन, प्राण और अज्ञानी मनुष्य की सामान्य चेतना दुःख झेलती है।

*

दस ग्यारह वर्ष पहले मुझे आपकी उपस्थिति में और आपके द्वारा एक अनुभूति हुई थी। मैं बहुत कड़ी कठिनाई में था और बिल्कुल खोया-खोया-सा अनुभव कर रहा था। अचानक मुझे ऐसा लगा कि मेरी सत्ता की गहराइयों से कोई चीज बाधाओं की भीड़ में से ऊपर उठी। जब यह चीज ऊपर उठ आयी तो मेरे अंदर सब कुछ बदल गया। तब मैं आनंद और शांति में था और अचानक सभी कठिनाइयां गायब हो गयीं। उस दिन से मेरे सामने कोई ऐसी कठिनाई नहीं आयी जो मेरा रास्ता रोक सके।

यह चीज क्या थी मां ?

निश्चय ही यह चैत्य सत्ता थी लेकिन वह सक्रिय हुई केवल मेरे हस्तक्षेप से ही।

*

तो अगर तुम यह पसंद नहीं करते कि मैं तुम्हारे दोष दिखलाऊं, मैं इसे भली-भांति बंद कर सकती हूं, लेकिन तब तुम्हें मुझसे प्रगति में सहायता करने के लिये भी न कहना चाहिये, क्योंकि तुम यह नहीं कर सकते कि एक ओर मुझसे हस्तक्षेप करने के लिये कहो और दूसरी ओर मेरे हस्तक्षेप को अस्वीकार कर दो।

*

मैं तुम से जो कुछ कहूं अगर तुम उससे परेशान हो जाओ तो यह इस बात को प्रमाणित करता है कि तुम प्रगति करना नहीं चाहते, और परिणामस्वरूप यह भी कि मेरे लिये यह आवश्यक नहीं है कि मैं तुम्हारे अंदर जो कुछ बदलना है उसके बारे में तुम्हें अभिज्ञ कराऊं।

*

मां, मुझे लगता है कि मैं बहुत ही छिछोरा व्यक्ति हूं। क्या आप मुझे बदलोगी नहीं ?

मैं तुम्हें बदल कर बहुत खुश होऊंगी लेकिन क्या तुम्हें पूरा विश्वास है कि तुम्हारे अंदर जो चीज छिछोरी है वह बदलना भी चाहती है ?

*

तुम मुझसे सहायता की आशा कैसे करते हो जब तुम्हें मेरे ऊपर भरोसा ही नहीं है!

*

अगर आप इसमें मेरी सहायता न करें तो मैं कभी इस संबंध को पूरी तरह चरितार्थ न कर पाऊंगा जो शाश्वत काल से है।

मेरी सहायता पूरी तरह से है; तुम्हें बस उसकी ओर पूरे भरोसे के साथ खुलना होगा और तुम उसे ग्रहण कर लोगे।

*

हां, जो गतिविधियां भगवान् के विरुद्ध हैं उनपर विजय पाने के लिये मेरी सहायता तुम्हारे साथ है।

*

मेरा जरा भी ऐसा इरादा नहीं है कि तुम्हें एक कोने में सरका दूं और अगर मुझे पूरा विश्वास न होता कि तुम इन कठिनाइयों को जीत सकते हो तो मैं उनका उल्लेख तक न करती। किसी से यह कहना बेकार है कि ''तुम्हारे अंदर ये-ये दोष हैं'' अगर कहने से उसे उन्हें ठीक करने में सहायता न मिलती हो।

*

आज सवेरे मुझे लग रहा था कि मुझे आपसे एक और प्रहार मिलेगा।

मुझे कोई कारण नहीं दीखता कि मैं तुम्हें क्यों प्रहार दूं—मैं केवल प्रहार देने के मजे के लिये प्रहार नहीं दिया करती, केवल तभी करती हूं जब वह एकदम अनिवार्य हो।

*

आखिर मेरा सारा जीवन आपको अर्पित है। मैं इसकी चिंता किये बिना कि मुझे क्या होता है, बिल्कुल अचंचल और स्थिर रहूंगा।

यह बहुत अच्छी बात है, अगर तुम इसमें यह विचार और जोड़ दो कि मैं तुम्हारी अपेक्षा तुम्हें ज्यादा अच्छी तरह जानती और तुमसे प्रेम करती हूं और मैं तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानती हूं कि तुम्हारे लिये क्या अच्छा है तो बात पूरी हो जायेगी।

*

हे आनंदमयी मां, मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसे लोग हैं जो सोचते हैं कि आप उन्हीं साधकों को बुलाती हैं जो दूर से आपकी कृपा को ग्रहण नहीं कर सकते और यह कि आप जिन्हें बार-बार बुलाती हैं यह उनकी दुर्बलता का लक्षण है।

लोग जो कुछ कहते या मानते हैं उसके बारे में चिंता न करो; वह प्रायः हमेशा ही अज्ञान-भरी मूढ़ताएं होती हैं।

मुझे हमेशा आश्चर्य होता है कि लोग यह कल्पना करते हैं कि वे मेरे कामों के कारण जानते हैं! मैं हर एक के साथ अलग तरह से व्यवहार करती हूं—उसकी अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार।

*

मुझे नहीं लगता कि आपको उस भाव या विचार के बारे में बतलाना बुरा हो जो मेरे अंदर चक्कर लगाता रहता है—चाहे यह भाव या विचार बुरा ही क्यों न हो।

इसके विपरीत, यह अच्छा है कि मुझे तुरंत उसके बारे में बतलाया जाये।

*

बंद दरवाजों को खोलने के लिये दोष स्वीकार करने से अच्छा कुछ नहीं है। **जो चीज मुझसे कहने में तुम्हें सबसे अधिक डर लगता है वह मुझे बतलाओ** तो तुम तुरंत अपने-आपको मेरे अधिक निकट पाओगे।

(४)

भगवान् अनंत और अनगिनत हैं, अतः उनकी ओर जाने के मार्ग भी अनंत और अनगिनत हैं और तुम्हारे भगवान् की ओर जाने के तरीके पर यह निर्भर है कि तुम

भगवान् से क्या पाते और उनके बारे में क्या जानते हो। भक्त प्रेम और मधुरता से भरे भगवान् को पाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति भगवान् को प्रज्ञा और ज्ञान से भरा पायेगा। जो डरता है वह डरावने भगवान् को पाता है और जो भगवान् पर विश्वास करता है वह भगवान् को मित्र और रक्षक के रूप में पाता है... और इस तरह संभावनाओं के अनंत प्रकार हैं।

*

किसी चीज से न डरो : भगवान् हमेशा हर सच्ची अभीप्सा का उत्तर देते हैं और उन्हें पूरे हृदय के साथ जो कुछ दिया जाये उसे लेने से कभी इंकार नहीं करते। इस तरह तुम इस निश्चिति की शांति में रह सकते हो कि तुम्हें भगवान् ने स्वीकार कर लिया है।

*

प्यारी मां, इस तमस् को कैसे वश में किया जाये जो मेरे ऊपर छा जाता है? मैं जीवित नहीं हूं मां, बस किसी तरह से मेरा अस्तित्व है। मां, मुझे कोई ऐसी तरकीब ढूंढ़ निकालनी चाहिये जो मुझे अन्य मार्ग पर लगा सके।

निश्चय ही इस प्रकार की मानसिक स्थिति में तुम भागवत उपस्थिति को पाने की आशा नहीं कर सकते। अपने हृदय को "अन्य मार्ग" देने के लिये उसे छिछोरी बातों से भरने की जगह तुम्हें बड़े हठ के साथ उसे हर चीज से खाली करना चाहिये, पूरी तरह सभी चीजों से खाली, चाहे वे छोटी हों या बड़ी—ताकि वह महान् रिक्तता की शक्ति 'अद्भुत उपस्थिति' को अपनी ओर खींच सके। तुम्हें उस परम कृपा का उसके योग्य मूल्य चुकाना सीखना चाहिये।

*

हर एक से बस उतनी ही मांग की जाती है जितना उसके पास है, जितना वह है, उससे अधिक नहीं पर उससे कम भी नहीं।

*

अपने अंदर रिक्तता पैदा करने की तुम्हारी चाह उचित है; क्योंकि तुम शीघ्र ही देख लोगे कि इस रिक्तता की गहराई में भगवान् हैं।

*

अगर मैं पुस्तकों से दिलासा पाता हूं तो मैं यह कैसे कह सकता हूं कि कोई चीज मुझे सहारा नहीं देती और मैं संपूर्ण रिक्तता द्वारा दिव्य जीवन में डूबा हुआ हूं ?

''संपूर्ण रिक्तता'' वास्तविकता की अपेक्षा रूपक अधिक है। अपने हृदय में अंधकारमय निद्रालुता की जगह उच्च अभीप्सा रखना ज्यादा अच्छा है।

*

जब मैं अपने अंदर देखने की कोशिश करता हूं तो मुझे लगता है कि वहां एक सत्ता है जो सभी चीजों से अनासक्त है। वहां एक महान् उदासीनता का राज है।

उदासीनता विकास की एक स्थिति है जिसे अंतरात्मा की पूर्ण समता की ओर बढ़ना चाहिये।

*

मां, मेरा जीवन शुष्क है। वह हमेशा ऐसा ही रहा है, मेरे जीवन की शुष्कता बराबर बढ़ती रहती है।

यह किन्हीं बाहरी परिस्थितियों पर नहीं, तुम्हारी भीतरी स्थिति पर निर्भर है। यह इसलिये होता है क्योंकि तुम अपने मन के बहुत ही छिछले स्तर पर रहते हो। तुम्हें अपनी चेतना में कुछ गहराई पाने की कोशिश करनी चाहिये और फिर वहीं निवास करना चाहिये।

*

निश्चय ही उदास और दुःखी होकर तुम भगवान् के पास नहीं पहुंचते। तुम्हें हमेशा अपने हृदय में दृढ़ श्रद्धा और विश्वास तथा मस्तिष्क में विजय की निश्चिति रखनी चाहिये। मेरे और तुम्हारे बीच जो छायाएं आती और मुझे तुम्हारी दृष्टि से छिपाती हैं उन्हें निकाल बाहर करो। निश्चिति के शुद्ध प्रकाश में ही तुम मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकते हो।

*

तुम जितने अधिक दुःखी होओगे और रोना-धोना करोगे उतने ही अधिक मुझसे दूर होते जाओगे। भगवान् दुःखी नहीं हैं और भगवान् को पाने के लिये तुम्हें समस्त दुःख और समस्त भावुक दुर्बलता को अपने से बहुत दूर फेंक देना होगा।

*

> *मधुर मां, मैं खुश हूं क्योंकि मैं तुमसे प्यार करता हूं और चूंकि तुमसे प्यार करने में मुझे कुछ कष्ट सहना पड़ता है।*

मुझे तुम्हारे कष्ट सहने की कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती। चैत्य प्रेम सदा शांत और आनंदमय होता है। यह तो प्राणिक प्रेम है जो नाटक करता और बिना कारण अपने-आपको दुःखी बनाता है। वस्तुतः, मैं आशा करती हूं कि जल्दी ही तुम अपने नजदीक सदा मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो जाओगे और वह तुम्हें सदा शांति और आनंद देगी।

*

> *मेरी प्यारी, प्यारी मां, तुम्हारे और मेरे बीच अलगाव का विचार डरावनी खाई के रूप में आता है। मैं संतुष्ट नहीं हूं; यह असंतोष कहां से आता है?*

प्राणिक सत्ता ही हमेशा विरोध करती और शिकायतें करती है। चैत्य सत्ता हमेशा अध्यवसाय और उत्साह के साथ ऐक्य को चरितार्थ तथ्य बनाने के लिये काम करती है, कभी शिकायत नहीं करती और उपलब्धि के मुहूर्त के आने की प्रतीक्षा करना जानती है।

*

प्राण हमेशा मांगता और मांगता ही रहता है और कभी संतुष्ट नहीं होता . . .। चैत्य, गहरे सच्चे भाव हमेशा संतुष्ट रहते हैं और कभी कुछ नहीं मांगते। चैत्य हमेशा मेरी सतत उपस्थिति का अनुभव करता है, मेरे प्रेम और शुभेच्छा के बारे में अभिज्ञ रहता है। वह हमेशा शांत, प्रसन्न और संतुष्ट रहता है।

*

खोजने में एक आनंद है, प्रतीक्षा करने में आनंद है, अभीप्सा करने में आनंद है, कम-से-कम उतना ही महान् जितना अधिकार कर लेने में है।

*

वस्तुतः शुद्ध और अनासक्त प्रेम की तरह और कोई चीज इतना अधिक सुख नहीं लाती।

*

सच्चा दिव्य प्रेम सभी झगड़ों से ऊपर है। वह एक अपरिवर्तनशील आनंद और शांति में पूर्ण ऐक्य का अनुभव है।

*

राधा भगवान् के प्रति प्रेममय उत्सर्ग का प्रतीक है।

*

हमेशा अपना संतुलन और अचंचल शांति बनाये रखो। बस इसी तरीके से तुम सच्चा ऐक्य पा सकते हो।

*

तुम्हारी अंतरात्मा के अंदर ही अचंचलता पायी जा सकती है और संसर्ग द्वारा वह तुम्हारी सारी सत्ता में फैल सकती है। वह स्थिर नहीं है क्योंकि अभीतक तुम्हारी समस्त सत्ता पर निश्चित रूप से अंतरात्मा का प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ है।

*

मैं भावुक न होने में कोई भूल नहीं देखती। सच्चे प्रेम, दिव्य प्रेम से भावुकता की अपेक्षा अधिक दूर कोई और चीज नहीं है।

*

सब कुछ हो जायेगा मां, लेकिन मेरा हृदय अधिकाधिक शुष्क और कठोर क्यों होता जा रहा है ?

क्या तुम्हें विश्वास है कि वह इतना शुष्क और कठोर है ? क्या तुम **भावुकता** के अभाव को "शुष्कता और कठोरता" नहीं कहते जो दुर्बल और छिछली भाव-प्रवणता है ?

सच्चा प्रेम अपनी तीव्रता में **बहुत गहरा** और **बहुत अचंचल** होता है। यह अवश्य हो सकता है कि वह अपने-आपको बाह्य उल्लास द्वारा प्रकट न करे।

*

प्रेम करना, कब्जा करना नहीं, **अपने-आपको देना** है।

*

मुझे किसी के लिये उग्र और बेरोक प्रेम का अनुभव नहीं होता। मुझे कोई भी आकर्षित नहीं करता। इसीलिये मैंने आपसे कहा था कि मैं सभी मानव भावनाओं को खोता जा रहा हूं।

इसे किसी तरह हानि नहीं कहा जा सकता; मैं इसे अमूल्य लाभ मानती हूं।

*

जो प्रेम काफी मजबूत हो वह व्यक्ति को प्रेमपात्र का दास बना सकता है।

तुम यहां प्राणिक प्रेम की बात कर रहे हो, निश्चय ही चैत्य प्रेम की नहीं और **दिव्य प्रेम** की तो कदापि नहीं।

*

मैं जिस व्यक्ति से प्रेम करता हूं वह मेरा है।

यह बहुत ही भद्दा प्रेम है, पूरी तरह अहंकार-भरा।

*

आश्रम किसी के साथ प्रेम करने का स्थान नहीं है। अगर तुम ऐसी मूढ़ता में जा गिरना चाहते हो तो तुम यह कहीं और कर सकते हो, यहां नहीं।

*

तुम्हें यह व्यक्ति या वह व्यक्ति आकर्षित नहीं करता . . . निम्न प्रकृति में शाश्वत नारी निम्न प्रकृति के शाश्वत नर को आकर्षित करती है और यह मन के अंदर भ्रम पैदा करता है। यह अंधकारमय, अर्ध-चेतन, अप्रकाशित प्रकृति की शक्तियों की महान् लीला है, और जैसे ही मनुष्य उसके अंधे और उग्र बगूले से छुटकारा पाता है तो शीघ्र ही वह देखता है कि समस्त कामनाएं और आकर्षण गायब हो गये, रह गयी केवल भगवान् के लिये तीव्र अभीप्सा।

*

प्यारी प्यारी मां, आज सारे दिन मैं बस उसी लाल गुलाब के बारे में सोचता रहा जिसका अर्थ है "भगवान् के लिये प्रेम में बदले हुए मानव आवेश"। मैं ठीक-ठीक जानना चाहता हूं कि मानव आवेश क्या हैं ?

'आवेश' से हमारा मतलब होता है सभी उग्र कामनाएं जो मनुष्य पर अधिकार कर लेती हैं और अंत में उसके जीवन पर शासन करती हैं—शराबी में शराब के लिये आवेश होता है, व्यभिचारी में स्त्रियों के लिये, जुआरी में जुए के लिये, इत्यादि। अगर कोई मनुष्य किसी दूसरे के लिये तीव्र तथा उद्दाम रूप से प्रेम का अनुभव करता है तो उसे आवेश कहा जाता है, यहां हम उसी प्रेम की बात कर रहे हैं। यह वह आवेगपूर्ण प्रेम है जिसे मनुष्य एक-दूसरे के लिये अनुभव करते हैं और इसे भगवान् के लिये प्रेम में बदल जाना चाहिये।

*

संवेदन प्राणिक क्षेत्र की, उस भाग की चीजें हैं जिसे शारीरिक-स्नायुओं द्वारा व्यक्त किया जाता है। संवेदन और भाव हृदय की विशेष चीजें हैं। हमेशा संवेदनों के अंदर न रहना और इन्हें पहनने के कपड़ों की तरह अपने बाहर की चीज समझना ज्यादा अच्छा है।

(५)

साहसी बनो और अपने बारे में इतना अधिक न सोचो। तुम दुःखी और असंतुष्ट इसलिये रहते हो क्योंकि तुम अपने छोटे-से अहंकार को अपनी तन्मयता का केंद्र बना लेते हो। सभी बीमारियों का बड़ा इलाज है अपने-आपको भूल जाना।

*

निश्चय ही अपने साथ बहुत ज्यादा व्यस्त न रहना हमेशा अधिक अच्छा होता है।

*

बहुत अधिक निंदा बहुत अधिक प्रशंसा से अधिक अच्छी नहीं होती। सच्ची विनय इसमें है कि अपने-आप अपना मूल्यांकन न करो और भगवान् को अपना सच्चा मूल्य निश्चित करने दो।

*

शायद मेरा दर्प इस विनय से ज्यादा अच्छा था जो मुझे इस तरह पटक देती है।

तुम्हें सावधानी के साथ एक से उसी तरह बचना चाहिये जैसे दूसरे से।

*

मेरी प्यारी, प्यारी मां, आत्म-निरीक्षण ने मुझे बहुत-सी चीजें बतलायी हैं। मेरे अंदर ईर्ष्या है जो मुझे अंधा बना देती है, मेरे अंदर एक और भाग बहुत ज्यादा गर्वीला है, वह मुझमें ऐसा ख्याल पैदा करता है मानों मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच चुका हूं।

तुमने बिल्कुल ठीक वर्णन किया है, लेकिन यह उपयोगी उसी क्षण से होता है जब तुम यह निश्चय करो कि आगे से ऐसा न रहेगा और तुम अपने इन दो महान् शत्रुओं—ईर्ष्या और गर्व—को जीतने के लिये प्रयास करोगे। हम पथ पर जितने आगे बढ़ते हैं और यह पाते हैं कि जो करना बाकी है उसकी तुलना में हमने कुछ भी नहीं किया है, उतने ही अधिक विनम्र हो जाते हैं।

*

जब तुम अंधे की तरह अनुभव करना शुरू करते हो तब तुम प्रकाश के लिये तैयार होते हो।

*

पहले मैं बार-बार अपने-आपसे कहा करता था : "मैं सबसे बड़े साधकों में से एक हूं," अब मैं कहता हूं "मैं कुछ भी नहीं हूं।"

सबसे अच्छी बात तो यह है कि अपने-आपको न तो बड़ा मानो न छोटा, न तो बहुत महत्त्वपूर्ण न बहुत नगण्य; क्योंकि हम अपने-आपमें कुछ भी नहीं हैं। हमें केवल वही होने की चाह करनी चाहिये जो भगवान् की इच्छा हमसे चाहती है।

*

बचपन से ही मेरे सारे अच्छे इरादे बिल्कुल बेकार रहे हैं। मेरी प्रकृति वैसी ही है जैसी बचपन में थी। मैं मुश्किल से ही यह आशा कर सकता हूं कि वह रूपांतरित होगी। और फिर क्या वह इतना कष्ट उठाकर प्रयास करने और रूपांतरित करने योग्य भी है ? यह ज्यादा अच्छा है कि इस व्यक्तिगत प्रकृति को अपना न माना जाये और अपने-आपको उसके साथ एक न करना ही निम्नतर और निश्चेतन प्रकृति का मुझे सबसे अच्छा उपचार मालूम होता है।

इनमें से कोई भी सच्ची वृत्ति नहीं है, जबतक तुम अपने-आपको रूपांतरित करने और रूपांतरित न करने के बीच डुलाते रहते हो—प्रगति के लिये प्रयास करने और क्लांति द्वारा सभी प्रयासों के प्रति उदासीन होने के बीच—तबतक सच्ची वृत्ति न आयेगी। तुम्हारे सभी अवलोकनों को तुम्हें एक ही निश्चिति की ओर ले जाना चाहिये, कि अपने-आपमें तुम कुछ भी नहीं हो और कुछ भी नहीं कर सकते। केवल भगवान् ही हमारे जीवन के जीवन, चेतना की चेतना, हमारे अंदर की शक्ति और क्षमता हैं। हमें अपने-आपको उन्हीं के सुपुर्द कर देना चाहिये, बिना कुछ भी बचाये दे देना चाहिये। और वे ही हमें वह बना देंगे जो वे हमें अपनी चरम प्रज्ञा में बनाना चाहते हैं।

(६)

मेरी प्यारी मधुर मां,

मैंने आपके वार्तालाप में पढ़ा है, 'केवल एकाग्रता तुम्हें इस लक्ष्य की ओर ले जायेगी', तो क्या हमें ध्यान का समय बढ़ा देना चाहिये ?

एकाग्रता का अर्थ ध्यान नहीं है। इसके विपरीत एकाग्रता तो एक ऐसी स्थिति है जिसमें तुम्हें हमेशा रहना चाहिये—बाहरी क्रिया-कलाप कुछ भी क्यों न हो। एकाग्रता से मेरा मतलब है समस्त ऊर्जा, समस्त इच्छा, समस्त अभीप्सा केवल भगवान् और हमारी चेतना में उनके सर्वांगीण रूप से चरितार्थ होने की ओर मुड़ी रहे।

*

ध्यान के निश्चित घंटे रखने की अपेक्षा निरंतर घनिष्ठ रूप से एकाग्र और संचित वृत्ति रखना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

*

ज्यादा अच्छा होता कि मैं अपनी कुरसी पर बैठकर पानी पर खेलती हुई चांदनी के बारे में सोचा करता।

और उससे भी अच्छा यह कि कुछ भी सोचे बिना भागवत कृपा पर ध्यान किया जाता।

*

अगर तुम अपना काम पूरी सचाई के साथ, भगवान् के चरणों में अर्पित भेंट के रूप में करो तो काम उतना ही लाभ पहुंचायेगा जितना ध्यान।

*

शायद यह मानने में मैंने भूल की कि मैं अपने-आपको आपके ज्यादा नजदीक, ज्यादा जल्दी तभी पाऊंगा यदि बहुत-से लोगों के साथ मिलने-जुलने और बहुत काम करने की अपेक्षा मैं अपनी सत्ता को विलीन कर दूं।

स्वयं मुझे यह अनुभव है कि तुम शारीरिक रूप से, अपने हाथों से, काम करते हुए भी पूरी तरह ध्यानस्थ और भगवान् के साथ ऐक्य में रह सकते हो। लेकिन स्वभावतः इसके लिये कुछ अभ्यास की जरूरत है। इसके लिये सबसे महत्त्वपूर्ण चीज जिससे बचना चाहिये वह है **व्यर्थ बक बक**। **काम** नहीं, **व्यर्थ बक बक** हमें भगवान् से दूर ले जाती है।

*

सब कुछ इसपर निर्भर नहीं है कि तुम क्या करते हो बल्कि निर्भर है काम के पीछे की वृत्ति पर।

*

अगर तुम पूरी सचाई के साथ भागवत इच्छा को व्यक्त करने के लिये कर्म करो तो बिना अपवाद के सभी कर्म निःस्वार्थ हो सकते हैं। लेकिन जबतक तुम उस स्थिति तक न पहुंचो, ऐसी क्रियाएं होती हैं जो भगवान् के साथ संपर्क में ज्यादा सहायक होती हैं।

*

यौगिक जीवन इसपर निर्भर नहीं होता कि तुम क्या करते हो, बल्कि इसपर कि तुम उसे कैसे करते हो। मेरा आशय यह है कि क्रिया की इतनी गिनती नहीं होती जितनी क्रिया के पीछे की मनोवृत्ति की, उस भाव की जिससे तुम कार्य करते हो। दर्प और घमंड के साथ लोग जिन्हें "बड़े काम" कहते हैं उन्हें करने की अपेक्षा, बर्तन धोने और खाना परोसने के समय अपने-आपको पूरी तरह, अहंकार के बिना देना जानने से तुम भगवान् के अधिक निकट आ सकते हो।

*

सबसे पहले मुझे यह जानना चाहिये कि क्या यह काम मेरे आपके कुछ नजदीक आने का साधन हो सकता है।

काम नहीं, चाहे कोई भी काम क्यों न हो, अपने-आपमें तुम्हें मेरे नजदीक नहीं ला सकता। महत्त्वपूर्ण है वह भाव जिसमें काम किया जाता है।

*

माताजी, यह कौन-सी सत्ता है जो आनंद के साथ आपके दिये हुए काम को स्वीकारती है, यह कौन-सी सत्ता है जो आपसे प्रेम करती है?

यह तुम्हारी सत्ता का वह भाग है जो चैत्य के प्रभाव में है और भागवत प्रेरणा की आज्ञा मानता है।

*

क्या मैं आपकी भरसक सेवा करता हूं ?

तुम मेरी भरसक सेवा करते हो, लेकिन तुम्हारा आगामी कल का भरसक आज के भरसक से ज्यादा अच्छा होना चाहिये।

*

भौतिक स्तर पर अनुशासन के बिना कुछ भी चरितार्थ करना असंभव है। अगर तुम्हारा हृदय सतत, नियमित रूप से धड़कने के कड़े अनुशासन के आगे न झुके तो तुम्हारा धरती पर जिंदा रहना संभव न होगा।

जिन लोगों ने महान् उपलब्धियां पायी हैं वे बहुत ज्यादा अनुशासन में रहनेवाले लोग थे।

*

ऐसी बात नहीं है कि आश्रम में बिना काम के लोगों की कमी है लेकिन जो बिना काम के रहते हैं वे निश्चय ही इस कारण बेकार हैं क्योंकि वे काम करना पसंद नहीं करते और इस बीमारी का उपचार करना बहुत कठिन है—इसका नाम है आलस्य . . .

*

शरीर सामान्यतः निरुत्साही है, लेकिन आपके लिये काम करने से वह 'तामसिक' न रहेगा।

हां, ठीक यही होगा।

*

मैं सदा अधिक सावधान रहने की कोशिश करता हूं लेकिन मेरे हाथ से चीजें खराब हो जाती हैं।

हां, यह प्रायः होता है; लेकिन तुम्हें शांति को अधिकाधिक अंदर बुलाना चाहिये और उसे अपने शरीर के कोषाणुओं में प्रवेश करने देना चाहिये; तब अनाड़ीपन के सुझावों का कोई असर न रहेगा।

*

मां, 'क' ने एक चीनी का कटोरा तोड़ दिया है।

कल तुम आश्चर्य कर रहे थे कि उससे कोई चीज नहीं टूटी, —स्वभावतः उसने आज कुछ तोड़ दिया। मानसिक रूपायण इसी तरह काम करते हैं इसलिये तुम्हें केवल वही चीजें कहनी चाहियें जिन्हें तुम चरितार्थ होते देखना चाहते हो।

*

जब तुम किसी के बारे में कुछ अच्छी बात नहीं सोच सकते तो उसके बारे में सोचने से बचो।

(७)

मुझे यह पता लगाना चाहिये कि इस सत्ता को अच्छे-से-अच्छी तरह कैसे आपके अर्पित कर सकता हूं।

हमेशा अपने अंदर अभीप्सा और शुद्धि की आग को जलता रहने दो जिसे मैंने वहां सुलगाया है।

*

अध्यवसाय के बिना आदमी कभी कुछ नहीं पा सकता।

कोई चीज कठिन है, इसका यह मतलब तो नहीं है कि तुम्हें उसे छोड़ देना चाहिये। इसके विपरीत, चीज जितनी कठिन हो उतना ही उसे सफलता के साथ पूरा करने का तुम्हारे अंदर संकल्प होना चाहिये।

सभी चीजों में सबसे कठिन है भागवत चेतना को जड़ भौतिक जगत् में उतार लाना। तो क्या इस कारण प्रयास छोड़ देना चाहिये ?

*

हमारा मार्ग **बहुत लंबा है** और यह अनिवार्य है कि अपने-आपसे पग-पग पर यह पूछे बिना कि हम आगे बढ़ रहे हैं या नहीं शांति के साथ आगे बढ़ा जाये।

*

अगर तुम डटे रहो तो निश्चय ही सफल होओगे। रही बात मेरी सहायता की, तो तुम विश्वस्त रहो, वह हमेशा तुम्हारे साथ रहती है और तुम्हारी पुकार कभी व्यर्थ नहीं जाती।

*

अगर तुम उसे करने का निश्चय कर लो तो मेरी सहायता तुम्हारे प्रयास को सहारा देने के लिये रहेगी।

*

क्षुब्ध होने में तुम्हारी भूल होगी; कोई चीज मनमाने ढंग से नहीं की जाती और चीजें तभी चरितार्थ होती हैं जब वे किसी आंतरिक सत्य की अभिव्यक्ति हों।

*

हां, तुम्हारा मन चीजों के बारे में बहुत जल्दी उत्तेजित हो उठता है। वह रूपायण बनाता है, (वह जोर से सोचता है कि यह ऐसा होना चाहिये, वह और तरह होना चाहिये आदि) और बिना जाने अपने रूपायणों से इस तरह चिपट जाता है कि अगर उनका विरोध किया जाये तो उसे धक्का लगता है और पीड़ा होती है। उसे अचंचल बनना और स्थिर होने की आदत डालनी चाहिये।

*

भागवत कृपा पर श्रद्धा रखो और मुक्ति की घड़ी नजदीक आ जायेगी।

*

यह बात बिल्कुल मिथ्या है कि कोई भी मानव चीज मानव अशुभ को दूर कर सकती है।

केवल भगवान् ही स्वस्थ कर सकते हैं। हमें केवल **उन्हीं की** सहायता और उन्हीं का सहारा खोजना चाहिये। हमें **केवल उन्हीं** पर अपनी सारी आशा लगानी चाहिये।

*

मेरी समस्त शक्ति तुम्हारी सहायता करने के लिये तुम्हारे साथ है; तुम अपने-आपको स्थिर विश्वास के साथ खोलो, भागवत कृपा पर विश्वास रखो और तुम अपनी सभी कठिनाइयों को पार कर जाओगे।

*

चिंता न करो। बस अपने अंदर सदा चीजों को अच्छी तरह करने का संकल्प बनाये रखो।

*

दुर्बल होने के विचार को ही क्यों स्वीकार किया जाये। यह चीज बुरी है।

*

हां, स्थिर और धैर्यपूर्ण विश्वास में ही विजय की निश्चिति रहती है।

*

मेरे अंदर भगवान् पर विश्वास की कमी नहीं है लेकिन शायद यह मेरा अहंकार है जो बिना रुके कहता है कि मैं वह नहीं कर सकता जो भगवान् मुझसे करवाना चाहते हैं।

हां, और जैसे ही अहंकार समर्पण करता और अपनी गद्दी छोड़ता है तो यह भय गायब हो जाता है और उसकी जगह लेता है एक निश्चल विश्वास कि कुछ भी असंभव नहीं है।

*

मैं बार-बार दोहराता हूं—"तुम सभी कठिनाइयों को जीत लोगे" लेकिन मेरी सारी सत्ता इसे स्वीकार नहीं करती।

अगर तुम इसे काफी निश्चितता के साथ दोहराओ तो हठी भाग को भी अंततः विश्वास हो जायेगा।

*

तुम्हें आशा है, यह ठीक है, आशा ही सुखद भविष्यों का निर्माण करती है।

*

मैं अपना भूतकाल पूरी तरह भूल चुका हूं।

हां, व्यक्ति को अपना भूतकाल भूल जाना चाहिये।

*

लेकिन अपने-आपको इतनी अधिक यातना क्यों देते हो? शांत रहो, क्षुब्ध न होओ, याद रखो कि हमारे जीवन की परिस्थितियां बिल्कुल सामान्य परिस्थितियां नहीं हैं। भागवत शक्ति पर भरोसा रखो कि वह सब कुछ व्यवस्थित कर दे और जो मानव यंत्र प्रभु के प्रभाव की ओर खुले हैं उनके द्वारा सब कुछ कर दे।

*

मेरे साथ रहो मां, तुम्हारे बिना मैं दुर्बल हूं, बहुत दुर्बल और भीरु।

तुम्हारे अंदर भय बिल्कुल न होना चाहिये, विजय उसीकी होती है जो भयहीन है; तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करने और तुम्हारी रक्षा करने के लिये मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

*

तुम्हारे अंदर भय बिल्कुल न होना चाहिये—भय बुरा सलाहकार है। वह चुंबक की तरह काम करता है और हम जिससे डरते हैं उसे आकर्षित करता है। इसके विपरीत, तुम्हें यह स्थिर निश्चिति रखनी चाहिये कि देर या सवेर सब कुछ ठीक हो जायेगा।

*

निराशावादी होना कभी उपयोगी नहीं रहा है। वह अपनी ओर ठीक उसी चीज को खींचता है जिससे वह डरता है। इसके विपरीत, तुम्हें सभी निराशा-भरे विचारों को खदेड़ देना चाहिये और अपने-आपको केवल वही सोचने के लिये बाधित करना चाहिये जो तुम चाहते हो कि हो।

(८)

मेरी आराध्या मां,

श्रीअरविंद के पिछले पत्र ने मुझे बहुत कुछ सोचने के लिये बाधित किया—विरोधी शक्ति की क्रिया का सबसे अधिक स्पष्ट चिह्न—मैं अपने अंदर और औरों में भी, यही तो देखना चाहता हूं।

पहला चिह्न : तुम श्रीअरविंद से और मुझसे **बहुत दूरी** का अनुभव करते हो।

दूसरा चिह्न : तुम विश्वास खो बैठते हो, आलोचना करना शुरू करते हो और संतुष्ट नहीं रहते।

तीसरा चिह्न : तुम विद्रोह करते और मिथ्यात्व में डूब जाते हो।

*

दुःख मत करो। एक ही लड़ाई को बार-बार जीतना होता है, विशेष रूप से तब जब लड़ाई विरोधी शक्तियों से लड़ी जा रही हो। इसलिये तुम्हें धैर्य से लैस होना चाहिये और परम विजय पर विश्वास रखना चाहिये।

*

मेरी प्यारी मां,

क्या मानव मध्यस्थ के बिना विरोधी शक्तियां पार्थिव विकास के विरुद्ध प्रभावी रूप से कार्य कर सकती हैं?

यह असंभव नहीं है, लेकिन उनके लिये मानव यंत्र को पा लेना ज्यादा आसान है।

*

विश्वस्त रहना और जीवित-जाग्रत् तथा स्थायी श्रद्धा रखना अच्छा है। लेकिन विरोधी शक्तियों के मामले में सारे समय जाग्रत् और सच्चा-निष्कपट होना अच्छा है।

*

मां, स्त्रियों के बारे में मुझे क्या मनोवृत्ति अपनानी चाहिये ? मेरे अंदर कोई भाग है जो मुझे 'क' की ओर जाने के लिये प्रेरित करता है और यह हठी भाग मुझे सलाह देता है कि छोटे-बड़े आकर्षण को जीतने का सबसे अच्छा साधन यही है।

यह बचकानी बात है। यह सदा विरोधी शक्तियों का वही समान जाल है। अपनी सलाह चालाकी से विकृत रूप में देने की जगह अगर वे चीजों के बारे में उस तरह कहें जैसी वे हैं तो चीज कुछ इस तरह होगी : "शराबी होने से बचने के लिये शराब पिये चलो" या इससे भी अच्छा, "हत्यारा होने से बचने के लिये हत्या करते जाओ !"

*

तुम्हें कभी भयभीत न होना चाहिये और अगर विरोधी शक्तियां अपने-आपको तुम्हारी निम्न प्रकृति में जमा देना चाहें तो तुम्हें मुझे अपनी सहायता के लिये बुलाकर, उन्हें निकाल बाहर करना चाहिये।

*

मां, पिछली रात मैंने दुःस्वप्न देखा था और मैं डर-सा गया।

तुम्हें कभी डरना न चाहिये। नींद में भी तुम्हें मुझे याद रख सकना चाहिये और अगर कोई खतरा हो तो अपनी सहायता के लिये मुझे बुलाना चाहिये। तुम देखोगे कि दुःस्वप्न गायब हो जाते हैं।

*

मुझे ऐसा लगा कि मेरे कमरे में कोई था जो मेरा खून चूसना चाहता था। मैं अपना बायां हाथ उसकी तरफ बढ़ाना चाहता था ताकि वह चूस सके।

अगर तुम विरोधी शक्तियों को तृप्त करना शुरू करोगे तो वे तुमसे अधिकाधिक खींचना शुरू करेंगी और कभी संतुष्ट न होंगी।

*

'ख' ने मुझसे कहा कि वह बहुत बार विरोधी शक्तियों का यंत्र बन जाता है।

इसमें से अधिकांश तो **उसकी अपनी कल्पना** है। अगर वह इन तथाकथित प्राणिक सत्ताओं के बारे में कम सोचे तो उनमें से अधिकतर तुरंत विलीन हो जायेंगी।

*

अगर मैं सभी परिस्थितियों के सामने शांत रह सकूं तो मैं विश्वस्त रह सकता हूं कि विरोधी शक्तियां मुझसे दूर रहेंगी।

हां, इस शर्त पर कि यह ''शांति'' **कठोरता** की नहीं, सचेतन शक्ति की हो।

*

मां, मैं पूरी तरह समझ नहीं पाया कि ''कठोरता'' की शांति का क्या मतलब है?

मैं उस शांति के बारे में कह रही हूं जिसे वे लोग अनुभव करते हैं जो जगत् के दुर्भाग्य और औरों के कष्ट के बारे में बिल्कुल संज्ञाहीन और उदासीन रहते हैं, जिन्होंने अपने हृदय को पत्थर में बदल लिया है और अनुकंपा के लिये असमर्थ होते हैं।

(९)

अगर मैं अपने-आपको इस बाहरी जगत् से एकदम अलग कर सकूं, अगर मैं बिल्कुल अकेला रह सकूं तो मैं इस अवसाद को पूरी तरह वश में कर सकूंगा, जिसे अभीतक मैं झटक तक नहीं सकता।

यह बिल्कुल ठीक नहीं है; सभी एकांतवासियों, सभी तपस्वियों का अनुभव निर्विवाद रूप से इसके विपरीत प्रमाणित करता है, कठिनाई अपने अंदर से, स्वयं अपनी प्रकृति से आती है और तुम जहां भी जाओ उसे अपने साथ लिये जाते हो, तुम चाहे जैसी परिस्थितियों में क्यों न हो उनमें से बाहर निकलने का बस एक ही उपाय है—वह है कठिनाई पर विजय पाना, अपनी निम्न प्रकृति को जीतना। क्या यह अकेले में करने की अपेक्षा, जहां मार्ग पर प्रकाश डालनेवाला, अनिश्चित पगों को राह दिखानेवाला कोई न हो, यहां ज्यादा आसान नहीं है जहां ठोस और साकार सहायता प्राप्त है?

*

मेरी प्यारी अम्मी;

मैं शुद्ध जीवन बिताना चाहता हूं और दिव्य जीवन की ओर प्रगति करने के लिये मैं जो कुछ कर सकता हूं सब करूंगा।

यह इतना बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है, बल्कि सबसे बढ़कर भीतरी स्थिति पर निर्भर है।

शुद्ध सत्ता हमेशा सभी परिस्थितियों में शुद्ध रहती है।

*

आप स्वीकार करेंगी कि औरों के साथ रहते हुए हम उनसे कम या ज्यादा प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

नहीं, यह गलत है ! यह सामान्य जीवन के लिये सच है पर योगी के लिये नहीं।

*

मधुर मां,

अगर मेरा संग औरों के लिये अच्छा नहीं है तो क्या मुझे अपने-आपको सबसे अलग न कर लेना चाहिये ?

बहुत ज्यादा अच्छा होगा कि तुम अपने-आपको अपनी सामान्य चेतना में जा गिरने की प्रवृत्ति से अलग कर लो।

*

अगर मैं इस विचार पर ध्यान करूं कि अमुक वस्तु में—वह भले कुछ भी क्यों न हो—और मुझमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि भगवान् उसमें भी उतने ही उपस्थित हैं जितने मुझमें तो क्या परिणाम आयेगा ?

संभवतः संकटपूर्ण परिणाम; यानी सब प्रकार के प्रभावों के प्रति निष्क्रिय उद्घाटन, जिनमें से अधिकतर मुश्किल से प्रशंसनीय होंगे।

*

योगी को पूर्ण समता के साथ सब तरह का मल स्वीकार कर सकना और हजम कर सकना चाहिये।

क्यों ? मैं इसका कोई कारण नहीं देखती, मल के प्रभाव से असंक्राम्य रहने के लिये जितने प्रयास की जरूरत होगी उसका उपयोग कहीं और अधिक लाभप्रद रूप से किया जा सकता है।

*

प्यारी, प्यारी मां,

आप मुझे बहुत सुखी बना देती हैं, मैं सबको उतना ही सुखी देखना चाहूंगा जितना मैं हूं।

निश्चय ही, यह बहुत अच्छे भाव दिखलाता है, परंतु इन भावों के साथ कुछ मात्रा में ज्ञान भी जोड़ना चाहिये क्योंकि औरों तक शांति और सुख का संचार करना इतना आसान नहीं है, और जबतक तुम्हारे अंदर **एक निष्कंप शांति और सुख** न हो, इसे औरों तक पहुंचाने से बढ़कर तुम्हारे पास जो कुछ है उसे भी खोने का संकट रहता है।

*

मेरा हृदय दूसरों के लिये अनुकंपा से भरा है और मैं उनके दुःख-दर्द के बारे में संवेदनहीन नहीं हूं लेकिन अगर मैं उनके कष्ट में उनकी सहायता न कर सकूं तो इस तरह अनुभव करने का लाभ ही क्या है ?

जबतक तुम इन चीजों को अपने अंदर न जीत लो और अपनी भावनाओं और प्रतिक्रियाओं के स्वामी न बन जाओ तबतक औरों को अपने दुःख-दर्द और पीड़ा पर विजय पाने में सहायता नहीं कर सकते।

*

दूसरे क्या करते और क्या नहीं करते, इसकी आलोचना करने की जगह तुम्हें स्वयं अपने हृदय को शुद्ध करने के लिये काम करना चाहिये।

*

हां, तुम्हें छिछले, निराधार फैसलों पर विश्वास न करना चाहिये।

*

ठीक जब तुम निर्दोष हो तो तुम्हें दुर्व्यवहार के बारे में एकदम उदासीन होना चाहिये क्योंकि तब तुम्हारे अंदर कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसके लिये तुम अपने-आपको दोष दो और अपने-आपको दिलासा देने के लिये तुम्हारे पास अपने अंतःकरण की स्वीकृति होती है।

*

तुम्हारे लिये यह बहुत ज्यादा अच्छा होगा कि तुम अपने-आपको इसमें व्यस्त न रखो कि दूसरे क्या कहते हैं।

*

निश्चय ही, जिनमें साहस है, उनके अंदर कुछ साहस उनके लिये भी होना चाहिये जो साहसहीन हैं।

*

मैं लगभग तैश में आ गया था और मैंने प्रयास से अपने-आपको संयत रखा।

अपने क्रोध को वश में रखना बहुत अच्छी बात है, भले यह ऐसी चीजें सीखने के लिये ही हो, औरों के साथ ये संपर्क उपयोगी होते हैं।

*

मैं इन झगड़ों से बढ़कर मूर्खताभरी और कोई चीज नहीं जानती जिनमें सभी गलत होते हैं। और क्या चिढ़े हुए क्षुब्ध **आत्मसम्मान** से बढ़कर कोई हास्यास्पद चीज भी है ?

*

जब तुम चुप रहते हो तो कोई गलत चीज करने का खतरा नहीं रहता जब कि बोलने पर दस में से नौ बार कोई मूढ़ता-भरी बात कहने की संभावना रहती है।

*

झूठ बोलना कभी अच्छा नहीं होता, लेकिन यहां उसके परिणाम संकटपूर्ण हुए बिना नहीं रह सकते, क्योंकि मिथ्यात्व उसका अपना प्रतीक है जो भगवान् के सत्य के कार्य का विरोध करना चाहता है।

(१०)

स्वास्थ्य एक गहरे सामंजस्य की बाहरी अभिव्यक्ति है। तुम्हें उसपर गर्व करना चाहिये। उससे घृणा नहीं।

*

हमेशा यह कल्पना क्यों की जाये कि हम बीमार हैं या होनेवाले हैं, और इस तरह अपने-आपको सब तरह के बुरे सुझावों की ओर खोला जाये ? बीमार होने का कोई कारण नहीं है और मैं कोई कारण नहीं देखती कि तुम क्यों बीमार होगे।

*

प्यारी माताजी,

मुझे सर्दी हो गयी है, क्या मैं रोज की तरह स्नान करूं ?

जो तुम्हें पसंद हो करो, इसका बहुत महत्त्व नहीं है लेकिन जो चीज महत्त्वपूर्ण है वह है भय को उठा फेंकना। भय ही तुम्हें बीमार करता है और भय के कारण ही रोग-मुक्त होना इतना कठिन होता है। समस्त भय को जीतना चाहिये और उसके स्थान पर भागवत कृपा पर पूर्ण विश्वास को लाना चाहिये।

*

पिछले कई दिनों से मेरी गर्दन में दर्द हो रहा है। हमारे औषधालय से जो दवाइयां मिलती हैं उनसे मैं तंग आ गया हूं। मैं रोग-मुक्त होने के लिये केवल आपकी इच्छा-शक्ति पर ही निर्भर हूं।

दवाइयों के बिना काम चलाने के लिये तुम्हारे अंदर दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये।

*

तुम्हें कभी आशा या श्रद्धा न खोनी चाहिये—कोई चीज असाध्य नहीं है और भगवान् की शक्ति पर कोई हदबंदी नहीं की जा सकती।

*

तुम्हें आंतरिक शांति को पाना और हमेशा बनाये रखना चाहिये। यह शांति जो शक्ति लाती है उसमें ये सब छोटी-मोटी विपत्तियां गायब हो जायेंगी।

*

माताजी,

भौतिक शरीर की आंतरिक वृत्ति है विघटित होने की, और मन इसमें सहायता करता है। आप मेरे शरीर के विघटन की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को कैसे रोक सकेंगी ?

उसे अपने घटक तत्त्वों की अमरता के बारे में अभिज्ञ होना चाहिये (जिस तथ्य को विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है) तब उसे चैत्य सत्ता के प्रभाव और उसकी इच्छा की अधीनता स्वीकार करनी चाहिये, जो स्वभावतः अमर है।

*

प्यारी मां,

क्या आप यह स्वीकार करती हैं कि भोजन के बिना काम चलाना संभव है ?

भोजन आवश्यक न रहे इसके लिये जरूरी है कि शरीर का पूर्ण रूपांतर हो और वह उसपर अभी नियंत्रण करनेवाले किसी भी विधान के आधीन न रहे।

*

मेरी समझ में नहीं आता कि लोगों में भूख के कारण अपराध-बोध क्यों होता है। अगर भोजन तैयार किया गया है तो वह खाने के लिये है।

*

मेरी प्यारी, प्यारी मां,
मेरा ख्याल है कि इस तरह के भोज से बचना ही अच्छा होगा।

स्पष्ट है। यह एक ऐसा वातावरण बना देता है जिसमें भोजन प्रधान होता है और यह आध्यात्मिक जीवन के लिये बहुत सहायक नहीं होता।

(११)

प्राण कामनाओं और ऊर्जाओं, आवेगों और प्रेरणाओं का, भीरुता और साथ ही शौर्य का भी स्थान है—उसमें लगाम लगाने का अर्थ है इन सबको भागवत इच्छा की ओर मोड़ना और उस इच्छा के आधीन करना।

*

प्राणिक सत्ता केवल शक्ति चाहती है—भौतिक आधिपत्य और पार्थिव शक्ति।

यह भी गलत है। प्राणिक सत्ता का उच्चतर भाग—मानसिक सत्ता के उच्चतर भाग की तरह—भगवान् के लिये अभीप्सा करता है और उनसे दूर होने पर कष्ट पाता है।

*

मेरी बौद्धिक वातावरण में जीने की कामना से क्या यह नहीं लगता कि मेरा मन प्राण पर शासन कर सकता है ?

नहीं, इससे केवल यही मालूम होता है कि तुम्हारी चेतना में मन प्राण की अपेक्षा अधिक स्थान लेता है। मैं जिसे प्राण पर मन का आधिपत्य कहती हूं वह तब होता है जब प्राण कोई पहल नहीं करता, किसी ऐसी प्रेरणा को स्वीकार नहीं करता जिसे पहले मन की स्वीकृति प्राप्त न हुई हो, जब कोई ऐसी कामना या ऐसा आवेग नहीं उठता जिसे मन अच्छा न बतलाये और अगर कोई कामना, आवेश या उग्रता का आवेग

बाहर से आये तो इतना काफी होता है कि मन हस्तक्षेप करे ताकि वह तुरंत नियंत्रित हो जाये।

*

प्यारी, प्यारी मां,

जैसे-जैसे मेरा शरीर दुर्बल होता जायेगा, प्राणिक कामनाएं धीरे-धीरे गायब हो जायेंगी, है न ?

हर्गिज नहीं; बल्कि इसके एकदम विपरीत। प्राण की कामनाओं को जीतने के लिये तुम्हारे अंदर बढ़िया भौतिक संतुलन और अच्छा स्वास्थ्य होना जरूरी है।

*

प्राणिक जगत् में आकर्षण और विकर्षण एक ही चीज के चित और पट हैं और हमेशा आसक्ति के सूचक होते हैं। तुम्हें आग्रह के साथ अपने विचार को उसके विषय से दूर करना चाहिये।

*

क्या हमें सदा ऐसी परिस्थिति से बचना चाहिये जो अवांछनीय प्रेरणाओं की सहायक हो, या यह ज्यादा अच्छा है कि परिस्थिति को स्वीकार करके उसका स्वामी बनने की कोशिश की जाये ?

हमेशा प्रलोभन से बचना ज्यादा अच्छा होता है।

*

तुम्हें केवल शांत विश्वास के साथ डटे रहना चाहिये और प्राण हड़ताल करना भूल जायेगा।

*

अवसाद हमेशा विवेकहीन होता है और तुम्हें कहीं नहीं ले जाता। वह योग का सबसे सूक्ष्म शत्रु है।

(१२)

आपने अपने 'वार्तालाप' में कहा है कि बुद्धि सत्य ज्ञान और यहां नीचे उसकी चरितार्थता के बीच एक मध्यस्थ की तरह है। क्या इसका यह मतलब नहीं हुआ कि बौद्धिक प्रशिक्षण सत्य ज्ञान को पाने के लिये मन से ऊपर उठने के लिये अनिवार्य है ?

अच्छा मानसिक यंत्र तैयार करने के लिये, जो विशाल, नमनीय और समृद्ध हो, बौद्धिक शिक्षण अनिवार्य है लेकिन उसका कार्य बस वहीं पर समाप्त हो जाता है।

मन से ऊपर उठने में वह सहायक होने की जगह अधिकतर बाधक ही होता है क्योंकि साधारणतः परिष्कृत और शिक्षित मन अपने-आपसे संतुष्ट रहता है और ऐसा विरल ही होता है कि वह अपने-आपको चुप करने की कोशिश करे ताकि उसका अतिक्रमण किया जा सके।

*

यह एक उड़ती हुई प्रेरणा है जो मुझे बहुत अधिक अध्ययन करने के लिये प्रेरित करती है।

जबतक तुम्हें अपने-आपको गढ़ने की, अपने मस्तिष्क की रचना करने की जरूरत है तबतक तुम अध्ययन करने की इस सबल प्रेरणा का अनुभव करोगे, लेकिन जब मस्तिष्क ठीक रूप ले ले तो धीरे-धीरे अध्ययन की रुचि भी जाती रहेगी।

*

मेरी प्यारी मां,

मैं तत्त्वमीमांसा और नीति-शास्त्र का बाकायदा अध्ययन करना चाहता हूं। मैं 'लाइफ डिवाइन' पढ़ने की भी सोच रहा हूं।

अगर तुम तत्त्वज्ञान और नीतिशास्त्र पढ़ो तो अपने मस्तिष्क को थोड़ा व्यायाम देने के लिये **मानसिक जिम्नास्टिक्स** के रूप में पढ़ो लेकिन इस तथ्य को कभी आंख से ओझल न होने दो कि **यह ज्ञान का स्रोत नहीं है** और इस तरीके से आदमी ज्ञान के नजदीक नहीं पहुंच सकता। स्वभावतः 'लाइफ डिवाइन' के लिये यह बात नहीं है . . .

*

उच्चतम प्रेरणाओं का स्रोत मौन में है।

*

हमारा लक्ष्य है भगवान् के साथ तादात्म्य। पता नहीं क्यों मैं यह या वह जानने की कोशिश में लगा रहता हूं।

स्वयं काम महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि वह जिस भाव से किया जाता है वह महत्त्वपूर्ण है। अपने मन को पूरी तरह अचंचल रखना कठिन है, अतः ज्यादा अच्छा यह है कि उसे मूर्खता-भरे विचारों या अस्वस्थ स्वप्नों में व्यस्त रखने की जगह पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त रखा जाये।

*

मैं यह देखना चाहता हूं कि अगर मैं पढ़ना बिल्कुल बंद कर दूं तो क्या होगा।

मन को हमेशा एक ही चीज में लगाये रखना कठिन है। अगर उसे व्यस्त रखने के लिये काफी काम न दिया जाये तो वह बेचैन होने लगता है। अतः मेरे ख्याल से पढ़ना एकदम बंद कर देने की जगह अपनी किताबें सावधानी से चुनना ज्यादा अच्छा है।

*

मैं मोटर-कार के बारे में एक पुस्तक पढ़ रहा हूं लेकिन पढ़ता हूं तेजी से; जहां जटिल यंत्र-विन्यास का वर्णन होता है उसे लांघ जाता हूं।

अगर तुम कोई चीज पूरी तरह से, सचेतन रूप से और उसके समस्त ब्योरे के साथ न सीखना चाहो तो उसे शुरू न करना ही ज्यादा अच्छा है। यह सोचना बहुत बड़ी भूल है कि थोड़ा-बहुत छिछला और अपूर्ण ज्ञान किसी काम का हो सकता है। यह बिल्कुल बेकार है सिवाय इसके कि लोगों को ज्यादा गर्वीला बना दे क्योंकि वे कल्पना कर लेते हैं कि वे जानते हैं जब कि वास्तव में जानते कुछ भी नहीं।

*

बच्चे के लिये लाभदायक और उपयोगी खेल-कूद चुनना कठिन है। इसमें बहुत

सोच-विचार और मनन-चिंतन की जरूरत होती है और आदमी बिना सोचे-समझे जो कुछ करता है उसके कुछ दुःखद परिणाम हो सकते हैं।

*

मैं मोलिएर पढ़ रहा हूं। उसकी कृतियां हल्की-फुल्की हैं।

उतनी हल्की नहीं जितनी मालूम होती हैं, मोलिएर की कामदियों (प्रहसनों) में गहरा और बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण अवलोकन होता है।

*

मैंने अभी सालाम्बो[1] समाप्त किया है। मुझे उसमें कोई आदर्श चरित्र नहीं मिला।

यह विचारों की पुस्तक नहीं है; यह केवल अपने रूप, विधान और शैली के लिये विलक्षण है।

*

जब हम कोई गंदी पुस्तक, एक अश्लील उपन्यास पढ़ते हैं तो क्या हमारा प्राण मन के द्वारा उसमें मजा नहीं लेता?

मन में भी विकृतियां होती हैं। एक दरिद्र और अपरिष्कृत प्राण ही ऐसी चीजों में मजा ले सकता है!

(१३)

विद्यार्थी कक्षा में इतनी अधिक बातचीत करते हैं कि मुझे प्रायः उन्हें डांटना पड़ता है।

कठोरता के साथ नहीं **आत्म संयम** द्वारा बच्चों को नियंत्रित किया जाता है।

*

[1] फ्लोबेर लिखित उपन्यास।

मुझे तुमसे कहना चाहिये कि अगर कोई अध्यापक चाहता है कि उसका आदर किया जाये तो स्वयं उसे अपने-आप **आदरणीय** होना चाहिये। 'क' अकेला नहीं है जो कहता है कि तुम आज्ञापालन करवाने के लिये उग्रता का उपयोग करते हो; इससे अधिक अनादरणीय कुछ भी नहीं है। पहले तुम्हें अपने ऊपर नियंत्रण करना चाहिये और अपनी इच्छा आरोपित करने के लिये पशु-बल का उपयोग कभी न करना चाहिये।

*

मैंने हमेशा यही सोचा है कि अध्यापक के चरित्र की कोई चीज विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के लिये जिम्मेदार होती है।

*

मैं आशा करता हूं कि आप मुझे कुछ निश्चित आदेश देंगी जो मुझे अपनी कक्षा में व्यवस्था रखने में सहायता देगा।

सबसे महत्त्वपूर्ण है कि तुम आत्म-संयम रखो और कभी क्रोध न करो। अगर तुम्हें अपने ऊपर अधिकार नहीं हो तो तुम औरों पर नियंत्रण करने की आशा कैसे कर सकते हो, और विशेषकर बच्चों पर जो तुरंत जान लेते हैं कि कब व्यक्ति का अपने ऊपर संयम नहीं होता।

*

अपने पास किताबें होते हुए भी बच्चे अपना पाठ नहीं सीख पाते।

छोटे बच्चों के साथ तुम्हारे अंदर बहुत ज्यादा धैर्य होना चाहिये और एक ही चीज को तरह-तरह से समझाते हुए बार-बार दुहराना पड़ता है। चीज धीरे-धीरे उनके मन में घुसती है।

पत्रमाला ७

पत्रमाला ७

[ये पत्र एक ऐसे साधक को लिखे गये थे जो उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक में श्रीअरविंदाश्रम में दांतों का डॉक्टर था और १९३८ से १९५० तक श्रीअरविंद की व्यक्तिगत सेवा में रहा था।]

समर्पण के बारे में बात करना आसान, बहुत आसान है। समर्पण के बारे में, उसकी सभी जटिलताओं के साथ, सोचना भी इतना आसान नहीं, जरा भी आसान नहीं है।

लेकिन सच्चे आत्म-समर्पण के आरंभ को भी सिद्ध कर पाना—ओह! कितना कठिन है मेरी मां।

मैं जानता हूं मेरे अंदर बहुत-सी गलत चीजें हैं; लेकिन कोई खास आधारभूत गड़बड़ भी होनी चाहिये। मां, वह क्या है?

तुम्हारे लिये कोई विशेष बात नहीं है। एक ही कठिनाई सभी मनुष्यों में मौजूद है—भौतिक मन का घमंड और उसका अंधापन।

८ जुलाई १९३५

एक पुरानी हिंदू मान्यता है कि हमें उत्तर की ओर सिर करके नहीं लेटना या सोना चाहिये। क्या इसका कोई वास्तविक अर्थ है, मां?

इस विषय में बहुत-सी बातें कही जा चुकी हैं, लेकिन जहांतक मेरा अनुभव है, मैं इस मान्यता को बहुत महत्त्व नहीं देती।

२४ मार्च १९३६

एक प्रार्थना :

"हे प्रभो, मेरी समस्त सत्ता को जगा ताकि वह तेरे लिये आवश्यक यंत्र, पूर्ण दास हो सके।"

२७ मार्च १९३६

क्या 'क' ने आपसे बात की है कि उसने मेरी जन्मपत्री में शनि का प्रभाव देखा है। मैं अपने जन्मदिन पर इस बारे में पूछना भूल गया।

हां, उसने मुझसे इस विषय में बात की थी। लेकिन तुम्हें जानना चाहिये कि योग हमें जन्मपत्री की अधीनता से मुक्त कर देता है। जन्मपत्री हमें भौतिक जगत् के संबंध में हमारी क्या स्थिति है, यह बतलाती है, लेकिन साधना द्वारा हम उस जगत् की दासता से छुटकारा पा लेते हैं।

१४ सितंबर १९३६

मैं जानता हूं कि आजकल मेरे पास जो काम आता है वह बहुत कम होता है; फिर भी मैं उसका विवरण देता रहता हूं क्योंकि एक बार आपने ऐसी इच्छा प्रकट की थी।

हां, मैं तुमसे तुम्हारी कापी पाना पसंद करती हूं। यह भौतिक रूप से संपर्क बनाये रखने में सहायक है।

५ दिसंबर १९३६

मैं लेते, लेते और बदले में कुछ नहीं देने से, थक जाता हूं। यह अशोभन-सी बात है, लेकिन मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूं सिवाय इसके कि आपसे प्रार्थना करूं कि मुझे स्वयं मुझसे मुक्त कीजिये।

अपनी मां से तुम हमेशा ले सकते हो, यह बिल्कुल स्वाभाविक है, विशेषतः जब तुम्हें चीजें पूरे हृदय के साथ दी जाती हैं। क्या मैं तुम्हारी मां नहीं हूं जो तुमसे प्रेम करती है? . . .

३ जनवरी १९३७

तुम अपने भाई से कह सकते हो कि मैं सभी कठिनाइयों और कष्टों से निकलने की बस एक ही तरकीब जानती हूं; वह है भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मदान और समर्पण।

१३ नवंबर १९३७

मां, आपने 'क' को कैसा पत्र लिखा है? आप एक दिन मेरा सिर फिरा देंगी, अगर वह अभीतक फिर नहीं चुका है! लेकिन मैं जानता हूं कि आपने यह उसे आश्वासन देने के लिये ही लिखा है।

नहीं, हमेशा मैं जो कहती हूं, मेरा वही आशय होता है।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

४ मई १९३८

शाश्वती मां,

मैं अपनी चेतना में बहुत नीचे चला गया हूं और आप मुझे बहुत अधिक दूर मालूम होती हैं। आप अपनी समस्त सृष्टि की अनंत मां हैं और आपके बच्चे बहुत हैं। आपकी कृपा ही हमारा एकमात्र आश्रय है और हम रक्षा के लिये आपके सिवा और किसकी ओर मुड़ें? अब आपकी कृपा अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो ताकि मेरी पार्थिव आंखें, उनपर जो मोटा, धूमिल पर्दा पड़ा है उसके बावजूद, उसकी क्रिया को कुछ थोड़ा-बहुत देख और समझ सकें। आपकी कृपा मेरे हृदय-कमल को पूरी तरह खिला सके ताकि मैं आनंदमय सौंदर्य, साधुता और मधुरिमा की पूर्ण महिमा में, आपकी आत्मा की मोहक उपस्थिति के दर्शन से धन्य हो सकूं ताकि मेरी सभी अशुद्धियां धुल जायें, मन की बेचैनी और आवेशों के तूफानी उभार को चैन मिल जाये।

मैं अपनी आत्मा को आपके रक्षण में सौंपता हूं।

फिर भी मैं अनुभव करती हूं कि तुम मेरे अधिक निकट हो और मैं तुम्हारे अंदर एक ऐसा उद्घाटन देखती हूं जो पहले कभी न था। मुझे ऐसा लगता है कि तुम जल्दी ही, सतह की ऊपर से दीखनेवाली शुष्कता के पीछे, सचेतन प्रेम की सदा प्रज्वलित ज्वाला को खोज निकालोगे।

आशीर्वाद।

४ जुलाई १९३८

'ख' ने मुझसे कहा है कि आपके पास मेरे विरुद्ध यह शिकायत आयी है कि मैं लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचाता हूं।

मैं जानती हूं कि केवल दुर्बल ही शिकायत करते हैं, सबल लोग कभी शिकायत नहीं करते क्योंकि उन्हें ठेस नहीं लग सकती। इसलिये मैं शिकायतों को बहुत महत्त्व नहीं दिया करती।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

९ अक्तूबर १९३८

(साधक ने अपनी कापी में पेंसिल से एक पैर का रेखाचित्र बनाया जो एक कमल को छूने के लिये आगे बढ़ा हुआ था) फिर लिखा, 'इस कापी को इस भद्दी भेंट से खराब करने के लिये क्षमा कीजिये।'

क्षमा की कोई बात नहीं है। यह सब समर्पण-भाव से है।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

१४ अक्तूबर १९३८

क्या चैत्य ज्वाला का वैदिक अग्नि के साथ कोई संबंध है? ऐसा लगता है कि दोनों के लगभग समान गुण हैं।

हां, ये दोनों एक ही चीज के दो नाम हैं।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२० अक्तूबर १९३८

मां, मुझे अपने सत्य के आवास में ले चलो, मैं तुम्हें अपने उत्तरोत्तर समर्पण की इच्छा और बढ़ते हुए पूजा-भाव की भेंट करता हूं।

रास्ता खुला हुआ है मेरे बालक! मैं भुजाएं फैलाये हुए प्रेम के साथ तुम्हें उनमें बांध लेने के लिये तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूं—अपने प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२२ अक्तूबर १९३८

मेरे जीवन के जीवन, मैं भी तुम्हारे पास आना चाहता हूं; क्योंकि केवल तुम्हारी भुजाओं में मुझे शांति, सुख, आनंद, सत्य का सत्य और मेरे जीवन तथा मेरी सत्ता की परिपूर्णता मिलेगी। फिर भी, मेरे उज्ज्वल प्रकाश, मेरे लिये मार्ग स्पष्ट नहीं है। मैं तुम्हारे चकरानेवाले शिखरों तक अपनी मर्त्य प्रकृति की जकड़नेवाली भारी जंजीरों के साथ कैसे चढ़ पाऊंगा?

तुम मुझे अपनी भुजाओं में ले लेने दो तब चढ़ना आसान हो जायेगा।

मेरे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२५ अक्तूबर १९३८

हे मां, मैं आपके प्रेम के उत्कृष्ट कार्य से कैसे उऋण हो सकूंगा? आपने कैसे जाना कि यह मेरे हृदय की अंतर्तम इच्छा है? आप बहुत, बहुत ज्यादा आराध्य और अपने छोटे-से बालक के प्रति बहुत-बहुत मेहरबान हैं, जो आपसे प्रेम करता है और बहुत सुखी है।

मेरे बहुत प्यारे बालक, मेरे प्रेम में निवास करो, उसे अनुभव करो, उससे भर जाओ और सुखी रहो—कोई चीज मुझे इससे ज्यादा खुश नहीं कर सकती।

अति स्नेह सहित।

२८ अक्तूबर १९३८

मैं प्रथमतः और अंततः तुम्हारा बालक हूं और इस काम का मेरे लिये इसके सिवा कोई मूल्य नहीं है कि मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकता हूं, कि इसके द्वारा मैं आपका अधिक अच्छा और सच्चा बालक बन सकता हूं, हे मेरी प्यारी मां!

हां, तुम मेरे बालक हो और यह बात सच्ची है कि सभी चीजों में यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है . . .। प्यारे बालक, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं और मेरे प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हें कभी नहीं छोड़ते।

३१ अक्तूबर १९३८

मेरे पिछले जन्मदिन पर, बिदाई के समय आपके शब्द थे: "अपनी श्रद्धा बनाये रखो।" मैं अब भी यह सोच रहा हूं कि आपका ठीक-ठीक इससे क्या मतलब था, मेरी प्यारी मां, आप मुझसे किस तरह की श्रद्धा के लिये अभीप्सा करवाना चाहती हैं?

भागवत कृपा और उसकी तुम्हें रूपांतरित करने की शक्ति पर श्रद्धा।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

४ नवंबर १९३८

प्यारी, प्यारी, प्यारी मां,

हर रोज मेरे लिये आप अधिक-से-अधिक प्यारी और अधिक-से-अधिक

आराधनीय बनती जा रही हैं। आप किस भागवत रहस्य द्वारा हम पर यह मधुर जादू डालती हैं ?

एकमात्र रहस्य और एकमात्र जादू है मेरा प्यार—मेरा वह प्यार जो मेरे बच्चों पर फैला हुआ है और जो उनकी सहायता और रक्षा के लिये भागवत कृपा को नीचे पुकारता है।

६ नवंबर १९३८

आजकल आप मुझे रोज अपना प्यार और आशीर्वाद भेजती हैं प्यारी मां, और कुछ विरल, धन्य क्षणों में, मैं अवश्य यह अनुभव करता हूं कि हम हमेशा आपके प्रेम से घिरे रहते हैं। लेकिन जहांतक एक सच्चे प्रत्युत्तर की बात है, मेरा हृदय पत्थर का बना लगता है, वरना वह ऐसे प्रेम के प्रति खुलने से क्यों इंकार करता ?

कुछ भी प्रेम के सतत कार्य का प्रतिरोध नहीं कर सकता। वह सभी प्रतिरोधों को पिघला देता और सभी कठिनाइयों पर विजय पा लेता है . . .

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

९ नवंबर १९३८

मैं जानता हूं कि आपका प्रेम और आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ हैं। कभी-कभी मैं चाहता हूं कि आप मेरे ऊपर निरपवाद रूप से इतनी मेहरबान और कृपालु न होतीं। इसके कारण मुझे यह कहना और भी ज्यादा कठिन लगता है कि मेरी प्रकृति की कुछ ऐसी कठिनाइयां हैं जो मुझे आपको और आपके योग को उचित भाव में स्वीकार करना कठिन बना देती हैं। और इसके बिना शिष्यत्व ही क्या हुआ ?

मैं गुरु की तरह प्रेम और आशीर्वाद नहीं देती, बल्कि मां की तरह देती हूं जो अपने दिये के बदले में कुछ भी नहीं मांगती।

९ जुलाई १९३९

माताजी,

आपकी यह बात कितनी मधुर है कि आप मां का प्रेम देती हैं जो बदले में

कुछ नहीं चाहती। यह आपके लिये ठीक है क्योंकि आपका तो आत्म-परिपूर्ण जीवन है, लेकिन मुझे तो अभी अपने मानव जीवन को संतुष्ट करने के लिये सब कुछ प्राप्त करना है। मुझे तो अभी अपनी अंतरात्मा को और आध्यात्म पुरुष को जानना है, दिव्य सत्ता को जानना और उससे प्रेम करना है, उसे अपने जीवन में चरितार्थ करना है और जगतों को जानना है—अगर उसकी मरजी हो कि मैं यह सब करूं। और इस सबसे बढ़कर मुझे जगज्जननी, आद्या शक्ति, महाकाली के दर्शन करने हैं। उसे पता होगा कि मेरे लिये सबसे अच्छा क्या है। तब फिर मैं ऐसे गुरु के बिना कैसे काम चला सकता हूं जो मुझे उसके चरणों तक पहुंचा दे ?

मैं सारे संसार में श्रीअरविंद के सिवा और किसी को नहीं देखती जो तुम्हें महाकाली के चरणों तक पहुंचा सके।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१६ जुलाई १९३९

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हारे अच्छे और स्नेहमय पत्र ने मुझे खुश कर दिया।

कल रात नीरवता में मैंने तुमसे कहा, "तुम जिसके लिये अभीप्सा करते हो वहां तक पहुंचने के लिये मार्ग है प्रेम और लक्ष्य भी प्रेम ही है।" क्या तुम्हारे पत्र का यह अच्छे-से-अच्छा उत्तर नहीं है ? . . .

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१७ जुलाई १९३९

कुपुत्र तो हुआ करते हैं पर कुमाता कभी नहीं।

लेकिन कैसे आनंद की बात होती है जब पुत्र और माता दोनों ही अच्छे हों !

मेरे प्रिय (सु)पुत्र को प्रेम और आशीर्वाद।

२७ जुलाई १९३९

मैं जानता हूं कि आपका भाव अच्छा है लेकिन अच्छा, सचमुच अच्छा होना उन्हींके लिये संभव हो सकता है जो समस्त अहंकार के परे चले गये हों;

लेकिन अगर मेरी मां अपने बच्चों में केवल अच्छा ही देखना चाहती है तो यह मां के हृदय की अच्छाई का सूचक है।

मेरे बालक का हृदय भगवान् के प्रेम और प्रकाश से भरा है। ये दोनों तुम्हारी समस्त सत्ता में चमकें और अगर कोई बादल हैं तो वे शीघ्र ही गायब हो जायेंगे।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२८ जुलाई १९३९

(माताजी ने साधक को अचार की एक बोतल भेजी। वह लिखता है), प्यारी मां, आप मुझे अपने प्रेम से अभिभूत करती हैं। मैं जानता हूं कि आप मुझे जितनी कृपा प्रदान करती हैं मैं उसके लवलेश का भी अधिकारी नहीं हूं। मैं आपसे क्या कहूं, जिनका स्वभाव ही है अभिभूत करनेवाला दिव्य प्रेम? आपका प्रेम अपने-आप अमूल्य उपहार है; फिर ये दूसरे उपहार किसलिये?

देने में बड़ा आनंद है, उससे भी बढ़कर आनंद है उन लोगों को खुश करने में जिनसे हम प्रेम करते हैं . . . जब तुम यह अचार खाओगे तो मुझे याद करोगे और सोचोगे, माताजी मुझसे प्यार करती हैं . . .

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

६ अगस्त १९३९

प्यारी, प्यारी, प्यारी मां,

मैं आपको ढेरों प्रेम भेजता हूं। मेरे हृदय-कमल में आपके चरण-कमल प्रेम के सिंहासन पर सदा प्रतिष्ठित रहें।

मेरे प्यारे स्नेहमय बालक,

तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हारा हृदय बहुत मधुर स्थान है—मुझे हमेशा उसमें रखो ताकि मैं तुम्हारी सारी सत्ता को प्रकाश, प्रेम और आनंद से भर सकूं।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

८ अगस्त १९३९

हे देवी, हे मां!

मैं अपने हृदयकक्ष की रहस्यमय गुफाओं में हमेशा इस सहजबोधात्मक

विश्वास के बारे में अभिज्ञ रहा हूं कि आप उन दिव्य जननी का अवतार हैं जिनकी मैं आराधना करता हूं और जिन्हें मैं उनके चरण-कमलों के सिवा किसी और तरह से नहीं जानता। इसी कारण मेरी आंखें उन्हें आपके पद-पद्मों में खोजतीं और मेरा हृदय उन्हें यह जानते हुए अपने अंदर दबा लेने के लिये ललकता रहता है कि वे ही उसका एकमात्र आश्रय हैं।

मेरे प्यारे, प्यारे बालक, तुम्हारे अंदर ठोस रूप से, भागवत प्रेम की मधुरता में, सचेतन निश्चिति का प्रकाश और चिरंजीवी उपस्थिति का आनंद सदा बना रहे।

१० अगस्त १९३९

क्या आप मुझे मेहरबानी करके बतलायेंगी मेरी मां, कि क्या आप मेरी अकिंचन मानवता के बावजूद सचमुच मेरे साथ अकृत्रिम रूप से प्रेम करती हैं या यह सारा एक परीक्षण ही है? मुझे ऐसा प्रश्न करते हुए लज्जा आती है, लेकिन मैं "परीक्षण" शब्द का बहुधा ऐसे नाना अर्थों में उपयोग सुनता हूं कि मुझे डर लगता है और मैं स्वयं आपसे सुनना चाहूंगा कि आप हमारे साथ केवल परीक्षण ही तो नहीं कर रहीं? क्षमा-प्रार्थना करता हुआ . . .!

मेरे प्यारे बालक,

हां, तुम जो सबसे अच्छी चीज कर सकते हो वह यह है कि लोग तुमसे जो कहें उसपर कान न दिया करो। यह तुम्हें चेतना की बहुत-सी गिरावटों से बचा लेगा। आज तीसरे पहर जब मैंने तुम्हें मूक रूप से देखा तो मैंने कहा, 'अपने प्रेम के प्रति निष्ठा बनाये रखो।' मेरा ख्याल है कि यह तुम्हारे लिये पर्याप्त उत्तर है और तुम मुझसे यह आशा न करोगे कि ऐसी अज्ञानभरी मूर्खतापूर्ण टीकाओं के आगे मैं अपने प्रेम की सफाई दूं। तुम विश्वास करो या संदेह करो, मेरा प्रेम और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१२ अगस्त १९३९

प्यारी मां,

मैं अपने कल के प्रश्न के लिये क्षमाप्रार्थी हूं और प्रार्थना करता हूं कि मेरी मूढ़ता को क्षमा कर दिया जायेगा।

ओह! मैं आपके प्रेम के बारे में शंका कर ही कैसे सकता हूं जब कि आप सत्य, प्रेम और शुभ की आत्मा हैं?

मेरे प्यारे बालक,

मैं जानती थी कि वह एक उड़ता हुआ मनोभाव था और तुम शीघ्र उसमें से निकल आओगे—लेकिन इस प्रेम और इस सत्य को अपनी ढाल बना लो जो मिथ्यात्व की किसी भी शक्ति की घुस-पैठ से तुम्हारी रक्षा करे।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद तुम्हें अपने लक्ष्य की ओर ले जायेगा।

१३ अगस्त १९३९

मेरे अत्यंत प्यारे बालक,

अगर तुम अपनी आंतरिक खुशी को हमेशा बनाये रख सको तो इससे मुझे बहुत खुशी होगी और यह तुम्हें मार्ग पर बहुत सहायता देगी।

प्यारे बालक, तुम्हें मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१७ अगस्त १९३९

आपका प्रेम ही मेरे लिये सच्चा आश्रय और एकमात्र बल है। मां, मैं आपको जो कुछ अर्पित करता हूं वह एक गदला मिश्रण है जिसके बारे में मैं लज्जित हूं लेकिन उसे आप ही शुद्ध कर सकती हैं।

मेरे बहुत प्यारे बच्चे;

अर्पण का रूप चाहे जैसा हो, जब वह सचाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अंदर भागवत प्रकाश की एक चिंगारी लिये रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है। तुम मेरे प्रेम के बारे में विश्वस्त रह सकते हो, तुम मेरी सहायता के बारे में विश्वस्त रह सकते हो और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१९ अगस्त १९३९

आप कितनी प्यारी हैं, प्यारी मां! क्या सारे संसार में आप जैसा कोई और है?
प्रेम!

मेरे प्यारे, प्यारे बालक को प्रेम, प्रेम, प्रेम; समस्त आनंद, ज्योति और दिव्य प्रेम की समस्त शांति और साथ ही मेरे प्रेममय आशीर्वाद।

२० अगस्त १९३९

प्यारी, प्यारी मां;

मैंने अचार की बोतल लौटा दी है लेकिन मेरे पास अभी अचार बाकी है और मैं जब कभी उसे देखता हूं तो आपकी याद कर लेता और अपने-आपसे कहता हूं, ''माताजी मुझसे प्रेम करती हैं।'' प्रेम की एक बड़ी लहर के शिखर पर यह भेंट मेरे पास आयी और मैंने उस समुद्र की उपस्थिति का अनुभव किया जिससे यह लहर प्रक्षिप्त हुई थी। जब उस बरतन को हाथ में लिये हुए आपने मुझे पुकारा तब, क्या आप जानती हैं कि मैं किसके बारे में सोच रहा था? उस समय मैं काली के बारे में सोच रहा था जो मेरे सामने वरदान देने के लिये तैयार थीं! वास्तव में मैं उनका आह्वान कर रहा था, उसी समय आप अचार की बोतल और प्रेम का सागर लिये उपस्थित हो गयीं। ऐसी है आपकी लीला, हे लीलामयी प्यारी मां!

वस्तुतः, उस दिन मैंने स्पष्ट रूप से तुम्हें मुझे पुकारते हुए सुना था और तुम्हारी पुकार को मैं ठोस उत्तर देना चाहती थी . . . मेरे प्यारे बालक को मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२४ अगस्त १९३९

आज सवेरे आप मुझसे पूछ रही थीं कि मामला क्या है? यह वही पुरानी चीज है, फिर भी है कष्टदायक। यह गृह-युद्ध है, दो भिन्न-भिन्न वृत्तियों और आदर्शों के बीच संघर्ष है, दो अलग-अलग प्रकार के नेतृत्वों के बीच खींचातानी है, देवजाति और संतजाति के बीच। (पाश्चात्य अर्थों में नहीं), सभी मोरचों पर, मानसिक, प्राणिक और शारीरिक मोरचों पर युद्ध। लेकिन मैं आपकी कृपा के बारे में पूरी तरह अभिज्ञ हूं और कृतज्ञ भी।

अगर तुम अंतर्भासात्मक मन में काफी ऊंचे उठ सको तो ऐसा कोई विरोध नहीं है जिसका किसी समन्वय में समाधान न किया जा सके और सामंजस्य न लाया जा सके और तुम्हारा विरोध भी अजेय नहीं है। मुझे विश्वास है कि एक दिन तुम इसे जान लोगे।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२७ अगस्त १९३९

मेरे जीवन की जीवन, मेरी अपनी मधुरतम मां!

मेरे प्रेम को स्वीकार करो और जैसा तुम बरसों से करती आयी हो मेरी

भूलों को क्षमा करो। मैं आशा करता हूं कि ये मानसिक वृत्तियां आती-जाती रहेंगी। इन सब आते-जाते बादलों के बीच मैं तुम्हारे आलोकमय मुस्कराते चेहरे को कभी न भूलूं!

मेरे अत्यंत प्रिय बालक,

मैं सचमुच आशा करती हूं कि तुम शीघ्र ही अपनी सब कठिनाइयों से बाहर निकल आओगे। उच्चतर चेतना की ओर बस एक अच्छी छलांग, जहां सब समस्याओं का समाधान हो जाता है, और तुम अपनी कठिनाइयों से बाहर हो जाओगे। मुझे कभी ऐसा नहीं लगता कि मैं क्षमा कर रही हूं। प्रेम क्षमा नहीं करता, वह समझता और उपचार करता है।

सदा मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२८ अगस्त १९३९

भागवत प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो।

शुद्ध प्रेम तुम्हारा मार्ग हो।

अपने प्रेम की ओर सदा सच्चे रहो और तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पा लोगे।

मेरे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

९ सितंबर १९३९

मेरी प्यारी प्रेममयी मां,

जन्मदिन की मेरी कापी में श्रीअरविंद ने लिखा है, "उच्चतर चेतना में उठो, उसकी ज्योति प्रकृति पर शासन और उसका रूपांतर करे।" कुछ समय पहले आपने मुझे लिखा था, "उच्चतर चेतना की ओर, जहां सभी समस्याएं हल हो जाती हैं, एक अच्छी छलांग, और तुम अपनी कठिनाइयों से पार निकल जाओगे।" तो यह उच्चतर चेतना चीज क्या है और मैं उसकी ओर कैसे उठ सकता या छलांग लगा सकता हूं? और फिर आपने कहा है, 'भागवत प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो। शुद्ध प्रेम तुम्हारा मार्ग हो, अपने प्रेम की ओर सदा सच्चे रहो और तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पा लोगे।" क्या यह उच्चतर चेतना वही चीज है जो शुद्ध प्रेम की अवस्था है, अगर ऐसा है तो उसका उच्चतर ज्ञान की स्थिति से क्या संबंध होगा?

उच्चतर चेतना शुद्ध प्रेम की अवस्था है लेकिन साथ ही वह भागवत ज्ञान की ओर

शुद्ध उद्घाटन भी है। वहां इन दो सजातीय चीजों में कोई विरोध नहीं है; मन ही इन्हें अलग करता है।

वहांतक पहुंचने का सबसे अच्छा तरीका है कि जब कभी मानसिक हलचल आये, प्राणिक कामनाएं और उथल-पुथल आये तो उसे स्वीकार करने से इंकार कर दो और मन तथा हृदय को जहांतक हो सके सतत भगवान् की ओर मुड़ा रखो। यह करने के लिये भगवान् के लिये प्रेम सबसे अधिक बलवान् शक्ति है।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१९ अक्तूबर १९३९

प्रिय मां!

माताजी ने अपने आवास के लिये ऐसे दुर्बल पात्र को क्यों चुना? मैं जानता हूं कि जबतक वे यहां अपना निवास-स्थान बनाना चाहती हैं, देर या सवेर मुझ गरीब को महामहिम के लिये गद्दी छोड़नी ही पड़ेगी और जबतक वह दिन न आ जाये मुझ बेचारे को चैन न मिलेगा।

मेरे प्यारे बालक,

अतः सबसे अच्छी बात है तुरंत अपदस्थ होकर चैन, शांति और आनंद पा लेना। जब तुम्हें किसी हठीले प्रतिरोध से पिंड छुड़ाना हो तो तुम्हें देर न लगानी चाहिये जैसे रुग्ण दांत को निकाल फेंकने में देर नहीं लगायी जा सकती।

अंदर, बाहर और सब जगह, माताजी की सहायता है... उनके प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२८ अक्तूबर १९३९

प्यारी मां,

मुझ गरीब के लिये आपका प्यार अब भी मेरा ध्रुवतारा है और मैं उसके लिये कृतज्ञ हूं।

मेरे प्यारे बालक,

मेरा प्रेम तुम्हें लक्ष्य तक ले जाना चाहता है और उसकी विजय निश्चित है।

आशीर्वाद के साथ।

२९ मार्च १९४०

प्यारी मां;

मैं आपकी मेहरबानी, अनुकंपा, शुभेच्छा और प्रेम के लिये बहुत धन्यवाद देता हूं जिनका मैं अधिकारी नहीं हूं। और यद्यपि मैं आपके साथ व्यक्तिगत संबंध का अनुभव करता हूं, जो मैं आशा करता हूं कि चैत्य संबंध है, फिर भी मुझे नहीं लगता कि मैं इस योग की अत्यंत आवश्यकता अनुभव करता हूं। आज भी मैं इस आदर्श के बारे में उस तरह अनुभव नहीं करता जैसे पहले मोक्ष के आदर्श के लिये अनुभव करता था। अभीतक आपका पथ, वह आदर्श जिसे आप हमारे आगे रखती हैं, आपके मूल्य, आज भी मुझे अछूता छोड़ देते हैं; मुझे अभीतक यहां अपनेपन का अनुभव नहीं होता। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिये। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। क्षमा कीजिये, मैं अपनी सारी बाहरी सत्ता के विरुद्ध सदा लड़ते-लड़ते थक गया हूं, और फिर मुझे लगता है कि अब सारी चीज को दुबारा शुरू करने के लिये और अपने-आपको एक नये आदर्श की मांग करना सिखाने के लिये बहुत देर हो चुकी है, उस मार्ग की प्राप्ति कहीं नजदीक नहीं दिखायी देती।

भगवान् ने हम सबके लिये जो कुछ नियत कर दिया है वही होगा।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२९ जून १९४०

मेरे २२ जुलाई[1] के पत्र के उत्तर में आपने मुझे आश्वासन देने की कोशिश की है पर उसने मुझे आश्वासन नहीं दिया। ऐसा क्यों हुआ मां, शायद आपको मेरा लहजा पसंद नहीं आया, शायद आप मेरी अक्षमता से असंतुष्ट हैं, हो सकता है कि आप मुझसे पूरी तरह थकती जा रही हैं। अगर ऐसा है तो मुझे आश्चर्य न होगा, मैं आपको दोष न दूंगा क्योंकि स्वयं मैं उस समस्या से तंग आ गया हूं जिसे कहते हैं "मैं"।

जैसा कि आपने मुझे आश्वासन दिया है, अगर इससे आपके प्रेम और दयालुता में कोई फर्क नहीं पड़ता तो मैं इस धन को रखना चाहूंगा और इस व्यवस्था को जारी रखूंगा। लेकिन अगर आपको पसंद न हो तो कृपया ऐसे शब्दों में कहिये जिन्हें मैं समझ सकूं और मैं इसे छोड़ दूंगा। कृपया विश्वास रखिये कि अगर यह व्यवस्था आपको पसंद न हो तो मैं इसे छोड़ सकता हूं।

[1] साधक ने इस पत्र में पूछा था कि क्या वह अपने रिश्तेदार द्वारा भेजे हुए रुपयों को स्वीकार कर सकता है। माताजी ने जवाब दिया, "मेरे प्यारे बालक, तुम मेरे प्यार और आशीर्वाद के बारे में विश्वास रखो।"

मेरे प्यारे बालक,

इससे मैं जरा भी असंतुष्ट नहीं हूं। तुमने उस दिन इस विषय में जो लिखा था उसका अगर मैंने उत्तर नहीं दिया था तो इसलिये कि मैंने इसे बहुत महत्त्व नहीं दिया। मेरे वाक्य का मतलब केवल इतना ही था कि मेरा प्रेम समझ सकता है और मेरे आशीर्वाद ऐसी सतही गतिविधियों पर निर्भर नहीं रहते।

आज मैं इतना और कह दूं कि "मैं कहलानेवाली समस्या" से मैं बिल्कुल नहीं ऊबी हूं और मुझे विश्वास है कि उसका सफलता के साथ समाधान हो जायेगा . . .।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ जुलाई १९४०

मेरे प्यारे बालक,

जब कभी तुम्हें आध्यात्मिक सहायता की जरूरत हो मैं हमेशा तुम्हें वह सहायता देने को तैयार रहती हूं चाहे वह कोई रूप क्यों न धारण करे।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

९ सितंबर १९४१

मेरे प्यारे बालक;

यह वर्ष तुम्हारे लिये सब परिस्थितियों में मुस्कराने की शक्ति लेकर आये। मुस्कान कठिनाइयों पर उसी तरह क्रिया करती है जैसे सूर्य बादलों पर, वह उन्हें बिखेर देती है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

९ सितंबर १९४२

मेरे प्यारे बालक;

यह रहा इस वर्ष का कार्यक्रम : अपनी समस्त सत्ता को अपनी उच्चतम चेतना के चारों ओर एकत्र करो और अपने मन को इधर-उधर न भटकने दो। संदेह ऐसा खेल नहीं है जिसमें तुम सुरक्षा के साथ रस ले सको : वह एक विष है जो बूंद बूंद करके आत्मा का क्षय करता है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

९ सितंबर १९४३

भागवत कृपा मौजूद है, अपने द्वार खोलो और उसका स्वागत करो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

९ सितंबर १९४४

पत्रमाला ८

पत्रमाला ८

[ये पत्र श्रीअरविंदाश्रम के शारीरिक-शिक्षण-विभाग के एक युवा कप्तान के नाम हैं।]

मधुर मां,

चैत्य परिवर्तन और आध्यात्मिक परिवर्तन में क्या फर्क है?

चैत्य परिवर्तन ऐसा परिवर्तन है जो अंतरस्थ भगवान् के साथ तुम्हारा संपर्क साध देता है जो भगवान् हर सत्ता के केंद्र में है, चैत्य सत्ता उसका कोष और उसकी अभिव्यक्ति है। चैत्य परिवर्तन द्वारा तुम व्यक्तिगत भगवान् से वैश्व भगवान् में और अंत में परात्पर में चले जाते हो।

आध्यात्मिक परिवर्तन तुम्हें सीधा परम प्रभु के संपर्क में ला देता है।

९ सितंबर १९५९

मधुर मां,

हम अपने चैत्य व्यक्तित्व को कैसे विकसित कर सकते हैं?

जीवन के सभी अनुभवों द्वारा चैत्य व्यक्तित्व रूप लेता, बढ़ता, विकसित होता और अंत में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है।

विकास की यह प्रक्रिया अनथक रूप से अनगिनत जन्मों तक चलती रहती है, और अगर तुम उसके बारे में सचेतन नहीं हो तो इसका कारण यह है कि तुम अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन नहीं हो—क्योंकि वही अनिवार्य आरंभ-बिंदु है। अभ्यन्तरीकरण और एकाग्रता द्वारा तुम्हें अपनी चैत्य सत्ता के सचेतन संपर्क में आना होता है। इस चैत्य सत्ता का बाहरी सत्ता पर हमेशा प्रभाव रहता है परंतु यह प्रभाव केवल एकदम से अपवादिक अवसरों को छोड़कर प्रायः हमेशा गुह्य रहता है, इसे न तो देखा, न समझा और न अनुभव किया जा सकता है।

इस संपर्क को मजबूत बनाने के लिये और यदि संभव हो तो सचेतन चैत्य व्यक्तित्व के विकास के लिये, एकाग्र होते समय तुम्हें उसकी ओर मुड़ना, उसे जानने और अनुभव करने के लिये अभीप्सा करनी चाहिये, उसके प्रभाव को ग्रहण करने के लिये अपने-आपको खोलना, और हर बार उससे संकेत मिलने पर बहुत सावधानी और सचाई के साथ उसका अनुसरण करना चाहिये। चैत्य सत्ता के विकास की आवश्यक शर्तें हैं—एक महान् अभीप्सा में जीना, भीतर से शांत रहने के लिये

सावधानी बरतना और जहांतक बन सके ऐसा ही बने रहना, अपनी सत्ता की सभी क्रियाओं में पूर्ण सचाई स्थापित करना।

१० सितंबर १९५९

मधुर मां,

हम ऊर्जा को बाहर से अपने अंदर कैसे खींच सकते हैं ?

वह इसपर निर्भर है कि हम किस तरह की ऊर्जा को आत्मसात् करना चाहते हैं; क्योंकि सत्ता के हर क्षेत्र के अनुरूप ऊर्जा होती है। अगर यह भौतिक ऊर्जा है तो हम इसे मुख्यतः सांस द्वारा आत्मसात् करते हैं, और जो कुछ सांस को ज्यादा अच्छा और आसान बनाता है, वह साथ-साथ भौतिक ऊर्जा को आत्मसात् करने की शक्ति को भी बढ़ाता है।

मगर और भी कई तरह की ऊर्जाएं हैं या फिर उस ऊर्जा के बहुत सारे रूप हैं जो **एकमेव** और विश्वव्यापी है।

और हम सांस के विविध यौगिक व्यायाम, ध्यान, जप और एकाग्रता द्वारा अपने-आपको ऊर्जा के इन विविध रूपों के साथ संपर्क में ला सकते हैं।

१० सितंबर १९५९

मधुर मां,

ऊर्जा के ये अन्य रूप क्या हैं और वे हमारी साधना में कैसे सहायता देते हैं ?

सत्ता के हर क्षेत्र और हर क्रिया-कलाप की अपनी ऊर्जाएं होती हैं। हम उनका वर्गीकरण सामान्यतः प्राणिक ऊर्जा, मानसिक ऊर्जा, आध्यात्मिक ऊर्जा के रूप में कर सकते हैं। आधुनिक विज्ञान हमें बतलाता है कि अंततः जड़-भौतिक घनीभूत ऊर्जा के सिवा और कुछ नहीं है।

चूंकि हमारा पूर्ण योग है, इसलिये हमारी उपलब्धि के लिये ऊर्जा के ये सब रूप और प्रकार अनिवार्य हैं।

१२ सितंबर १९५९

मधुर मां,

''मनोमय कोष के सतही रूप के सूक्ष्म भौतिक दीर्घीकरण'' (दिव्य जीवन से) का क्या अर्थ है ?

इसका मतलब है कि तुम जिस भूत को देखते हो और भूल से उसे ही विगत सत्ता मान लेते हो वह केवल उसका **प्रतिबिंब**, एक छाप है (छाया-चित्र की प्रति जैसा) जिसे सतही मानसिक रूप सूक्ष्म भौतिक में छोड़ता है; एक ऐसा प्रतिबिंब जो अमुक परिस्थितियों में दिखायी दे सकता है। ये बिंब सिनेमा के बिंबों की तरह चल-फिर सकते हैं पर इनमें कोई ठोस वास्तविकता नहीं होती। इन बिंबों को देखनेवाले का भय या भाव कभी-कभी इन्हें ऐसी शक्ति या क्रिया का आभास दे देता है जो सचमुच इनमें नहीं होती। इसीलिये इनसे कभी न डरना चाहिये और इन्हें उसी सच्चे रूप में पहचानना चाहिये जो वे हैं, अर्थात् भ्रामक आभास के रूप में।

१४ सितंबर १९५९

मधुर मां,

यह कैसे हो सकता है कि हम मन को चुप करें, स्थिर-अचंचल रहें और साथ-ही-साथ अभीप्सा भी करें, तीव्रता और विस्तार भी लायें ? क्योंकि जैसे ही हम अभीप्सा करते हैं तो क्या अभीप्सा करनेवाला मन नहीं होता ?

नहीं; अभीप्सा, विस्तार और तीव्रता हृदय से आते हैं जो भावों का केंद्र, चैत्य का द्वार या चैत्य की ओर ले जानेवाला द्वार है।

अपने स्वभाव से मन कुतूहली और रुचि रखनेवाला है। वह देखता है, वह अवलोकन करता है, समझने और समझाने की कोशिश करता है और इस समस्त क्रिया-कलाप के साथ वह अनुभूति को क्षुब्ध कर देता और उसकी तीव्रता और शक्ति को कम कर देता है।

दूसरी ओर, मन जितना स्थिर और नीरव हो, उतनी ही अधिक अभीप्सा हृदय की गहराई से, अपने उत्साह की पूर्णता में उठती है।

१७ सितंबर १९५९

मधुर मां,

हम अहंकार की इच्छा-शक्ति को कैसे दूर कर सकते हैं ?

इसका मतलब तो यही होता है कि अहंकार को कैसे दूर कर सकते हैं। यह केवल योग द्वारा ही किया जा सकता है। मानवजाति के आध्यात्मिक इतिहास में योग की बहुत-सी विधियां रही हैं—जिनका श्रीअरविंद ने हमारे लिये 'सिंथेसिस ऑफ योग' (योग समन्वय) में वर्णन किया है।

लेकिन अहंकार की इच्छा-शक्ति को निकाल बाहर करने से पहले, जिसमें बहुत लंबा समय लगता है, तुम अहंकार की इच्छा-शक्ति को भागवत इच्छा-शक्ति के अर्पण करने से शुरू कर सकते हो, पहले पग-पग पर और अंततः सतत रूप से। इसके लिये पहला कदम है यह समझ लेना कि हमारे लिये क्या अच्छा और क्या सचमुच जरूरी है इसे भगवान् हमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं—केवल हमारी आध्यात्मिक प्रगति के लिये ही नहीं बल्कि हमारे भौतिक योगक्षेम के लिये, शारीरिक स्वास्थ्य और हमारी सत्ता की क्रियाओं के समुचित क्रिया-कलाप के लिये भी।

स्वभावतः यह अहंकार की राय नहीं है, जो समझता है कि वह और सबकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानता है कि उसे क्या चाहिये और जो अपने लिये मूल्यांकन और निर्णय की स्वाधीनता का दावा करता है। लेकिन वह ऐसा इसलिये सोचता और अनुभव करता है क्योंकि वह अज्ञानी है और धीरे-धीरे तुम्हें उसे यह विश्वास दिलाना होगा कि उसका बोध और उसकी समझ सचमुच जान सकने के लिये बहुत ज्यादा सीमित हैं, कि वह अपनी कामनाओं के अनुसार ही मूल्यांकन करता है जो सत्य के अनुसार न होकर अंधी हैं।

क्योंकि कामनाएं आवश्यकताओं की नहीं, पसंद नापसंद की सूचक होती हैं।

१९ सितंबर १९५९

मधुर मां,

भगवान् ने अपना मार्ग इतना कठिन क्यों बनाया है? वे चाहें तो उसे सरल बना सकते हैं, है न?

सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि बुद्धि और मन भगवान् के बारे में कुछ भी नहीं समझ सकते। न तो यह कि वे क्या करते हैं, न यह कि वे कैसे करते हैं और यह तो बिल्कुल ही नहीं कि वे क्यों करते हैं। भगवान् के बारे में थोड़ा-बहुत जानने के लिये तुम्हें विचार से ऊपर उठना चाहिये और चैत्य चेतना में, अंतरात्मा की चेतना में या आध्यात्मिक चेतना में प्रवेश करना चाहिये।

जिन लोगों को अनुभूति प्राप्त हो चुकी है उन्होंने हमेशा यही कहा है कि पथ की कठिनाइयां और दुःख-दर्द वास्तविक नहीं हैं बल्कि मानव अज्ञान की रचनाएं हैं और जैसे ही हम इस अज्ञान से बाहर हो जाते हैं वैसे ही कठिनाइयों से भी बाहर हो जाते हैं। भगवान् के साथ सचेतन संपर्क होने के साथ ही साथ मनुष्य अनन्य आनंद की जिस स्थिति में निवास करता है उसके बारे में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

तो उनके अनुसार इस प्रश्न का कोई वास्तविक आधार ही नहीं है और यह पूछा ही नहीं जा सकता।

२१ सितंबर १९५९

मधुर मां,

आपने लिखा है कि अपनी चैत्य सत्ता के साथ सचेतन संपर्क साधने के लिये तुम ''उसे जानने और अनुभव करने के लिये अभीप्सा करो, अपने-आपको उसका प्रभाव ग्रहण करने के लिये खोलो और बहुत सावधानी के साथ . . . सचाई और ईमानदारी के साथ उसका अनुकरण करो।'' लेकिन मधुर मां, मैं नहीं जानता कि यह कैसे किया जाये। मुझे यह ज्यादा आसान मालूम होता है कि मैं आपके बारे में सोचूं, आपसे संपर्क साधूं और आपकी ओर खुलूं।

यह भी एक तरीका है जो निश्चय ही उतना ही अच्छा है जितना दूसरा।

आत्म-सिद्धि पाने के लिये बहुत-से तरीके हैं और हर एक को वह मार्ग चुनना चाहिये जो उसके पास स्वाभाविक रूप से आये।

लेकिन सचमुच प्रभावकारी होने के लिये हर एक मार्ग की अपनी मांगें हैं।

मेरे बारे में सोचते समय तुम्हें केवल बाहरी व्यक्तित्व के बारे में नहीं बल्कि उसके बारे में भी सोचना चाहिये जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है, जो उसके पीछे स्थित है। क्योंकि तुम्हें यह कभी न भूलना चाहिये कि बाहरी व्यक्ति शाश्वत सद्वस्तु का केवल एक रूप और प्रतीक मात्र है और भौतिक रूप द्वारा तुम्हें इस उच्चतर सद्वस्तु की ओर मुड़ना चाहिये। भौतिक सत्ता शाश्वत सद्वस्तु की सच्ची अभिव्यक्ति तबतक नहीं हो सकती जबतक कि वह अतिमानसिक अभिव्यक्ति द्वारा पूरी तरह रूपांतरित न हो जाये। और तबतक तुम्हें उसके द्वारा ही सत्य को पाना चाहिये।

२२ सितंबर १९५९

मधुर मां,

क्या नींद में अपने ऊपर पूरी तरह नियंत्रण पाना संभव है? उदाहरण के लिये क्या मैं आपको जब चाहूं अपने स्वप्नों में देख सकता हूं?

नींद में नियंत्रण पूरी तरह संभव है और अगर तुम अपने प्रयास में डटे रहो तो वह उत्तरोत्तर आता है। तुम अपने स्वप्न याद करने से शुरू करो, फिर तुम नींद में धीरे-धीरे अधिकाधिक सचेतन बनो और तब तुम न केवल अपने स्वप्नों पर नियंत्रण पा सकते हो बल्कि नींद में अपनी क्रियाओं का मार्ग-दर्शन और व्यवस्थापन भी कर सकोगे।

अगर तुम अपनी इच्छा और अपने प्रयास में डटे रहो तो निश्चय ही तुम रात को नींद में मेरे पास आना और मुझे पा लेना सीख जाओगे और फिर बाद में जो रात को हुआ होगा वह भी याद रख सकोगे।

इसके लिये दो चीजें जरूरी हैं जिन्हें तुम्हें अभीप्सा और शांत तथा सतत प्रयास द्वारा विकसित करना होगा।

१. अपने विचार को मेरे पास आने और मुझे पाने की इच्छा पर एकाग्र करो; और फिर इसके पीछे लगे रहो, पहले कल्पना के प्रयास द्वारा और फिर स्थूल और बढ़ते हुए वास्तविक तरीके से, जबतक कि तुम मेरी उपस्थिति में न आ जाओ।

२. जाग्रत् और सुषुप्त अवस्था के बीच एक तरह का पुल स्थापित करो ताकि जब तुम जागो तो तुम्हें याद रहे कि क्या हुआ था।

हो सकता है कि तुम तुरंत सफलता पा जाओ लेकिन बहुधा इसमें समय लगता है, तुम्हें अपने प्रयास में आग्रहशील रहना चाहिये।

२५ *सितंबर* १९५९

मधुर मां,

अंतरात्मा की क्या भूमिका है?

अंतरात्मा के बिना तो हमारा अस्तित्व ही न होगा!

अंतरात्मा वह है जो कभी भी भगवान् को छोड़े बिना उनसे आती है और अभिव्यक्त होना बंद किये बिना उनके पास लौट जाती है।

अंतरात्मा भगवान् है जिसे भगवान् होना छोड़े बिना व्यक्ति बनाया गया है।

अंतरात्मा में व्यक्ति और भगवान् शाश्वत रूप से एक हैं; अतः अपनी अंतरात्मा को पाने का अर्थ है भगवान् को पाना, अपनी अंतरात्मा के साथ तादात्म्य पाने का अर्थ है भगवान् के साथ एक होना।

अतः यह कहा जा सकता है कि अंतरात्मा का कार्य है मनुष्य को एक सच्ची सत्ता बनाना।

२९ *सितंबर* १९५९

मधुर मां,

क्या सद्भाग्य और दुर्भाग्य जैसी कोई चीज होती है या यह कोई ऐसी चीज है जिसे मनुष्य अपने लिये अपने-आप बना लेता है?

सचमुच ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे **भाग्य** कहा जा सके। मनुष्य जिसे भाग्य कहते हैं वह ऐसे **कारणों** के **परिणाम** होते हैं जिनके बारे में मनुष्य कुछ नहीं जानता।

और न ही कोई ऐसी चीज है जो अपने-आपमें सौभाग्य या दुर्भाग्य हो। हर एक

परिस्थिति को हम अच्छा या बुरा इस दृष्टि से कहते हैं कि वह हमारे लिये कम या ज्यादा हितकर है और यह अनुमान बहुत उथला और अज्ञानभरा होता है, क्योंकि सचमुच हमारे लिये क्या हितकर है और क्या अहितकर यह जानने के लिये हमें बड़ा ज्ञानी होना चाहिये।

और फिर, एक ही घटना एक व्यक्ति के लिये बहुत अच्छी और दूसरे के लिये बहुत खराब हो सकती है। ये अनुमान पूरी तरह से विषयीगत होते हैं और बाहर से आनेवाले संपर्क के प्रति प्रत्येक की प्रतिक्रिया पर निर्भर होते हैं।

और अंत में, हमारे जीवन की परिस्थितियां, हम जिस पास-पड़ोस में रहते हैं और लोग हमें जिस तरह देखते हैं, यह सब सचमुच अपने भीतर और बाहर हम जो कुछ हैं उसकी अभिव्यक्ति, उसका विषयगत प्रक्षेपण है। इसलिये हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि हम जिसे अपनी सत्ता की सभी स्थितियों में, मानसिक, प्राणिक और भौतिक में लिये रहते हैं वही, हमारे जीवन का निर्माण करता है और हमारे इर्द-गिर्द जो है उसमें इंद्रियगोचर होता है।

और इसकी आसानी से जांच की जा सकती है, क्योंकि जिस अनुपात में हम अपने-आपको उन्नत करते और पूर्णता की ओर प्रगति करते हैं वैसे-वैसे हमारी परिस्थितियां भी सुधरती जाती हैं।

इसी तरह उन लोगों के लिये जो भ्रष्ट या अधःपतित होते हैं, उनके जीवन की परिस्थितियां भी बिगड़ जाती हैं।

५ अक्तूबर १९५९

मधुर मां,

आप जब सवेरे के समय छज्जे पर आती हैं तो हमें क्या देती हैं[1], *और आप जो कुछ देती हैं उसे पाने के लिये हमें क्या करने की कोशिश करनी चाहिये ?*

हर सुबह छज्जे पर, वहां जो लोग उपस्थित हों उनमें प्रत्येक के साथ एक सचेतन संपर्क साधकर मैं अपने-आपको परम प्रभु के साथ तदात्म कर देती हूं और उनके अंदर पूरी तरह घुल-मिल जाती हूं। तब मेरा शरीर एकदम निश्चेष्ट होता है और एक ऐसी वाहिनी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता जिसमें से प्रभु अपनी शक्तियां मुक्त रूप से भेजते हैं और अपनी संपूर्ण ज्योति, अपनी संपूर्ण चेतना, अपना संपूर्ण आनंद हर एक पर उसकी ग्रहणशक्ति के अनुसार उंडेलते हैं।

[1] उन दिनों माताजी सवेरे कुछ क्षणों के लिये अपने छज्जे पर आकर खड़ी रहती थीं और वहां से नीचे सड़क पर खड़े हुए लोगों को देखा करती थीं। आश्रम की भाषा में इसे 'बालकनी-दर्शन' कहा जाता था।

प्रभु जो देते हैं उसे ग्रहण करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि छज्जे के दर्शन के समय विश्वास और अभीप्सा के साथ आओ और अपने-आपको **नीरव, निश्चल, प्रत्याशा की स्थिति** में जितना हो सके उतना **स्थिर और अचंचल** रखो। अगर तुम्हें कोई विशेष चीज मांगनी है तो ज्यादा अच्छा है कि जब मैं वहां रहूं तब नहीं **उससे पहले** मांग लो क्योंकि कोई भी क्रिया ग्रहणशीलता को कम कर देती है।

१२ अक्तूबर १९५९

मधुर मां,

"भौतिक चेतना की नीरवता" ('दिव्य जीवन' से) का क्या मतलब है और हम इस नीरवता में कैसे रह सकते हैं?

भौतिक चेतना केवल हमारे शरीर की ही नहीं बल्कि जो कुछ हमारे इर्द-गिर्द है उस सबकी, अर्थात् हम अपनी इंद्रियों द्वारा जिस किसी का बोध पाते हैं उस सबकी चेतना है। वह अभिलेखन और संचार का एक तरह का यंत्र है जो बाहर से आनेवाले सभी संपर्कों और आघातों की ओर खुला रहता है और सुख या दुःख की उन प्रतिक्रियाओं द्वारा उनको प्रत्युत्तर देता है जो उनका स्वागत करती या उन्हें ठेल देती हैं। यह हमारी बाहरी सत्ता में सतत क्रियाशीलता और शोर पैदा करता है जिससे हम बहुत अधिक अभ्यस्त होने के कारण केवल आंशिक रूप से अभिज्ञ हैं।

लेकिन अगर ध्यान या एकाग्रता द्वारा हम भीतर या ऊपर की ओर मुड़ते हैं तो अपने अंदर अचंचलता, स्थिरता, शांति और अंत में निश्चल नीरवता को ऊपर से उतार सकते या नीचे गहराइयों में से उठा सकते हैं। यह एक ठोस, सकारात्मक नीरवता है (शोर के अभाव की नकारात्मक नीरवता नहीं), जबतक वह रहे अविकार्य रहती है, यह एक ऐसी नीरवता होती है जिसका अनुभव हम तूफान या युद्धक्षेत्र के शोर-शराबे में भी कर सकते हैं। यह नीरवता शांति का पर्याय है और सर्वशक्तिमान् है; यह उस क्लांति, तनाव और श्रांति का पूर्णतया प्रभावकारी इलाज है जो उस आंतरिक अति-क्रियाशीलता तथा शोर से उभरते हैं जो साधारणतः हमारे अधिकार से बाहर हो जाते हैं और न दिन को और न रात को बंद होते हैं।

इसलिये जब तुम योग करना चाहो तो सबसे जरूरी और पहली चीज यह है कि अपने अंदर अचंचलता, शांति और निश्चल-नीरवता को उतारो और प्रतिष्ठित करो।

१५ अक्तूबर १९५९

मधुर मां,

हम किसी और के संगीत की रचना की भावनाओं में कैसे प्रवेश कर सकते हैं?

उसी तरह जैसे हम औरों की भावनाओं में हिस्सा लेते हैं—सहानुभूति द्वारा, सहज रूप से, न्यूनाधिक रूप से गभीर सादृश्य द्वारा या फिर एकाग्रता के ऐसे प्रयास द्वारा जिसका अंत तादात्म्य में होता है। जब हम किसी संगीत को तीव्र तथा दत्तचित्त एकाग्रता से सुनते हैं तो इस पीछे बतलाये गये तरीके का उपयोग करते हैं, यहांतक कि सिर में और सब आवाजें बंद करके पूर्ण नीरवता प्राप्त करते हैं, जिसमें बूंद-बूंद करके संगीत के स्वर टपकते हैं और जहां केवल संगीत की ध्वनि रह जाती है; और उस ध्वनि के साथ-ही-साथ सभी भावनाएं, भावों की सभी गतिविधियां पकड़ में आ सकती, अनुभव की जा सकती और फिर से इस तरह महसूस की जा सकती हैं मानों वे हमारे अंदर ही पैदा हो रही हों।

२० अक्तूबर १९५९

मधुर मां,

हम स्वप्न में अच्छे और बुरे में कैसे फर्क कर सकते हैं?

सिद्धांत रूप में नींद के क्रिया-कलाप का मूल्यांकन करने के लिये हमें उसी तरह की विवेक-शक्ति की जरूरत होती है जैसी जाग्रत् क्रिया-कलाप को परखने के लिये।

लेकिन चूंकि हम सामान्यतः ऐसी बहुत-सी क्रियाओं को "स्वप्न" का नाम दे देते हैं जो एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं इसलिये जो चीज सबसे पहले सीखनी चाहिये वह है विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में भेद कर सकना, यानी यह जानना कि सत्ता का कौन-सा भाग "स्वप्न" देख रहा है, हम किस क्षेत्र में "स्वप्न देख रहे हैं" और उस क्रिया की क्या प्रकृति है। श्रीअरविंद ने अपने पत्रों में नींद की सभी क्रियाओं का पूरा-पूरा और विस्तृत वर्णन और स्पष्टीकरण दिया है। इस विषय का अध्ययन करने और उसका व्यावहारिक उपयोग करने के लिये इन पत्रों को पढ़ना एक अच्छा परिचय-पत्र है।

२ नवंबर १९५९

मधुर मां,

हमें आपकी और श्रीअरविंद की पुस्तकें कैसे पढ़नी चाहियें ताकि वे मन द्वारा समझे जाने की जगह हमारी चेतना में पैठ सकें?

मेरी पुस्तकों को पढ़ना कठिन नहीं है क्योंकि वे बहुत ही सरल भाषा में, लगभग बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी हैं। उनसे सहायता लेने के लिये इतना काफी है

कि उन्हें ध्यान और एकाग्रता के साथ, सद्‌भावना की भीतरी वृत्ति और जो कुछ सिखाया जा रहा है उसे ग्रहण करने और उसे जीने की इच्छा के साथ पढ़ा जाये।

श्रीअरविंद ने जो लिखा है उसे समझना ज्यादा कठिन है क्योंकि अभिव्यंजना बहुत अधिक बौद्धिक है और भाषा कहीं अधिक साहित्यिक और दार्शनिक। दिमाग को इसे सचमुच समझने के लिये काफी तैयारी की जरूरत होती है और आम तौर पर उस तैयारी में समय लगता है, जबतक कि उसके अंदर सहज अंतर्भासात्मक क्षमता की प्रतिभा न हो।

बहरहाल, मैं हमेशा यह सलाह देती हूं कि एक समय में **थोड़ा-सा** पढ़ो, मन को जितना बन सके उतना निश्चल और स्थिर रखो, समझने की कोशिश न करो, जहांतक संभव हो सिर को नीरव निश्चल रखने की कोशिश करो, जो तुम पढ़ रहे हो उसमें **जो शक्ति** है उसे **अपने अंदर गहराई में** प्रवेश करने दो, स्थिरता और नीरवता में प्राप्त की हुई यह शक्ति आलोकमय बनाने का कार्य करेगी और जरूरत हो तो मस्तिष्क में समझने के लिये आवश्यक कोषाणुओं का निर्माण करेगी। इस तरह, जब हम उसी चीज को कुछ महीनों के बाद दुबारा पढ़ते हैं तो देखते हैं कि वहां पर अभिव्यक्त किया गया विचार बहुत अधिक स्पष्ट और निकटतर है, यहांतक कि कई बार तो बिल्कुल परिचित मालूम होता है।

ज्यादा अच्छा यह है कि नियमित रूप से और यदि संभव हो तो बंधे हुए समय पर, थोड़ा-बहुत पढ़ा जाये। यह मस्तिष्क की ग्रहणशीलता को ज्यादा सरल बना देता है।

२ नवंबर १९५९

मधुर मां,

आपके भिन्न-भिन्न चित्रों के सामने बैठकर किया गया ध्यान, भिन्न-भिन्न अनुभूतियां क्यों देता है ?

क्योंकि हर चित्र एक अलग पहलू का और कभी-कभी मेरे अलग-अलग व्यक्तित्व का निरूपण करता है और किसी चित्र पर एकाग्र होकर तुम उस विशेष पहलू या अलग व्यक्तित्व के साथ संपर्क साधते हो जो उस चित्र में आया है या वह चित्र जिसे प्रतिबिंबित करता है।

चित्र सच्ची और ठोस उपस्थिति होता है, परंतु आंशिक और सीमित।

४ नवंबर १९५९

मधुर मां,

चित्र आंशिक और सीमित उपस्थिति क्यों है ?

क्योंकि चित्र केवल क्षण भर का बिंब पकड़ता है, व्यक्ति के एक क्षण के रूप-रंग को, और वह रूप-रंग जिस चलती हुई मनोवैज्ञानिक स्थिति और आंशिक आत्मिक अवस्था को प्रकट करता है, उसे पकड़ता है। चाहे चित्र यथासंभव सर्वोत्तम स्थिति में, अपवादिक रूप से, विशेषतया अभिव्यंजक क्षण में लिया गया हो तब भी वह किसी हालत में संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट नहीं कर सकता।

५ नवंबर १९५९

मधुर मां,

अवचेतना और निश्चेतना ठीक-ठीक हैं क्या ?

निश्चेतना प्रकृति का वह भाग है जो इतना अधिक अंधेरा और सोया हुआ है कि वह पूरी तरह से चेतनाविहीन मालूम होता है जैसे पत्थर, खनिज लोक। वहां चेतना पूरी तरह से निष्क्रिय और छिपी हुई रहती है। पृथ्वी का इतिहास इस निश्चेतना से ही शुरू होता है।

हम भी इसे अपने अंदर, अपने शरीर के पदार्थ में लिये रहते हैं क्योंकि हमारे शरीर का पदार्थ वही है जो पृथ्वी का है।

लेकिन विकास द्वारा यह सुषुप्त और छिपी हुई चेतना धीरे-धीरे वनस्पति और पशु-जगत् में से होकर जागती है और उनमें अवचेतना का आरंभ होता है। यह अवचेतना मनुष्य में मन के आविर्भाव द्वारा अपने चरम बिंदु चेतना पर पहुंचती है। इसी भांति यह चेतना भी प्रगतिशील है और जिस अनुपात में मनुष्य विकसित होता है वह अतिचेतन में बदल जाती है।

अतः, हम भी अपने अंदर अवचेतना को लिये रहते हैं जो पशु के साथ हमारा नाता जोड़ती है और अतिचेतन को भी जो हमारी आशा और भावी सिद्धि का आश्वासन है।

७ नवंबर १९५९

मधुर मां,

जब हम खेल के मैदान में आपके संगीत के साथ ध्यान करते हैं तब हमें क्या करने की कोशिश करनी चाहिये ?

इस संगीत का लक्ष्य होता है कुछ गहरी भावनाओं को जगाना।

उसे सुनते समय तुम्हें अपने-आपको जितना संभव हो उतना नीरव और निश्चेष्ट

बनाना चाहिये। और अगर मानसिक नीरवता में सत्ता का कोई भाग साक्षी-भाव अपना सके जो प्रतिक्रिया किये बिना या भाग लिये बिना केवल अवलोकन करता हो तब भावों और भावनाओं पर पैदा होनेवाले संगीत के प्रभाव को देखा जा सकता है और अगर वह गहरी निश्चलता और अर्द्ध-समाधि की अवस्था पैदा करता है तो यह बहुत अच्छी बात है।

१५ नवंबर १९५९

मधुर मां,

अधिमानस का काम क्या है ?[1]

अधिमानस देवों का, भागवत मूल की ऐसी सत्ताओं का क्षेत्र है जिन्हें विश्व के विकास के निरीक्षण, निर्देशन और व्यवस्था का काम सौंपा गया है और अधिक विशेष रूप से, धरती के रूपायण के साथ-साथ उन्होंने उच्चतर लोकों की सहायता धरती के लिये लाने और मन के निर्माण तथा उसके उत्तरोत्तर आरोहण की अध्यक्षता करने के लिये संदेशवाहकों और मध्यस्थों का काम किया है। सामान्यतः विभिन्न धर्मों की प्रार्थनाएं अधिमानस देवों के प्रति संबोधित होती हैं। बहुधा ये धर्म, विभिन्न कारणों से, इन देवों में से किसी एक को अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिये चुनकर परम देव में बदल लेते हैं।

व्यक्तिगत विकास में, अधिमानस के ऊपर, अतिमानस में उठ सकने और अपने-आपको उसकी ओर खोल सकने के पहले, तुम्हें अपने अंदर अधिमानस के अनुरूप क्षेत्र और अधिमानसिक चेतना को विकसित करना होगा।

प्रायः सभी गुह्य पद्धतियां और तंत्र अधिमानस के विकास और उसपर प्रभुत्व को अपना लक्ष्य बनाते हैं।

२७ नवंबर १९५९

मधुर मां,

'अधिमानस के अनुरूप क्षेत्र' का अर्थ क्या है और हम उसे अपने अंदर कैसे विकसित कर सकते हैं ? 'अधिमानस पर प्रभुत्व' का क्या मतलब है ?

व्यक्तिगत सत्ता सत्ता की ऐसी स्थितियों से बनी है जो वैश्व जगतों या लोकों के

[1] यह और इसके बाद के तीन प्रश्न श्रीअरविंद द्वारा 'दिव्य जीवन' में प्रयुक्त कुछ परिभाषाओं के बारे में हैं।

अनुरूप है। जैसे-जैसे सत्ता की ये आंतरिक अवस्थाएं विकसित होती हैं वैसे-वैसे हम उन लोकों के बारे में सचेतन होते जाते हैं। यह चेतना दोहरी होती है, पहली मनोवैज्ञानिक और आत्मनिष्ठ, स्वयं अपने अंदर, जो अपने-आपको विचारों, भावों, भावनाओं और संवेदनों के द्वारा व्यक्त करती है, दूसरी वस्तुनिष्ठ और मूर्त जिसमें व्यक्ति अपने शरीर की सीमाओं के परे जा सकता है ताकि विभिन्न वैश्व क्षेत्रों में घूम-फिर सके, उनके बारे में सचेतन होकर उनमें मुक्त रूप से क्रिया कर सके। इसे 'प्रभुत्व' कहते हैं। जब मैंने अधिमानस पर प्रभुत्व की बात की थी तो मेरा यही मतलब था।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि यह सब एक दिन, यहांतक कि एक वर्ष में भी नहीं हो पाता। यह प्रभुत्व, वह चाहे किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो—प्राणिक, मानसिक और अधिमानसिक—अध्यवसायपूर्ण प्रयास और बहुत अधिक एकाग्रता की मांग करता है। ये प्रभुत्व भौतिक जगत् के प्रभुत्व से अधिक आसान नहीं हैं; और हर एक जानता है कि अपना जीवन उचित रूप से चलाने के लिये एकदम से अनिवार्य चीजें सीखने में कितने समय और प्रयास की जरूरत पड़ती है, फिर ''प्रभुत्व'' की तो बात ही क्या है जो धरती पर सचमुच एक अपवादिक चीज है।

२८ नवंबर १९५९

मधुर मां,

अति प्रकृति या परा प्रकृति क्या है ?

परा प्रकृति वह प्रकृति है जो जड़ या भौतिक प्रकृति से—जिसे हम 'प्रकृति' कहते हैं—श्रेष्ठतर है। लेकिन हम जिस प्रकृति को देखते, अनुभव करते और जिसका अध्ययन करते हैं, यह प्रकृति जो धरती पर हमारे जन्म से ही हमारा परिचित परिवेश रही है, वही एकमात्र प्रकृति नहीं है। एक प्राणिक प्रकृति होती है, एक मानसिक प्रकृति होती है, इसी तरह और भी होती हैं। सामान्य चेतना के लिये यही परा प्रकृति है।

बहुधा 'नेचर' शब्द का उपयोग प्रकृति के पर्याय के रूप में किया जाता है, यानी पुरुष की क्रियाशील शक्ति। लेकिन तुम्हारे प्रश्न का अधिक यथार्थता के साथ उत्तर देने के लिये यह जानना जरूरी है कि श्रीअरविंद ने 'अति प्रकृति' या परा प्रकृति का उपयोग किस प्रसंग में किया है।

१५ दिसंबर १९५९

मधुर मां,

श्रीअरविंद ने 'दिव्य जीवन' में लिखा है, ''अभीतक कोई अधिमानसिक

सत्ता या व्यवस्थित अधिमानसिक प्रकृति नहीं है, कोई अतिमानसिक सत्ता या व्यवस्थित अतिमानसिक प्रकृति नहीं है जो हमारी सतह पर या हमारे सामान्य अंतस्तलीय भागों में काम कर रही हो।" मधुर मां, क्या अतिमानस के अवतरण के बाद भी ऐसा ही है?'

श्रीअरविंद का मतलब है कि बस कुछ थोड़ी-सी अपवादिक सत्ताएं ही हैं जो सामान्य मानवजाति की नहीं हैं, जिनमें सचेतन और व्यवस्थित अधिमानसिक सत्ता और अतिमानसिक जीवन हो, और इससे भी कम ऐसे लोग हैं जिनमें एक व्यवस्थित अतिमानसिक सत्ता और अतिमानसिक जीवन हो—अगर यह मान भी लिया जाये कि ऐसी सत्ताएं हैं। निश्चय ही अभी हाल के धरती के वातावरण में अतिमानस के प्रथम तत्त्वों के अवतरण ने (जिसे अभी पूरे चार वर्ष भी नहीं हुए) वस्तुओं की इस स्थिति को बदला नहीं होगा।

हम अभीतक केवल तैयारी के काल में हैं।

१८ दिसंबर १९५९

मधुर मां,

भक्तियोग और ज्ञानयोग का मतलब क्या है?

ज्ञानयोग वह मार्ग है जो तुम्हें शुद्ध और निरपेक्ष सत्य की ऐकांतिक खोज द्वारा भगवान् की ओर ले जाता है।

भक्तियोग वह मार्ग है जो संपूर्ण, समग्र और शाश्वत प्रेम द्वारा भगवान् के साथ ऐक्य की ओर ले जाता है।

श्रीअरविंद के पूर्णयोग में ये दोनों कर्मयोग और आत्म-सिद्धि-योग के साथ मिलकर एकरूप समग्र बनाते हैं जिसकी परिणति होती है अतिमानसिक सिद्धि के योग में।

५ फरवरी १९६०

मधुर मां,

'परम क्षमताएं' कौन-सी हैं?

'२९ फरवरी १९५६ को माताजी के शब्दों में, "धरती पर अतिमानस की अभिव्यक्ति हुई और तब धरती पर अतिमानसिक ज्योति, शक्ति और चेतना का अबाध प्रवाह आया।"

प्रसंग जाने बिना उत्तर देना कठिन है। यहां कौन-सी 'परम क्षमताओं' की बात हो रही है ? उन मनुष्यों की क्षमताएं जो अतिमानव होने के पथ पर हैं या वे जो यहां धरती पर प्रकट होनेवाली अतिमानसिक सत्ता में होंगी ?

पहले में वे क्षमताएं हैं जो मनुष्य के अंदर तब विकसित होती हैं जब वह उच्चतर मन और अधिमन की ओर खुलता है और वह उन लोकों के द्वारा सत्य का प्रकाश पाता है। ये क्षमताएं परम सत्य की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं हैं बल्कि उसका अभिलेख या परोक्ष बिंब हैं। उनमें अंतर्भास, पूर्व ज्ञान, तादात्म्य द्वारा ज्ञान तथा कुछ शक्तियों का समावेश होता है, उदाहरण के लिये नीरोग करनेवाली तथा कुछ हद तक परिस्थितियों पर अधिकारपूर्वक क्रिया करनेवाली शक्तियों का।

अगर इसका संकेत अतिमानसिक सत्ता की परम क्षमताओं से है तो हम उसके बारे में बहुत कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि अभीतक हम इस बारे में जो कह सकते हैं वह ज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा कल्पना के क्षेत्र का अधिक होता है क्योंकि अभीतक यह अतिमानसिक सत्ता धरती पर प्रकट नहीं हुई है।

२३ अप्रैल १९६०

मधुर मां,

"मानव सत्ता के विभिन्न मनोवैज्ञानिक भाग" कौन-से हैं ?

ये विभाजन मनमाने हैं। ये मानव प्रकृति के अध्ययन को सरल बनाने के लिये और विशेष रूप से आत्म-विकास और आत्म-संयम के विभिन्न तरीकों के लिये निश्चित आधार बनाने के लिये स्थापित किये गये हैं। इसीलिये हर दार्शनिक, शैक्षिक या यौगिक पद्धति का मानों अपना ही अलग विभाजन है जिसका आधार होता है उसके संस्थापक की अपनी अनुभूति। फिर भी, इन सब भेदों के बावजूद, एक प्रकार की परंपरा है जो विभिन्न परिभाषाओं के पीछे एक तात्त्विक सादृश्य बनाये रखती है। इस सादृश्य को इन चार शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है : भौतिक, प्राण, मन, चैत्य या अंतरात्मा।

श्रीअरविंद ने इस विषय पर बहुत विस्तार से अपने लेखों में और 'योग-समन्वय' तथा 'गीता-प्रबंध' में लिखा है।

३० मई १९६०

मधुर मां,

क्या भगवान् के बारे में ठीक धारणा बनाना संभव है ?

भगवान् के बारे में कोई भी धारणा ठीक नहीं हो सकती क्योंकि धारणा मानसिक क्रिया है और कोई भी मानसिक क्रिया भगवान् को अभिव्यक्त करने योग्य नहीं है।

केवल अनुभव द्वारा तुम उन्हें जान सकते हो और अनुभूति को शब्दों में अनूदित नहीं किया जा सकता।

२० जून १९६०

पत्रमाला ९

पत्रमाला ९

[श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र के एक युवा अध्यापक के नाम।]

मधुर मां,

मैं श्रीअरविंद की पुस्तकों को किस मनोवृत्ति के साथ पढ़ूं, जब वे कठिन हों और मेरी समझ में न आयें? उदाहरण के लिये 'सावित्री', 'दिव्य जीवन'।

एक समय में थोड़ा-सा पढ़ो और जबतक समझ में न आये बार-बार पढ़ते चलो।

श्रीअरविंद कहते हैं, "योग क्रियात्मक मनोविज्ञान के सिवा कुछ नहीं है।" इस वाक्य का मतलब क्या हुआ? सारा अनुच्छेद ही मेरे लिये स्पष्ट नहीं है।

क्योंकि तुम मनोविज्ञान के बारे में कुछ नहीं जानते। मनोविज्ञान का अध्ययन करो तब तुम समझ जाओगे कि उनका मतलब क्या है।

श्रीअरविंद कहते हैं, "तुम जिस किसी रूप में और जिस किसी भाव से उनके निकट जाओ, वे उसी रूप में, उसी भाव से तुम्हारी आहुति को स्वीकार करते हैं।" इसका क्या मतलब हुआ?

इसका मतलब है कि हम जो कुछ अर्पण करते हैं निश्चित रूप से परम प्रभु को ही अर्पित करते हैं, क्योंकि वे ही हर चीज के पीछे एकमात्र सद्वस्तु हैं।

श्रीअरविंद ने लिखा है, 'जो शाश्वत को चुनता है वह शाश्वत द्वारा चुना गया है', तो मां, औरों के बारे में क्या? जीवन का लाभ ही क्या यदि भगवान् हमें नहीं चाहते। मुझे लगता है कि सचमुच भगवान् ने हम सब को चुन लिया है, लेकिन इस वाक्य का अर्थ क्या होगा तब?

वास्तव में भगवान् ने सभी को और सभी चीजों को चुन लिया है, और हर व्यक्ति और हर चीज उन्हींकी ओर लौट जायेगी, लेकिन कुछ के लिये यह हजारों जीवन ले लेगा जब कि कुछ औरों के लिये यह इसी जीवन में संपन्न हो जायेगा। इसी बात से दोनों में फर्क पड़ता है।

२३ मई १९६०

मधुर मां,

आपने कहा है कि मैं अच्छी तरह नहीं सोचता। अपने विचार को कैसे विकसित किया जाये ?

तुम्हें बहुत ध्यान और एकाग्रता के साथ पढ़ना चाहिये—उपन्यास या नाटक नहीं बल्कि ऐसी पुस्तकें जो तुम्हें सोचने के लिये प्रवृत्त करें। तुमने जो पढ़ा है उसपर तुम्हें ध्यान करना चाहिये, एक विचार पर तबतक मनन करना चाहिये जबतक उसे समझ न जाओ। कम बोलो, स्थिर और एकाग्र रहो और तभी बोलो जब अनिवार्य हो।

१ जून १९६०

मधुर मां,

आपने अध्यापकों से कहा है कि वे शब्दों द्वारा सोचने की जगह विचारों द्वारा सोचा करें। आपने यह भी कहा है कि इसके बाद आप उनसे अनुभूतियों द्वारा सोचने के लिये कहेंगी। क्या आप सोचने के इन तीन तरीकों पर कुछ प्रकाश डालेंगी ?

हमारे मकान पर एक बहुत ऊंचा मीनार है। इस मीनार के ऊपर एक बहुत प्रकाशमान, खाली कमरा है, हम खुली हवा और पूर्ण ज्योति में बाहर निकलें उससे पहले का यह अंतिम कमरा है।

कभी-कभी जब हमें छूट मिल जाती है तो हम उस प्रकाशमान कमरे तक चढ़ जाते हैं और अगर हम वहां बहुत शांत रहें तो दो एक अतिथि हमसे मिलने के लिये आते हैं, कुछ लंबे होते हैं, कुछ छोटे, कुछ अकेले होते हैं, कुछ दलों में; सभी प्रकाशमान और शालीन होते हैं।

साधारणतः, उनके आने की खुशी में, उनके स्वागत की जल्दी में हम अपनी शांति खो बैठते हैं और दौड़ते-भागते नीचे के बड़े कक्ष में आ जाते हैं जो मीनार की नींव और शब्दों का भंडार है। यहां न्यूनाधिक उत्साह के साथ, हमारी पहुंच में जितने शब्द हैं उन्हें चुनते, त्यागते, इकट्ठा करते, जोड़ते, व्यवस्थित करते, अव्यवस्थित करते हैं और इस तरह अपने पास आये हुए इस या उस आगंतुक का चित्र बनाने की कोशिश करते हैं; लेकिन बहुधा हम आगंतुक का चित्र बनाने की जगह व्यंग्य-चित्र बनाने में ही सफल होते हैं।

फिर भी अगर हम बुद्धिमान् होते तो हम ऊपर ही, मीनार की चोटी पर बने रहते, बिल्कुल शांत, आनंदमय मनन में बने रहते। तब, उसके कुछ समय बाद, हम स्वयं

आगंतुकों को अपने लालित्य और सौंदर्य को खोये बिना धीरे-धीरे, शालीनता के साथ, शांति से उतरते देखते, और जब वे शब्दों के भंडार-गृह को पार करते हैं तो बिना प्रयास के, आपने-आप, ऐसे शब्दों को पहन लेते हैं जो उन्हें इस जड़ भौतिक भवन में भी बोधगम्य बनाने के लिये आवश्यक हों।

यही है जिसे मैं विचारों द्वारा सोचना कहती हूं।

जब यह प्रक्रिया तुम्हारे लिये रहस्यमय न रह जाये तब मैं तुम्हें बतलाऊंगी कि अनुभूतियों द्वारा सोचने का अर्थ क्या है।

१ जून १९६०

मेरे प्यारे बालक,

मैंने तुम्हारा अच्छा-सा पत्र अभी-अभी पढ़ा है। किसी चीज से न डरो। जो अपनी अभीप्सा में सच्चे और निष्कपट हैं वे यहां बने रहेंगे और उनके अंदर जिस किसी चीज को बदलने की जरूरत है उसे बदलने के लिये समस्त सहायता पायेंगे। तुम विश्वास रख सकते हो कि मेरी शक्ति हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी ताकि तुम जो भी प्रगति करना चाहते हो वह कर सको।

विश्वास रखो मेरे बालक, सब कुछ ठीक होगा।

५ जून १९६०

मधुर मां,

श्रीअरविंद 'कामनाओं की केंद्रीय ग्रंथि' के बारे में कहते हैं जिसे काटना चाहिये। उसे कैसे किया जा सकता है और कहां से शुरू किया जाये?

कामनाओं की केंद्रीय ग्रंथि है पृथक् व्यक्तित्व का भाव। वह है अहंकार। अहंकार के गायब होने से कामनाएं भी गायब हो जाती हैं।

१३ जून १९६०

मधुर मां,

एक दिन आपने कक्षा में अपने हाथ फैलाकर कहा था कि हमें अपना सब कुछ आपको दे देना चाहिये, अपने समस्त दोष, अपनी बुराइयां और गंदगी भी। क्या उनसे पिंड छुड़ाने का यही एक तरीका है, इसे कैसे किया जाये?

तुम अपने दोषों को इसलिये रखते हो क्योंकि तुम उन्हें इस तरह पकड़े रहते हो मानों

वे बहुमूल्य हों, तुम अपने दोषों से ऐसे चिपके रहते हो जैसे कोई अपने शरीर के किसी अंग से चिपका रहता है और किसी बुरी आदत को निकालने से वैसी ही तकलीफ होती है जैसी दांत उखाड़ने से। इसी कारण तुम प्रगति नहीं कर पाते।

जब कि अगर तुम उदारता के साथ अपने दोष, बुराई या बुरी आदत की भेंट चढ़ा देते हो तो तुम्हें भेंट करने का आनंद मिलता है और उसके बदले में, जो दिया गया है उसके स्थान पर, ज्यादा अच्छे और ज्यादा सच्चे स्पंदन लाने की शक्ति पाते हो।

१३ जून १९६०

मधुर मां,

जब हम आपसे गहरा प्रेम करते हैं और घनिष्ठ संपर्क में होते हैं तो हमें लगता है कि भगवान् हमारे, ऐकांतिक रूप से हमारे हैं, (यह नहीं कि हम उनके हैं) ऐसा क्यों होता है ?

दोनों समान रूप से सत्य हैं और दोनों का एक साथ अनुभव होना चाहिये, लेकिन मानव अहंकार हमेशा देने की नहीं लेने की वृत्ति रखता है। इसी कारण ऐसा लगता है।

३ जुलाई १९६०

मधुर मां,

मेरे लिये श्रीअरविंद की ओर जाने की अपेक्षा आपकी ओर जाना ज्यादा आसान है। क्यों ? हमारे लिये श्रीअरविंद जो कुछ हैं वह सब आप भी हैं और साथ ही दिव्य और प्रेममय जननी भी हैं। तो क्या श्रीअरविंद के साथ भी यही नाता जोड़ने की जरूरत है ?

तुमने अपने-आप अपने प्रश्न का उत्तर दे दिया है। मैं तुम्हारे लिये एक मां हूं जो तुम्हारे बहुत ही निकट है, जो तुमसे प्यार करती और तुम्हें समझती है; इसी कारण तुम्हारे लिये प्रेम-भरे विश्वास के साथ, बिना भय और संकोच के, मेरी ओर आना ज्यादा आसान है। श्रीअरविंद हमेशा तुम्हारी सहायता और पथ-प्रदर्शन के लिये तुम्हारे साथ होते हैं; लेकिन यह स्वाभाविक है कि तुम्हें उनकी ओर उस तरह के आदर के साथ जाना चाहिये जैसे योग के स्वामी के पास जाते हो।

३ जुलाई १९६०

मधुर मां,

चैत्य सत्ता और अंतरात्मा ठीक-ठीक हैं क्या ? और चैत्य के विकास का क्या मतलब है ? उसका परम पुरुष के साथ क्या संबंध है ?

अंतरात्मा और चैत्य सत्ता ठीक एक ही चीज नहीं हैं, यद्यपि उनका सारतत्त्व एक ही है।

अंतरात्मा वह दिव्य चिंगारी है जो हर सत्ता के केंद्र में निवास करती है; वह अपने दिव्य स्रोत के साथ एकात्म है, वह मनुष्य के अंदर भगवान् है।

पार्थिव विकास में अपने अनगिनत जीवनों के दौरान चैत्य सत्ता इस दिव्य केंद्र, अंतरात्मा के चारों ओर क्रमशः निर्मित होती रहती है, जबतक ऐसा समय न आ जाये कि पूरी तरह निर्मित और पूर्णतया जाग्रत् चैत्य सत्ता, जिस अंतरात्मा के चारों ओर निर्मित होती है उसीका, सचेतन कोष न बन जाये।

और इस तरह भगवान् के साथ तदात्म होकर वह जगत् में उनका संपूर्ण यंत्र बन जाती है।

१६ जुलाई १९६०

मधुर मां,

आपने कहा है कि एक बार हम अपनी चैत्य सत्ता को पा लें तो फिर उसे कभी नहीं खो सकते। ऐसा ही है न ? लेकिन अगर हम ग्रहणशील हों तो क्या हम समय-समय पर उसके संपर्क में आ सकते हैं ?

जब तुम अपनी चैत्य सत्ता के साथ संपर्क सिद्ध कर लेते हो तो यह वस्तुतः निश्चयात्मक होता है।

लेकिन इस संपर्क के प्रतिष्ठित होने से पहले, अमुक परिस्थितियों में तुम सचेतन रूप से चैत्य **प्रभाव** पा सकते हो, जो निश्चय ही सत्ता में सदा एक आलोक पैदा करता है और जिसका प्रभाव न्यूनाधिक रूप से स्थायी होता है।

१६ जुलाई १९६०

मधुर मां,

अंतरात्मा अपने-आपको व्यक्तिभावापन्न बनाकर धीरे-धीरे चैत्य सत्ता में बदल लेती है। उसके तेजी से बढ़ने की क्या शर्तें हैं ?

यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि अंतरात्मा उत्तरोत्तर एक व्यष्टि रूप धारण करती है जो

चैत्य सत्ता बन जाता है। चूंकि अंतरात्मा स्वयं परम पुरुष का अंश है, वह अविकारी और शाश्वत है। चैत्य सत्ता प्रगतिशील और अमर है।

आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्माधिकार के सभी तरीके अच्छे हैं। तुम्हें वह तरीका चुनना चाहिये जो तुम्हारे पास सहज रूप से आये और तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल हो। एक बार तरीका चुन लेने के बाद तुम्हें अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण इच्छा का उपयोग कभी न हारनेवाले ऐसे अध्यवसाय के साथ करना चाहिये जो किसी विघ्न-बाधा से नहीं सकुचाता। यह एक लंबा और सूक्ष्म काम है जिसे सचाई के साथ हाथ में लेना चाहिये और इसे कर्तव्यनिष्ठ, पूर्ण, हमेशा बढ़ती हुई सचाई के साथ जारी रखना चाहिये।

साधारणतः सरल मार्ग हमें कहीं नहीं ले जाते।

२८ जुलाई १९६०

मधुर मां,

क्या कुकर्मों और निम्न चेतनावाले बाहरी जीवन का चैत्य सत्ता पर कोई असर होता है? क्या उसकी अवनति की संभावना रहती है?

निम्नतर और बुरे जीवन का केवल एक ही असर हो सकता है और वह है बाहरी सत्ता को चैत्य सत्ता से अधिकाधिक अलग करना। तब चैत्य सत्ता उच्चतर चेतना की गहराई में उतर जाती है और कभी-कभी शरीर से अपना संबंध काट भी लेती है और तब उसपर प्रायः आसुरी या राक्षसी सत्ता का अधिकार हो जाता है।

स्वयं चैत्य सत्ता अवनति की समस्त संभावनाओं के ऊपर रहती है।

२८ जुलाई १९६०

मधुर मां,

जो सत्ता सामान्यतः अचेतन होती है उसपर अंतरात्मा का प्रभाव कैसे होता है?

अंतरात्मा का प्रभाव एक तरह की कांति है जो अधिक-से-अधिक अपारदर्शक पदार्थों में से गुजरती है और निश्चेतना में भी काम करती है।

लेकिन उसकी क्रिया धीमी होती है और उसके परिणाम के दीखने लायक बनने में बहुत लंबा समय लगता है।

३१ जुलाई १९६०

मधुर मां,

श्रीअरविंद कहते हैं कि सामान्य अंतःकरण की आवाज अंतरात्मा की आवाज नहीं होती। तब वह क्या है?

सामान्य अंतःकरण की आवाज नैतिक आवाज होती है, एक ऐसी नैतिक आवाज जो अच्छे और बुरे के अंदर फर्क करती है, हमें शुभ करने के लिये प्रोत्साहित करती और अशुभ करने से रोकती है। सामान्य जीवन में यह आवाज तबतक बहुत उपयोगी होती है जबतक मनुष्य अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन न हो जाये और अपने-आपको पूरी तरह उसके पथ-प्रदर्शन में न दे दे—दूसरे शब्दों में कहें तो जबतक वह सामान्य जीवन से ऊपर न उठ जाये, अपने-आपको समस्त अहंकार से मुक्त न कर ले और भागवत इच्छा का सचेतन यंत्र न बन जाये। स्वयं अंतरात्मा भगवान् का अंश होने के नाते सभी नैतिक और सदाचारी धारणाओं से परे है। वह दिव्य प्रकाश में स्नान करती और उसे अभिव्यक्त करती है, लेकिन वह समस्त सत्ता पर शासन तभी कर सकती है जब अहंकार विलीन हो जाये।

१२ अगस्त १९६०

मधुर मां,

आपने कहा है कि श्रीअरविंद के कमरे में बैठकर ध्यान करने की अनुमति पाने के लिये यह जरूरी है कि "आदमी ने उनके लिये बहुत कुछ किया हो" इससे आपका क्या मतलब है? हम भगवान् के लिये ऐसा क्या कर सकते हैं जिसे 'बहुत कुछ' माना जा सके?

भगवान् के लिये कुछ करने का मतलब है उन्हें ऐसा कुछ देना जो तुम्हारे पास है या जो तुम करते हो, या जो तुम हो। दूसरे शब्दों में, उन्हें अपनी संपत्ति में से कुछ देना या अपना सारा माल-मता दे देना, अपने कर्म का कुछ अंश या अपने सारे क्रिया-कलाप अर्पण कर देना, या अपने-आपको पूर्णतया, निस्संकोच भाव से उन्हें सौंप देना ताकि वे हमारी प्रकृति को रूपांतरित करने और उसे दिव्य बनाने के लिये उसपर अधिकार कर सकें। लेकिन बहुत से लोग हैं जो कुछ भी दिये बिना हमेशा लेना और ग्रहण करना चाहते हैं। ये लोग स्वार्थी होते हैं और श्रीअरविंद के कमरे में ध्यान करने योग्य नहीं हैं।

२६ सितंबर १९६०

मधुर मां,

आप आशीर्वाद-दिवसों पर जो संदेश देती हैं वे कैसे चुने जाते हैं? हमें

उन्हें कैसे पढ़ना चाहिये और विशेष रूप से उनमें कौन-सी नयी चीज को खोजना चाहिये ?

संदेश प्रायः अवसर या उस समय की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए चुने जाते हैं ताकि हर व्यक्ति उनमें वह शक्ति या ज्ञान पा सके जो उसे प्रगति करने में सहायता देगा।

हर एक में प्रगति करने की इच्छा आवश्यक चीज है—वही हमें भागवत प्रभाव की ओर खोलती और हमें उसकी लायी हुई चीजों को ग्रहण करने योग्य बनाती है।

२६ सितंबर १९६०

मधुर मां,

श्रीअरविंद कहते हैं कि योग-मार्ग का अनुसरण करने से पहले "पुकार और आत्मा के उत्तर के बारे में निश्चित होओ", अन्यथा परिणाम संकटाकीर्ण होगा। लेकिन हम यह कैसे जान सकते हैं कि सचमुच पुकार है या नहीं। और क्या हमारी आत्मा हमेशा योग-मार्ग को नहीं चुनेगी ?

श्रीअरविंद का मतलब यह है कि तुम्हें मानसिक महत्त्वाकांक्षा या प्राणिक सनक को आध्यात्मिक पुकार न मान लेना चाहिये—क्योंकि वही एकमात्र निश्चित संकेत है कि तुम्हें योग-मार्ग अपनाना चाहिये। आध्यात्मिक पुकार तभी सुनायी देती है जब समय आ जाता है, और तब आत्मा उत्तर देती और मार्ग पर चल पड़ती है। वह किसी महत्त्वाकांक्षा, गर्व या कामना में अपने-आपको फंसने नहीं देती और जबतक उसे पथ ग्रहण करने के लिये भागवत आदेश नहीं मिलता तबतक धीरज से प्रतीक्षा करती है, यह जानते हुए कि समय से पहले चल पड़ना व्यर्थ तो है ही, हानिकर भी हो सकता है।

१७ अक्तूबर १९६०

मधुर मां,

श्रीअरविंद हमसे कहते हैं 'अमरों की सुधा की अपेक्षा भगवान् की कृपा को पाना और बनाये रखना ज्यादा कठिन है' इसका अर्थ क्या हुआ ? क्या हमारी ग्रहणशीलता के आधार पर भागवत कृपा की हमारे ऊपर हमेशा झड़ी नहीं लगी रहती ?

भागवत कृपा हमेशा रहती है, शाश्वत रूप से उपस्थित और सक्रिय; लेकिन

श्रीअरविंद कहते हैं कि हमारे लिये उसे ग्रहण करने, बनाये रखने और वह जो देती है उसका उपयोग करने की स्थिति में रहना बहुत कठिन है।

श्रीअरविंद तो यहांतक कहते हैं कि अमर देवों के प्याले से पीने की अपेक्षा यह ज्यादा कठिन है।

भागवत कृपा पाने के लिये तुम्हारे अंदर प्रबल अभीप्सा ही नहीं, सच्ची निष्कपट विनय और संपूर्ण विश्वास भी होना चाहिये।

१७ अक्तूबर १९६०

मधुर मां,

हमेशा चेतना की समान ऊंचाई पर रहना क्यों संभव नहीं होता? कभी-कभी सारे प्रयास और अभीप्सा के बावजूद मैं गिर पड़ता हूं।

श्रीअरविंद "आत्मसात् करने के काल" की बात कहते हैं। वह क्या है, माताजी?

इसका कारण यह है कि व्यक्ति एक ही टुकड़े का बना हुआ नहीं है, बल्कि बहुत-सी विभिन्न सत्ताओं से बना है जो कभी-कभी एक-दूसरे से विपरीत भी होती हैं। कुछ आध्यात्मिक जीवन चाहती हैं, कुछ और सांसारिक वस्तुओं से चिपकी रहती हैं। इन सब भागों को सहमत करना और उन्हें एक करना बहुत लंबा और कठिन काम है।

अधिक विकसित भाग जिस शक्ति और ज्योति को पाते हैं वह धीरे-धीरे आत्मसात् करने की क्रिया द्वारा अन्य सब भागों में फैलती है, आत्मसात्करण की इस अवधि में ऐसा लगता है कि अधिक विकसित भागों की प्रगति में बाधा आती है। श्रीअरविंद ने इसीके बारे में कहा है।

२९ अक्तूबर १९६०

मधुर मां,

प्रायः परम आनंद की घड़ियों में जीना संभव होता है क्योंकि हम अपने व्यष्टिगत भगवान् के संपर्क में होते हैं। परात्पर भगवान् के संपर्क में कैसे आया जाता है?

यह एकदम निश्चित है कि अगर तुम **सचमुच** "अपने व्यष्टिगत भगवान्" के संपर्क में हो तो तुम पूरी तरह, भली-भांति जान लोगे कि "परात्पर भगवान् की ओर कैसे पहुंचा

जाये''; क्योंकि दोनों एक ही हैं। केवल उनकी ओर जाने का तरीका अलग है, एक है हृदय के द्वारा और दूसरा मन से।

२९ अक्तूबर १९६०

मधुर मां,

अपने पिछले प्रश्न में मैंने अपनी बात बहुत भद्दे ढंग से रखी थी और आपके उत्तर ने मुझे अपने पाखंडी होने का अनुभव कराया। मैं कहना यह चाहता था कि अपनी ग्रहणशीलता के सर्वोत्तम क्षणों में हमारा एक ऐसी उपस्थिति के साथ संपर्क होता है जिसे अपने-आपको अर्पित करने की हमें चरम आवश्यकता मालूम होती है और जो हमारे समस्त प्रेम और आराधना का पात्र है। इस उपस्थिति को मैंने 'व्यक्तिगत भगवान्' कहा है, जो वस्तुतः आपके सिवा कोई और नहीं। मुझे मालूम है कि वर्तमान स्थिति में भगवान् की पूरी धारणा बनाना संभव नहीं है।

तो मां, अब मुझे बतलाइये कि क्या "परात्पर भगवान्" की धारणा पाना संभव है?

मेरे उत्तर में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर समाया हुआ था, क्योंकि मैं भली-भांति जानती थी कि तुम कोई दावा नहीं कर रहे थे लेकिन अपनी बात को ठीक तरह व्यक्त नहीं कर पा रहे थे।

परात्पर भगवान् को पाने के लिये तुम्हें बौद्धिक साधना करनी होगी, ज्ञान-मार्ग अपनाना होगा और उत्तरोत्तर निरसन द्वारा एकमात्र सत्य, देश, काल और रूप से परे निरपेक्ष तक पहुंचना होगा। यह लंबा और कठिन मार्ग है और है बहुत अधिक श्रमसाध्य मार्ग।

जब कि हृदय द्वारा तुम अंतर्यामी भगवान् को ढूंढ़ने के लिये बढ़ सकते हो; और अगर तुम सचमुच कामना और अहंकार के बिना सच्चा प्रेम करना जानते हो तो तुम बहुत जल्दी उन्हें पा लेते हो, क्योंकि वे सदा तुम्हारी सहायता करने के लिये तुमसे मिलने आते हैं।

१२ नवंबर १९६०

मधुर मां,

श्रीअरविंद हमसे कहते हैं "अपनी पूर्णता में भगवान् हर चीज का आलिंगन करते हैं, हमें भी सर्वालिंगनकारी बनना चाहिये।" युवकों में इस वाक्य के बारे में बहुत गलतफहमी है। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि यहां शारीरिक आलिंगन का कोई प्रश्न ही नहीं है जैसा कि गली-कूचों के नटखट लड़कों के जैसी रुचि और आदतवाले, शरारत करनेवाले सुझाव देना चाहेंगे, जो श्रीअरविंद के लेखन में अपने असंयम के लिये कोई बहाना ढूंढ़ते हैं। दिव्य आलिंगन अंतरात्मा और चेतना के आलिंगन होते हैं, और वे मनुष्यों में चेतना, समझ और अनुभूति के विस्तार द्वारा, एक ऐसे विस्तार द्वारा ही आ सकते हैं जो तुम्हें पसंद, या ऐकांतिकता के बिना हर चीज को समझने, हर चीज से प्रेम करने योग्य बनाता है।

२६ नवंबर १९६०

मधुर मां,

हमें बतलाया गया है कि आश्रम में बच्चों के आने से पहले परिस्थितियां बहुत कठोर और अनुशासन बहुत कड़ा था। अब वे परिस्थितियां कैसे और क्यों बदली गयी हैं ?

बच्चों के आने से पहले आश्रम में केवल उन्हीं लोगों को स्वीकृति मिलती थी जो साधना करना चाहते थे और केवल उन्हीं आदतों और क्रियाओं को सहा जाता था जो योगाभ्यास के लिये उपयोगी थीं।

लेकिन चूंकि बच्चों से यह मांग करना अयुक्तियुक्त होगा कि वे साधना करें इसलिये जिस क्षण आश्रम में बच्चों का प्रवेश हुआ, इन कठोरताओं को गायब होना पड़ा।

२६ नवंबर १९६०

मधुर मां,

क्या अपने अंदर चैत्य सत्ता को पाने से पहले आपके साथ पूर्णतया, निरपेक्ष भाव से प्रेम करना संभव है ?

पार्थिव मनुष्य के अंदर केवल चैत्य सत्ता ही सच्चे प्रेम को जानती है, रही बात **पूर्ण** प्रेम की तो वह केवल भगवान् में विद्यमान है।

२६ अप्रैल १९६१

मधुर मां,

१९६१ के नये वर्ष के संदेश में आप कहती हैं, "आनंद का यह अद्भुत

जगत् हमारे द्वार पर खड़ा, नीचे धरती पर आने के लिये हमारे आह्वान की प्रतीक्षा में है।" कृपया बतलाइये कि क्या वह अभीतक आ नहीं गया ?

आनंद का जगत् नीचे नहीं आया है, केवल अतिमानसिक ज्योति, चेतना और शक्ति आयी हैं।

२६ अप्रैल १९६१

मधुर मां,

हम इस अद्‌भुत आनंद के जगत् को सबसे अधिक प्रभावकारी तरीके से कैसे बुला सकते हैं ?

अभीप्सा में संपूर्ण सचाई और निष्कपटता से।

२६ अप्रैल १९६१

मधुर मां,

जब यह आनंद नीचे उतरेगा तो संसार में इसके दृश्य परिणाम क्या होंगे ?

व्यापक सद्‌भावना और सामंजस्य।

२६ अप्रैल १९६१

मधुर मां,

आजकल आपका प्रतीक और श्रीअरविंद का नाम सब तरह की चीजों पर छापे जाते हैं, दैनिक जीवन की हजारों नगण्य छोटी चीजों पर जिन्हें एक बार काम पूरा हो जाने पर फेंक दिया जाता है, जैसे दियासलाई, पेंसिल, दांत के बुरुश, कंघी, साड़ी के किनारों पर भी जिनपर पैर पड़ा करते हैं। क्या इन बहुमूल्य चीजों का इस साधारण ढंग से उपयोग करना ठीक है ?

और फिर हम इन चीजों से क्या कर सकते हैं जब हमें उनकी जरूरत न रहे। हम उन्हें फेंक नहीं सकते, पुराने कैलेंडरों का भी हमारे पास पुलिंदा इकट्ठा हो गया है।

भगवान् सब जगह, सब चीजों में हैं, उन चीजों में भी जिन्हें हम फेंक देते हैं और उनमें भी जिन्हें हम सुरक्षित रखते हैं, उनमें जिन्हें हम पैरों से कुचलते हैं और उनमें

भी जिनकी हम पूजा करते हैं। हमें आदर के साथ जीना सीखना चाहिये और 'उनकी' सतत और निर्विकार उपस्थिति को कभी न भूलना चाहिये।

२ जून १९६१

अगर तुम चित्रोंवाले कैलेंडरों की बात कह रहे हो तो ज्यादा अच्छा है कि चित्रों को काट लो और अगर तुम उन्हें नहीं रखना चाहते तो 'क' को दे दो जो उनका अच्छा उपयोग करता है।

और अगर तुम कहते हो कि चित्र **बिगड़** गये हैं तो इससे तुम यह समझ पाओगे कि हम जिन चीजों का उपयोग करते हैं उन्हें सावधानी से रखना कितना जरूरी है। जब मैं **आदर** के साथ जीने की बात करती हूं तो उसका यही मतलब होता है।

जून १९६१

मधुर मां,

क्या अपनी चैत्य सत्ता को पाने और अपनी चेतना को ऊंचा उठाने का कोई सक्रिय और द्रुत उपाय है ?

एक ही तरीका तेज हो सकता है कि बस केवल **उसी** के बारे में सोचो और केवल **उसी** को चाहो।

यह प्रभावकारी तो है परंतु काम के लिये बहुत व्यावहारिक नहीं !

२७ मई १९६३

पत्रमाला १०

पत्रमाला १०

[ये पत्र श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र के शारीरिक शिक्षण-विभाग के कप्तान के नाम हैं। उसने उन्नीस वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।]

मधुर मां,

शुक्रवार आठवीं तारीख की रात को मुझे एक बड़ा विचित्र स्वप्न आया। मैं खेल के मैदान में आपको न सुना पाया इसलिये अब लिख रहा हूं।

दिन बहुत ही विशेष रूप से अच्छा था। खेल के मैदान में कोई महत्त्वपूर्ण सभा थी इसलिये मैं तेजी से जा रहा था। लेकिन खेल के मैदान के पास, 'स्टैण्डर्ड स्टोर्स' के सामने रास्ता अनगिनत सांपों से भरा था। मैं ठिठक गया, कुछ डर-सा गया। मैं रास्ता कतरा कर दूसरी ओर से जाने ही वाला था कि, उसी समय किसी ने भीतर से मुझसे कहा, "यह क्या! तुम सांपों से डरते हो? चलो, हिम्मत करो और उनके बीच में से आगे बढ़ो। वे तुम्हें कोई नुकसान न पहुंचायेंगे।" मैं पूरे विश्वास के साथ उनके बीच में से चला। उनमें से एक ने भी मुझे तंग नहीं किया और न मैंने ही उन्हें तंग किया। जब मैं खेल के मैदान में पहुंचा तो एक मित्र के साथ बातें करने लगा। अचानक वह डर के मारे पीछे की ओर कूदा और बोला, "सावधान, तुम्हारी दोनों भुजाओं पर सांप लिपटे हुए हैं, पैरों और टखनों पर भी।" अभीतक मैंने उनकी उपस्थिति का अनुभव नहीं किया था। मुझे जरा भी डर नहीं लगा। मैंने एक-एक करके उन्हें निकाला और फेंक दिया। एक सांप मरा हुआ था क्योंकि उसपर मेरा पैर पड़ गया था।

मुझे बस इतना ही स्पष्ट रूप से याद है। मुझे याद नहीं कि इसके बाद खेल के मैदान में क्या हुआ।

माताजी, इस स्वप्न के बारे में आपका क्या ख्याल है?

स्वप्न सचमुच बहुत मजेदार है। साधारणतः सांप तुम्हारे चारों ओर के लोगों के बुरे विचारों या दुर्भावनाओं का प्रतीक होते हैं—या कोई विरोधी आक्रमण जो रोग के रूप में प्रकट हो सकता है। लेकिन जैसा कि तुमने अपने स्वप्न में स्पष्ट रूप से अनुभव किया, अगर तुम डरो नहीं और बिना घबराये अपनी राह पर चलते रहो तो तुम्हें कोई हानि नहीं हो सकती।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

१३ अक्तूबर १९५४

मधुर मां,

समय-समय पर बुरे विचारों का उफान आ जाता है; मेरा मन आवेशों की दलदल बन जाता है जिसमें मैं एक कीड़े की तरह लोटता हूं। कुछ समय बाद मैं जाग जाता हूं और अपने विचारों पर पछताता हूं। लेकिन इस तरह का संघर्ष चलता रहता है। कृपया सहायता कीजिये कि मैं इसमें से बाहर निकल सकूं।

तुम्हें बुरे विचारों के साथ तबतक लड़ते जाना चाहिये जबतक पूर्ण विजय न मिल जाये। मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है, और मेरे आशीर्वाद भी।

२६ जनवरी १९६१

मधुर मां,

यहां हमारे क्रिया-कलाप इतने अधिक और इतने विभिन्न प्रकार के होते हैं कि किसी एक के साथ अंत तक लगे रहना कठिन होता है। शायद इसी कारण हम सामान्य औसत के परे नहीं जा सकते। या फिर क्या यह हमारी ठोस एकाग्रता के अभाव के कारण है?

सामान्य कार्य का कारण है न तो क्रिया-कलाप का बाहुल्य और न उनकी विभिन्नता। कारण है एकाग्रता की शक्ति का अभाव।

तुम्हें एकाग्रता सीखनी चाहिये और तुम जो कुछ करो पूरी एकाग्रता के साथ करो।

४ जुलाई १९६१

मधुर मां,

बच्चों में रस उत्पन्न कर सकना सचमुच एक समस्या है, चाहे वह एथलेटिक्स, जिम्नास्टिक्स या खेल-कूद, कुछ भी क्यों न हो। जब हम उनमें हर चीज के अंदर रुचि का अभाव देखते हैं तो हमारा उत्साह भी क्षीण हो जाता है।

विद्यार्थियों की रुचि अध्यापक की **सच्ची क्षमता** के अनुपात में होती है।

१२ जुलाई १९६१

(सिलवियु क्रेसियुनस की पुस्तक 'द लॉस्ट फुटस्टेप्स' के बारे में) यह पुस्तक

हमें बताती है कि श्रीअरविंद दुनिया के कोने-कोने में काम कर रहे हैं लेकिन हम लोगों को, जो यहां आश्रम में रहते हैं, अभीतक उनकी झलक नहीं मिली।

यहां ऐसे लोग हैं जो उन्हें देखते और सदा उनके संपर्क में रहते हैं। ये ऐसे लोग हैं जो सचाई के साथ उनसे इतना पर्याप्त प्रेम करते हैं कि उनके आदर्श के अनुसार जी सकें।

१४ जुलाई १९६१

(माताजी के मार्च १९६१ के कप्तानों के नाम संदेश के बारे में जिसमें वे उनसे "श्रेष्ठजन बनने" के लिये कहती हैं।) आप हमसे जो चाहती हैं हम उससे बहुत दूर हैं, कम-से-कम मैं तो हूं ही। यह एक बहुत ही श्रमसाध्य काम है और समय लेगा,—बहुत लंबा समय। लेकिन अभी क्या किया जा सकता है! अपनी चेतना को बदलने और सर्वश्रेष्ठ बनने में बहुत समय लगेगा। अभी तो हम अपने विद्यार्थियों के ही स्तर पर हैं इसलिये अभी की समस्या का कोई हल नहीं मिलता। हम उनके अंदर हर रोज और हर चीज के लिये रस कैसे पैदा कर सकते हैं?

यह अपने-आपको बदलने और सर्वश्रेष्ठ बनने से भी ज्यादा कठिन है। इसलिये सबसे अच्छी बात यही है कि तुरंत काम में लग जाओ। बाकी सब ऐसे बहाने हैं जो हमारा आलस्य अपने-आपको देता रहता है।

१५ जुलाई १९६१

मधुर मां,

मैं केवल एक घंटा काम करने के लिये गया, क्योंकि मेरे घर पर बहुत ज्यादा काम था।

यह अच्छी बात नहीं है; व्यक्तिगत काम के कारण सामुदायिक काम में बाधा नहीं पड़नी चाहिये।

१९ जुलाई १९६१

मधुर मां,

आज शाम को जब मैं आपके पास 'प्रॉस्पेरिटी' के लिये आया तो मुझे

आपको देखकर खुशी होने की जगह बेचैनी का सा अनुभव हुआ मानों मैंने कोई गलती की हो। हमें आपके आशीर्वाद पाने के लिये उत्सुक होना चाहिये, लेकिन मुझे वैसा क्यों नहीं लगता।

अभीतक, तुम्हारी सत्ता में किसी अंधेरे कोने में छिपा हुआ कोई कपट ही होगा जो बदलना नहीं चाहता और प्रकाश से डरता है।

१ अगस्त १९६१

मधुर मां,

आज मुझे आपके पास आते हुए डर का सा अनुभव नहीं हुआ, लेकिन मैं निष्क्रिय अवस्था में था। इसके विपरीत मैं तीव्र आनंद का, परमानंद के क्षण का अनुभव करना चाहता हूं। मैं उसे कैसे पा सकता हूं?

अपने-आपको देने की अभीप्सा के साथ आओ, अपनी संपूर्ण सत्ता को निःशेष भाव से भागवत कृपा के अर्पण करने के भाव से, और तुम उस आनंद का अनुभव करोगे जिसके लिये तुम अभीप्सा कर रहे हो।

६ अगस्त १९६१

मधुर मां,

मैं अपने कमरे के गलियारे में एक बिजली का लैंप चाहता हूं।

यह लिखना ज्यादा उचित होगा (और उससे भी बढ़कर सोचना) : "क्या गलियारे में बिजली का लैंप लगाना संभव होगा?"

ज्यादा अच्छा हो अगर **अहंकार** जरा अधिक विनयी हो सके।

१३ अगस्त १९६१

मधुर मां,

मुझे आपके आगे कुछ दोष स्वीकार करने हैं, लेकिन मैं अपने-आपको उसके लिये तैयार नहीं कर पाता। मैं क्या करूं? उन्हें स्वीकार करूं या भूत को भूलकर पुरानी चीजों को मिट जाने दूं?

अगर तुम सचमुच उन्हें मिटा सको और उनके अस्तित्व को, यहांतक कि स्मृति में भी समाप्त कर सको तो यह ज्यादा अच्छा होगा।

३ सितंबर १९६१

मधुर मां,

आपने हमसे कहा था, "तुम सब यहां पर जीवन को बहुत हल्के-फुल्के ढंग से ले रहे हो, तुम सारे समय अपना मनोरंजन करते रहते हो, तुम इतने आत्म-केंद्रित रहते हो।" यह बिल्कुल ठीक है कि हम जीवन को बहुत ही हल्के-फुल्के ढंग से लेते हैं और यह इतना स्वाभाविक हो गया है कि हम इसे ही उचित वृत्ति मानते हैं और हम आत्म-केंद्रित हैं। हम इस जाल में से कैसे निकल सकते हैं? बहरहाल आज सवेरे आपने हमें जो खुराक पिलायी थी वह बिल्कुल ठीक थी। मुझे बहुत खुशी हो रही है।

पहली चीज है अपने-आपको विचार, भाव और क्रिया में **विश्व के केंद्र में** न रखना, मानों उसका अस्तित्व तुम्हारे लिये ही है—तुम विश्व के एक भाग हो। तुम उसके साथ एक हो सकते हो परंतु एकमात्र परम प्रभु ही केंद्र हैं क्योंकि वे सबका अतिक्रमण करते और उन्हें समाये हुए हैं।

१९ सितंबर १९६१

मधुर मां,

'विचार और सूत्र' की सूत्र संख्या ९५' में श्रीअरविंद कहते हैं कि कामना के त्याग या पूर्ण संतुष्टि के द्वारा ही हम भगवान् की पूर्ण अनुभूति पा सकते हैं। लेकिन क्या दूसरा तरीका (कामनाओं की पूर्ण संतुष्टि) बहुत खतरनाक नहीं है? क्या मनुष्य की कामना को पूरी तरह संतुष्ट करना संभव है?

कहीं और वे स्पष्ट तौर पर कहते हैं कि कामना को संतुष्ट करने का प्रयास करना बेकार है क्योंकि कामना अतिलोभी है और कभी संतुष्ट नहीं हो सकती।

उन्होंने जो लिखा है उसे अलग-अलग नहीं लेना चाहिये; वह सदा एक समग्र का भाग होता है जो समस्त विरोधों का समन्वय है।

२७ सितंबर १९६१

'केवल कामना के पूर्ण त्याग या कामना की पूर्ण तुष्टि द्वारा ही भगवान् के पूर्ण आलिंगन का अनुभव हो सकता है। दोनों तरीकों से अनिवार्य पहली शर्त पूरी हो जाती है—कामना मर जाती है।

मधुर मां,

हम प्रायः चैत्य और अंतरात्मा की बात करते हैं, परंतु मैं इनसे कुछ नहीं समझता। ये दो चीजें क्या हैं और हम इनका अनुभव कैसे कर सकते हैं?

श्रीअरविंद ने अपने पत्रों में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है और मैंने भी अपनी पुस्तक 'शिक्षा' में सब कुछ समझा दिया है। तुम्हें पढ़ना, अध्ययन करना और **सबसे बढ़कर कार्यान्वित** करना है।

४ अक्तूबर १९६१

मधुर मां,

मैंने एक चीज देखी है : जब मैं सोने से पहले कुछ मिनटों के लिये बैठकर एकाग्र होने की कोशिश करता हूं तो मैं बिल्कुल तरोताजा होकर काफी जल्दी उठ बैठता हूं। मैं धूपबत्ती के चमकते हुए छोटे-से सिरे पर एकाग्र होता हूं। लेकिन यह कैसे होता है कि उसके कारण मैं जल्दी उठ बैठता हूं? इन दोनों चीजों के बीच कोई संबंध तो नहीं है!

बात उल्टी है, इनमें बहुत ठोस संबंध है। जब तुम सोने के पहले एकाग्र होते हो तब तुम नींद में भागवत शक्ति के संपर्क में रहते हो। लेकिन जब तुम पहले एकाग्र हुए बिना गहरी नींद में चले जाते हो तो तुम निश्चेतना में डूब जाते हो और यह नींद आराम देने की जगह ज्यादा थकानेवाली होती है और इस मंदता में से निकलना मुश्किल होता है।

८ अक्तूबर १९६१

मैं चाहूंगी कि तुम ध्यान से अपने अंदर देखो और मुझे यह बतलाने की कोशिश करो कि जासूसी कहानियों में यथार्थ रूप से कौन-सी चीज है जिसमें तुम मजा लेते हो।

१६ अक्तूबर १९६१

मधुर मां,

मैं उन्हें मनोरंजन के लिये पढ़ता हूं। जासूसी कहानियों में, विशेषकर पेरी मेसन में हमेशा एक अदालत का दृश्य होता है जिसमें मालूम होता है कि

वकील पेरी मेसन जरूर हार जायेगा। उसके मुवक्किल पर हत्या का आरोप है, सभी सबूत उससे उल्टे जाते हैं, लेकिन वकील पेरी मेसन की कमाल की चतुराई स्थिति को बदल देती है। सारी कहानी रहस्यों से भरी होती है और मुकद्दमा एक बहुत चतुर कलाबाज की मानसिक कलाबाजियों जैसा होता है। लेकिन हर बार जब मैं उसकी एक किताब समाप्त कर लेता हूं तो मुझे लगता है कि मैंने कुछ भी नहीं पाया, कोई नयी बात नहीं सीखी। बस समय नष्ट किया है।

यह **एकदम से** बेकार नहीं है। शायद तुम्हारे मन के अंदर बहुत-सा तमस् था और लेखक की मानसिक कलाबाजियों ने इस तमस् को जरा-सा हिला दिया और मन को जगा दिया। लेकिन यह ज्यादा समय के लिये नहीं चल सकता और शीघ्र ही तुम्हें उच्चतर वस्तुओं की ओर मुड़ना होगा।

१६ अक्तूबर १९६१

(लक्ष्मी पूजा के दिन माताजी के दर्शन करने के बाद) मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब यह आनंद और यह सुख-शांति मेरे अंदर हमेशा के लिये प्रतिष्ठित हो जायेंगे। अभी तो यह एक स्वप्न और आज के से चलते अनुभव की तरह है। मैं आशा करता हूं कि आपकी सहायता से मैं उसे हमेशा के लिये चरितार्थ कर पाऊंगा।

अपनी अभीप्सा में लगे रहो तो तुम्हारा स्वप्न चरितार्थ होगा।

२३ अक्तूबर १९६१

मधुर मां,

मैंने एक चीज देखी है जो हम सबपर लागू होती है; हम लोग २ दिसंबर के कार्यक्रम[1] में यथासंभव अधिक-से-अधिक चीजों में भाग लेते हैं। क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि हम बहुत-सी चीजें लेकर सामान्य प्रदर्शन करने की जगह बस दो-एक चीजें ही चुनें और उन्हीं का बहुत अच्छा प्रदर्शन करें?

हर व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करता है और अगर वह साहस के साथ, सचाई से उस स्वभाव के अनुसार कार्य करे तो वह सत्य के अनुसार कार्य होगा।

[1] शारीरिक प्रशिक्षण का वार्षिक प्रदर्शन जो आश्रम के स्पोर्ट्स ग्राउंड में हुआ करता है।

अतः दूसरों को जांचना या उनके लिये निर्णय करना असंभव है। तुम केवल अपने लिये जान सकते हो और इसके लिये भी तुम्हें बहुत ज्यादा **सच्चा और निष्कपट** होना चाहिये ताकि तुम अपने-आपको धोखा न दो।

४ नवंबर १९६१

मधुर मां,

सूत्र सं० १३३ में श्रीअरविंद कहते हैं "देवता केवल भगवान् के प्रेम और कृपापूर्ण आनंद का सुखद भार स्वीकार कर सकते हैं।"' तब तो देवता डरपोक हुए! तब उनकी महानता और उनका वैभव कहां है? हम इन निम्नतर सत्ताओं की पूजा क्यों करते हैं? दैत्य ही भगवान् के सबसे अधिक प्यारे पुत्र हुए!

श्रीअरविंद यहां जो कह रहे हैं वह सोते मनों को जगाने के लिये विरोधाभास है। लेकिन हमें इन शब्दों के सारे व्यंग्य और विशेषकर इन शब्दों के पीछे के अभिप्राय को समझना चाहिये। और फिर वे डरपोक हों या न हों, मुझे देवताओं को पूजने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती, चाहे वे छोटे हों या बड़े। हमारी आराधना केवल परम प्रभु की ओर जानी चाहिये जो सभी चीजों और सभी सत्ताओं में एक हैं।

६ नवंबर १९६१

मधुर मां,

एक लंबे अरसे से मैं देख रहा हूं कि मैं कुछ लजीला-सा हूं। मेरे अंदर हीन-भावना है। मेरा ख्याल है कि मुझे डर रहता है कि लोग मेरे अज्ञान को जान जायेंगे। मैं ऐसा क्यों हूं? मैं इसमें से कैसे निकल सकता हूं?

इस सबके और इस विख्यात हीनता-ग्रंथि के पीछे होता है अहंकार और उसका दंभ जो अपना अच्छा रूप दिखाना चाहता है और औरों से प्रशंसा चाहता है; लेकिन अगर तुम्हारा समस्त क्रिया-कलाप भगवान् के प्रति उत्सर्ग हो तो तुम औरों की प्रशंसा की जरा भी परवाह न करोगे।

१४ नवंबर १९६१

' "दैत्य देवों से अधिक मजबूत हैं क्योंकि उन्होंने भगवान् के क्रोध और वैर का भार उठाने और उनका सामना करने का समझौता किया है। देवता केवल उनके प्रेम और कृपापूर्ण आनंद का सुखद भार स्वीकार कर सकते हैं।" —विचार और सूत्र।

मधुर मां,

आपने बहुत बार कहा है कि हमारे क्रिया-कलाप भगवान् के प्रति उत्सर्ग होने चाहियें। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है और यह कैसे किया जा सकता है ? उदाहरण के लिये जब हम टेनिस या बास्केट बॉल खेलते हैं तो हम इसे उत्सर्ग के रूप में कैसे कर सकते हैं ? निश्चय ही मानसिक रूपायण काफी नहीं है !

इसका मतलब यह है कि तुम जो कुछ करो वह व्यक्तिगत, अहंकारमय लक्ष्य के लिये, सफलता, यश, लाभ, भौतिक लाभ या गर्व के लिये न करके सेवा या उत्सर्ग-भाव से करो ताकि तुम भागवत इच्छा के बारे में ज्यादा सचेतन बन सको, अपने-आपको और भी पूरी तरह उसे सौंप सको, यहांतक कि तुम इतनी प्रगति कर लो कि तुम यह जान और **अनुभव कर सको** कि स्वयं भगवान् तुम्हारे अंदर काम कर रहे हैं, उनकी शक्ति तुम्हें प्रेरित कर रही है, उनकी इच्छा तुम्हें सहारा दे रही है—यह केवल मानसिक ज्ञान न हो बल्कि चेतना की स्थिति की सचाई और निष्कपटता और जीवित अनुभूति की शक्ति हो।

इसे संभव बनाने के लिये जरूरी है कि सभी अहंकारमय अभिप्राय और अहंकारमय प्रतिक्रियाएं गायब हो जायें।

२० नवंबर १९६१

मधुर मां,

मैं हर एक की ओर से आपसे प्रार्थना करता हूं कि आज शाम का प्रदर्शन सफल हो। सभी इससे उल्टा ही सोच रहे हैं। यह ठीक है कि हमारा प्रदर्शन उच्च स्तर का नहीं है। मैं आशा करता और आपसे प्रार्थना करता हूं कि आज का प्रदर्शन भरसक अच्छे-से-अच्छा हो। मधुर मां, हमारी क्रियाओं को स्वीकार करो और हमें रास्ता दिखलाओ। आपने हमसे कहा था कि आप वहां होंगी। काश मेरी आंखें आपको देख पातीं !

मैंने २६[1] तारीख को जो देखा था वह संतोषजनक था। (निश्चय ही वह हमेशा और भी अच्छा हो सकता है।) मैंने २ दिसंबर के प्रदर्शन के बारे में **बहुत-सी प्रशंसाएं** सुनी हैं। तुम्हें उन लोगों की बात पर कान न देना चाहिये जो केवल आलोचना करना जानते हैं। अतिरंजित आलोचना प्रगति में सहायक नहीं होती।

२ दिसंबर १९६१

[1] २ दिसंबर को शारीरिक शिक्षा-विभाग का प्रदर्शन होता है और उससे पहले २६ या २७ नवंबर को उसका पूर्वाभ्यास।

मधुर मां,

मैं बहुत आलसी हूं और मेरे अंदर चुने हुए मार्ग पर चलते जाने के लिये उत्साह और अध्यवसाय नहीं है। मैं ऐसी ज्वाला की भांति हूं जिसे पवन ऊपर की ओर उठाता है लेकिन जैसे ही पवन बंद हो जाये तो बुझ जाती या बुझने को होती है। मुझे होना चाहिये जागरूक, पर कैसे?

सभी मनोवैज्ञानिक गुणों को मांसपेशियों की तरह प्रशिक्षित किया जा सकता है—नियमित, दैनिक व्यायाम द्वारा। और सबसे बढ़कर, सच्ची निष्कपट अभीप्सा के साथ भागवत शक्ति की ओर मुड़ो और उससे प्रार्थना करो कि वह तुम्हें तुम्हारी सीमाओं से छुटकारा दिलवाये। अगर तुम अपनी प्रगति करने की इच्छा में सच्चे हो तो तुम निश्चय ही आगे बढ़ोगे।

२१ जनवरी १९६२

मधुर मां,

मैं इस नये अनुष्ठान 'श्रीअरविन्दः शरणम् मम' को देखकर आश्चर्य में पड़ गया, जिसे श्मशान के कर्मकांड में शुरू किया गया है। 'क' मृत शरीर के आगे ध्यान में खड़ा होता है और 'श्रीअरविन्दः शरणम् मम' का उच्चारण करता है। शरीर के चारों ओर खड़े लोग इसे दोहराते हैं। यह सौ बार किया जाता है। मुझे यह विधि पसंद नहीं है। मुझे यह भावहीन मालूम होती है, मुझे यह पसंद नहीं कि श्रीअरविंद के नाम का इस तरह बिना भाव के आह्वान किया जाये और उसे कर्मकांड में बदल दिया जाये। ज्यादा अच्छा यह है कि आपकी प्रार्थनाओं में से एक पढ़ी जाये और फिर नीरवता में हर एक अपने-अपने ढंग से विगत आत्मा के लिये भागवत कृपा का आह्वान करे, जैसा पहले किया जाता था। यह मेरी राय है।

विधि का अपने-आप गौण महत्त्व है। यह कुछ और न होकर एक औपचारिकता और रिवाज की बात है।

जो चीज महत्त्वपूर्ण है वह है, चाहे जो भी क्रिया क्यों न अपनायी जाये उसे सच्चे उत्साह और तीव्र अभीप्सा से अनुप्राणित किया जाये जो किसी भी विधि-विधान को जीवन प्रदान करते हैं, वह चाहे कोई क्यों न हो, परंतु उसपर आश्रित न रहे।

६ फरवरी १९६२

मधुर मां,

श्रीअरविंद कहते हैं कि कुरुक्षेत्र के महान् युद्ध को हुए पांच हजार वर्ष बीत गये हैं

परंतु श्रीकृष्ण की राजनीतिक प्रतिभा का सौम्य, हितैषी प्रभाव अभी उस दिन महारानी लक्ष्मीबाई के साथ समाप्त हुआ है। उसके बाद नये सिरे से भारत और संसार की रक्षा करने के लिये एक 'पूर्णावतार' की जरूरत थी। यह अवतार उस ब्रह्मतेज को जगायेगा जो अभी सोया हुआ है। श्रीअरविंद ने यह भी कहा है कि कलियुग में ही पूर्णावतार का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि इस युग में ही मनुष्य के लिये सबसे अधिक संकट है और वे यहां मौजूद हैं! उन्होंने अपने-आप मर्म खोल दिया है। भगवान् पूरी तरह भारत में प्रकट हुए हैं। लेकिन उनमें इतनी विनय है कि वे यह नहीं बतलाते कि वे स्वयं वह अवतार हैं!

जो कार्य को संपादित करते हैं उनमें शेखी बघारने की आदत नहीं होती। वे अपनी ऊर्जा को काम पूरा करने के लिये बनाये रखते हैं और परिणाम का यश शाश्वत प्रभु के लिये छोड़ देते हैं।

६ मार्च १९६२

मधुर मां,

बिना किसी शेखी के मैं आपसे यह कह सकता हूं कि मैं पहले की अपेक्षा अब बहुत ज्यादा अच्छा हूं; फिर भी आपने हमें जो आदर्श बतलाया है, मैं उससे दूर, बहुत दूर हूं। इससे मैं हिम्मत नहीं हारता, क्योंकि मुझे आप पर पूरा भरोसा है।

हां, तुम्हें हिम्मत और सचाई के साथ डटे रहना चाहिये। तुम्हें एक दिन निश्चित रूप से सफलता मिलेगी।

२ सितंबर १९६२

मधुर मां,

कुछ मित्रों में शारीरिक प्रशिक्षण की समस्या और उसके विभिन्न संभव उपायों के बारे में बहस हो रही थी। मूल समस्या यह है : हम ऐसा कार्यक्रम कैसे बना सकते हैं जो सभी को संतुष्ट करे और जहांतक हो सके सब सदस्यों के लिये प्रभावकारी हो? क्या साम्मुख्य जरूरी है? क्या किसी प्रकार की अनिवार्यता न होनी चाहिये? और अगर पूरी छूट दी जाये तो क्या वह व्यावहारिक होगी? और ऐसे ही अन्य प्रश्न। यह एक ऐसा विषय है जिसके बारे में कोई ऐसा समाधान पाना आसान नहीं है जो सबके लिये संतोषजनक हो। स्वयं माताजी हस्तक्षेप करें तो और बात है।

यह असंभव है। हर एक की अपनी रुचि होती है, अपनी मनोवृत्ति होती है। **अनुशासन** के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता—सारा जीवन ही एक अनुशासन है।

२० सितंबर १९६२

मधुर मां,

क्या नगर के सिनेमा में जाना बुरा है?

जो लोग योग करना चाहते हैं उनके लिये **बहुत बुरा** है। और फिर मैं यह बहुत बार कह चुकी हूं और अगर तुम यह नहीं जानते तो इस कारण कि तुम्हारे लिये उसे भूल जाना ज्यादा सुविधाजनक है।

२७ सितंबर १९६२

मधुर मां,

इस आश्रम के विशाल संगठन में बहुत-सी कसी हुई गांठें हैं। वह दिन कब आयेगा जिसका वचन दिया गया है जब शुद्ध सामंजस्य, आनंद और शांति के सिवा कुछ न होगा?

काम बहुत तेजी से होगा जब हर एक औरों के दोषों की आलोचना करने की जगह अपने दोषों और त्रुटियों को सुधारने में संलग्न रहेगा।

२९ सितंबर १९६२

जरा सच्चा, निष्कपट और नियमित अभ्यास, बहुत-से अल्पजीवी प्रणों से मूल्यवान् है।

२ अक्तूबर १९६२

मधुर मां,

आज सवेरे मैंने सुना है कि 'क' ने 'ख' को बुरी तरह पीटा है। मुझे नहीं लगता कि यह ठीक है।

तुम उसी चीज के बारे में कह सकते हो जो तुमने अपनी आंखों से देखी हो—और

फिर भी . . . तुम्हारे पास ऐसा कौन-सा ज्ञान है जो तुम्हें औरों का मूल्यांकन करने का अधिकार देता है ? केवल प्रभु ही जानते और देखते हैं—केवल वे ही सत्य हैं।

तुम्हें श्रीअरविंद के सूत्रों का ज्यादा ध्यान से अध्ययन करना चाहिये। वह तुम्हें सरसरे ढंग से मूल्यांकन करने से मुक्त कर देगा।

१५ अक्तूबर १९६२

मधुर मां,

मैंने माताजी को चिट्ठी लिखी थी जिसमें यह पूछा था कि उन्होंने 'क' को दर्शन क्यों नहीं दिये। अब मुझे भय है कि कहीं माताजी मेरे इस पत्र लिखने की धृष्टता से नाराज न हों, क्योंकि यह मामला मेरे साथ संबंध नहीं रखता।

मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ लिया और मैं बिल्कुल नाराज नहीं हुई। लेकिन 'क' दर्शन के लिये बिल्कुल तैयार नहीं है।

१९ अक्तूबर १९६२

(चीन ने धमकी दी थी कि वह उत्तर कश्मीर और उत्तर-पूर्वीय भारत के विवादास्पद हिस्सों पर कब्जा कर लेगा) कभी-कभी मुझे लगता है कि हमारे नेताओं में उस तरह की रीढ़ की हड्डी नहीं है जैसी केनेडी ने क्यूबा पर आक्रमण के समय दिखलायी थी।

इस प्रकार की टिप्पणी इस समय बिल्कुल असंगत है। तुम्हें तबतक किसी की आलोचना हर्गिज न करनी चाहिये जबतक कि तुम निःसंदेह भाव से यह प्रमाणित न कर दो कि इन्हीं परिस्थितियों में तुम उससे ज्यादा अच्छा कर सकते हो।

क्या तुम्हें लगता है कि तुम भारत के अतुलनीय प्रधानमंत्री बन सकते हो ? मैं उत्तर देती हूं 'कदापि नहीं।' और मैं तुम्हें चुप रहने और अचंचल स्थिरता बनाये रखने की सलाह देती हूं।

२४ अक्तूबर १९६२

(काली पूजा-दिवस की प्रार्थना के बारे में)

यह ठीक है मेरे बच्चो, लेकिन प्रार्थना करना काफी नहीं है; तुम्हें अध्यवसाय के साथ प्रयास भी करना चाहिये।

२६ अक्तूबर १९६२

मधुर मां,

अपने शारीरिक शिक्षण के कार्यक्रम तथा यहां के अनगिनत कार्यकलाप के बारे में बात करते हुए मेरे एक मित्र ने मुझसे पूछा : ''क्या तुम एक भी ठीक-ठीक उदाहरण ऐसे एक भी आदमी का दे सकते हो जो इतने प्रकार के क्रिया-कलाप में भाग लेता हो और सबमें काफी ऊंचा स्तर रख सकता हो—सारी दुनिया में एक भी व्यक्ति है ?''

तुम सब जो यहां हो यह न भूलो कि हम कुछ ऐसी चीज चरितार्थ करना चाहते हैं जो अभीतक धरती पर अस्तित्व नहीं रखती; अतः हम जो करना चाहते हैं उसका कहीं और उदाहरण ढूंढ़ना बेतुकापन है।

उसने यह भी कहा : ''माताजी कहती हैं कि जिनमें किसी विशेष विषय के लिये प्रतिभा है और वे उसे पूरी तरह विकसित करना चाहते हैं उनके लिये यहां सब तरह की छूट और सब तरह की सुविधाएं हैं। लेकिन यह छूट कहां है—उदाहरण के लिये संगीतज्ञ बनने की।'' मधुर मां, क्या आप इस छूट या आजादी के बारे में कुछ शब्द कह सकेंगी ?

मैं जिस आजादी की बात कर रही हूं वह है आत्मा की इच्छा का अनुसरण करने की छूट, मन और प्राण की सनकों का अनुसरण करने की नहीं।

मैं जिस आजादी की बात कर रही हूं वह वह आडंबरहीन सत्य है जो निम्न, अज्ञानपूर्ण सत्ता की सभी दुर्बलताओं तथा कामनाओं को जीतने के लिये प्रयास करता है।

मैं जिस आजादी की बात कर रही हूं वह अपनी उच्चतम, उदात्ततम, दिव्यतम अभीप्सा के प्रति पूरी तरह, अबाध रूप से अपना उत्सर्ग करने की आजादी है।

तुममें से कौन है जो सचाई से इस पथ का अनुसरण करता है ? मूल्यांकन करना आसान है परंतु समझना ज्यादा कठिन है और फिर कहीं अधिक कठिन है उपलब्ध करना।

१८ नवंबर १९६२

[किसी के बारे में कप्तान की राय के बारे में]

याद रखो कि ये सारे व्यक्तिगत गुण और दोष वैश्व शक्तियों की महान् लीला के भ्रामक आभास हैं जिन्हें तुम नहीं समझते।

५ जनवरी १९६३

[एक मित्र के बारे में]

प्रेम करने के तथ्य में ही तुम अपना सुख और आनंद पाओ, इससे तुम्हारी आंतरिक प्रगति में सहायता मिलेगी; क्योंकि अगर तुम **सच्चे** हो तो एक दिन तुम अनुभव करोगे कि तुम उसके अंदर भगवान् से ही प्रेम करते हो और बाहरी व्यक्ति केवल एक बहाना है।

२७ जनवरी १९६३

मधुर मां,

यहां अपने कमरे में बैठकर ध्यान करने और सबके साथ खेल के मैदान में ध्यान के लिये जाने में क्या फर्क है?

वहां जाकर ध्यान करने और अपने कमरे में ध्यान करने में से कौन-सा ज्यादा अच्छा है?

वहीं बैठकर ध्यान करो जहां तुम ज्यादा अच्छी तरह ध्यान कर सको—यानी, जहां कहीं तुम ज्यादा शांत और चुपचाप रह सको।

३१ जनवरी १९६३

[एक दुःस्वप्न के बारे में]

मैं इसे मानसिक खमीर या अंतःक्षोभ कहती हूं। जैसे ही तुम्हारी जाग्रत् चेतना सो जाती है या तुम्हारे शरीर से अलग हो जाती है तो मस्तिष्क के कोषाणु, जिन्हें तुमने अचंचल बनाने का कष्ट नहीं उठाया था, बेचैनी के साथ चुलबुलाने लगते हैं और उस चीज को पैदा करते हैं जिसे तुम स्वप्न कहते हो, लेकिन यह अव्यवस्थित क्रिया से बढ़कर कुछ नहीं होता। उसका कोई अर्थ नहीं होता और इसके सिवाय कोई उद्देश्य नहीं होता कि वह तुम्हें इस बात की जानकारी दे कि तुम्हारे सिर में क्या हो रहा है।

१९ मार्च १९६३

मधुर मां,

मेरे पास कुछ पैसा आया है, मैं उसे आपके अर्पण करना चाहता हूं और

अगर मुझे किसी चीज की जरूरत होगी तो मैं आपसे मांग लूंगा। इस तरह आप निश्चय कर सकती हैं कि मेरे लिये क्या जरूरी या सबसे अच्छा है। लेकिन मुझे सलाह दी जा रही है कि अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिये जितने की जरूरत हो उतना रखकर बाकी आपको दे दूं; वरना लोग कहेंगे कि मैं थोड़ा-सा पैसा देने के बदले में आपसे जो मरजी मांगता हूं। माताजी, आप मुझसे क्या करवाना चाहती हैं ?

तुम्हारी जो करने की इच्छा हो वही करो और विश्वास रखो कि तुम जो भी करो लोगों को हमेशा कुछ-न-कुछ कहने के लिये अवश्य मिल जायेगा।

और फिर, कौन पूरी तरह निःस्वार्थ है ? तुम जो नहीं हो वह होने का ढोंग न करो। पाखंडी होने की अपेक्षा सच्चा, स्पष्टवादी होना ज्यादा अच्छा है।

१२ अप्रैल १९६३

मधुर मां,

क्या छोटी-छोटी चीजों और स्वार्थभरे लाभों के लिये आपसे प्रार्थना करना ठीक है ?

यह सब तुम्हारे दृष्टिकोण पर निर्भर है। यह बिल्कुल संभव है कि तुम जिस चीज के लिये प्रार्थना करते हो वह तुम्हें मिल जाये लेकिन आध्यात्मिक प्रगति के लिये यह हानिकर हो।

४ मई १९६३

मधुर मां,

विवाह का सच्चा महत्त्व क्या है ?

उसका मुश्किल से ही कोई **सच्चा** महत्त्व है। वह जाति को जारी रखने के लिये एक सामाजिक प्रथा है।

१० मई १९६३

मधुर मां,

आजकल हम लोग बहुत अधिक फिल्में देखते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इनसे हम क्या सीखते हैं !

जब तुम्हारे अंदर सच्ची मनोवृत्ति हो तो हर चीज सीखने का अवसर हो सकती है।

बहरहाल, यह बहुलता तुम्हें यह समझा सकती है कि फिल्में देखने की इच्छा—जो कुछ लोगों में बहुत निरंकुश होती है—उतनी ही घातक हो सकती है जितनी कोई और कामना।

११ मई १९६३

मधुर मां,

अपने जीवन में मुझे जब कभी कठिनाई का सामना करना पड़ा है, हर बार जब कभी मुझे किसी सुख—आभासी सुख—से वंचित होना पड़ा है तो मेरे मनोवैज्ञानिक कष्ट को दूर करने के लिये हमेशा तुरंत ही कोई सांत्वना आयी है। कोई चीज मुझसे कहती है, ''यह सब स्वयं तुम्हारे भले के लिये और भागवत कृपा द्वारा किया गया है।'' क्या यह अच्छा है, क्या इस तरह सोचना अच्छा और लाभप्रद है ?

न सिर्फ यह कि यह सोचना ठीक, अच्छा और लाभप्रद है, बल्कि अगर तुम आध्यात्मिक मार्ग पर चलना चाहो तो यह मनोवृत्ति बिल्कुल अनिवार्य है। वस्तुतः, यह पहला कदम है, जिसके बिना तुम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसीलिये मैं हमेशा कहती हूं, ''तुम जो कुछ करो, अपना **अच्छे-से-अच्छा** करो, और परिणाम परम प्रभु के हाथ में छोड़ दो; तब तुम्हारा हृदय शांत रहेगा।''

१३ मई १९६३

मधुर मां,

क्या हमारी हस्तरेखाएं हमारे भूत, वर्तमान और भविष्य को प्रतिबिंबित कर सकती हैं ?

हां, निश्चय ही, लेकिन उसके लिये जो उन्हें देखना जानता है और 'क' इसमें बहुत प्रतिभाशाली है।

१५ मई १९६३

मधुर मां,

मैंने बहुधा देखा है कि हम जो काम करते हैं वह, वैतनिक मजदूरों के

काम की अपेक्षा ज्यादा अच्छा और ज्यादा तेजी से होता है। पता नहीं क्यों!

क्योंकि तुम अधिक सचेतन, बल्कि कम निश्चेतन हो।

२३ मई १९६३

मधुर मां,

लड़कियां हमेशा घाटे में रहती हैं। लड़कों की तरह वे जो करना चाहें, नहीं कर सकतीं।

क्यों नहीं?

इससे उल्टे सैंकड़ों प्रमाण हैं।

३१ मई १९६३

मधुर मां,

दो मानव सत्ताओं के बीच सब से अच्छा संबंध कौन-सा है? मां-बेटे का? भाई, मित्र या प्रेमी का?

सिद्धांतत: सभी संबंध अच्छे हैं और हर एक शाश्वत के एक रूप को प्रकट करता है। लेकिन हर एक मानव प्रकृति के स्वार्थपूर्ण मिथ्यात्व के कारण विकृत होकर बुरा बन सकता है जो उनकी शुद्धता में प्रेम के स्पंदनों को प्रकट होने से रोकता है।

४ जून १९६३

मधुर मां,

"रीच फॉर द स्काई" नामक फिल्म के नायक के बारे में मैंने कहा कि कोई चीज उसे हतोत्साह नहीं कर सकती; क्योंकि किसी दुर्घटना में दोनों पैर खो देने के बाद भी उसने प्रण किया कि वह अपना वायुयान-चालक का जीवन जारी रखेगा। वह ऊर्जा से भरा, अद्‌भुत प्राण-शक्तिवाला आदमी है...

सर्वांगीण संपूर्णता के योग के लिये तुम्हारे अंदर ठीक इसी तरह के निश्चय की जरूरत है।

७ जून १९६३

मधुर मां,

ऐसे क्षण होते हैं जब मुझे लगता है कि पढ़ने या कुछ और करने की अपेक्षा चुपचाप बैठना ज्यादा अच्छा होगा। लेकिन मुझे समय नष्ट करने का डर लगता है। मुझे क्या करना चाहिये ?

यह सब निर्भर है नीरवता के स्वरूप पर—अगर वह शक्ति और सचेतन एकाग्रता से भरी आलोकमय नीरवता हो तो वह अच्छी होती है। अगर वह तामसिक और निश्चेतन नीरवता हो तो वह हानिकर होती है।

१० जून १९६३

मधुर मां,

एक लंबे अरसे के बाद मैंने एक सुंदर स्वप्न देखा जिसमें मैंने माताजी को देखा और उनके आशीर्वाद पाये।

यह स्वप्न नहीं है बल्कि पहले के ध्यान और तुम्हारी अभीप्सा का परिणाम है।

१२ जून १९६३

मधुर मां,

मेरे सिर में बहुत ज्यादा 'धूसर' द्रव्य है जो मुझे स्पष्टता से सोचने और नये विचारों को तेजी से पकड़ने से रोकता है। मैं अपने-आपको इससे कैसे मुक्त कर सकता हूं ?

बहुत अध्ययन करने, बहुत मनन करने और बौद्धिक व्यायाम करने से। उदाहरण के लिये, एक सामान्य विचार को स्पष्ट रूप से व्यक्त करो, फिर उसके विरोधी विचार को व्यक्त करो, फिर दोनों के समन्वय की खोज करो—यानी, एक तीसरे विचार को खोज निकालो जो इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करे।

२५ जून १९६३

[उपन्यास पढ़ने के बारे में]

तुम उपन्यास क्यों पढ़ते हो ? यह एक बेहूदा काम और समय का नाश है। निश्चय ही यह भी एक कारण है कि तुम्हारा दिमाग अभीतक अस्तव्यस्त है और उसमें स्पष्टता नहीं है।

२७ जून १९६३

मधुर मां,

मनुष्य इतना दुर्बल है कि वह अपने चारों ओर बहनेवाली हवा से, पढ़ी हुई पुस्तक से या देखी हुई तस्वीर से प्रभावित हो जाता है। वह बहुत असुरक्षित है।

यह तब होता है जब वह अपनी सचेतन सत्ता को अपने चैत्य केंद्र के चारों ओर केंद्रित करने की सावधानी नहीं बरतता, वही तो उसकी सत्ता का सत्य है।

२८ जून १९६३

मधुर मां,

यहां बहुत सारे लोग अपनी सुविधा के अनुसार माताजी को उद्धृत किया करते हैं।

औरों की आलोचना करने से पहले ज्यादा अच्छा है कि यह निश्चित रूप से जान लो कि स्वयं तुम पूरी तरह सच्चे हो।

३० जून १९६३

मधुर मां,

कुछ दिन पहले मैंने ग्रुप ए २ के बच्चों में एक बड़ी अजीब चीज देखी। लड़के लड़कियों के साथ काम नहीं करना चाहते। वे लड़कियों के साथ मिलकर खड़े भी नहीं होना चाहते। वे साथ काम नहीं कर सकते। इन छोटे बच्चों में, जो मुश्किल से ग्यारह वर्ष के होंगे, यह भेद-भाव कैसे आ गया! अजीब बात है।

यह पूर्वजानुरूप है और अवचेतना से आता है।

यह मनोवृत्ति इन दोनों चीजों पर आधारित है: पुरुष के गर्व और श्रेष्ठता के मूर्खता-भरे भाव पर और उससे बड़े मूढ़ताभरे भय पर जो इस विचार पर आधारित है कि नारी भयावह है क्योंकि वह तुम्हें पाप की ओर लुभा ले जाती है। बच्चों में यह सब अवचेतन होता है, फिर भी यह उनकी क्रियाओं पर असर डालता है।

३ जुलाई १९६३

मधुर मां,

मैंने अपने नये कपड़ों—नीली निकर और धूसर कमीज—से एक सनसनी पैदा कर दी! 'क' मुझे ऐसे वेश में देखकर चकरा गया।

लोग कितने छिछले और ओछे होंगे कि ऐसी चीजों को महत्त्व दें !! फिर भी, अगर तुमने कप्तान की हैसियत से ऐसे कपड़े पहने थे तो तुमने भूल की। कप्तानों को कप्तान की हैसियत से काम करते समय अपनी विशेष पोशाक में होना चाहिये।

४ जुलाई १९६३

मधुर मां,

ऐसे क्षण आते हैं जब आदमी अपने अंदर एक तरह के खालीपन का अनुभव करता है; उदास और एकाकी होता है क्योंकि वह चाहता है कि उसके साथ प्रेम किया जाये।

यह कहना **ज्यादा अच्छा** होगा कि वह अपनी अंतरात्मा को जानने और भगवान् के साथ एक होने की आवश्यकता का अनुभव करता है।

५ जुलाई १९६३

मधुर मां,

मैं हर रोज ध्यान के लिये बैठता हूं लेकिन मुझे भय है कि यह दस मिनट का ध्यान यांत्रिक बन गया है। मैं सक्रिय ध्यान चाहता हूं, पर वह हो कैसे ?

सच्चे बनो।

६ जुलाई १९६३

मधुर मां,

इस सृष्टि का प्रयोजन है — इसलिये क्या यह संभव है कि हर अधिक-से-अधिक 'तुच्छ' व्यक्ति भी पृथ्वी पर कोई लक्ष्य पूरा करने के लिये आया है ? मेरी यह धारणा नहीं है — ये भिखारी और उन जैसे लोग क्या कर रहे हैं ?

यह किसने कहा ? और तुम किस 'लक्ष्य' की बात कर रहे हो ? सृष्टि **एक समग्र** है जो अपनी समग्रता में एकमात्र लक्ष्य — भगवान् — की ओर बढ़ रही है — एक सामूहिक विकास के द्वारा जो सतत और अंतहीन है।

७ जुलाई १९६३

मधुर मां,

मैंने सुना है कि आपने कहीं लिखा है कि यहां, आश्रम में हर एक किसी विशेष मानव कठिनाई का प्रतिनिधि है और इस कठिनाई पर उसके जीवनकाल में अधिकार पा लिया जायेगा और उसका रूपांतर होगा।[1]

मैंने ऐसा वक्तव्य कभी नहीं दिया।

चीजें इतनी कटी-छंटी नहीं हैं जितना कि मन सोचता है, बल्कि समस्या को सरल बनाने के लिये चाहता भी है।

चरित्र की छटाओं तथा संयोजनों के लगभग अनंत प्रकार हैं, और यद्यपि बहुत ज्यादा समान पुरुषों की श्रेणियां हैं परंतु कोई भी दो उदाहरण अभिन्न नहीं हैं।

तुम अपनी कठिनाइयों के बारे में उसी हदतक अभिज्ञ होते हो जहांतक तुम उन्हें बदल सकते हो और उसी क्षण अभिज्ञ होते हो जब तुम उन्हें बदल सकते हो।

८ जुलाई १९६३

मधुर मां,

अचानक मैं बहुत खुश हो उठता हूं, मेरा हृदय अवर्णनीय आनंद से भर जाता है, लेकिन यह अनुभव लंबे समय तक नहीं चलता। मैंने बहुत बार इस क्षणिक आनंद का अवलोकन करने और उसके कारण का पता लगाने की कोशिश की है, पर व्यर्थ।

क्योंकि तुम कारण को बाहर, अपने चारों ओर ढूंढ़ रहे हो जब कि वह **भीतर** है।

११ जुलाई १९६३

मधुर मां

आपने बतलाया है कि लड़के और लड़कियों का यह अलगाव पुरानी चीज है, लेकिन मैं यह पूछने से रह गया कि हम कप्तानों को इस मामले में क्या करना चाहिये। व्यक्तिगत रूप से मेरा ख्याल यह है कि इसकी तरफ से आंखें बंद कर लेना ज्यादा अच्छा है, लेकिन कुछ ऐसे हैं जो सलाह देना या डांट पिलाना ज्यादा पसंद करते हैं। मेरा ख्याल है कि अपनी आंखें मूंद कर हम समस्या के महत्त्व को कम कर देते हैं और इससे लड़के-लड़कियों के फर्क का विचार आंखों में कम खुबता है। आप क्या कहती हैं?

[1] माताजी 'उसके जीवन काल में' पर लकीर लगा देती हैं।

एक सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। हर बात व्यक्ति और अवसर पर निर्भर है। दोनों तरीकों में उनकी अच्छी और बुरी चीजें, उनके लाभ और हानियां हैं। कप्तानों के लिये मुख्य बात यह है कि उनमें हस्तक्षेप करने के लिये काफी कौशल और आंतरिक दृष्टि हो जिससे वे चुन सकें कि कब आंखें मूंद लेना ज्यादा अच्छा है और कब हस्तक्षेप करना।

१५ जुलाई १९६३

मधुर मां,

आपका "अज्ञानमय सद्भावना और निष्क्रिय ऊर्जा" से क्या मतलब है?

१. सद्भावना का अर्थ है हमेशा अच्छा करने की चाह। एकमात्र सच्चा "शुभ" है परम प्रभु की इच्छा। क्या तुम जानते हो कि प्रभु की इच्छा क्या है? हमेशा, हर क्षण, और हर परिस्थिति में? नहीं, इसलिये जो "शुभ" है उसके बारे में तुम अज्ञान में हो—अतः, यह है अज्ञानमय सद्भावना।

२. ऊर्जा की प्रकृति ही है अक्षय, अमोघ और अथक होना। क्या तुम कभी नहीं थकते? हां, बहुत बार—अतः, यह है निष्क्रिय ऊर्जा।

१७ जुलाई १९६३

मधुर मां,

क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि यहां इतनी अधिक स्वाधीनता की जगह, जिसका हम लाभ नहीं उठा पाते, एक आधारभूत अनुशासन रखा जाये?

यह तुम कह रहे हो, लेकिन तुम तो उन लोगों में से हो जो बहुत अधिक अनिवार्य होने पर जब जरा-से अनुशासन की मांग की जाती है, जैसे शारीरिक प्रशिक्षणमें, तो (कम-से-कम मानसिक तौर पर) विद्रोह करते हैं।

२१ जुलाई १९६३

मधुर मां,

मैं आपसे पैसा मांगते हुए क्यों सकुचाता हूं? कौन-सी चीज मुझे इससे रोकती है? क्या मैं अभीतक आपके साथ इतना घनिष्ठ नहीं हूं या कोई और कारण है? मैं अपने-आप नहीं समझ पाता।

यह संभवतः एक आंतरिक विवेक है। यह तो अच्छी चीज ही है, क्योंकि इस तरह का विवेक चैत्य चेतना से आता है जो **मांगने** की जगह देना ज्यादा पसंद करती है।

२४ जुलाई १९६३

मधुर मां,

मुझे अपने काम पर विश्वास नहीं है। मैं बहुत शर्मीला हूं, मेरा ख्याल है कि प्रगति करने के लिये आदमी को ज्यादा हिम्मतवाला होना चाहिये।

तुम्हें ज्यादा हिम्मतवाला नहीं, ज्यादा अध्यवसायी और दृढ़ होना चाहिये।

२७ जुलाई १९६३

मधुर मां,

'क' ने हमें गणित अध्यापक 'ख' की एक प्रिय कहानी सुनायी : ''एक गांव के पास कोई मूर्तिकार एक शिलाखंड पर काम कर रहा था। एक दिन कुछ गांववालों ने उसे घेर लिया, वे जानना चाहते थे कि वह पत्थर को क्यों तोड़ रहा है। बहुत परिश्रम के बाद काम पूरा हुआ और एक सुंदर मूर्ति सामने आयी। मूर्तिकार के आगे एक शिलाखंड की जगह एक नाचती हुई देवी खड़ी थी। सारे गांववाले, जो उसे काम करते हुए देखते रहे थे, आश्चर्य में पड़ गये। सभी उस सुंदर पत्थर में'से इस सुंदर आकृति को निकलते देखकर हैरान रह गये और उन्होंने मूर्तिकार से पूछा, 'तुम्हें कैसे पता चला कि यह मूर्ति इस पत्थर में थी?''

प्रश्न प्रशंसनीय है और अगर मूर्तिकार हाजिरजवाब होता तो वह कहता, ''क्योंकि मैंने उसे पत्थर में देखा था।''

११ अगस्त १९६३

मधुर मां,

आपकी टिप्पणियों में मुझे मजा आता है।

ज्यादा अच्छा हो कि तुम उन्हें समझने की कोशिश करो, क्योंकि हमेशा शब्दों के पीछे कोई गहरी चीज रहती है जिसे समझना चाहिये।

१२ अगस्त १९६३

मधुर मां,

आज सवेरे मैंने एक आदमी देखा जिसकी पसलियां निकली हुई थीं, कूल्हे दबे हुए और टेढ़ी-मेढ़ी टांगें थीं। वह एक दयनीय दृश्य था। अजीब बात है, भगवान् प्रकृति में इतने विकार क्यों पैदा करते हैं। जवाब एक ही दिया जाता है, जो कोई जवाब नहीं है—"यह भगवान् की लीला है।" यह कुछ समझ में नहीं आता।

यह एक सरल-सा उत्तर है जो तब दिया जाता है जब आदमी समझने का कष्ट नहीं करता या नहीं करना चाहता।

लेकिन अगर तुम व्यक्तिगत मानसिकता से ऊपर उठो और ऐक्य की चेतना में प्रवेश करो तो इसे समझ सकते हो।

१८ अगस्त १९६३

मधुर मां,

'योग' का क्या अर्थ है? और हममें से कितने हैं जो योगाभ्यास करते हैं?

तुम यह प्रश्न क्यों पूछते हो? यहां जो लोग हैं उन सभी को **कम-से-कम** यह तो समझना ही चाहिये कि योग क्या है—रही बात अभ्यास की तो वह एक अलग चीज है! . . .

१९ अगस्त १९६३

मधुर मां,

मुझे बहुत दुःख हो रहा है क्योंकि मैंने आपसे अगरबत्ती मांगी थी। उसे बाजार से खरीदना कहीं ज्यादा अच्छा होता, क्योंकि माताजी को पसंद नहीं है कि उनके बच्चे भीख मांगें।

मुझसे मांगना भीख मांगना नहीं है और जब तुम्हें सचमुच किसी चीज की जरूरत हो तो तुम मांग सकते हो, लेकिन साथ ही तुम्हें उसके न मिलने के लिये भी तैयार रहना चाहिये और अगर मैं तुम्हें न दे पाऊं तो तुम्हें क्षुब्ध न होना चाहिये। इस मामले में, मैंने कहा था कि तुम्हें कुछ अगरबत्तियां दे दी जायें लेकिन मुझे ठीक पता नहीं कि ऐसा किया गया या नहीं। अगरबत्तियां 'क' के पास रहती हैं और तुम्हें उससे मांग लेनी चाहियें।

२२ अगस्त १९६३

मधुर मां,

हमारे अध्यापक 'क' ने हमें गंभीर और सारगर्भित लहजे में भाषण देते हुए कहा, "कठिन परीक्षाओं में से गुजरने के लिये तैयार रहो। हम किसी बहुत ही कठिन और भयावह चीज की पूर्व-संध्या में हैं।" लेकिन उन्होंने व्याख्या नहीं की।

खेद है कि उसने अपनी बात स्पष्ट नहीं की। मुझे नहीं मालूम कि वह क्या कहना चाहता था—शायद वह तुम्हें अपने छिछोरेपन, उदासीनता के भाव, तुम्हारी लापरवाही और शिथिलता के बारे में सावधान करना चाहता था।

तुम सभी युवाओं का—जो यहां हैं—जीवन बहुत ही ज्यादा आसान रहा है और उसका लाभ उठाकर अपने सारे प्रयासों को आध्यात्मिक प्रगति पर केंद्रित करने की जगह तुमने जहांतक हो सका, बहुत अधिक कलंक जुटाये बिना खूब मौज-मजा किया है और अपनी जागरूकता को लोरी देकर सुला दिया है।

'क' ने जो कुछ कहा वह शायद उसे फिर से जगाने के लिये था।

२७ अगस्त १९६३

[कप्तान के चरित्र के बारे में किसी की टिप्पणी के विषय में]

लोग जो कुछ कहते हैं उसका महत्त्व नहीं होता, क्योंकि मानव मूल्यांकन सदा एकांगी और इस कारण अज्ञानभरे होते हैं।

अपने-आपको जानने के लिये तुम्हें अपने-आपको उच्चतर और गहनतर चेतना से देखना होगा जो तुम्हारी प्रतिक्रियाओं और भावों के सच्चे कारणों को विवेक के साथ देख सके।

छिछला अवलोकन सहायता नहीं कर सकता और जबतक तुम चैत्य सत्ता के साथ संपर्क न साध लो, ज्यादा अच्छा यही होगा कि व्यर्थ विश्लेषण में समय काटने की जगह हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करने की और तुम जितने अच्छे हो सकते हो उतने अच्छे होने की कोशिश करो।

१२ सितंबर १९६३

('क' के बारे में, जिसने कप्तान के पास आकर अपनी मुसीबतें सुनायीं और कहा कि इन सब तकलीफों के लिये वह स्वयं दोषी है) उसे सांत्वना देने के लिये मैंने उससे कहा कि अपने-आपको दोष देना सदा साधु या स्वस्थ वृत्ति नहीं होती।

आध्यात्मिक दृष्टि से 'क' ठीक है और तुम ऊपरी और अज्ञानभरी तथाकथित ''बुद्धि'' के कारण गलत।

जब कोई गड़बड़ होती है तो तुम्हें हमेशा अपने अंदर ही उसके कारण को ढूंढ़ना चाहिये, छिछले रूप में नहीं, अपने अंदर गहराई में और व्यर्थ में अपने दोष पर रोने-धोने के लिये नहीं बल्कि भगवान् की सर्वसमर्थ शक्ति को अपनी सहायता के लिये बुलाकर दोष का उपचार करने के लिये।

अपनी बात को और ज्यादा अच्छी तरह समझाने के लिये मैं यह और जोड़ दूं कि वह इसके किसी दोष के कारण अस्थिर और ढुलमुल नहीं है—ऐसा होना उस पुरुष का स्वभाव ही है और वह अपने स्वभाव के अनुसार क्रिया करता है—लेकिन वह जो करता है उसके कारण वह कष्ट पाती और दुःखी रहती है तो यह उसका अपना दोष है। इसका मतलब यह है कि स्वयं उसका भाव अहंकार से रंगा हुआ है। उसे इस अहंकार पर विजय पानी चाहिये और जैसे ही वह विजय पा लेगी वैसे ही उसके दुःख समाप्त हो जायेंगे।

१७ सितंबर १९६३

प्यारी मां,

मुझे फिर से भोज के लिये निमंत्रण मिला है। हमें निमंत्रण मिले तो हम इंकार तो नहीं कर सकते, है न?

नहीं, जबतक कि ऐसा करने के लिये गंभीर कारण न हों। मैं बाहरी क्रिया के बारे में नहीं कह रही—तुम भले यहां खाओ या वहां, बात एक ही है—मैं भीतरी वृत्ति की बात कर रही हूं और उस बहुत अधिक महत्त्व की जो आदमी भोजन को देता है और साथ ही लोभ की।

२१ सितंबर १९६३

मधुर मां,

अगर मैं अपने सारे जीवन और उसकी परिस्थितियों पर नजर डालूं तो मैं बहुत खुश होता हूं, लेकिन मैं संतुष्ट नहीं हूं। बहुत बार मैं असह्य दुःख में डूब जाता हूं। मैं क्या करूं?

सच्चा सुख जीवन की बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं रहता। तुम अपनी चैत्य सत्ता को खोजकर और उसके साथ एक होकर ही सच्चा सुख पा सकते और उसे सतत बनाये रख सकते हो।

२२ सितंबर १९६३

मधुर मां,

बहुत बार मैं फ्रांसिस थौमसन की एक कविता और उसकी वह टेक याद कर लेता हूं जिसमें वह कहता है, "यद्यपि मैं उसके प्रेम को जानता था जो मेरा पीछा कर रहा था, फिर भी मुझे डर लगता था कि कहीं उसे पाकर और सब कुछ न खो देना पड़े !" हमारा असली दुःख यही है !

हां, यही श्रीअरविंद ने बहुत बार लिखा है कि मनुष्य अपने दुःख से, अपनी तुच्छता से, अपनी दुर्बलता से, अपने अज्ञान और अपनी सीमाओं से चिपका रहता है—इसी कारण वह बदल नहीं पाता।

२४ सितंबर १९६३

मधुर मां,

मैं पहली दिसंबर[1] के कार्यक्रम के लिये पूरी तरह तैयार नहीं हूं, और मैं जरा भी उत्साह का अनुभव नहीं करता।

जिस क्षण तुमने किसी चीज को स्वीकार करने का निश्चय कर लिया है तभी से उसे भरसक अच्छी-से-अच्छी तरह करना चाहिये।

तुम हर चीज में चेतना और आत्म-प्रभुत्व में प्रगति करने का अवसर पा सकते हो और प्रगति के लिये यह प्रयास उस चीज को—वह कुछ भी क्यों न हो—तुरंत रुचिकर बना देता है।

२६ सितंबर १९६३

मधुर मां,

सूत्र १७२ में श्रीअरविंद कहते हैं, "विधान जगत् की रक्षा नहीं कर सकता, इसी कारण मूसा के विधान मानवजाति के लिये मरे हुए हैं और ब्राह्मणों के शास्त्र भ्रष्ट और मरणासन्न हैं। स्वाधीनता में उन्मुक्त विधान ही मुक्तिदाता है। पंडित नहीं योगी, मठचर्या नहीं बल्कि कामना, अज्ञान और अहंकार का आंतरिक त्याग।" इसका क्या मतलब है ? विधान को स्वाधीनता में कैसे उन्मुक्त किया जा सकता है ? विधान से हमारा मतलब होता है कोई सुनिश्चित और दृढ़ चीज या फिर वह कठोरता के विपरीत नमनीयता की आवश्यकता है : ऐसा विधान जो परिस्थितियों के अनुसार अपने-आपको ढाल लेने के लिये स्वतंत्र होगा ?

[1] वार्षिक सांस्कृतिक कार्यक्रम।

मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि श्रीअरविंद ने जो लिखा है उसमें से तुम कुछ भी नहीं समझ पाये क्योंकि तुमने अपने ऊपरी मन से समझने की कोशिश की है जब कि श्रीअरविंद ने जो कहा है वह उच्चतम बौद्धिक प्रकाश से आता है, जो मन से कहीं ऊपर है। मैं तुमसे इतना ही कह सकती हूं, जो शायद तुम्हें ठीक रास्ते पर चला सके, कि विधान के पीछे व्यवस्था और संगठन की भावना होती है; परंतु विधान अपने-आपमें कोई सुनिश्चित दृढ़ वस्तु है और इस कारण उच्चतम सत्य के विपरीत है। अगर व्यवस्था और संगठन की उसी भावना को स्वाधीनता की सेवा में लगाया जा सके तो वह मोक्ष-प्राप्ति का, यानी, सत्य के साथ ऐक्य का साधन बन सकती है।

२९ सितंबर १९६३

मधुर मां,

श्रीअरविंद अपने एक सूत्र में कहते हैं, ''जो आत्मारोपित विधान के मुक्त, पूर्ण और बुद्धिमान् निरीक्षण में त्रुटिपूर्ण हैं उन्हें औरों की इच्छा-शक्ति के अधीन रखना चाहिये।'' मां, मैं उनमें से एक हूं। क्या आप मुझे लेकर अनुशासित करेंगी ?

मेरे बालक, मैं काफी समय से ठीक यही करने की कोशिश कर रही हूं, विशेष रूप से जब से तुम्हारी कापी आती है और मैं उसमें संशोधन करती हूं।

इसी अनुशासन के लक्ष्य से, मैंने तुमसे हर रोज एक वाक्य लिखने के लिये कहा था। यह जरूरी नहीं था कि वह लंबा हो, लेकिन उसका **भूलों से मुक्त** होना जरूरी था—लेकिन हाय !

अभीतक मुझे सफलता मुश्किल से ही मिली है—प्रायः तुम्हारे वाक्य लंबे और अस्पष्ट होते हैं, कुछ छोटे होते हैं पर **सभी** भूलभरे हैं, और बहुत बार, बल्कि अधिकतर लिंग, अन्वय और क्रियारूप की **वही भूलें** रहती हैं जिन्हें मैं कई बार ठीक कर चुकी हूं।

ऐसा लगता है कि जब तुम्हारी कापी तुम्हें लौटायी जाती है तब अगर तुम उसे देखते भी हो तो तुम उसका अध्ययन नहीं करते और उसे प्रगति करने का साधन नहीं बनाते।

अपने जीवन को अनुशासन में लाना आसान नहीं है, उनके लिये भी जो सबल, अपने साथ कठोर, साहसी और सहनशील हैं।

लेकिन अपने सारे जीवन को अनुशासित करने की कोशिश करने से पहले कम-से-कम **एक** क्रिया को अनुशासित करने की कोशिश करनी चाहिये और उसमें सफलता पाने तक लगे रहना चाहिये।

१३ अक्तूबर १९६३

मधुर मां,

मैंने प्रायः सभी जगह देर से जाने की आदत डाल ली है।

ऐसी कोई आदत नहीं है जिसे बदला न जा सके।

१४ अक्तूबर १९६३

मधुर मां,

सुना है कि आपकी स्वीकृति के लिये अंग्रेजी साहित्य की पुस्तकों की एक सूची आपके पास भेजी गयी थी; लेकिन आप चाहती हैं कि केवल आपकी और श्रीअरविंद की ही पुस्तकें पढ़ी जायें। सुना है कि आपने यहांतक कहा कि इस पुराने साहित्य को पढ़ना अपनी चेतना के स्तर को नीचे लाना है।

मां, क्या आपकी यह सलाह केवल उनके लिये है जो योगाभ्यास करना चाहते हैं या सभी के लिये है ?

पहली बात तो यह कि तुम्हें जो बतलाया गया है वह ठीक नहीं है। दूसरी यह कि परामर्श हर व्यक्ति के लिये उसके अनुकूल दिया जाता है, उसे सर्व-सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता।

१२ नवंबर १९६३

[श्रीअरविंद की 'सावित्री' के उद्धरणोंवाली एक कापी के शुरू में माताजी ने लिखा :]

'सावित्री' के कुछ उद्धरण, वह अद्‌भुत, भविष्य-सूचक कविता जो मानवजाति की भावी उपलब्धि में उसकी मार्ग-दर्शक होगी।

२७ नवंबर १९६३

मधुर मां,

मैं अपनी पढ़ाई में बहुत ही अनियमित हूं। मैं नहीं जानता कि क्या किया जाये।

अपने 'तमस्' को जरा खखेर डालो, नहीं तो तुम भोंदू बन जाओगे !

२७ दिसंबर १९६३

मधुर मां,

प्रयास करने का उत्साह कम होता जाता है। मैं संतोष का अनुभव करता हूं; लेकिन समय इतनी जल्दी भागा जाता है कि हमें लगता है कि हमें जो कुछ दिया गया है उसका हमने पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया है।

इससे प्रमाणित होता है कि यहां का जीवन बहुत ज्यादा आसान है और तुममें से अधिकतर लोग इतने ज्यादा तामसिक हैं कि जबतक सामान्य जीवन की कठिनाइयों के अंकुश न लगें तबतक प्रयास नहीं कर सकते। तीव्र अभीप्सा ही इस मारक स्थिति को ठीक कर सकती है। लेकिन अभीप्सा गायब है और तुम्हारी आत्मा सो रही है!

२ जनवरी १९६४

१९६४

साल मुबारक

मैं आशा करती हूं कि यह नया साल तुम्हारी अंतरात्मा के पुनर्जागरण को और तुम्हारी चेतना में प्रगति के संकल्प के जागरण को देखेगा।

३ जनवरी १९६४

मैंने तुम्हारी कापी इस आशा से रख छोड़ी है कि मुझे उसे पढ़ने और ठीक-ठाक करने के लिये समय मिल जायेगा। लेकिन सप्ताह पर सप्ताह गुजरते जाते हैं और मैं देखती हूं कि यह असंभव है; इसलिये मैं बिना पढ़े ही उसे लौटा रही हूं और मैं चाहती हूं कि तुम इसे तबतक न भेजो जबतक मेरे लिये फिर से देखना शुरू करना संभव न हो। तुम सूत्रों का अपना अनुवाद जारी रखो। मैं संशोधन के लिये एक साथ और भी भेज दूंगी।

मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं।

१७ फरवरी १९६४

मधुर मां,

आपने मुझे आशीर्वाद दिया है कि मैं सत्य-जीवन में जन्म लूं, लेकिन ऐसा जन्म लेने की क्या शर्तें हैं और उन्हें कैसे पूरा किया जा सकता है?

पहली शर्त है यह निश्चय करना कि आगे से तुम अपने लिये नहीं, ऐकांतिक रूप से भगवान् के लिये जिओगे।

स्वभावतः, इस निश्चय को हर रोज नया किया जाये और सतत तथा प्रभावी संकल्प में प्रकट किया जाये।

२९ अप्रैल १९६४

मधुर मां,

'अपने लिये न जीना' तो समझ में आता है और हम उसे अभ्यास में उतारने की कोशिश भी कर सकते हैं; लेकिन 'ऐकांतिक रूप से भगवान् के लिये जीने' का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? मेरे लिये तो यह मन में यांत्रिक रूप से दोहराया जानेवाला एक विचार भर है; लेकिन मां, इसे चरितार्थ करने के लिये क्या किया जा सकता है?

भगवान् के लिये जीने का अर्थ है कि तुम जो भी करो भगवान् को अर्पित करते चलो और जो करो उससे व्यक्तिगत फल की कामना न करो। निश्चय ही शुरू में, जब भगवान् केवल एक शब्द या अधिक-से-अधिक एक भाव होता है—**अनुभूति** नहीं, सारी चीज शुद्ध रूप से मानसिक रहती है। लेकिन अगर तुम सच्चा प्रयास बारंबार करो तो एक दिन आता है और तुम अनुभव करते हो कि उत्सर्ग किसी वास्तविक चीज को दिया गया है जो अनुभवगम्य, ठोस और उपकारी है। तुम जितने अधिक सच्चे और अध्यवसायी होगे उतनी ही जल्दी अनुभूति आयेगी और उतने ही अधिक समय तक रहेगी।

हर एक के लिये मार्ग के ब्योरे अलग-अलग होते हैं लेकिन सचाई और अध्यवसाय सभी के लिये समान रूप से अनिवार्य हैं।

६ मई १९६४

मधुर मां,

क्या एक बिजली का पंखा पाना संभव होगा? तीन वर्ष पहले 'क' ने मुझे इसके लिये वचन दिया था लेकिन अब वह आपसे मांगने की सलाह देता है।

अगर कोई पंखा है या तुम ही एक खोज लो तो वह तुम्हें मिल सकता है। लेकिन क्या तुम्हारा ख्याल है कि वह भगवान् को पाने में तुम्हारी सहायता करेगा?

७ मई १९६४

मधुर मां,

पंखे के बारे में मुझे नहीं लगता कि वह मुझे भगवान् को पाने में सहायता

देगा, लेकिन क्या वह बाधक है? अगर आपका ख्याल है कि मेरे लिये पंखे का न होना ज्यादा अच्छा है तो ठीक है। मैं आपके निश्चय को बिना किसी शिकायत के स्वीकार करता हूं।

आध्यात्मिक जीवन में जो चीज बाधक है वह है शारीरिक सुख-सुविधाओं को महत्त्व देना और अपनी कामनाओं को आवश्यकता मान बैठना—दूसरे शब्दों में कहें तो अपने-आपको धोखा देना। अब **अगर तुम्हारे पास पंखा हो** और तुम उसका उपयोग करना चाहते हो तो यह जानते हुए उसका उपयोग कर सकते हो कि वह प्रगति करने में किसी तरह से सहायता न करेगा—वह केवल तुम्हारे शरीर को ज्यादा सुख में होने की भ्रांति देगा।

इन चीजों का जीवन में कोई महत्त्व न होना चाहिये।

१३ मई १९६४

मधुर मां,

हम प्रायः कोई नयी चीज करने से डरते हैं, शरीर नये तरीके से क्रिया करने से इंकार करता है, जैसे जिम्नास्टिक्स में कोई नयी क्रिया करने या नयी तरह का गोता लगाने से। यह डर कहां से आता है? इससे कैसे पिंड छुड़ाया जा सकता है? और फिर, दूसरों को भी ऐसा करने के लिये कैसे प्रोत्साहित किया जाये?

शरीर हर नयी चीज से डरता है क्योंकि उसका आधार ही है जड़ता, तमस्; प्राण ही उसमें रजस् या क्रियाशीलता का प्रधान लक्षण लाता है। इसीलिये साधारण नियमानुसार महत्त्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा और दर्प के रूप में प्राण की घुसपैठ शरीर को तमस् को झाड़ फेंकने और प्रगति के लिये आवश्यक प्रयास करने के लिये बाधित करती है।

स्वभावतः, जिनमें मन प्रधान है वे अपने शरीर को भाषण दे दे कर भय पर विजय पाने के लिये आवश्यक सभी युक्तियां जुटा सकते हैं।

सभी के लिये सर्वोत्तम उपाय है भगवान् के प्रति आत्मोत्सर्ग और उनकी अनंत कृपा पर विश्वास।

१३ मई १९६४

मधुर मां,

आत्म-प्रवंचना के हजारों चेहरे और हजारों मार्ग होते हैं जिनसे वह अपने-

आपको हमारे अंदर छिपा सकती है। हम उसे कैसे खोज कर उससे पिंड छुड़ा सकते हैं?

यह एक लंबा, धीमा काम है जिसे केवल पूर्ण सचाई द्वारा ही सफल किया जा सकता है। तुम्हें बहुत अधिक सावधान होना चाहिये, हमेशा चौकस, अपनी सभी भावुक गतिविधियों और प्राणिक प्रतिक्रियाओं पर नजर रखनी चाहिये, अपनी दुर्बलताओं के प्रति कभी आसक्ति के साथ आंखें न मूंदनी चाहियें और जब कभी कोई भूल करो, चाहे वह छोटी-सी ही क्यों न हो, तो अपने-आपको पकड़ो।

अगर तुम अध्यवसाय के साथ लगे रहो तो यह बहुत रुचिकर हो जाता है और सरल से सरलतर बनता जाता है।

२० मई १९६४

मधुर मां,

सुख, हर्ष, आह्लाद, उल्लास और आनंद में क्या फर्क है? क्या हम एक को दूसरे में पा सकते हैं?

आनंद परम प्रभु की चीज है।

उल्लास पूर्ण योगी की चीज है।

हर्ष निष्काम मनुष्य की चीज है।

सुख हर जीवित प्राणी की पहुंच में है लेकिन उसके साथ ही उसका अनिवार्य साथी दुःख होता है।

२७ मई १९६४

मधुर मां,

पिछले सप्ताह आपके उत्तर बहुत संक्षिप्त थे। क्या पूर्ण योगी परम प्रभु के साथ एकात्म नहीं होता? क्या निष्काम मनुष्य सच्चा साधक नहीं होता?

मेरे उत्तर तुम्हारे मन को खोलने के लिये और तुम्हें थोड़ा-थोड़ा करके अपनी वर्तमान मानसिक सीमाओं को पार करने के लिये दिये जाते हैं।

परम प्रभु अपना आनंद जिसे चाहे दे सकते हैं और जैसे चाहे दे सकते हैं।

साधक वह है जिसने यौगिक अनुशासन अपनाया है और उसका अभ्यास भी करता है। ऐसे निष्काम लोग हैं जो किसी योग की साधना नहीं करते।

अपने विचार को विस्तृत करो। यह बहुत जरूरी है!

३ जून १९६४

(प्रेम के बारे में) हम इस मानव प्रेम को आदर्श प्रेम—सच्चे प्रेम—की ओर कैसे मोड़ सकते हैं ?

केवल एक ही सच्चा प्रेम है और वह है भागवत प्रेम; अन्य सभी प्रेम उस सच्चे प्रेम के ह्रास, सीमांकन और विकार हैं। भगवान् के लिये भक्त का प्रेम भी ह्रास और प्रायः अहंकार से रंगा रहता है। लेकिन जैसे तुम स्वाभाविक रूप से, जिससे प्रेम करते हो उसके जैसे बनने लगते हो, तो भक्त, अगर वह सच्चा और निष्कपट है तो वह जिस भगवान् की आराधना करता है उसीके जैसा होने लगता है और इस तरह उसका प्रेम शुद्ध और शुद्धतर होने लगता है। बहुत बार यह सुझाव दिया जाता है कि तुम जिससे प्रेम करते हो उसीमें भगवान् की आराधना करो; लेकिन जबतक तुम्हारा हृदय और तुम्हारे विचार **बहुत शुद्ध** न हों तबतक यह चीज शोचनीय अधोगति की ओर ले जा सकती है।

ऐसा लगता है कि तुम्हारी अवस्था में सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि अपनी पारस्परिक आसक्ति का उपयोग भगवान् को पाने की सामान्य और सम्मिलित अभीप्सा के लिये प्रयास में करो और पूरी सचाई के साथ जहांतक बन पड़े एक व्यक्ति दूसरे के लिये वही चीज लाये जिसकी उसे अपना लक्ष्य पाने के लिये जरूरत है।

१० जून १९६४

मधुर मां,

हम दूसरे की आवश्यकता को कैसे जान सकते और उसकी सहायता कर सकते हैं ?

मैं बाहरी चीजों और मानसिक क्षमताओं की बात नहीं कर रही थी ! सच्चा प्रेम अंतरात्मा में होता है (बाकी सब प्राणिक आकर्षण या मानसिक अथवा भौतिक आसक्ति के सिवा कुछ नहीं है) और अंतरात्मा या चैत्य पुरुष सहजवृत्ति से जानता है कि दूसरे को क्या पाने की जरूरत है और हमेशा उसे वह देने के लिये तैयार रहता है।

१७ जून १९६४

मधुर मां,

क्या हम दूसरों के दोष इस कारण नहीं सह पाते क्योंकि वे स्वयं हमारे अंदर भी हैं ? हमें जो धक्का लगता है उसका मूल क्या है ?

हां, सामान्य रूप से तुम्हारे अंदर जो दोष होते हैं वही तुम्हें औरों के अंदर बहुत चौंकानेवाले लगते हैं।

बाद में, तुम्हारी समझ में आ जाता है कि और लोग ऐसा दर्पण हैं जो तुम जो कुछ हो उसे ही प्रतिबिंबित करते हैं।

२४ जून १९६४

मधुर मां,

जैसे शारीरिक प्रशिक्षण के लिये मूर्त और ठोस शारीरिक शिक्षण होते हैं, क्या अंतरात्मा और चेतना की प्रगति के लिये उसी तरह के मूर्त और ठोस शिक्षण नहीं होते ?

अति प्राचीन काल से हर योग-पद्धति ने, समस्त विस्तार में अपनी-अपनी शिक्षण-पद्धतियां विकसित की हैं, उन सब को पढ़ा, सीखा और अभ्यास में लाया जा सकता है; लेकिन श्रीअरविंद की शिक्षा के अनुसार इनमें से हर एक पद्धति की अपनी सीमाएं हैं और उनसे आंशिक परिणाम ही मिलता है। इसलिये जो लोग पूर्णयोग का अनुसरण करना चाहते हैं उन्हें उन्होंने सलाह दी है कि वे अपनी निजी साधना-पद्धति की खोज करें जो प्राचीन ज्ञान पर आधारित होते हुए प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं और परिस्थिति के अनुकूल हो।

१ जुलाई १९६४

मधुर मां,

मेरा ख्याल था कि बीमारी सत्ता की किसी अशुद्धि या दुर्बलता से आती है। तब फिर आश्रम में इस महामारी का क्या अर्थ है ? 'क' भी उसका शिकार हो गया। यह महामारी कहां से आती है ?

महामारी **सामुदायिक** बीमारी है और **सामुदायिक** अशुद्धि से आती है। सब मिलाकर आश्रम को जो होना चाहिये—ताकि वह अपना काम पूरा कर सके और जगत् को भागवत कार्य के प्रति समग्र उत्सर्ग और भविष्य की तैयारी के लिये स्वयं उदाहरण बनकर दिखा सके—उससे वह बहुत दूर है। रोगों के रूप हर व्यक्ति की अवस्था और समग्र के साथ उसके संबंध के अनुसार बदलते रहते हैं।

८ जुलाई १९६४

मधुर मां,

आपकी सलाह के अनुसार मैं हृदय में एकाग्र होने और गहराई में जाने की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन व्यर्थ। एकमात्र परिणाम है सिर-दर्द और एक तरह के चक्कर का अनुभव, लेकिन जैसे ही मैं आंखें खोलता हूं सब कुछ फिर से स्वाभाविक हो जाता है। मुझे क्या करना चाहिये ?

इसका मतलब यह है कि तुम अभीतक आध्यात्मिक अनुशासन के लिये तैयार नहीं हो और तुम्हें तबतक प्रतीक्षा करनी चाहिये जबतक जीवन तुम्हें जरा ज्यादा ढाल दे और तुम्हारी चैत्य चेतना उस नींद में से जागे जिसमें वह पड़ी सो रही है।

१५ जुलाई १९६४

मधुर मां,

जबतक मैं आध्यात्मिक अनुशासन के लिये तैयार न हो जाऊं, तबतक मुझे इस अभीप्सा के सिवा और क्या करना चाहिये कि माताजी मुझे इस नींद में से बाहर खींच निकालें और मेरी चैत्य चेतना को जगा दें ?

अपनी बुद्धि को विकसित करने के लिये श्रीअरविंद की शिक्षा को नियमित रूप से और बहुत ध्यान के साथ पढ़ो। अपने प्राण को विकसित करने और उसपर प्रभुत्व पाने के लिये अपनी गतिविधियों और प्रतिक्रियाओं का अच्छी तरह अवलोकन करो और अपनी कामनाओं को जीतने के लिये संकल्प रखो, अपनी चैत्य सत्ता को पाने और उसके साथ एक होने के लिये अभीप्सा करो। भौतिक रूप से तुम जो कर रहे हो उसे करते चलो। अपने शरीर को ठीक तरीके से वश में रखो और विकसित करो, क्रीड़ांगण और अपने काम के स्थान पर काम करके अपने-आपको उपयोगी बनाओ और जहांतक संभव हो यह निःस्वार्थ भाव से करो।

अगर तुम सच्चे और पूरी तरह ईमानदार हो तो मेरी सहायता निश्चित रूप से तुम्हारे साथ होती है और एक दिन तुम उसे जान पाओगे।

२२ जुलाई १९६४

मधुर मां,

जब कोई नया आदमी आकर पूछे कि श्रीअरविंदाश्रम क्या है तो हम ऐसा क्या जवाब दे सकते हैं जो संक्षिप्त भी हो और एकदम ठीक भी ?

आश्रम एक नये जगत् का, आगामी कल के सृजन का पालना है।

और अगर तुमसे और भी प्रश्न किये जायें तो बस यही कहो, 'आपको श्रीअरविंद की किताबें पढ़नी और उनकी शिक्षा का अध्ययन करना चाहिये।'

२९ जुलाई १९६४

मधुर मां,

क्या जीवन में सचमुच त्रासदियां होती हैं, क्योंकि हर चीज तो भगवान् की ओर ही ले जाती है ?

त्रासदियां उनके लिये हैं जो उन्हें त्रासदी के रूप में लेते हैं—मानवजाति के बहुत बड़े भाग के लिये।

हर चीज के पीछे भागवत कृपा को देख सकने के लिये तुम्हें भागवत ऐक्य की चेतना में निवास करना चाहिये।

५ अगस्त १९६४

मधुर मां,

बहुधा लोग कहते हैं कि हमारे भोजन में पर्याप्त विटामिन और प्रोटीन नहीं है। डॉक्टरों का कहना है कि इसी कारण हमारे यहां इतने रोग और भौतिक कष्ट हैं।' क्या यह सच्चा कारण है ? क्या भोजन का हमारे जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है ?

जिन लोगों की चेतना **शरीर पर** केंद्रित है, जो शरीर की कामना और तृप्ति के लिये जीते हैं, जिनके लिये **सत्य शरीर से ही** आरंभ होता और **उसीपर** समाप्त होता है, स्पष्टतः उनके लिये भोजन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे **खाने के लिये ही जीते हैं।**

चिकित्सक हमेशा रोगमुक्त कर सकने में अपनी अक्षमता की जिम्मेदारी को जीवन की बाहरी परिस्थितियों पर डालने के लिये तैयार रहते हैं।

अगर तुम समस्या का सत्य देखना चाहो तो वह यह है : केवल एक प्रबुद्ध शरीर, जो संतुलित और समस्त प्राणिक कामनाओं और मानसिक पूर्वधारणाओं से मुक्त हो, वही जान सकता है कि भोजन के गुण और मात्रा में उसे किस चीज की और कितनी जरूरत है—और ऐसे शरीर को पाना इतना अपवादिक है कि हमें उसके बारे में बोलने की भी जरूरत नहीं।

' इस वाक्य पर माताजी टिप्पणी लगा देती हैं, "अच्छा इतना अधिक ???"

इसके अतिरिक्त, तुम्हें अच्छे-से-अच्छा करना चाहिये और उसे बहुत ज्यादा महत्त्व न देना चाहिये।

जिन्हें डाक्टरों पर विश्वास है उन्हें उन्हींकी सलाह के अनुसार चलने दो। वे देखें कि क्या इससे उनका कष्ट कुछ कम होता है!

१२ अगस्त १९६४

मधुर मां,

ऐसे समय होते हैं जब मेरी इच्छा होती है कि अपने सभी क्रिया-कलाप, क्रीड़ांगण, बैंड, अध्ययन इत्यादि छोड़ दूं और अपना सारा समय काम में लगाऊं। लेकिन मेरा तर्क इसे स्वीकार नहीं करता। तो यह विचार कहां से और क्यों आता है?

इस मामले में तुम्हारा तर्क ठीक है। बाहरी प्रकृति की प्रायः यह तामसिक प्रवृत्ति होती है कि जीवन की परिस्थितियों को सरल बना ले ताकि अधिक पेचीदा स्थितियों को व्यवस्थित करने के प्रयास से बचा जा सके। लेकिन जब तुम सत्ता की समग्रता में प्रगति करना चाहो तो यह सरलीकरण उचित नहीं होता।

१९ अगस्त १९६४

मधुर मां,

कामनाओं और आसक्तियों को जीतने का सबसे अधिक प्रभावशाली तरीका क्या है? उन्हें एक ही प्रहार में काट देना, भले उससे आदमी टूट ही जाये, या उन्हें एक-एक करके सावधानी से और निश्चित रूप से दूर करना?

ये दोनों उपाय समान रूप से प्रभावहीन हैं। इनका सामान्य परिणाम यह होता है कि तुम अपने-आपको छलते और धोखा देते हो कि तुमने अपनी कामनाओं को जीत लिया है, जब कि सचमुच अच्छी-से-अच्छी स्थिति में भी तुम उन्हें नीचे दबाकर उनपर बैठे रहते हो—वे अवचेतना में तबतक दबी रहती हैं जबतक वहांपर उनका विस्फोट न हो जाये और वे सारी सत्ता में उथल-पुथल न मचा दें।

तुम्हें भीतर से अपनी निम्न प्रकृति का स्वामी बनना चाहिये—अपनी चेतना को दृढ़ता के साथ ऐसे क्षेत्र में स्थापित करके जहां वह समस्त कामना और आसक्तियों से मुक्त हो क्योंकि वहां वह दिव्य ज्योति और शक्ति के प्रभाव तले होती है। यह एक लंबा और अत्यधिक मांग करनेवाला परिश्रम है जिसे अचूक निष्कपटता और अथक अध्यवसाय के साथ हाथ में लेना चाहिये।

बहरहाल, तुम जितने पूर्ण हो उससे अधिक पूर्ण होने का दिखावा कभी न करो और झूठे आभासों से तो बिल्कुल ही संतुष्ट न होओ।

२६ अगस्त १९६४

मधुर मां,

जब हम बहुत ज्यादा संवेदनशील होते हैं तो आसानी से कष्ट भोगते हैं; चूंकि यह भावुकता बलवान् अहंकार का चिह्न है, तो हम अहंकार को कैसे दूर कर सकते हैं ?

तुम यह क्यों कहते हो कि संवेदनशीलता मजबूत अहंकार का चिह्न है ? यह तो बिल्कुल स्पष्ट नहीं मालूम होता। संवेदनशीलता के बहुत-से भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं; कुछ दुर्बलता के और कुछ—उनमें से सर्वोत्तम—सुरुचि के परिणाम होते हैं। साधारणतः अहंकार व्यक्ति के विकास पर शासन करता है, लेकिन सबसे अधिक विकसित व्यक्तित्व जरूरी तौर पर वे नहीं हैं जिनमें अहंकार बहुत बलवान् हो—इसके विपरीत; जैसे-जैसे व्यक्तित्व अपने-आपको पूर्ण बनाता है, वैसे-वैसे अहंकार की शक्ति घटती जाती है और वस्तुतः अपने-आपको पूर्ण बनाकर ही व्यक्ति दिव्यीकरण की उस स्थिति तक पहुंचता है जहां वह अपने-आपको अहंकार से मुक्त कर सकता है।

२ सितंबर १९६४

मधुर मां,

हम यह कैसे जान सकते हैं कि हम व्यक्तिगत और सामुदायिक रूप में प्रगति कर रहे हैं या नहीं ?

हम प्रगति कर रहे हैं या नहीं इसका अंदाज न लगाने की कोशिश करना ही हमेशा वांछनीय होता है क्योंकि इससे तुम्हें प्रगति करने में सहायता नहीं मिलती—इसके विपरीत होता है। यदि प्रगति के लिये अभीप्सा सच्ची हो तो निश्चित रूप से वह परिणाम लायेगी। लेकिन तुम व्यक्तिगत या सामुदायिक रूप से चाहे जितनी प्रगति कर चुके हो, फिर भी जो प्रगति करनी बाकी है वह इतनी अधिक होती है कि राह में रुककर, तुमने जो प्रगति की है उसका अंदाज लगाने की कोई जरूरत नहीं।

की हुई प्रगति का बोध सहज रूप से, इस अचानक और अप्रत्याशित बोध से आना चाहिये कि तुम उसकी तुलना में क्या हो जो कुछ समय पहले थे। बस इतना

ही—लेकिन इसके लिये भी तो चेतना की काफी ऊंची कोटि के विकास की जरूरत होती है।

९ सितंबर १९६४

मधुर मां,

पिछली बार मैंने अपना प्रश्न बुरी तरह से किया था। मेरा मतलब की हुई प्रगति यानी भूतकाल के परिणाम से न था बल्कि व्यक्ति की अब जो स्थिति है उससे था। मैं यह नहीं जानना चाहता कि मैंने कितनी जमीन पार कर ली। मैं बस यह जानना चाहता हूं कि क्या मैं बिना रुके, मार्ग पर बराबर चलता चला जा रहा हूं।

उन्नति सीधी, लगातार लीक पर होती हो यह विरल है, क्योंकि मनुष्य बहुत से अलग-अलग हिस्सों से बना है और साधारणतः कोई एक या दूसरा हिस्सा तो अपनी बारी में प्रगति करता है लेकिन बाकी तबतक निष्क्रिय या अव्यक्त रहते हैं जबतक उनकी बारी न आ जाये। केवल तभी जब चेतना इतनी प्रगति कर ले कि चौमुखी दृष्टि पा ले तभी व्यक्ति ठीक-ठीक देख सकता है कि क्या हो रहा है। लेकिन नियमित रूप से तथा उत्तरोत्तर बढ़ते चलने के लिये तुम्हें हमेशा अपनी अभीप्सा की ज्वाला को जीवंत रखना चाहिये।

१६ सितंबर १९६४

मधुर मां,

जप का क्या उपयोग है ? जब हम ध्यान के लिये बैठें तो क्या अपने अंदर शांति और नीरवता प्रतिष्ठित करने के लिये 'शांति' और 'नीरवता' शब्दों का जप एक अच्छा तरीका है ?

केवल शब्दों के रटने से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता।

प्राचीन और परंपरागत जप हैं जिनका उद्देश्य होता है निम्नतर मन को वश में करना और उच्चतर शक्तियों या देवों के साथ संबंध जोड़ना। ये किसी गुरु के दिये होने चाहियें जो साथ-ही-साथ उनमें चरितार्थता की शक्ति भी भर सकें। ये ऐसे लोगों के लिये ही उपयोगी होते हैं जो तीव्र योग करना चाहते हैं और दिन में पांच छः घंटे योग-साधना में लगाना चाहते हैं।

जिस तरह के जप की तुम बात कर रहे हो उसका प्रभाव तामसिक मंदता पैदा

करने के सिवा कुछ नहीं हो सकता, उसे मानसिक नीरवता समझने की भूल न करनी चाहिये।

२३ सितंबर १९६४

मधुर मां,

मैंने सुना है कि किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की है कि छह महीने में लाल बहादुर शास्त्री प्रधान-मंत्री न रहेंगे और उनका स्थान लेंगी इंदिरा गांधी, लेकिन वह भी केवल पंद्रह दिन के लिये। इसके बाद अव्यवस्था का काल आयेगा। उसके बाद एक युवक मंच पर आयेगा जिसका मार्ग-दर्शन महान् आध्यात्मिक शक्तिवाली एक नारी करेगी। इसके बारे में आपकी क्या राय है?

लोग, विशेषकर ज्योतिषी कितनी सारी बातें कहते रहते हैं!

हमें बस प्रतीक्षा करनी चाहिये; हम निश्चय ही देख पायेंगे कि क्या होता है।

३० सितंबर १९६४

मधुर मां,

क्या किसी भूल या गलत क्रिया को क्षमा किया जा सकता है यदि हमें यह विश्वास हो कि हम जो कर रहे हैं वह ठीक है और हम सच्चे और निष्कपट हैं? हम कैसे जान सकते हैं कि हमने भूल की है?

भूल करने का तथ्य ही इस बात को प्रमाणित करता है कि तुम सत्ता के किसी भाग में सच्चे और निष्कपट नहीं हो। चैत्य सत्ता **जानती** है और कभी भूल नहीं करती; परंतु बहुधा हम उसकी बात पर कान नहीं देते क्योंकि वह उग्रता या तीव्रता के बिना बोलती है, वह हमारे हृदय की गहराई में एक मरमर होती है जिसे अनसुना कर देना बहुत आसान है।

फिर भी, ऐसा होता है कि तुम **अज्ञान के कारण** गलत काम करते हो, लेकिन जैसे ही अज्ञान का स्थान ज्ञान ले लेता है तो यह भूल-भ्रांति मिट जाती है और काम का तरीका भी एकदम बदल जाता है। अपने अज्ञान में मनुष्य जिसे 'क्षमा' कहता है वह की हुई भूल-भ्रांतियों को मिटा देना या समाप्त कर देना है।

७ अक्तूबर १९६४

मधुर मां,

ऐसे क्षण आते हैं जब मेरी इच्छा न होते हुए भी ईर्ष्या का एक काला

बादल आता है और मेरे काम के समय में मेरी क्रियाओं को अस्तव्यस्त कर देता है। मैं उसे तुरंत तर्क द्वारा हटा देता हूं, फिर भी उसका प्रभाव बना रहता है और वह मुझे उदास और सुक्षोभ्य बना जाता है। इससे कैसे पिंड छुड़ाया जाये ?

अपनी चेतना को विस्तृत करके, उसे वैश्व बनाकर।

एक और तरीका भी है लेकिन वह और भी अधिक कठिन है—परम ऐक्य को उपलब्ध करके।

१४ अक्तूबर १९६४

मधुर मां,

लोग प्रायः यह पूछते हैं, 'तुम समाज के लिये या पांडिचेरी के लोगों के लिये क्या कर रहे हो ? तुम अपने ही समुदाय, अपनी ही प्रगति में व्यस्त रहते हो। तुम्हारे लिये आश्रम के बाहर कुछ है ही नहीं।' क्या यह एक तरह का एकाकीपन, अहंकार का एक रूप नहीं है ?

इस तरह के मूर्खताभरे प्रश्न के उत्तर में श्रीअरविंद प्रायः कहा करते थे :

''सबसे बड़ा अहंकारी है परम प्रभु क्योंकि वह कभी अपने-आपको छोड़कर और किसी की चिंता नहीं करता !''

२७ अक्तूबर १९६४

मधुर मां,

ध्यान के समय कुछ ऐसे क्षण आते हैं जब मुझे लगता है कि मेरे अंदर कोई चीज ऊंची उड़कर पूर्ण स्वाधीनता का मजा लेना चाहती है। मेरी आत्मा में एक तरह का उत्साह होता है (मुझे पता नहीं कि यह आत्मा से आता है या नहीं) जो परम आनंद का रस लेना और वर्तमान जीवन को—जैसा वह है—भूल जाना चाहता है। इस सब का अर्थ क्या है ?

तुम्हारे जीवन में अनगिनत और प्रायः ऐसे क्षण आते हैं जब तुम भौतिक जीवन से आसक्त होते हो और तुम केवल उसीको समझते और सराहते हो। ये क्षण उन्हींके स्वाभाविक तथा अनिवार्य पूरक हैं। अनुभव में दोनों छोर एक-दूसरे के बाद आते रहते हैं जबतक कि तुम समग्र और समन्वयात्मक सत्य का संतुलन न पा लो।

केवल वही चीज तुम्हें सच्ची स्वाधीनता दे सकती है जिसका अनुभव सभी परिस्थितियों में होता है।

२८ अक्तूबर १९६४

मधुर मां,

यद्यपि सत्ता का एक भाग अभीप्सा करता और भगवान् को चाहता है, दूसरा भाग बहुत तामसिक और भारी है! उसे कैसे जगाया जा सकता है? उसे कौन-से प्रहारों की जरूरत है? क्या यह भाग भगवान् के विरुद्ध नहीं है—ऐसा लगता है कि इसे उनमें कोई रस नहीं है, (जो शायद और भी ज्यादा खराब है)।

यह वास्तव में पूर्ण जड़ता का संकेत है। श्रीअरविंद ने लिखा है, 'अगर तुम भगवान् से प्रेम नहीं कर सकते तो कम-से-कम उनसे लड़ने का ही कोई तरीका निकाल लो ताकि वे तुम्हारे शत्रु बन जायें।' (इसमें यह बात तो आ ही गयी कि वे तुम्हें निश्चित रूप से जीत लेंगे) । यह एक विनोदपूर्ण टिप्पणी है, लेकिन इसका मतलब यह है कि सभी परिस्थितियों में जड़ता सबसे बुरी है।

अभीप्सा एकमात्र उपचार है—एक ऐसी अभीप्सा जो शुद्ध ज्वाला की तरह सदा ऊपर उठती है और सत्ता की सभी अशुद्धियों को जला डालती है।

४ नवंबर १९६४

मधुर मां,

हम बहुत-से लोगों को आश्रम छोड़कर जाते हुए देखते हैं, या तो कोई काम-धंधा ढूंढ़ने के लिये या आगे पढ़ने के लिये, उनमें अधिकतर वे हैं जो बचपन से यहां रहे हैं। हमारे युवकों में एक प्रकार की अनिश्चितता है। जब वे दूसरों को आश्रम छोड़कर जाते हुए देखते हैं तो सावधानी के साथ कहते हैं, "कौन जाने अगली बारी मेरी ही न हो!" मुझे लगता है कि इस सबके पीछे कोई शक्ति है। वह क्या है?

यह अनिश्चितता और इस तरह जाना निम्नतर प्रकृति के कारण है जो योग-शक्ति के

' सूत्र सं० ४१९ "अगर तुम भगवान् से प्रेम नहीं करवा सकते तो कम-से-कम उन्हें अपने साथ लड़ने के लिये तैयार करो। अगर वे तुम्हें प्रेमी का आलिंगन न दें तो उन्हें पहलवान का आलिंगन देने के लिये बाधित करो।"

प्रभाव का प्रतिरोध करती है और भागवत क्रिया को धीमा करने की कोशिश करती है, किसी दुर्भावना के कारण नहीं बल्कि इसलिये कि लक्ष्य तक पहुंचने की जल्दी में कोई चीज भूली न जाये, किसी की अवहेलना न हो। पूर्ण उत्सर्ग के लिये बहुत कम लोग तैयार होते हैं। बहुत से बच्चे जो यहां के पढ़े हैं उन्हें भागवत कार्य के लिये तैयार होने से पहले जीवन के साथ टक्कर लेने की जरूरत है, और इसीलिये वे आश्रम छोड़कर चले जाते हैं ताकि सामान्य जीवन की परीक्षा में से गुजर सकें।

११ नवंबर १९६४

मधुर मां,

मेरे अंदर अपने-आपको दोष देने और सभी गलत-फहमियों के लिये अपने-आपको जिम्मेदार ठहराने की आदत है। यह कोई गुण होने की जगह दुर्बलता है, क्योंकि मुझे लगता है कि मामले को जितनी जल्दी हो सके समाप्त करने के लिये मैं उन्हें अपने ऊपर ले लेता हूं—यह एक तरह का पलायनवाद है।

मां, मुझे यह भी लगता है कि मेरे अंदर प्रबल हीनता-ग्रंथि है।

यह सब कहां से आता है और मैं इससे कैसे पिंड छुड़ा सकता हूं?

यह सब तुम्हारे अहंकार से आता है जो अपने ही साथ बहुत ज्यादा व्यस्त रहता है और किसी और चीज के बारे में (उदाहरण के लिये भगवान् के बारे में) सोचने और अपने-आपको भूल जाने की जगह अपने-आपको दोष देना और अपनी आलोचना करना ज्यादा पसंद करता है।

१८ नवंबर १९६४

मधुर मां,

एक स्मारक अवसर होने के अतिरिक्त हमारे जन्मदिन का क्या मतलब होता है? हम इस अवसर का लाभ कैसे उठा सकते हैं?

वैश्व शक्तियों की लय के कारण यह माना जाता है कि व्यक्ति में हर वर्ष उस दिन एक विशेष ग्रहणशीलता होती है।

अतः वह अपने पूर्ण विकास के मार्ग पर शुभ निश्चय और नयी प्रगति करके इस ग्रहणशीलता का लाभ उठा सकता है।

२५ नवंबर १९६४

मधुर मां,

बहुत बार जब मैं श्रीअरविंद के ग्रंथ पढ़ता या उनके वचन सुनता हूं तो मुझे आश्चर्य होता है कि यह शाश्वत सत्य, अभिव्यंजना की यह सुंदरता लोगों की पकड़ से कैसे निकल जाती है ! यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि उन्हें अभीतक कम-से-कम परम सर्जक, शुद्ध कलाकार, अत्युत्कृष्ट कवि के रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया जाता ! इसलिये मैं अपने-आपसे कहता हूं कि मेरी परख, मेरे मूल्यांकन प्रभु के प्रति अपनी भक्ति से प्रभावित हैं—और हर एक उनका भक्त नहीं है। मुझे नहीं लगता कि यह बात सच्ची है। लेकिन तब लोगों के हृदय अभीतक उनके वचनों से मंत्र-मुग्ध क्यों नहीं हुए ?

श्रीअरविंद को कौन समझ सकता है ? वे इतने विशाल हैं जितना यह विश्व और उनकी शिक्षा असीम है . . .

उनके जरा निकट आने का तरीका है उनके साथ सचाई से प्यार करना और अपने-आपको निःसंकोच भाव से उनके काम के अर्पण करना। इस भांति हर एक अपना अच्छे-से-अच्छा करता है और श्रीअरविंद ने जगत् के जिस रूपांतर की भविष्यवाणी की है उसके लिये भरसक योगदान देता है।

२ दिसंबर १९६४

मधुर मां,

हम अपने मन को सब विचारों से कैसे खाली कर सकते हैं ? जब हम ध्यान में इसके लिये प्रयास करते हैं तो हमेशा यह ख्याल बना रहता है कि हमें कुछ नहीं सोचना चाहिये।

तुम्हें ध्यान के समय चुप रहना नहीं सीखना चाहिये, क्योंकि प्रयास का प्रयत्न अपने-आप शोर मचाता है।

तुम्हें अपनी ऊर्जाओं को हृदय में केंद्रित करना सीखना चाहिये। जब उसमें सफलता मिल जाये तो नीरवता अपने-आप आ जाती है।

९ दिसंबर १९६४

मधुर मां,

श्रीअरविंद ने कहीं पर कहा है कि अगर हम भागवत कृपा के आगे समर्पण कर दें तो वह हमारे लिये सब कुछ कर देगी। तब फिर तपस्या का क्या मूल्य रह गया ?

अगर तुम जानना चाहो कि अमुक विषय पर श्रीअरविंद ने क्या कहा है तो तुम्हें, श्रीअरविंद ने उस विषय पर जो कुछ लिखा है, वह सब पढ़ना चाहिये। तब तुम देखोगे कि ऐसा लगता है कि उन्होंने पूरी तरह से परस्पर-विरोधी बातें कही हैं; लेकिन सब कुछ पढ़ लेने और थोड़ा-बहुत समझ लेने के बाद तुम देखते हो कि सभी विरोध आपस में एक-दूसरे के पूरक हैं और पूर्ण समन्वय में संगठित और संयुक्त हैं।

यह रहा श्रीअरविंद का एक और उद्धरण जो तुम्हें बतलायेगा कि तुम्हारा प्रश्न अज्ञान-भरा है। और भी बहुत-से हैं जिन्हें तुम लाभदायक रूप से पढ़ सकते हो और जो तुम्हारी बुद्धि को अधिक नमनीय बना देंगे :

"अगर पूर्ण समर्पण न हो तो बिल्ली के बच्चे की वृत्ति अपनाना असंभव है—उसकी जगह वह ऐसी तामसिक निष्क्रियता बन जाती है जो अपने-आपको समर्पण कहती है। अगर शुरू में पूर्ण समर्पण संभव न हो तो इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तिगत प्रयास जरूरी है।"[1]

१६ दिसंबर १९६४

मधुर मां,

प्रायः लंबे ध्यान के बाद (ध्यान करने के प्रयास के बाद), मैं बहुत ज्यादा थका हुआ अनुभव करता हूं और आराम करना चाहता हूं। यह क्यों है और इससे भिन्न कैसे हो सकता है?

जबतक तुम प्रयास करते हो, तबतक ध्यान नहीं होता और इस स्थिति को लंबा करने का बहुत उपयोग नहीं है।

मानसिक नीरवता प्राप्त करने के लिये तुम्हें शिथिल होना सीखना होगा, अपने-आपको वैश्व शक्ति की लहरों पर तैरने दो जैसे लकड़ी का तख्ता पानी पर तैरता है—**गतिहीन** परंतु **शिथिल**।

प्रयास कभी नीरव नहीं होता।

२३ दिसंबर १९६४

मधुर मां,

हमें आश्रम में रहने का जो अद्वितीय सौभाग्य प्राप्त है उसके हर क्षण का हम कैसे उपयोग कर सकते हैं?

यह कभी न भूलो कि तुम कहां हो।

[1] श्रीअरविंद के पत्रों से।

यह कभी न भूलो कि तुम कहां रह रहे हो और यहां जीवन का सच्चा लक्ष्य क्या है। इसे हर क्षण, हर परिस्थिति में याद रखो। इस तरह तुम अपने जीवन का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करोगे।

१९६५ के लिये शुभ नव वर्ष।

३० दिसंबर १९६४

मधुर मां,

पुरुष का स्त्री के लिये और स्त्री का पुरुष के लिये आकर्षण और सहानुभूति के पीछे क्या शाश्वत सत्य है?

पुरुष और प्रकृति का संबंध।

तुम वह पढ़ देखो जो श्रीअरविंद ने इस विषय पर लिखा है।

५ जनवरी १९६५

मधुर मां,

आपने इस वर्ष के नये वर्ष के संदेश में लिखा है, 'सत्य के आगमन को नमस्कार।' तो क्या वह बहुत नजदीक है? हमें १९६५ में क्या करना चाहिये ताकि हम उसे पहचानने और उसका स्वागत करने के लिये तैयार हो सकें?

करने लायक सबसे अच्छी चीज यह है कि अपने अंदर अपनी सभी गतिविधियों के मूल को पहचानो—वे जो सत्य के प्रकाश से आती हैं और वे जो पुरानी जड़ता और मिथ्यात्व से आती हैं—ताकि तुम पहली को स्वीकार और दूसरी को अस्वीकार या उनका त्याग कर सको।

अभ्यास के साथ तुम इनमें अधिकाधिक स्पष्टता के साथ फर्क करने लगते हो, किंतु यह सामान्य नियम बना सकते हो कि वह सब जो असामंजस्य, अव्यवस्था और जड़ता की ओर प्रवृत्त होता है वह मिथ्यात्व से आता है और जो कुछ ऐक्य, सामंजस्य, व्यवस्था और चेतना की ओर प्रवृत्त होता है वह सत्य से आता है।

यह केवल एक इशारा है कि इस मार्ग पर पहला कदम कैसे उठाया जाये, उससे ज्यादा कुछ नहीं।

१३ जनवरी १९६५

मधुर मां,

क्या आपका इस वर्ष का संदेश सत्य युग की घोषणा करता है—जिसे प्राचीन ग्रंथों (महाभारत) में "सत्य युग" कहा गया है ?

निश्चय ही पृथ्वी के रूपांतरित होने से पहले सत्य का युग अवश्य आयेगा।

२१ जनवरी १९६५

मधुर मां,

आश्रम पर इस असाधारण आसुरी आक्रमण[1] का क्या अर्थ है ? क्या उसके लिये हमारा दायित्व है क्योंकि हमारे अंदर दोष हैं और हम अपने दैनिक जीवन में परम सत्य की आज्ञा नहीं मानते ?

निश्चय ही इस तरह की चीज इसी कारण संभव हुई कि आश्रम का वातावरण इतना शुद्ध नहीं है कि मिथ्यात्व के लिये अभेद्य हो सके।

१७ फरवरी १९६५

मधुर मां

किसीने मुझसे यह प्रश्न पूछा है कि क्या यह मानव-समाज के लिये बहुत बड़ी हानि नहीं है कि मानवजाति की सेवा करने की विशेष क्षमतावाले लोग, जैसे प्रतिभाशील डॉक्टर या बैरिस्टर अपनी मुक्ति के लिये यहां आकर आश्रम में बस जाते हैं ? शायद वे मनुष्यों और जगत् की सेवा द्वारा भगवान् की अधिक अच्छी तरह से सेवा कर पाते !

यहां कोई भी **अपनी मुक्ति** के लिये नहीं आता क्योंकि श्रीअरविंद **मुक्ति** पर विश्वास नहीं करते। हमारे लिये **मुक्ति** एक निरर्थक शब्द है। हम यहां पृथ्वी और मनुष्यों के रूपांतर की तैयारी के लिये हैं ताकि नयी सृष्टि आ सके, और अगर हम प्रगति के लिये व्यक्तिगत प्रयास करते हैं तो इसलिये कि यह प्रगति कार्य की उपलब्धि के लिये अनिवार्य है।

मुझे आश्चर्य है कि इतने वर्ष आश्रम में रह चुकने के बाद भी तुम इस तरह सोच सकते हो और चंडूखाने की गप्पों के लिये खुले हुए हो।

[1] ११ फरवरी की शाम को आश्रम के बहुत से मकानों पर पथराव हुआ, कुछ जलाये और कुछ लूटे गये—बहाना था हिंदी-विरोधी आंदोलन।

मैं तुम्हें श्रीअरविंद का एक उद्धरण भेज रही हूं जो शायद तुम्हारे विचार को आलोकित करने में सहायक हो।

''यह समान रूप से अज्ञानपूर्ण और मेरी शिक्षा से एक हजार मील दूर है कि तुम उसे मनुष्यों के साथ तुम्हारे संबंध में पाओ या मानव चरित्र की उदात्तता में, या किसी विचार में पाओ कि हम यहां पर मानसिक, नैतिक और सामाजिक सत्य तथा न्याय को मानव और अहंकारमय रेखाओं पर स्थापित करने के लिये हैं। मैंने ऐसी कोई चीज करने का कभी वचन नहीं दिया। मानव प्रकृति अपूर्णताओं से बनी हुई है, यहांतक कि उसकी धार्मिकता और सद्‌गुण भी आत्म-प्रदर्शन, अपूर्णताएं और आत्मानुमोदक अहं की उछल-कूद हैं . . . हमारा जो लक्ष्य है वह यह है कि आध्यात्मिक सत्य ही जीवन का आधार हो, इसके प्रथम सूत्र हैं समर्पण और भगवान् के साथ ऐक्य और अहंकार का अतिक्रमण। जबतक यह आधार स्थापित न हो जाये तबतक साधक केवल निम्नतर प्रकृति के दोषों के साथ संघर्षरत एक अज्ञानी, अपूर्ण, मनुष्य रहता है . . . आध्यात्मिक प्रगति जिसकी रचना करती है वह है आंतरिक सत्ता में आंतरिक निकटता और घनिष्ठता, माताजी के प्रेम और उनकी उपस्थिति का बोध आदि।''

२४ फरवरी १९६५

मधुर मां,

मनुष्य और भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीका क्या है ?

तुम मनुष्य और भगवान् को एक साथ क्यों रखते हो ?

यह सच है कि मनुष्य तत्त्वतः दिव्य है, लेकिन वर्तमान अवस्था में कुछ विरल अपवादों को छोड़कर मनुष्य उस भगवान् के बारे में एकदम निश्चेतन होता है, जिसे वह अपने अंदर लिये रहता है; और यही निश्चेतना जड़ जगत् के मिथ्यात्व का निर्माण करती है।

मैं तुम्हें पहले ही लिख चुकी हूं कि हमारी कृतज्ञता भगवान् के प्रति जानी चाहिये, रही बात मनुष्यों की तो वहां जिसकी जरूरत है वह है सद्‌भावना, समझ और परस्पर सहायता की वृत्ति।

सुखी और शांत होने का सबसे अच्छा उपाय है भगवान् के प्रति गहराई में, तीव्रता के साथ सतत कृतज्ञता का अनुभव करना।

और भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीका है उनके साथ तदात्म हो जाना।

३ मार्च १९६५

मधुर मां,

हम निश्चय के साथ कब कह सकते हैं कि हमने श्रीअरविंद का योग शुरू कर दिया है? उसका निश्चित चिह्न क्या है?

यह कहना असंभव है क्योंकि हर व्यक्ति के लिये वह अलग-अलग होता है। यह इसपर निर्भर है कि तुम्हारी सत्ता का कौन-सा भाग श्रीअरविंद के प्रभाव के प्रति पहले खुलता और प्रत्युत्तर देता है।

और कोई भी दूसरे के बारे में नहीं कह सकता।

१० मार्च १९६५

मधुर मां,

मैं अभीप्सा करता हूं कि मैं श्रीअरविंद के योग—दिव्य जीवन—को जी सकूं; लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मैं एक अछूते जंगल में हूं और दिशा-ज्ञान भूल गया हूं। सचमुच मैं कहां हूं?

मैं कोई संकेत चाहता हूं, इसमें से बाहर निकलकर सही मार्ग पर चलने का रास्ता, वह रास्ता जो भगवान् की ओर ले जाता है।

सामान्यतः आरंभ-बिंदु कोई अनुभूति होनी चाहिये, वह चाहे कितनी भी छोटी क्यों न हो, जो मार्ग पर दिक्सूचक का काम दे सके, एक ऐसी अनुभूति जिसकी ओर तुम इसलिये देखते रहते हो कि तुम कहीं भटक न जाओ और तबतक देखते हो जबतक एक अधिक महत्त्वपूर्ण और निर्णायक अनुभूति तक न जा पहुंचो।

मार्ग पर सच्चे सीमा-चिह्न तो सहज अनुभूतियां हैं, वे नहीं जो मानसिक रूपायणों से आती हैं और हमेशा अविश्वसनीय होती हैं।

पहले अनुभूति होनी चाहिये और उसकी व्याख्या पीछे। इसलिये श्रीअरविंद ने कहा है, 'अपनी अनुभूतियों पर कभी अविश्वास न करो, लेकिन तुम अपनी व्याख्याओं पर अविश्वास कर सकते हो, जो मानसिक क्रिया होती हैं।'[1]

अपनी अनुभूतियों पर ध्यान देना और उन्हें याद रखना बहुत जरूरी है। विकास की पद्धति की रचना गौण होती है और कभी-कभी हानिकर भी।

१७ मार्च १९६५

[1] "शास्त्र के सत्य को अपनी अंतरात्मा में अनुभव करो, बाद में चाहो तो तर्क करके तुम अपनी अनुभूति का बौद्धिक रूप से निरूपण कर सकते हो, फिर भी, अपने वक्तव्य पर अविश्वास करो; लेकिन अनुभूति पर कभी अविश्वास न करो।" (सूत्र ९६)

मधुर मां,

हम अनुभूति और स्वप्न में कैसे फर्क कर सकते हैं ?

सामान्य रूप में, स्वप्न एक अस्तव्यस्त और उड़ता-सा संस्कार छोड़ जाता है, जब कि अनुभूति गहरी और स्थायी भावना को जगाती है।

परंतु भेदों की छटाएं अनेक और सूक्ष्म होती हैं, और बहुत ध्यान-पूर्वक और **निष्कपट** अवलोकन द्वारा (यानी पक्षपात और पसंद-नापसंद से मुक्त) तुम धीरे-धीरे इन दोनों में भेद करना सीखते हो।

२४ मार्च १९६५

मधुर मां,

जैसे मानसिक और शारीरिक-शिक्षा के लिये विधिवत् क्रम होता है, क्या श्रीअरविंद के योग की ओर प्रगति करने की इसी तरह की कोई विधि नहीं है ? वह व्यक्ति व्यक्ति के लिये अलग होगी। क्या आप मेरे लिये एक-एक कदम का कार्य-क्रम नहीं बना सकतीं जिसका मैं रोज अनुसरण करूं ?

शारीरिक, प्राणिक और मानसिक विकास के लिये एक बंधे हुए कार्यक्रम की यांत्रिक नियमितता जरूरी है; परंतु इस यांत्रिक कठोरता का आध्यात्मिक विकास पर नहीं के बराबर या बहुत ही कम प्रभाव होता है जिसमें संपूर्ण सचाई या निष्कपटता का सहज भाव अनिवार्य है।

श्रीअरविंद ने इस विषय में बहुत स्पष्ट रूप से लिखा है और उन्होंने जो लिखा है वह 'योग-समन्वय' में छपा भी है।

फिर भी तुम्हें ठीक मार्ग पर लाने के लिये मैं तुमसे कह सकती हूं : १. सवेरे उठकर, दिन आरंभ करने से पहले, भगवान् के प्रति दिन का उत्सर्ग करना अच्छा है, तुम जो कुछ सोचते हो, तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ करोगे उस सबका उत्सर्ग; २. और रात को सोने से पहले, ज्यादा अच्छा है कि सारे दिन पर नजर डाल लो, उन अवसरों की ओर ध्यान दो जब तुम अपना और अपनी समस्त क्रियाओं का भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना भूल गये या उसकी अवहेलना की, और यह अभीप्सा करो कि ये भूलें फिर से न होने पायें।

यह कम-से-कम है, बहुत ही छोटा-सा आरंभ—और इसे तुम्हारे समर्पण की वृद्धि के साथ बढ़ना चाहिये।

३१ मार्च १९६५

मधुर मां,

हम मन की एकाग्रता और इच्छा-शक्ति को कैसे बढ़ा सकते हैं? कुछ भी करने के लिये वे बहुत जरूरी हैं।

नियमित, अध्यवसायपूर्ण, आग्रही, अथक अभ्यास द्वारा—मेरा मतलब है, एकाग्रता और इच्छा-शक्ति के अभ्यास द्वारा।

मां, मैंने फ्रेंच पुस्तकें पढ़ना शुरू किया है, 'क' ने मुझे सूची दी है।

तुम्हारे लिये बहुत-सी फ्रेंच पढ़ना अच्छा है। यह तुम्हें लिखना सिखायेगा।

७ अप्रैल १९६५

मधुर मां,

आपने लिखा है, "सब त्यागों में अपनी अच्छी आदतों को त्यागना सबसे कठिन है।" इससे आपका ठीक-ठीक मतलब क्या है? क्या इसका भाव यह है कि अच्छी आदतें योग के लिये जरूरी नहीं हैं?

जबतक तुम आदतों के आधार पर काम करते हो तबतक **अच्छी** आदतें जरूरी हैं, लेकिन योग के परम लक्ष्य को पाने के लिये तुम्हें सभी बंधनों को छोड़ना होगा, वे चाहे जो भी क्यों न हों। और अच्छी आदतें भी बंधन हैं जिन्हें एक दिन छोड़ना होगा, यदि तुम एकमेव चरम प्रेरणा, परम प्रभु की इच्छा की आज्ञा का पालन करना चाहो और इस **योग्य हो** कि उसके सिवा किसी और की आज्ञा का पालन न करो।

१४ अप्रैल १९६५

मधुर मां,

आपने लिखा है, "जबतक तुम्हें किसी चीज को त्यागने की जरूरत है तबतक तुम इस मार्ग पर नहीं हो।" लेकिन क्या समस्त त्याग तभी शुरू नहीं होता जब हम मार्ग पर हों?

जब मैं "मार्ग पर होने" की बात कहती हूं तो उसका मतलब होता है ऐसी चेतना में होना जिसमें केवल भगवान् के साथ ऐक्य का ही मूल्य है—यह ऐक्य ही जीने लायक एकमात्र वस्तु, अभीप्सा का एकमात्र उद्देश्य है। तब और सब चीजें अपना मूल्य खो

बैठती हैं और उन्हें खोजने की जरूरत नहीं रहती, अतः उसे त्यागने का प्रश्न ही नहीं रहता, क्योंकि वह अब कामना का विषय नहीं रह जाता।

जबतक भगवान् के साथ ऐक्य ही वह **एकमात्र** चीज नहीं होती जिसके लिये तुम जीवित हो तबतक तुम मार्ग पर नहीं हो।

२१ अप्रैल १९६५

मधुर मां,

भारत, जिसका अतीत इतना समृद्ध था, जिसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में ऐसी प्रतिज्ञाएं की गयी हैं, वह वर्तमान में इतनी दुरवस्था में क्यों है? वह इस दयनीय दशा में से कब निकलेगा और फिर से अपनी महानता को कब प्रतिष्ठित करेगा?

जब वह मिथ्यात्व को त्याग कर सत्य में निवास करेगा।

२८ अप्रैल १९६५

मधुर मां,

श्रीअरविंद ने भारत के नेताओं को १९४२ में 'क्रिप्स प्रस्ताव' स्वीकार करने की सलाह क्यों दी जब कि वे भली-भांति जानते थे कि वे उसे न मानेंगे?[1]

भगवान् प्रायः मनुष्य की सलाह देने और उसका पथ-प्रदर्शन करने के लिये तैयार रहते हैं जब कि उन्हें भली-भांति मालूम होता है कि मनुष्य उस सहायता को स्वीकार न करेगा। फिर वे ऐसा क्यों करते हैं?

भगवान् **हमेशा** सूचना देते हैं, परंतु वस्तुतः यह विरल ही है कि मनुष्य उनकी बात सुने। मनुष्य या तो उनकी बात नहीं सुनते या उसपर विश्वास नहीं करते।

[1] दूसरे महायुद्ध के समय जब भारत अंग्रेजों के साथ स्वाधीनता के लिये जूझ रहा था तब अंग्रेज सरकार ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक सरकारी दल भारत भेजा था जो भारत को औपनिवेशिक अधिकार देने को तैयार था। भारतीय नेता इसके विरुद्ध थे। श्रीअरविंद ने खुले आम इसका समर्थन किया क्योंकि वे मानते थे कि यह प्रस्ताव भारत को, इंग्लैंड से संबद्ध अन्य उपनिवेशों के साथ खड़ा करके उसे तात्त्विक स्वाधीनता देता है। उन्होंने एक विशेष संदेश-वाहक दिल्ली भेजकर नेताओं को यह सलाह दी कि क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार कर लें, इसीमें भारत का हित है। लेकिन नेताओं ने एक न सुनी। अगर वे मान गये होते तो शायद भारत-विभाजन और उसके बाद के उपद्रवों तक नौबत न आती।

मनुष्य हमेशा शिकायत करते हैं कि उन्हें सहायता नहीं मिलती लेकिन सच्ची बात तो यह है कि वे उस सहायता को अस्वीकार कर देते हैं जो **हमेशा** उनके साथ होती है।

५ मई १९६५

मधुर मां,

आपने कहा है कि ''नूतन उपलब्धि में भाग लेने की आशा करने के लिये'' तुम्हें अनुभव करना चाहिये कि ''यह जगत् कुरूप, मूर्ख, पाशविक है और असह्य दुःख से भरा है।'' लेकिन उस व्यक्ति की क्या स्थिति होगी जो अनुभव करता है कि यहां हर चीज हितैषी भगवान् की लीला है? क्या वह भी इस नूतन उपलब्धि में भाग न लेगा?

मन के परे, चेतना की गहराइयों में, मनुष्य पूरी सचाई के साथ यह अनुभव कर सकता है कि सब कुछ भगवान् है और केवल भगवान् का ही अस्तित्व है। लेकिन अभिव्यक्ति क्रमिक है, और जिस चीज को लुप्त हो जाना चाहिये उसे अस्वीकार करते हुए, आगे बढ़ने की शक्ति पाने के लिये तुम्हें बड़े जोर से भागवत पूर्णता को अभिव्यक्त करने के लिये अपनी अयोग्यता और असामर्थ्य का अनुभव करना चाहिये।

चेतना की ये दो स्थितियां युगपत् और पूरक होनी चाहियें, उत्तरोत्तर या परस्पर-विरोधी नहीं और यह भी तभी संभव है जब चेतना का आसन मन और उसकी सीमाओं के परे हो।

१२ मई १९६५

मधुर मां,

जब विभागाध्यक्ष या हमसे बड़े लोग भूलें करते या अपने अधीनस्थों के प्रति अन्याय करते हैं तो उन लोगों की क्या मनोवृत्ति होनी चाहिये जिनपर इन भूलों का प्रभाव पड़ता है? क्या हमें चुप रहना और कहना चाहिये, ''यह मेरा मामला नहीं है'', या उनकी भूलों की ओर इशारा करना चाहिये?

दोनों में से एक भी नहीं।

सबसे पहले और सदा ही हमें अपने-आपसे पूछना चाहिये कि हमारा मूल्यांकन या निर्णय करने का साधन क्या है। तुम्हें पूछना चाहिये, ''मेरा मूल्यांकन किस पर

आधारित है ? क्या मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त है ? मेरे अंदर कौन निर्णय कर रहा है ? क्या मेरे अंदर भागवत चेतना है ? क्या मैं इस मामले में पूरी तरह अनासक्त हूं ? क्या मैं समस्त कामना और समस्त अहंकार से मुक्त हूं ?''

और चूंकि इन प्रश्नों का एक ही उत्तर होगा, ''नहीं,'' अतः ईमानदार और सच्चा निष्कर्ष होना चाहिये, ''मैं निर्णय नहीं कर सकता, मेरे अंदर सच्चा निर्णय करने के तत्त्व नहीं हैं; अतः मैं निर्णय नहीं करूंगा, मैं चुप रहूंगा।''

१९ मई १९६५

मधुर मां,

सत्य-चेतना से दूर होने के कारण क्या हमें हमेशा चुप रहना चाहिये, चाहे व्यक्ति के नाते हमें फैसले करने और मत देने के लिये बाधित होना पड़े ?

व्यक्तित्व किससे बनता है ?

व्यक्तित्व एक सचेतन सत्ता है जो दिव्य केंद्र के चारों ओर संगठित होता है। मूलतः सभी भागवत केंद्र एक हैं परंतु अभिव्यक्ति में वे अलग-अलग सत्ताओं के रूप में व्यवहार करते हैं।

जीने के लिये व्यक्ति को फैसले करने पड़ते हैं, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है कि उसके मत हों, और यह और भी कम कि वह उनका ढिंढोरा पीटता फिरे।

अज्ञान के ही मत होते हैं।

ज्ञान जानता है।

२६ मई १९६५

मधुर मां,

आपने अतिमानस के जिस अवतरण की घोषणा २९ फरवरी १९५६ में की है वह अभीतक यहां, हममें से अधिकतर के लिये केवल ''कोई सुनी हुई चीज'' है।

हम प्रकृति के इस परम और आमूल परिवर्तन को कब देखेंगे और कब इसका अनुभव करेंगे जिसके बारे में आपने भविष्यवाणी की है ?

अतिमानसिक शक्तियों के अग्रदूतों का अवतरण (भविष्यवाणी नहीं) **तथ्य** है। मानवजाति की विशाल बहुसंख्या की इस बारे में सचेतन होने में असमर्थता एक ऐसा **तथ्य** है जो किसी भी तरह भौतिक जगत् में इन शक्तियों और सामर्थ्यों के अवतरण के तथ्य पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं डाल सकता।

समस्त प्रकृति का 'परम और आमूल' परिवर्तन लंबी, धीमी तैयारी के बाद ही आ सकता है, और मनुष्य उसे तभी देखेंगे जब उनकी चेतना प्रबुद्ध हो जायेगी।

२ जून १९६५

मधुर मां,

मैं जो प्रतिज्ञाएं करता हूं वे अपनी तीव्रता और उत्साह कुछ ही समय बाद खो बैठती हैं। मैं इस उत्साह को कैसे बनाये रख सकता और अधिकाधिक बढ़ा सकता हूं?

उसे चाहने से।

९ जून १९६५

मधुर मां,

आपने लिखा है कि जो शक्ति अज्ञान में आत्मसात् होकर प्राणिक कामना का रूप धारण कर लेती है वही अपने शुद्ध रूप में रूपांतर की ओर क्रियाशील शक्ति बनती है।

क्या यह अभीप्सा की क्रियाशील शक्ति है? अगर ऐसा है तो क्या हम कह सकते हैं कि अभीप्सा शुद्धीकृत कामना है?

तुम जो मरजी कह सकते हो बशर्ते कि तुम जानो कि तुम किस विषय में बात कर रहे हो।

शब्दों का बहुत महत्त्व नहीं है; मूल्य है अनुभूति और अनुभूति की सच्चाई का।

२३ जून १९६५

मधुर मां,

आप अपने 'वार्तालाप' में कहती हैं कि हमें सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति पाने के लिये डुबकी लगानी चाहिये। क्या उसे केवल अभीप्सा द्वारा पाना संभव है या कोई और विधि या अनुशासन भी अपनाना जरूरी है?

सब कुछ संभव है। यदि सातत्य और निष्कपट सचाई के साथ अनुसरण किया जाये तो सभी मार्ग लक्ष्य तक ले जाते हैं।

हर एक के लिये यही अच्छा है कि वह अपना मार्ग खोजे, लेकिन इसके लिये अभीप्सा उत्साहपूर्ण, संकल्प निष्कंप और धैर्य अचूक होने चाहियें।

३० जून १९६५

मधुर मां,

क्या रोग और दुर्घटनाएं हमारे किसी बुरे विचार या बुरे कर्म का, हमारी चेतना के पतन का फल होते हैं ? अगर इसका कारण हमारी कोई भूल हो तो हम उसे कैसे जान सकते हैं ?

इसका दंड के साथ कोई संबंध नहीं होता; यह किसी भूल-भ्रांति, त्रुटि, या दोष का सामान्य और स्वाभाविक परिणाम होता है जिसके अपने अनिवार्य परिणाम होते हैं। वास्तव में जगत् में हर चीज संतुलन और असंतुलन, सामंजस्य और अव्यवस्था का प्रश्न होती है। सामंजस्य के स्पंदन सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को निमंत्रण देते और प्रोत्साहित करते हैं; असंतुलन के स्पंदन परिस्थितियों में असंतुलन (रोग, दुर्घटना आदि) पैदा करते हैं। यह व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामुदायिक भी, लेकिन सिद्धांत एक ही है और उपचार भी एक : अपने अंदर भागवत इच्छा के प्रति अबाध रूप में समर्पण द्वारा व्यवस्था, शांति और संतुलन बढ़ाते चलो।

७ जुलाई १९६५

मधुर मां,

श्रीअरविंद कहते हैं, "अगर शरीर का रूपांतर पूर्ण हो तो उसका अर्थ होगा मृत्यु की अधीनता में न रहना . . . तुम जब बदलना चाहो तब अपने लिये एक नये शरीर का सृजन कर लेते हो . . ."

मां, जब वे कहते हैं, 'जब तुम बदलना चाहो तब अपने लिये एक नये शरीर का सृजन कर लेते हो', तो इसका मतलब क्या है ? यह परिवर्तन इसी शरीर में होता है या यह शरीर छोड़ना पड़ता है ? अगर शरीर छोड़ना पड़े तो इसका अर्थ हुआ मृत्यु। तो . . . ?

उनके कहने का मतलब यह है कि जब तुम्हारे अंदर भौतिक शरीर को मृत्यु के प्रभाव में से खींच लेने की शक्ति होगी तो रूपांतर की ऐसी शक्ति होगी कि इच्छानुसार तुम उस शरीर के रूप को भी बदल सकोगे।

१४ जुलाई १९६५

मधुर मां,

"शरीर के रूप को इच्छानुसार बदलने" से आपका क्या मतलब है ? उदाहरण के लिये, क्या सौ वर्ष का बूढ़ा अपने शरीर को पच्चीस वर्ष के युवक जैसा बना सकेगा ?

जिनका अतिमानसिक शरीर होगा वे वृद्धावस्था के नियम के अधीन न होंगे, अतः उनके लिये उम्र का सवाल ही न उठेगा।

२१ जुलाई १९६५

मधुर मां,

एक बार आपने बुधवार की कक्षा में कहा था कि दर्द का अनुभव न करने के लिये, हम यूं कह सकते हैं कि, हमें उस स्नायु को काट देना चाहिये जो इस संवेदन का मस्तिष्क तक वहन करती है। यह कैसे किया जा सकता है?

मैंने 'स्नायु काटने के लिये' नहीं कहा था—यह तो शल्यक्रिया हो जायेगी! मैंने कहा था, मस्तिष्क के साथ सचेतन संपर्क को काट दो।

यह एक गुह्य शल्यक्रिया है। निश्चय ही जो इसे करना नहीं जानते उनके लिये यह अन्य क्रिया से अधिक कठिन है पर है कम खतरनाक।

२८ जुलाई १९६५

मधुर मां,

क्या पृथ्वी पर आनेवाले हर आदमी का एक निश्चित लक्ष्य होता है जिसे उसे इस जीवन में प्राप्त करना ही चाहिये और जिसे वह अपने बावजूद असचेतन रूप से प्राप्त करता है?

हां।

११ अगस्त १९६५

मधुर मां,

जो लोग पहली बार आश्रम आते हैं वे प्रायः बहुत खुश होते हैं और हमारी संस्था के कुशल प्रबंध के लिये अहोभाव से भर जाते हैं, लेकिन जब वे आश्रम और इसके साधकों को ज्यादा अच्छी तरह जान पाते हैं तो उनका अहोभाव कम होने लगता है और उन्हें लगता है कि आश्रम के लोग बाहरवालों से अधिक अहंकार-भरे, अधिक घमंडी, सहानुभूतिहीन, सहयोग में असमर्थ होते हैं, आदि, आदि। मां, इस सबके बारे में आप क्या कहती हैं?

वस्तुतः, कभी-कभी ऐसा होता है और कभी इसके विपरीत; पहले कुछ समझ में नहीं

आता लेकिन बाद में थोड़ा-थोड़ा करके आदमी समझने और सराहने लगता है।

दोनों बातें समान रूप से सच्ची और समान रूप से अपूर्ण हैं।

जगत् में, जैसा कि वह अभी है, हर चीज मिली-जुली है और हर एक वही देखता और अनुभव करता है जो उसकी प्रकृति के साथ मेल खाता है।

सच्ची बात तो यह है कि **इसका कोई भी, कुछ भी मूल्य नहीं है**।

२५ अगस्त १९६५

मधुर मां,

सचमुच मुझे लगता है कि यहां हमारे और हमारे विभिन्न विभागों के बीच सामंजस्य का बहुत अभाव है और इसका परिणाम है धन और ऊर्जा का बहुत अधिक अपव्यय। यह असामंजस्य आता कहां से है और यह कब ठीक होगा?

या मेरा यह भाव मेरी अपनी प्रकृति का प्रतिबिंब है!

यह रहा तुम्हारे प्रश्न का सबसे अच्छा उत्तर और यह श्रीअरविंद का लिखा हुआ है :

हर एक अपने अंदर इस असामंजस्य के बीज लिये रहता है और उसका सबसे अधिक जरूरी काम है अपने-आपको सतत अभीप्सा द्वारा उससे शुद्ध करना।

१ सितंबर १९६५

मधुर मां,

श्रीअरविंद अपनी पुस्तक 'गीता-प्रबंध' में कहते हैं, "विष्णु का विधान तबतक लागू नहीं हो सकता जबतक कि रुद्र का ऋण न चुका दिया जाये।" इसका अर्थ क्या है?

मां, क्या भारत की वर्तमान अवस्था[1] उस ऋण की न्याई है जिसे रुद्र को चुकाना होगा?

यह रहा पूरा उद्धरण जो मैंने पहले से ही उन लोगों के लिये तैयार कर रखा था जो वर्तमान स्थिति का कारण जानना चाहें, मैं वह तुम्हें भेज रही हूं जिससे तुम्हारा प्रश्न अनावश्यक हो जाता है।

"सच्ची शांति तबतक नहीं हो सकती जबतक मनुष्य का हृदय शांति का अधिकारी न हो; विष्णु का विधान तबतक लागू नहीं हो सकता जबतक रुद्र का ऋण

[1] १ सितंबर को पाकिस्तान ने भारत की जम्मू-कश्मीर सीमा पर हमला बोला था।

न चुका दिया जाये। एक ओर मुड़ जाना और अभीतक अविकसित मानवजाति को प्रेम और ऐक्य का विधान सिखाना ? प्रेम और ऐक्य के विधान के शिक्षक तो होने ही चाहियें क्योंकि इसी मार्ग से अंतिम उद्धार आ सकता है। लेकिन जबतक मनुष्य के अंदर काल-पुरुष तैयार न हो जाये, तबतक आंतरिक और चरम वास्तविकता बाह्य और तात्कालिक वास्तविकता पर हावी नहीं हो सकती। ईसा और बुद्ध आये और चले गये परंतु अब भी रुद्र जगत् को अपनी हथेली में लिये हुए है—और इस बीच मानवजाति का भयानक अग्रगामी श्रम अहंकारमय शक्ति से लाभ उठानेवाली शक्तियों और उनके सैंकड़ों सेवकों द्वारा पीड़ित और संतप्त होकर संघर्ष के शूरवीर की तलवार और पैगंबर के शब्द के लिये पुकारता है।"[1]—श्रीअरविंद

८ सितंबर १९६५

मधुर मां,

भारत के प्रधानमंत्री और सेनापति के नाम आपके १६ सितंबर के संदेश के बावजूद क्या हमारी सरकार द्वारा युद्ध-विराम उन परिस्थितियों में अच्छे-से-अच्छा उपाय न था ?[2]

वे और कुछ कर ही न सकते थे।

२९ सितंबर १९६५

मधुर मां,

मुझे बहुधा लगता है और वह भी ठोस रूप से कि आप सदा जीवन के दुर्भाग्यों से मेरी रक्षा करती रहती हैं। मैं बहुधा अपने-आपसे पूछता हूं, "माताजी क्यों इस तरह मेरी रक्षा करती और मुझे इतने सुख में रखती हैं, जब कि मैं तो इसका अधिकारी नहीं हूं।"

क्योंकि यह योग्यता का प्रश्न नहीं भागवत कृपा का है।

६ अक्तूबर १९६५

[1] गीता-प्रबंध से।

[2] भारत-पाक युद्ध २२ सितंबर को समाप्त किया गया था, उससे छह दिन पहले माताजी ने यह संदेश भेजा था : 'सत्य और उसकी विजय के लिये भारत युद्ध कर रहा है और उसे तबतक लड़ते जाना चाहिये जबतक भारत और पाकिस्तान एक न हो जायें क्योंकि यही उनकी सत्ता का सत्य है।''

मधुर मां,

हम देखते हैं कि आजकल सारा जगत् ही असंतुलन और अस्तव्यस्तता में है। क्या इसका मतलब यह है कि वह एक नयी शक्ति की अभिव्यक्ति की, सत्य के अवतरण की तैयारी में है या यह इस अवतरण के विरुद्ध विद्रोह करती हुई विरोधी शक्तियों का परिणाम है। और इसमें भारत का क्या स्थान है ?

एक साथ दोनों बातें हैं—तैयारी का अस्तव्यस्त तरीका। भारत को आध्यात्मिक मार्गदर्शक होना चाहिये जो यह समझाये कि क्या हो रहा है और जो इस गति को तेज कर सके। लेकिन दुर्भाग्यवश, पश्चिम का अनुकरण करने की अंधी महत्त्वाकांक्षा में वह जड़वादी बन गया है और अपनी अंतरात्मा को भूल गया है।

१३ अक्तूबर १९६५

मधुर मां,

हम जानते हैं कि हमें अमुक चीजें न करनी चाहियें और सचमुच हम उन्हें करना भी नहीं चाहते, फिर भी हम उन्हें करते हैं। ऐसा क्यों होता है और हम इससे कैसे बच सकते हैं ?

ऐसा तब होता है जब तुम्हारे अंदर इच्छा-शक्ति और चेतना की शक्ति की कमी हो।

अगर तुम अपनी अभीप्सा में सच्चे हो तो ये दोनों चीजें प्राप्त हो सकती हैं।

२० अक्तूबर १९६५

मधुर मां,

आपने व्यक्तिगत रूपांतर और सामाजिक रूपांतर के बारे में कहा है, "चूंकि वातावरण व्यक्ति पर क्रिया करता है और दूसरी ओर वातावरण का मूल्य व्यक्ति के मूल्य पर निर्भर है, इसलिये दोनों काम साथ-साथ चलने चाहियें, लेकिन यह श्रम-विभाजन के द्वारा ही हो सकता है और उसके लिये एक दल-निर्माण की, और हो सके तो श्रेणीबद्ध संगठन की जरूरत होती है।"

माताजी, मैं समझ नहीं पाया कि श्रेणीबद्ध दल के निर्माण से आपका क्या मतलब है।

श्रेणीबद्ध दल का मतलब है ऐसा दल जिसमें क्रियाएं और कार्य व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर संगठित हों, जिसके बीच में एक नेता होता है। उदाहरण के लिये सैनिक-संगठन श्रेणीबद्ध संगठन होता है।

प्राचीन परंपरागत श्रेणीबद्ध
दल का एक नक्शा देखो :

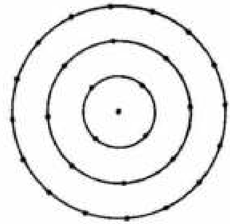

१ — ४ — ८ — १६

और इसी तरह।

२७ अक्तूबर १९६५

मधुर मां,

क्या हमारे आश्रम में कोई श्रेणीबद्ध दल है ? मैं इस बारे में अधिक जानना चाहता हूं, लेकिन ठीक तरह पूछ नहीं पा रहा।

हर दल को—यदि वह सच्चा हो, यानी ऐसा दल जो उसे संगठित करनेवाले व्यक्तियों की योग्यता के अनुसार बना हो—निश्चित रूप से श्रेणीबद्ध होना चाहिये।

लेकिन इस श्रेणीबद्ध क्रम के चरितार्थ होने में बहुत-सी बाधाएं हैं :

१. जब दल अपूर्ण हो यानी जब उसमें श्रेणीबद्ध क्रम बनाने के लिये सभी आवश्यक सदस्य न हों। और कुछ क्रियाएं और माध्यम मौजूद न हों।

२. कुछ ऐसे सदस्यों की अनुशासनहीनता जो उन्हें दिये गये स्थान को ग्रहण करने से पूरी तरह या अंशतः इंकार करते हैं।

जब व्यवस्था और सामंजस्य स्थापित हो जायें तो श्रेणीबद्ध क्रम बिल्कुल सहज और स्वाभाविक रूप से संगठित हो जाता है।

३ नवंबर १९६५

मधुर मां,

हमें डर क्यों लगता है, डर कहां से आता है ?

भय विरोधी शक्तियों की खोज है जिसे उन्होंने जीवित प्राणियों, मनुष्यों और पशुओं पर अधिकार जमाने के सबसे अच्छे साधन के रूप में बनाया है।

जो **शुद्ध** हैं, अर्थात् ऐकांतिक रूप से भागवत प्रभाव में हैं—उनमें डर नहीं होता।

१० नवंबर १९६५

मधुर मां,

आपने अपने 'वार्तालाप' में लिखा है, "हर बार जब भागवत सत्य या

भागवत शक्ति की कोई चीज धरती पर अभिव्यक्त होने के लिये आती है तो धरती के वातावरण में कोई परिवर्तन आता है।''

१. क्या यह परिवर्तन हमेशा क्रांति या युद्ध की तरह उग्र और विनाशात्मक होता है?

जरूरी नहीं है। जो चीज अपने-आपको युद्ध या क्रांति के रूप में प्रकट करती है वह नूतन शक्ति के विरुद्ध मानव चेतना का प्रतिरोध है, जब प्रतिरोध कम हो तो सब कुछ सामंजस्य के साथ हो जाता है।

२. और इसके विपरीत क्या यह भी सच है कि जब युद्ध या क्रांति हो तो वह सत्य के अवतरण का चिह्न होता है?

जरूरी नहीं है। मानव मूढ़ता अपने-आपको प्रकट करने के लिये छोटे-से-छोटे कारण का भी लाभ उठा लेती है।

१७ नवंबर १९६५

मधुर मां,

आपने लिखा है: ''यहां हर एक समाधान किये जाने के लिये किसी असंभवता का प्रतिनिधित्व करता है।'' क्या आप मुझे समझा सकेंगी कि इसका ठीक-ठीक मतलब क्या है?

यह कहने का एक व्यंग्यात्मक तरीका है कि यहां सबसे कठिन व्यक्ति—रूपांतर की दृष्टि से—नूतन सृष्टि की तैयारी के लिये, धरती को रूपांतरित करने के काम को मूर्त रूप देने और समन्वित करने के लिये इकट्ठे किये गये हैं।

१ दिसंबर १९६५

मधुर मां,

आपने मुझसे अपने हृदय की गहराइयों में भीतर प्रवेश करने के लिये कहा था जहां मैं आपको विराजमान पाऊंगा। मैं हृदय में प्रवेश नहीं कर पाता। ध्यान के समय मुझे लगता है कि मेरी चेतना एक अभेद्य किले के चारों ओर उड़ रही है। आपने मुझसे जो कहा है वह करने में सफल होने के लिये मुझे क्या करना चाहिये?

यह इसलिये होता है क्योंकि तुम ऊपरी चेतना से प्रवेश करने की कोशिश करते हो जिसका सत्ता की भीतरी अवस्थाओं के साथ संपर्क नहीं है। तुम्हें इस बाहरी चेतना में से निकल कर सूक्ष्मतर चेतना में प्रवेश करना होगा, तब वह किला अभेद्य न रह जायेगा।

२२ दिसंबर १९६५

मधुर मां,

सत्य की सेवा करने के लिये हमें क्या करना चाहिये? क्या सबसे पहले हमें सत्य को जीना चाहिये?

उसकी सेवा करने के लिये तुम्हें उसे जीना चाहिये।

उसे जीने के लिये आवश्यक है कि तुम उसकी सेवा करो।

और दोनों के लिये, तुम्हें उसे सचाई, निष्कपटता और आग्रह के साथ चाहना चाहिये।

५ जनवरी १९६६

मधुर मां,

हममें से बहुतों के अंदर यह प्रवृत्ति है कि अपने जीवन और कार्यक्रम को सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार चलायें। हम कहते हैं, "हमें बाहर के लोगों की राय के बारे में भी तो सोचना चाहिये। चूंकि हम समाज में रहते हैं, अतः हमें समझदार होना और उनके साथ मेल खानेवाला जीवन बिताना चाहिये।" मधुर मां, इस सबके बारे में आप क्या कहती हैं? समाज के रीति-रिवाजों और नियमों के बारे में हमारी क्या वृत्ति होनी चाहिये?

अगर यहां के अधिकतर लोग इस तरह सोचते और अनुभव करते हैं तो यह इस बात का **स्पष्ट** प्रमाण है कि उनमें से अधिकतर नये जीवन के लिये तो क्या नये जीवन की **तैयारी** के लिये भी तैयार नहीं हैं; अतः सच कहा जाये तो उनके लिये बहुत ज्यादा अच्छा होगा कि वे सामान्य जीवन में लौट जायें और उसीका अनुभव करें, बजाय इसके कि यहां जीवन की अपवादिक परिस्थितियों का लाभ उठाने के योग्य हुए बिना उनसे फायदा उठायें।

१२ जनवरी १९६६

मधुर मां,

पहले आप लोगों के आश्रम में आने और रहने के बारे में बहुत कठोर थीं। अब ऐसा नहीं है। क्यों?

जबतक आश्रम उन्हीं लोगों के लिये आरक्षित था जो योगाभ्यास करना चाहते थे तबतक कठोर होना स्वाभाविक था।

जैसे ही यहां बच्चों को प्रवेश मिला, सख्ती करना संभव न रहा और जीवन का रूप बदल गया।

अब आश्रम पृथ्वी पर जीवन का प्रतीकात्मक निरूपण बन गया है और उसमें हर चीज को स्थान मिल सकता है बशर्ते कि उसमें अधिक भागवत जीवन की ओर प्रगति करने की इच्छा हो।

१९ जनवरी १९६६

मधुर मां,

मैं अपने-आपसे पूछता हूं कि क्या मैं योग कर रहा हूं! लेकिन उत्तर निश्चित नहीं होता। क्या आप मुझे बतला सकती हैं कि मैं कहां हूं और इस मार्ग पर कैसे प्रगति कर सकता हूं?

इस तथ्य के आधार पर ही कि तुम धरती पर रहते हो, तुम एक योग कर रहे हो, यद्यपि तुम जानते नहीं; और इस तथ्य के आधार पर कि तुम यहां रहते हो, तुम्हें अपनी अधिक-से-अधिक संभावनाओं के अनुसार अपने योग में सहायता मिल रही है। तुम्हारे अंदर सिर्फ जिस चीज की कमी है वह है सचेतन होने की।

२ फरवरी १९६६

मधुर मां,

आप कहती हैं, "इस तथ्य के आधार पर ही कि तुम धरती पर रहते हो, तुम एक योग कर रहे हो" और आपने मुझसे यह भी कहा था, "आश्रम उन लोगों के लिये आरक्षित था जो योगाभ्यास करना चाहते थे", और फिर, मेरा ख्याल है कि आपने कहीं पर कहा है, "यहां हर आदमी योग के लिये नहीं है"। तो . . . ?

बेचारा बालक! अब चकरा गये तुम . . .

लो, तीनों बातें ठीक हैं लेकिन अलग-अलग स्तर पर, और इस समस्या को कुछ-कुछ समझने के लिये तुम्हें उस क्षेत्र में पहुंचना होगा जहां ये तीनों आपस में पूरक होकर एक हो जाती हैं।

९ फरवरी १९६६

मधुर मां,

जब आप कहती हैं :

१. "इस तथ्य के आधार पर ही कि तुम धरती पर रहते हो, तुम एक योग कर रहे हो"—क्या इससे आपका मतलब यह है कि यह क्रम-विकास की स्वाभाविक तथा अनिवार्य प्रगति का योग है ?

२. "आश्रम उन लोगों के लिये आरक्षित था जो योगाभ्यास करना चाहते थे"—यानी केवल उन लोगों के लिये जो सचेतन रूप से योगाभ्यास कर रहे थे ?

३. "यहां हर आदमी योग के लिये नहीं है"—यानी वे सचेतन रूप से योग करने के लिये असमर्थ हैं ?

हां।

१६ फरवरी १९६६

मधुर मां,

हम अपनी ग्रहणशीलता कैसे बढ़ा सकते हैं ?

ग्रहणशीलता आत्म-दान के अनुपात में होती है।

२ मार्च १९६६

मधुर मां,

एक समय था जब मैं प्रायः आपको स्वप्नों में देखा करता था और कभी-कभी श्रीअरविंद को भी। लेकिन इधर बहुत समय से मुझे यह सुख नहीं मिला। क्यों ? इसका मतलब क्या है ?

हमें स्वप्नों में देखने का सबसे अच्छा उपाय है सोने के पहले हम पर एकाग्र होना।

क्या तुम इसे पहले जैसे किया करते थे उसी तरह अब भी करते हो? यह नींद में अवांछनीय स्थानों पर न जाने का तरीका भी है, क्योंकि वहां निश्चित रूप से तुम हमें न पाओगे। कोशिश करो और तुम परिणाम देख लोगे।

२३ मार्च १९६६

मधुर मां,

माना यह जाता है कि हम किसी ऐसी चीज के लिये प्रयास कर रहे हैं जिसके लिये पहले कभी किसी ने कोशिश नहीं की। लेकिन मां, क्या यह सच नहीं है कि आजकल हम अपने जीवन को और अपने क्रिया-कलाप को अधिकाधिक सामान्य जीवन की रीति-नीतियों की ओर प्रवृत्त कर रहे हैं? अगर ऐसा है तो क्या हम सच्चे पथ से भटक नहीं रहे?

तुम अभीतक उसी पुराने ढर्रे पर हो जो आध्यात्मिकता को जीवन से अलग करता है। जब कि श्रीअरविंद ने घोषित किया है, 'समस्त जीवन योग है' और उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि तुम्हें जीवन में ही योग करना चाहिये। लगता है कि तुम यह बात भूल गये हो।

३० मार्च १९६६

मधुर मां,

क्या हमें जो असीम स्वाधीनता दी गयी है वह उन लोगों के लिये खतरनाक नहीं है जो अभीतक जाग्रत् नहीं हैं, जो अभीतक निश्चेतन हैं? इस सुअवसर का, इस सौभाग्य का कारण क्या है जो हमें प्रदान किया गया है?

संकट और जोखिम हर अग्रगामी गति के भाग होते हैं। उनके बिना कभी कोई चीज हिलेगी भी नहीं; और साथ ही जो लोग प्रगति करना चाहते हैं उनके चरित्र को ढालने के लिये ये चीजें अनिवार्य हैं।

१३ अप्रैल १९६६

मधुर मां,

मैं अपने-आपको २४ अप्रैल के दर्शन के लिये कैसे तैयार करूं?

एकाग्रता के साथ अपने अंदर यह जानने के लिये देखो कि तुम्हारे अंदर कौन-सी

चीज सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, ऐसी चीज जिसके बारे में तुम अनुभव करते हो कि उसके बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता।

यह एक मजेदार खोज है।

१९ अप्रैल १९६६

मधुर मां,

क्रोध का अस्तित्व क्यों है?

शायद तुम यह जानना चाहते हो कि क्रोध कहां से आता है।

क्रोध प्राण पर लगे किसी अप्रिय आघात के प्रति उसकी उग्र प्रतिक्रिया है और जब उसमें शब्दों और विचारों का भी समावेश हो जाता है तो मन प्राण के प्रभाव को प्रत्युत्तर देता और उग्रता के साथ प्रतिक्रिया करता है। क्रोध की कोई भी अभिव्यक्ति आत्म-संयम के अभाव का चिह्न है।

११ मई १९६६

मधुर मां,

दो दिन पहले मैं अपने स्वप्न में आपके साथ था और आपने काफी लंबे समय तक मेरे साथ बातचीत की। मुझे सारी बातचीत याद नहीं है लेकिन साधारण याद कुछ ऐसी है कि आप हर बुधवार को दिये गये मेरे प्रश्नों से संतुष्ट नहीं हैं। क्या यह सच है?

तुमने मुझे देखा और मेरी बात सुनी यह प्रगति का लक्षण है और इससे मैं खुश हूं। लेकिन यह सच है कि मैं तुम्हें मानसिक तौर पर कुछ आलसी पाती हूं और तुम्हें हर सप्ताह एक प्रश्न पूछने का जो अवसर दिया गया है उसके प्रति उदासीन पाती हूं। तुम्हारे प्रश्न बहुत मामूली-से होते हैं और उनसे ऐसा नहीं लगता कि तुम सचमुच जीवन और जगत् के रहस्यों की खोज में हो।

१८ मई १९६६

मधुर मां,

क्या मानसिक उदासीनता और उत्सुकता का अभाव एक तरह की मानसिक जड़ता है?

सामान्यतः वे मानसिक जड़ता के कारण होते हैं, अपवाद तब होता है जब तुमने उस स्थिरता और उदासीनता को बहुत तीव्र साधना द्वारा पाया हो जिसका परिणाम एक पूर्ण समता है, जिसके लिये शुभ और अशुभ, सुखद और दुःखद का अस्तित्व ही नहीं होता। लेकिन उस स्थिति में मानसिक क्रिया-कलाप का स्थान बहुत अधिक ऊंचे स्तर का अंतर्भासात्मक क्रिया-कलाप ले लेता है।

२५ मई १९६६

मधुर मां,

हम इस मानसिक प्रमाद और जड़ता से कैसे पिंड छुड़ा सकते हैं?

निरंतर आग्रह और दृढ़ता के साथ ऐसा करने की इच्छा करने से। हर रोज अध्ययन, व्यवस्था और विकास का मानसिक अभ्यास करने से।

दिन भर में इनके स्थान पर एकाग्रता में मानसिक नीरवता के अभ्यास अदल-बदल कर आते रहने चाहियें।

१ जून १९६६

मधुर मां,

क्या वियतनाम में अमरीका की उपस्थिति और उसका हस्तक्षेप उचित है?

तुम यह प्रश्न किस दृष्टिकोण से पूछ रहे हो?

अगर यह राजनीतिक दृष्टि से है तो राजनीति मिथ्यात्व में डूबी हुई है और मुझे उसमें रस नहीं है।

अगर यह नैतिक दृष्टिकोण से है तो नैतिकता एक ढाल है जिसे साधारण लोग अपने-आपको सत्य से बचाने के लिये घुमाते हैं।

अगर यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण से है, तो केवल भागवत इच्छा ही उचित है और मनुष्य अपने कर्मों में उसीका उपहास करते और उसे विकृत कर डालते हैं।

६ जुलाई १९६६

मधुर मां,

मैंने अपना पिछला प्रश्न आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पूछा था और आपके उत्तर से मैं यह निष्कर्ष निकालता हूं कि वहांपर अमरीकनों की क्रिया बिल्कुल

उचित नहीं है। लेकिन माताजी, क्या संसार के लिये यह खतरा नहीं है कि कम्यूनिस्ट उसे निगल जायें और क्या इसीलिये अमरीकी लोग और उनके साथी मानव स्वाधीनता की रक्षा करने में नहीं लगे हैं ? क्या यही भगवान् की इच्छा है ?

तुम जो राय प्रकट कर रहे हो वह अमरीकनों और बड़ी संख्या में उन लोगों की राय है जो उनके जैसा सोचते हैं। लेकिन कम्यूनिस्टों और उन लोगों की, जिन्हें कम्यूनिस्ट आदर्श में विश्वास है, राय इससे उल्टी है, भले हम बहुत सारे सामाजिक और राजनीतिक विषयों के विभिन्न मतों की गिनती न करें। ये सब केवल रायें हैं और भागवत दृष्टिकोण से इनका कोई मूल्य नहीं है—उन भगवान् के दृष्टिकोण से जिनकी कोई राय नहीं होती बल्कि हर चीज के बारे में और जिस लक्ष्य को उपलब्ध करना है उसके बारे में एक समग्र दृष्टि होती है। यही एकमात्र चीज है जिसका मूल्य है।

हर **मानसिक** चीज आवश्यक रूप से एक राय है और सत्य का एक लवलेश मात्र प्रकट करती है।

१३ जुलाई १९६६

मधुर मां,

कुछ लोग कहते हैं कि आपने कहा है कि यहां रहनेवाले १५०० लोगों में केवल ढाई सौ के लगभग हैं जो श्रीअरविंद के योग को समझते हैं, पैंतालीस उसका अभ्यास करते हैं, पांच जो सिद्धि पाने योग्य हैं और केवल एक जिसका रूपांतर हो सकता है। सच्ची बात क्या है ?

हो सकता है कि मैंने कोई ऐसी बात कही हो परंतु संख्याओं की यथार्थता तो निश्चित रूप से काल्पनिक है।

यह सच है कि जो लोग गंभीरता से योग करते हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है . . .

लेकिन भागवत कृपा अनंत है !

२० जुलाई १९६६

मधुर मां,

मुझे लगता है कि हमारे लिये यह सबसे लज्जाजनक बात है कि हम भागवत कृपा का अपव्यय करते हैं, यहांपर दिये गये इस अनोखे

विशेषाधिकार का दुरुपयोग करते हैं। लेकिन मां, हम ऐसा क्यों करते हैं? चूंकि हममें से हर एक ने निश्चित रूप से जीवन के किसी सौभाग्यपूर्ण क्षण में कम-से-कम एक बार उस अनंत भव्यता का अनुभव किया और उसका आनंद पाया होगा जो हमारी पहुंच के भीतर है और हमारी प्रतीक्षा कर रही है। फिर भी हममें इतने कम हैं जो योग को गंभीरता के साथ अपनाते हैं। क्यों?

यह शुद्ध रूप से **निश्चेतना** है, अदम्य **तमस्**।

२७ जुलाई १९६६

[कप्तान के पास आये एक निमंत्रण के बारे में जिसमें उसे कलकत्ता जाकर व्यावहारिक अध्ययन का एक पाठ्य-क्रम करने के लिये बुलाया गया था]

जो **सचाई के साथ** सीखना चाहते हैं उनके लिये यहां सभी संभावनाएं मौजूद हैं। एकमात्र चीज जो बाहर मिल सकती है पर यहां नहीं मिलती, वह है बाहरी अनुशासन का नैतिक दबाव।

यहां तुम स्वतंत्र हो और एकमात्र नियंत्रण वह है जिसे अगर तुम **सच्चे** हो तो **अपने ऊपर** आरोपित करते हो।

अब निर्णय तुम्हें करना है।

३ अगस्त १९६६

मधुर मां,

आपका पत्र पाकर मैं बहुत ही खुश हूं और मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं नहीं जाऊंगा। मुझे बहुत संदेह था कि आप इस प्रस्ताव को स्वीकार करेंगी, फिर भी निम्नलिखित कारणों से मैंने निमंत्रण स्वीकार करने के बारे में आपसे पूछा। (यहां कारण गिनाये गये।)

तुम्हारे पत्र से मैं देखती हूं कि तुम्हारी निमंत्रण स्वीकार करने की बहुत इच्छा है . . . तो मैं तुम्हें इस अनुभव से वंचित नहीं करना चाहती और मैं तुमसे कहती हूं: ''तुम जा सकते हो।''

यह अंतिम फैसला है।

४ अगस्त १९६६

मधुर मां,

क्या आप कृपा करके मुझे अपना और श्रीअरविंद का फोटो अपने आशीर्वाद के साथ दे सकेंगी ताकि जब मैं पांडिचेरी से दूर रहूं तो उन्हें अपने पास रख सकूं ?

क्या तुम सचमुच जाना चाहते हो ?

२२ अगस्त १९६६

मधुर मां,

उस प्रसिद्ध निमंत्रण के बारे में एक आखिरी बात, जिसने हर जगह इतनी गलतफहमियां पैदा कर दी हैं।

मां, मैं आपको नहीं समझ पाता ! एक बार आप कहती हैं, ''तुम जा सकते हो, यह अंतिम फैसला है''; बाद में जब मैं आपके पास आता हूं तो आप फिर से उसकी पुष्टि करती हैं और मुझे इस आश्वासन के साथ विदा देती हैं कि आप सदा मेरे साथ रहेंगी, कि मैं बिना किसी भय के जा सकता हूं कि इससे मुझे लाभ होगा, आदि, आदि; और यह तो तब जब मैं आग्रह करता हूं कि आपका पहला पत्र पाने के बाद मैं नहीं जाना चाहता।

स्वभावतः उसके बाद मैं जाकर सारी आवश्यक व्यवस्था करता हूं। 'क' मेरे जाने की व्यवस्था करता है। लेकिन उसके बाद आप 'क' को जवाब देती हैं कि आपने मुझे जाने की स्वीकृति दी है क्योंकि मैंने आपको बतलाया था कि 'क' मेरा वहां जाना पसंद करता है। आश्चर्य की बात है !

सचमुच, इस सारी बात में मैं इसके सिवा और कुछ नहीं समझ पाता कि आपको मेरे जाने के बारे में उत्साह नहीं है। लेकिन यह सारी पेचीदगी क्यों ? पता नहीं 'क' मेरे बारे में क्या सोचता है लेकिन इतना तो सच है ही कि मैंने उसे बहुत जटिल स्थिति में डाल दिया है और इसके लिये मुझे खेद है।

मां, आपके अंतिम प्रश्न के बाद, मेरी जाने की इच्छा बिल्कुल नहीं रही। ***मैं नहीं जाऊंगा।*** *यह मेरा आखिरी फैसला है। यह प्रसिद्ध अध्याय समाप्त।*

बहुत अच्छा। और मैंने जो कुछ किया वह यथार्थतः तुम्हें इस निर्णय पर लाने के लिये ही था !

२३ अगस्त १९६६

मधुर मां,

माना यह जाता है कि धरती पर आध्यात्मिक जीवन प्रतिष्ठित करने के लिये

भारत संसार का गुरु है। लेकिन मां, इस उच्च पद को पाने के लिये उसे राजनीतिक, नैतिक और भौतिक दृष्टि से इसके योग्य होना चाहिये, है न?

निस्संदेह, और अभी इसके लिये बहुत कुछ करना बाकी है!

७ सितंबर १९६६

मधुर मां,

हमारी वर्तमान सरकार में इतनी अस्तव्यस्तता क्यों है? क्या यह ज्यादा अच्छे परिवर्तन के लिये संकेत है, सत्य के राज्य की ओर?

सारी पृथ्वी पर यह सत्य की शक्ति का दबाव है जो हर जगह अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता और मिथ्यात्व को रूपांतरित होने से इंकार करने के कारण उछाल रहा है।

सत्य की विजय निश्चित है, लेकिन यह कहना कठिन है कि वह कब और कैसे आयेगी।

१४ सितंबर १९६६

मधुर मां,

कोई भगवान् या देव में विश्वास किये बिना योग-साधना कैसे कर सकता है?[1]

क्यों? यह तो बहुत सरल है। क्योंकि ये केवल शब्द हैं। जब कोई भगवान् या ईश्वर पर विश्वास किये बिना ही साधना करता है तो वह किसी तरह की पूर्णता पाने के लिये, तरह-तरह के कारणों से प्रगति करने के लिये अभ्यास करता है।

क्या ऐसे बहुत-से लोग हैं—मैं उनकी बात नहीं कर रही जिनका कोई धर्म है—जो बचपन में ही कोई प्रश्नोत्तर सीख लेते हैं जिसका बहुत अर्थ नहीं होता; लेकिन लोग जैसे हैं, उसी तरह से लिये जायें तो क्या ऐसे लोग ज्यादा हैं जो भगवान् पर विश्वास करते हैं? कम-से-कम यूरोप में तो नहीं। लेकिन यहां भी, बहुत-से ऐसे हैं जिनके परंपरा के अनुसार तो 'पारिवारिक इष्ट-देवता' हैं लेकिन इससे वे जरा भी व्यथित नहीं होते अगर वे अपने देवता से नाराज होकर उसे गंगा में फेंक दें! ऐसा

[1] माताजी ने इस प्रश्न का मौखिक उत्तर दिया था। वे इस कप्तान से नहीं किसी और से बात कर रही थीं।

होता है—मैं ऐसे कुछ लोगों को जानती हूं जिन्होंने यही किया था। किसी घर में एक पारिवारिक काली थी, घरवाले उससे नाराज थे इसलिये उन्होंने उसे सचमुच उठाकर गंगा में फेंक दिया। अगर कोई भगवान् पर विश्वास करता है तो वह ऐसी चीजें नहीं कर सकता।

मुझे पता नहीं—भगवान् पर विश्वास ? आदमी एक विशेष पूर्णता का प्यासा होता है, शायद वह अपना अतिक्रमण भी करना चाहता है, वह जो कुछ है उससे ऊंचा होना चाहता है; अगर कोई पुरुषार्थी है तो उसकी अभीप्सा होती है कि मानवजाति ज्यादा अच्छी हो जाये या कम दुःखी और कम दरिद्री हो; और इसी तरह की अन्य चीजें। उसके लिये योग किया जा सकता है परंतु यह विश्वास करना नहीं है। विश्वास करने का मतलब यह है कि तुम्हें यह श्रद्धा हो कि भगवान् के बिना जगत् हो ही नहीं सकता, कि जगत् का अस्तित्व ही यह प्रमाणित करता है कि भगवान् का अस्तित्व है। और केवल ''विश्वास या मान्यता'' नहीं, कोई ऐसी चीज नहीं जिसके बारे में तुमने सोच रखा है या जो तुम्हें सिखायी गयी है, नहीं, ऐसा कुछ नहीं : श्रद्धा। एक ऐसी श्रद्धा जो जीवित ज्ञान है, प्राप्त किया हुआ ज्ञान नहीं, यह कि जगत् का अस्तित्व भगवान् को प्रमाणित करने के लिये काफी है। भगवान् के बिना कोई जगत् नहीं। देखो, यह इतना स्पष्ट है कि ऐसा लगता है कि इससे विपरीत सोचने के लिये तुम्हें कुछ मंद-बुद्धि होना चाहिये। और 'भगवान्' भी 'प्रयोजन', 'लक्ष्य' या 'उद्देश्य' के अर्थ में नहीं, इस तरह की चीज नहीं : जगत् जैसा कि वह है, भगवान् को प्रमाणित करता है; क्योंकि वह किसी रूप में, किसी विकृत रूप में ही सही, फिर भी है भगवान् . . .

मेरे लिये यह इससे भी अधिक प्रबल है। मैं एक गुलाब को देखती हूं, एक ऐसी चीज को जिसमें सहज सुंदरता की घनता है, जो मानव-निर्मित नहीं है, सहज-स्वाभाविक प्रस्फुटन है। उसे देखना भर इस बात में निश्चित होने के लिये काफी है कि कोई भगवान् हैं। यह निश्चिति है। विश्वास न करना असंभव है, तुम ऐसा नहीं कर सकते। यह उन लोगों की तरह है (यह है विलक्षण !) जो लोग प्रकृति का अध्ययन करते हैं, सचमुच पूरी तरह से अध्ययन करते हैं, यह देखते हैं कि हर चीज कैसे कार्य करती है, पैदा की जाती और अस्तित्व रखती है—भगवान् के अस्तित्व पर पूरी तरह विश्वास किये बिना, सावधानी और एकाग्रता के साथ दत्तचित्त होकर व्यक्ति निष्कपट रूप से अध्ययन कर ही कैसे सकता है ? हम उसे भगवान कहते हैं, भगवान् छोटा-सा है ! (माताजी हंसती हैं) मेरे लिये अस्तित्व इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि . . . 'तत्' के सिवाय और कुछ नहीं है—यह एक ऐसी चीज है जिसे हम नाम नहीं दे सकते, जिसका वर्णन नहीं कर सकते, निरूपण नहीं कर सकते पर जिसे हम अनुभव कर सकते हैं और अधिकाधिक रूप में वही बन सकते हैं। कोई ऐसी चीज जो समस्त पूर्णताओं से अधिक पूर्ण, सभी सुंदरताओं से अधिक सुंदर, सभी अद्‌भुत

वस्तुओं से अधिक अद्‌भुत है, यहांतक कि उसको, जो कुछ अस्तित्व धारण करता है, उस सबके द्वारा भी व्यक्त नहीं किया जा सकता। और उस 'तत्' के सिवाय और कुछ है ही नहीं। और वह कोई ऐसी चीज नहीं है जो शून्य में तैरती हो; 'तत्' के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

८ अक्तूबर १९६६

मधुर मां,

हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारे विचार और हमारी अभीप्साएं प्राणिक कामनाओं से रंगे नहीं हैं, यद्यपि वे हमारी सामान्य बुद्धि को ठीक मालूम होते हैं?

यह **आंतरिक सचाई** का सवाल है। सामान्य बुद्धि निर्णायक नहीं है क्योंकि वह निचले स्तर की मानसिक क्रिया है।

और फिर जानने का एक बहुत सरल उपाय है। तुम बस यह कल्पना करो कि तुम जो करना चाहते हो वह न हो सकेगा और अगर इस कल्पना से जरा भी बेचैनी पैदा होती है तो तुम कामना की उपस्थिति के बारे में निश्चित हो सकते हो।

१२ अक्तूबर १९६६

मधुर मां,

श्रीअरविंद के पूर्णयोग में कर्म का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। है न? इस हालत में ध्यान का क्या स्थान है?

कर्म पूरे चौबीस घंटे नहीं चला करता।

अन्य बहुत-से ऐसे क्रिया-कलापों के लिये भी स्थान है जिनका **पूर्णयोग** में प्रयोजन है।

२६ अक्तूबर १९६६

मधुर मां,

आपने "सद्‌गुणों" की जो कहानी लिखी है उसमें आपने कई सद्‌गुणों का वर्णन किया है। उनमें से कौन-सा गुण सबसे अधिक जरूरी है?

सचाई और निष्कपटता।

२ नवम्बर १९६६

मधुर मां,

बरसों से हम सुनते चले आ रहे हैं कि आश्रम की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है और समय-समय पर हम भी स्पष्ट रूप से इसे देख सकते हैं। लेकिन, साथ ही हम अमुक व्यक्तियों और अमुक विभागों द्वारा बहुत फालतू खर्च होते देखते हैं और फिर ये खर्च आपकी उदारता के द्वारा ही हो सकते हैं। तो यह कैसे कहा जा सकता है कि आश्रम में आर्थिक कठिनाई है ?

लेकिन शायद **चूंकि** अमुक व्यक्ति और अमुक विभाग फालतू खर्च करते हैं इसीलिये आर्थिक संकट है ! . . .

अन्यथा सब कुछ ठीक है।

३० नवंबर १९६६

मधुर मां,

आपके उत्तर से कुछ भी पता नहीं लगता। क्या ये खर्च आपकी आज्ञा से नहीं होते ?

हमेशा नहीं।

कम-से-कम आपकी स्वीकृति तो होती ही है।

कभी-कभी।

कभी-कभी जब हम ध्यान में बैठते हैं तो मानसिक नीरवता स्थापित हो जाती है। लेकिन इसे निरंतर अनुभूति कैसे बनाया जा सकता है ? क्योंकि जैसे ही हम क्रिया-कलाप में अपने-आपको झोंक देते हैं कि मानसिक गड़बड़ फिर से शुरू हो जाती है !

पूरी तरह नीरवता की स्थिति में गये बिना भी तुम अचंचल मन पा सकते हो और क्षुब्ध हुए बिना भी क्रिया कर सकते हो। आदर्श तो यही है कि मानसिक अचंचलता में से निकले बिना कर्म कर सको।

मन को अचंचल रखते हुए तुम सब कुछ कर सकते हो और इस तरह जो किया जाता है वह ज्यादा अच्छी तरह होता है।

आत्म-संयम पाने के लिये क्या "चेतना को विस्तृत" करने के उपाय का अनुसरण करना चाहिये ?

जो लोग मुक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण जीवन चाहते हैं उन सबके लिये चेतना का विस्तार जरूरी है, इसमें योग का या दिव्य जीवन के लिये अभीप्सा का कोई प्रश्न होना जरूरी नहीं है।

७ दिसंबर १९६६

मधुर मां,

जब मैंने सुना कि 'क' जिंजी घूमने गया था और वहां एक झील में डूबकर मर गया तो मुझे इस पर विश्वास न हुआ और मुझे इस समाचार ने धक्का भी नहीं दिया। मेरे अंदर बस यही प्रश्न उठा : यह कैसे संभव हो सकता है! माताजी को मालूम था कि हम जिंजी गये हुए हैं, अतः उनका रक्षण हमारे साथ था, तो फिर यह कैसे संभव है ?

संरक्षण सारे दल पर होता है और अगर दल का कार्य समन्वित और अनुशासित हो तो संरक्षण कार्य करता है, लेकिन जब कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से कार्य करता है तो संरक्षण उसकी अपनी श्रद्धा के अनुपात में होता है।

१४ दिसंबर १९६६

मधुर मां,

२४ नवंबर के संदेश में श्रीअरविंद दिव्य अनुकंपा और दिव्य कृपा[1] के प्रभाव की बात कहते हैं। लेकिन इन दोनों में फर्क क्या है ?

अनुकंपा सभी के कष्ट-मोचन के लिये कोशिश करती है, चाहे वे उसके अधिकारी हों या न हों।

दिव्य कृपा कष्ट बने रहने के अधिकार को ही स्वीकार नहीं करती। वह उसे गायब कर देती है।

२१ दिसंबर १९६६

[1] ये तीन शक्तियां हैं : १. कर्म का या किसका वैश्व विधान; २. भागवत अनुकंपा जितने लोगों तक हो सके विधान के जाल में से होकर पहुंच सकती और उन्हें अपना अवसर दे सकती है; ३. भागवत कृपा जो बिना हिसाब किये और साथ ही औरों की अपेक्षा अधिक अप्रतिरोध्य रूप से काम करती है। ('योग पर पत्र' से)

मधुर मां,

"आश्रम का सच्चा बालक" कहाने के लिये कौन-से गुणों की जरूरत होती है ?

सच्चाई, निष्कपटता, साहस, अनुशासन, सहनशीलता, भागवत कार्य में पूर्ण श्रद्धा और भागवत कृपा पर अविचल विश्वास। इस सबके साथ अविच्छिन्न, तीव्र, अध्यवसायी अभीप्सा और अथाह धैर्य भी होना चाहिये।

शुभ नव वर्ष !

२८ दिसंबर १९६६

मधुर मां,

कहा जाता है कि हमारे अंदर कुछ भी नहीं है, हर चीज बाहर से आती है। कहीं और कहा गया है कि बाहर के बारे में हमारी दृष्टि (हमारे चारों ओर जो जगत् है उसका दर्शन) हमारी आंतरिक सत्ता का प्रतिबिंब है। क्या आप कृपा करके इन दो वाक्यों को समझा सकेंगी ?

इन ऊपर से दीखनेवाले विरोधों को समझने के लिये तुम्हें उस बौद्धिक स्तर तक उठना चाहिये जहां समस्त विपरीत भाव व्यापक समन्वय में एक-दूसरे के सामने रखे और इकट्ठे किये जा सकते हैं।

आपने एक बार मुझे लिखा था कि तुम जो कुछ हो, अन्य सब लोग उसे प्रतिबिंबित करनेवाले दर्पण हैं। क्या आप मुझे यह बात जरा समझा सकती हैं ?

और लोगों के अंदर जो चीजें तुम्हें सबसे अधिक धक्का पहुंचाती हैं वे वही हैं जिनके विरुद्ध तुम अपने अंदर संघर्ष कर रहे हो या जिन्हें अपने अंदर दबाने की कोशिश कर रहे हो। यह जानना तुम्हें धीरज धरना सिखाता है।

१ फरवरी १९६७

मधुर मां,

आप लोगों के जन्मदिन पर उन्हें जो कार्ड भेजती हैं उन पर प्रायः बस इतना ही लिखा रहता है, " 'क' को मेरे आशीर्वाद के साथ शुभ जन्मदिन।" लेकिन कभी-कभी आप अन्य कई चीजें लिखती हैं, जैसे "वह सत्य जीवन में

जन्म ले'' या ''महान् प्रगति के एक वर्ष के लिये'' इत्यादि। ये सब विभिन्नताएं किस बात पर निर्भर होती हैं ?

मैं जिसे कार्ड लिखकर भेजती हूं उसकी अवस्था और उसकी चेतना की स्थिति पर जो क्षण और वर्ष के अनुसार बदलती रहती है।

८ फरवरी १९६७

मधुर मां,

साधारण मनुष्य प्रायः अपने अंतःकरण द्वारा जीवन का पथ-प्रदर्शन पाता है। है न ? तो उस आदमी का क्या होता है जिसमें अंतःकरण ही न हो, जिसने बहुधा उसकी अवहेलना करके उसे खो दिया हो ?

जिसे साधारणतः ''अंतःकरण'' कहा जाता है वह वह मानसिक रूपायण है जो शुभ और अशुभ के भाव पर आधारित होता है, वह एक नैतिक सत्ता या सद्भावना का तत्त्व है जो व्यक्ति को उस मार्ग पर बनाये रखना चाहता है जिसे साधारणतः ऋजु पथ कहा जाता है।

यह तत्त्व उन विरोधी शक्तियों से बचाने का काम करता है जो अपने अंतःकरण की राय की अवहेलना करनेवाले पर आसानी से कब्जा कर सकती हैं।

लेकिन यह सब सत्य का मानसिक अनुमान है, स्वयं सत्य नहीं।

१५ फरवरी १९६७

मधुर मां,

ऐसा क्यों है कि जब कभी हम आपके बारे में सोचते हैं तो हमें शारीरिक सामीप्य की आवश्यकता का अनुभव होता है ? इस शारीरिक संपर्क का क्या मूल्य है ?

१. जब तुम प्राण और मन की अपेक्षा शरीर में अधिक सचेतन होते हो तो शारीरिक संबंध अधिक वास्तविक और ठोस मालूम होता है।

२. जिन लोगों ने गंभीरता के साथ शरीर में योग शुरू कर दिया है उनके लिये निश्चय ही भौतिक संबंध अधिक प्रबल सहायक होता है।

मैं पहली श्रेणी के व्यक्तियों से कहती हूं कि वे केवल चैत्य संबंध स्थापित करने की कोशिश न करें (जो उनके चैत्य के बारे में सचेतन न होते हुए भी बना रहता है)

बल्कि मानसिक और प्राणिक संबंध भी स्थापित करें जो बाहरी संबंध को कम अपरिहार्य बना देता है।

मैं औरों को यह सिखाने की कोशिश करती हूं कि वे अपनी भौतिक चेतना को अधिक विस्तृत करने की कोशिश करें ताकि दूर रहते हुए भी मेरी भौतिक उपस्थिति का लाभ उठा सकें।

२२ मार्च १९६७

मधुर मां,

जब हम यहां से बाहर जाते हैं तो अपने अंदर एक तरह की रिक्तता का अनुभव करते हैं। सभी भौतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी किसी चीज का अभाव रहता है। हमें बहुत खुशी का अनुभव नहीं होता और हम जल्दी-से-जल्दी लौट आना चाहते हैं। क्या आप इस अनुभूति का कारण बतला सकती हैं? हम स्वतंत्र होने का भी अनुभव क्यों नहीं करते?

शायद इसका कारण यह है कि तुम्हारे अंदर अंतरात्मा है।

१२ अप्रैल १९६७

मधुर मां,

अपने पिछले उत्तर से आपका मतलब क्या है? क्या हर एक के अंदर अंतरात्मा नहीं होती?

हर एक अपनी अंतरात्मा के बारे में सचेतन नहीं होता और ऐसे तो बहुत ही कम हैं जो अपनी अंतरात्मा के पथ-प्रदर्शन में चलते हों।

१९ अप्रैल १९६७

मधुर मां,

साधारणतः जीवन जैसा है, उससे मैं काफी खुश रहता हूं और समय तेजी से जाता रहता है। लेकिन ऐसे समय आते हैं जब मुझे लगता है कि मैं बहुत प्रगति नहीं कर रहा। मैं अब भी पुरानी आदतों की लीक पर चल रहा हूं जो मुझे स्वाधीन नहीं होने देतीं।

चरित्र बदल सकता है और बदलना चाहिये, लेकिन यह एक लंबा और बारीक काम है जिसमें स्थायी प्रयास और बहुत सचाई की जरूरत है।

२६ अप्रैल १९६७

मधुर मां,

लोगों में चौथी मई[1] *के बारे में बहुत-सी बातें चल रही हैं—कभी-कभी आपका नाम भी आता है। लेकिन इस सबके बावजूद मैं उसका अर्थ नहीं समझ पाता।*

क्या यह जरूरी है कि इसका अर्थ हो ?

श्रीअरविंद ने घोषणा की थी कि उस दिन से कुछ होगा[2] और वह हुआ भी था।

बस इतना ही तो चाहिये।

२१ जून १९६७

मधुर मां,

कहा जाता है कि जीवन के स्पंदन एक जीवन से दूसरे जीवन में विकसित होते, अधिक समृद्ध होकर सामान्य सतही व्यक्तित्व के पीछे चैत्य व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। लेकिन तब फिर इन स्पंदनों और स्मृतियों से भाराक्रांत चैत्य सत्ता कैसे स्वतंत्र रह सकती है ?[3]

लेकिन वह "भाराक्रांत" क्यों कहता है ?

नहीं, चैत्य **निथारता** है—ठीक यही होता है। चैत्य सत्ता चीजों को अपने पूरे रूप में नहीं रखती, वह निथारती है, वह धीरे-धीरे स्पंदनों को निथारती है।

चैत्य स्मृति घटनाओं की निथरी हुई स्मृति है। उदाहरण के लिये, पिछले जन्मों में ऐसे क्षण आये हैं जब किसी-न-किसी कारण से चैत्य सत्ता उपस्थित थी और उसने भाग लिया था। उस स्थिति में वह उस परिस्थिति की याद रखती है। लेकिन वह उस

[1] संख्या में कहा जाये तो यह तारीख है ४-५-६७।

[2] श्रीअरविंद ने लिखा था : १-२-३४—यह सदा अभिव्यक्ति का वर्ष माना जाता है। २-३-४५ शक्ति का वर्ष है—जब अभिव्यक्त वस्तु शक्ति से भर जाती है। ४-५-६७ पूर्ण सिद्धि का दिन है।

('२ फरवरी १९३४' के पत्र से)

[3] माताजी ने इस प्रश्न का मौखिक उत्तर दिया, वे कप्तान से नहीं किसी और से बात कर रही थीं।

क्षण के **चैत्य** जीवन की स्मृति रखती है, इसलिये अगर वह बिम्ब की याद बनाये रखती भी है तो वह ऐसा सरल बिम्ब होता है जो चैत्य चेतना में अनूदित होता है और उस समय उपस्थित सभी लोगों के चैत्य स्पंदन के अनुसार होता है।

अगर उसमें चैत्य स्मृति होती तो वह ऐसा प्रश्न न पूछता, क्योंकि जब वह होती है तो बिलकुल स्पष्ट होती है।

ये सब चीजें जानने से पहले मेरे अंदर चैत्य स्मृतियां थीं और अपने विशेष लक्षणों के कारण वे मुझे हमेशा आकर्षित करती थीं। यह ऐसा था मानों—उसे हम ठीक भाव तो नहीं कह सकते—परंतु किसी परिस्थिति का एक प्रकार का भावनामय स्पंदन था; और वही ठोस, स्थायी और टिकाऊ होता है। हां, तो उसके साथ एक दृश्य रहता है, जरा अस्पष्ट, मद्धिम-सा दृश्य, उन लोगों का जो वहां थे, उस समय की परिस्थितियों और घटनाओं का। यही है चैत्य स्मृति; ऐसा तो विरल ही होता है कि वे घटनाएं याद रहें जो जीवनकाल में मानसिक रूप से अधिक-से-अधिक स्मरणीय या महत्त्वपूर्ण समझी जाती हैं, बल्कि याद रहते हैं वे क्षण जिनमें चैत्य ने भाग लिया हो—सचेतन रूप से भाग लिया हो। और वही बना रहता है।

१५ जुलाई १९६७

मधुर मां,

आप हमेशा, हर क्षण हमारे साथ रहती हैं लेकिन हम इस बारे में अचेत रहते हैं। केवल संकट ही हमें आपकी उपस्थिति की याद दिलाता है ताकि हम आपका संरक्षण पा सकें। लेकिन उस दिन जब हम लंबी यात्रा पर जा रहे थे तो हमें मोटर में अपने अतिरिक्त किसी और की उपस्थिति का भान हुआ और वह बहुत प्रबल था, यद्यपि हमें किसी संकट की संभावना नहीं दीख रही थी। क्या उस दिन किसी संकट की संभावना थी? अगर ऐसा था तो हमें उसका भान क्यों नहीं हुआ?

मैं बहुत प्रबल और सचेतन रूप से तुम्हारे साथ थी, क्योंकि 'क' ने मुझे सूचना दी थी कि तुम्हारी गाड़ी के टायरों की बुरी हालत थी।

तुम्हें संकट की अनुभूति इसलिये नहीं हुई क्योंकि **मैं नहीं चाहती थी कि तुम्हें उसका पता लगे।**

१९ जुलाई १९६७

मधुर मां,

भला इस आश्रम के अंदर ही लोगों को छोटे-छोटे दल और समितियां

बनाने की जरूरत क्यों पड़ती है, जैसे 'वर्ल्ड-यूनियन', 'न्यू एज एसोसियेशन' आदि? उनका प्रयोजन क्या है?

यह इसलिये है कि लोग अब भी यही समझते हैं कि कुछ उपयोगी काम करने के लिये दल बनाना जरूरी है।

वह संगठन का व्यंग्य-चित्र होता है।

२० सितम्बर १९६७

मधुर मां,

क्या भगवान् अन्याय के लिये दण्ड देते हैं? क्या यह संभव है कि वे किसी को कभी दण्ड देते हों?

१६ अक्तूबर १९६७

१६ अक्तूबर १९६७—२५ जुलाई १९७०

इतने वर्षों के बाद मुझे यह भूली-बिसरी कापी मिली है और मैं उत्तर देती हूं:

भगवान् चीजों को उस दृष्टि से नहीं देखते जिस दृष्टि से मनुष्य देखते हैं, इसलिये उन्हें सजा या इनाम देने की जरूरत नहीं होती।

सभी कर्म अपने-आपमें अच्छे फल और अपने परिणाम लिये रहते हैं।

अपने स्वभाव के अनुसार कर्म तुम्हें भगवान् के निकटतर लाता या उनसे दूर ले जाता है—और यही परम परिणाम होता है।

२५ जुलाई १९७०

मधुर मां,

उस दिन 'क' के साथ मेरी "श्रीअरविंद ऐक्शन" के बारे में चर्चा हुई। उसका कहना था कि अगर विवेकानन्द जैसा कोई प्रबुद्ध व्यक्ति होता तो काम ज्यादा अच्छी तरह हो जाता, लेकिन माताजी को अपना काम उन यंत्रों को लेकर करना पड़ता है जो उन्हें प्राप्त हैं। अंत में उसने कहा कि इस विषय में उसकी कोई राय नहीं है। उसने कहा, "मेरा काम है लिखना।" फिर उसने मुझसे पूछा, "तुम्हारा 'काम' क्या है?" मैंने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता कि मेरा 'काम' क्या है। मुझे बस इतना ही मालूम है कि मुझे अपने-आपको

अधिकाधिक पूर्ण बनाने के लिये अपने ऊपर एकाग्र होना पड़ता है। क्या यह ठीक है ? माताजी, सचमुच मेरा 'काम' है क्या ?

निश्चय ही, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम है अपने-आपको विकसित करना और पूर्ण बनाना, लेकिन यह काम करते समय भी उतनी ही अच्छी तरह या ज्यादा अच्छी तरह किया जा सकता है। इसका निश्चय तुम्हें करना चाहिये कि कौन-से काम में तुम्हें सबसे अधिक रुचि है, जो तुम्हारे लिये पूर्णता का मार्ग खोल देता है। हो सकता है कि बाहरी रूप में वह बहुत मामूली-सा हो; काम का ऊपर से दीखनेवाला महत्त्व उसे योग के लिये सच्चा मूल्य नहीं देता।

५ अगस्त १९७०

मधुर मां,

मैंने पिछले और अगले जीवनों के बारे में बहुत कुछ पढ़ा-सुना है, लेकिन मुझे प्रबल रूप से यह अनुभव होता है कि हमें इसी जन्म में अपनी उच्चतर अभीप्साओं को चरितार्थ करना चाहिये, मानों हमें यही आखिरी अवसर मिल रहा है। मेरे लिये और जन्मों के संकेत सहायता या आशा होने की जगह अगम्य और शास्त्रीय मालूम होते हैं। यह बात नहीं है कि मुझे पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं है, लेकिन बहुत बार यह विचार मेरे मन में आया करता है। मां, क्या यह मेरी दृष्टि की संकीर्णता है या फिर यह क्या है ?

अपने स्वभाव को समझने और अपनी अपूर्णताओं पर अधिकार पाने के लिये पिछले जन्मों का ज्ञान रोचक होता है। लेकिन सच कहा जाये तो यह चरम महत्त्व की बात नहीं है और भविष्य पर केंद्रित होना इसकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, उस चेतना पर केंद्रित होना जिसे प्राप्त करना है और प्रकृति के विकास पर केंद्रित होना अधिक महत्त्वपूर्ण है और जो इसे करना जानते हैं उनके लिये यह विकास लगभग निस्सीम है।

हम वैश्व जीवन के एक विशेष सौभाग्यशाली मुहूर्त में हैं, जब धरती की हर चीज को नयी सृष्टि के लिये, बल्कि यूं कहें, शाश्वत सृजन के अंदर एक नयी अभिव्यक्ति के लिये तैयार किया जा रहा है।

७ नवम्बर १९७०

मधुर मां,

जब आप भौतिक रूप से अस्वस्थ होती हैं तो मुझे बहुत दुःख होता है। मैं

अपने-आपसे कहता हूं कि यह साधारण बीमारी नहीं है, यह भौतिक रूपांतर की ओर ले जानेवाली एक अनुभूति है। लेकिन जब मैं आपके पीड़ाग्रस्त शरीर के बारे में सोचता हूं तो मुझे दुःख होता है। क्या यह श्रीअरविंद द्वारा बतलाये गये परम पुरुष के बलिदान का हिस्सा नहीं है? क्या हम इस बलिदान के योग्य हैं?

मधुर मां, ऐसे समय हमें कैसा होना चाहिये? हमारे लिये सर्वोत्तम वृत्ति क्या है?

हर एक के लिये सबसे अच्छी बात यह है कि वह जितनी अधिक सचाई से हो सके, प्रगति करे। भौतिक कष्ट रूपांतर के कार्य का भाग हैं और उन्हें शांति के साथ स्वीकार कर लेना चाहिये।

१४ नवम्बर १९७०

मधुर मां,

मुझे लगता है कि आपकी शक्ति हमारी प्रार्थना की तीव्रता के अनुपात में उत्तर देती है। लेकिन लगता है कि मेरा मामला कुछ और ही है। या क्या मैं अपनी प्रार्थना के बारे में सचेतन नहीं हूं? या फिर क्या मेरे बावजूद मेरी भलाई के लिये सब कुछ कर दिया जाता है?

हर एक के लिये ऐसा ही है। अंतर होता है हर एक की चेतना की स्थिति में। कुछ लोग उनके लिये जो कुछ किया जा रहा है उसके बारे में पूरी तरह सचेतन होते हैं। जो प्रयास करते हैं वे मिलनेवाले उत्तर के बारे में सचेतन हो जाते हैं और ऐसे भी हैं जिनकी अभीप्सा काफी प्रबल और सच्ची-निष्कपट होती है और वे सतत मिलनेवाली सहायता के बारे में सचेतन हो सकते हैं।

२८ नवम्बर १९७०

पत्रमाला ११

पत्रमाला ११

[श्रीअरविंदाश्रम के एक साधक के नाम]

भगवान् की सेवा करने के लिये मेरा प्रयास कैसे अधिकाधिक पूर्ण हो सकता है?

उन्हें अपनी सत्ता के हर भाग में पूर्ण रूप से चाहने से।

११ अक्तूबर १९६६

१९५८ में माताजी ने कहा था, "अगर चीजें इसी गति से प्रगति करती जायें तो यह बहुत संभव मालूम होता है, लगभग स्पष्ट कि श्रीअरविंद ने अपने पत्र में जो लिखा था वह भविष्यसूचक घोषणा है: "अतिमानस चेतना १९६७ में उपलब्ध होनेवाली शक्ति की स्थिति में प्रवेश करेगी।"

क्या चीजें वांछित गति से आगे बढ़ी हैं?

हां।

२ जनवरी १९६७

क्या मैं अपनी रातों को सचेतन बनाने का प्रयास कर सकता हूं? मैं पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना करता हूं।

१. सोने से पहले जरा-सी एकाग्रता, इस अभीप्सा के साथ कि जब तुम सोकर उठो तो रात की घटनाओं की याद रहे।

२. जब तुम जागो तो अचानक सिर की कोई गति न करो और कुछ मिनटों के लिये चुप रहो और एकाग्रता इस बात पर रहे कि नींद में जो कुछ हुआ हो वह तुम्हें याद रहे।

३. ये अभ्यास हर रोज तबतक दोहराते रहो जबतक तुम परिणाम न देखो।

१८ जनवरी १९६७

क्या मानव सत्ता में चैत्य सत्ता ही समस्त अंतरात्मा है या फिर (अपने सारतत्त्व

में सभी प्राणियों के बीच दिव्य चिंगारी के रूप में) अंतरात्मा और चैत्य सत्ता एक साथ रहती हैं ?

अंतरात्मा चैत्य सत्ता के बीच शाश्वत सारतत्त्व है। वस्तुतः अंतरात्मा दिव्य चिंगारी की तरह है जो बढ़ती हुई घनता की बहुत सारी अवस्थाओं को, यहांतक कि अत्यंत जड़ तक को धारण कर लेती है। यह शरीर के अंदर या यूं कहें सौर चक्र[1] में है। सत्ता की ये अवस्थाएं बहुत-से पार्थिव जीवनों में से होती हुई रूप धारण करती, विकसित होती, प्रगति करती, व्यष्टि बनती और पूर्णता प्राप्त करती हैं और चैत्य सत्ता की रचना करती हैं। जब चैत्य सत्ता का पूरी तरह निर्माण हो जाता है तो वह अंतरात्मा की चेतना के बारे में अभिज्ञ हो जाती है और उसे पूरी तरह अभिव्यक्त करती है।

१ फरवरी १९६७

जैसे ही मैं कुछ लोगों से मिलता या उन्हें देखता हूं तो मेरे अंदर कुछ निम्नतर या गलत संवेदन उठते हैं। यह अपरिवर्तनशील अभ्यास है, इस तथ्य के बावजूद कि मैं इन प्रतिक्रियाओं से पिण्ड छुड़ाना चाहता हूं। मुझे क्या करना चाहिये ?

इसका उग्र तरीका तो यह है कि इन लोगों के साथ मानसिक और प्राणिक संबंध बिलकुल काट दिया जाये; लेकिन जबतक तुम यह न जान जाओ कि यह कैसे किया जाता है, तुम्हें अपनी चेतना से उनके प्रभाव से पैदा होनेवाले असर को दूर करना चाहिये।

१८ फरवरी १९६७

आपने कहा है, "तुम्हारी अभीप्साओं के अनुसार भगवान् तुम्हारे साथ हैं। स्वभावतः, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे तुम्हारी बाहरी प्रकृति की सनकों को मान लेते हैं—यहां मैं तुम्हारी सत्ता के सत्य की बात कह रही हूं। और कभी-कभी वे अपने-आपको तुम्हारी बाहरी अभीप्साओं के अनुसार ढाल भी लेते हैं, और अगर तुम उन भक्तों की तरह रहते हो जो बारी-बारी से विरक्ति और आलिंगन, आनन्दातिरेक और निराशा के काल में रहते हैं तो भगवान् भी, तुम जैसा विश्वास करते हो उसके आधार पर, तुमसे दूर या नजदीक रहेंगे। अतः मनोवृत्ति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है, बाह्य मनोवृत्ति भी।"

[1] सौर चक्र से माताजी का मतलब हृदय-क्षेत्र से है, नाभि-क्षेत्र से नहीं।

"बाह्य अभीप्सा" और "बाह्य मनोवृत्ति" का मतलब क्या है? सबसे अच्छी बाह्य मनोवृत्ति क्या है?

जब तक तुम भौतिक सत्ता में (बाह्य सत्ता में) योग न करो, वह अज्ञानमय रहती है, उसकी अभीप्सा और सद्भावना भी अज्ञानमय रहती है, उसकी सभी गतिविधियां अज्ञानमय रहती हैं, अतः वे दिव्य उपस्थिति को विकृत और विरूपित कर देती हैं।

इसी कारण शारीरिक कोषाणुओं की साधना अनिवार्य है।

२५ फरवरी १९६७

"ऐसी उषा जो चली नहीं जाती" ('प्रार्थना और ध्यान' से) यह अद्भुत उषा किस आध्यात्मिक अवस्था का प्रतीक है?

सतत नवीकरण का।

६ मार्च १९६७

मैं पुरुष को यूं समझता हूं:

परम प्रभु परम पुरुष, पुरुषोत्तम हैं।

आत्मा वैश्व पुरुष है।

जीवात्मा व्यक्तिगत पुरुष है और भौतिक पुरुष, प्राणमय पुरुष, मनोमय पुरुष और हृदयस्थ गुह्य पुरुष उसीके प्रक्षेपण हैं।

अंतरात्मा वह पुरुष है जो विकास में प्रवेश करता है।

क्या मेरा यह समझना ठीक है?

यह कहने का एक तरीका है। मानसिक व्याख्याएं कभी मोटे अनुमानों, कहने के तरीकों से बढ़कर कुछ नहीं होतीं।

१० मार्च १९६७

मेरा शरीर बहुत दुर्बल है और निश्चेतना तथा तमस् से भरा है। यह शरीर आपका अच्छा यंत्र कैसे बन सकता है?

हर कोषाणु के केन्द्र में दिव्य चेतना रहती है। अभीप्सा और बारंबार आत्म-दान द्वारा कोषाणुओं को पारदर्शक बनाना चाहिये।

१८ मार्च १९६७

क्या "अंतरात्मा की चेतना के बारे में अभिज्ञ होना" और भगवान् के साथ एक होना एक ही चीज है?

अंतरात्मा की चेतना के बारे में अभिज्ञ होना भगवान् के साथ एक होने का सबसे सरल और सबसे निश्चित तरीका है।

२५ मार्च १९६७

हमें जिस किसी चीज की जरूरत होती है, आप वह सब देती हैं, लेकिन मेरी ग्रहण करने की क्षमता बहुत ही कम है, अतः मैं जो थोड़ा-बहुत ग्रहण कर भी पाता हूं उसे आत्मसात् करने में बहुत समय लगता है। मैं परेशान हुए बिना प्रार्थना करता हूं: इस स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है?

यह कठिनाई प्रायः सत्ता के एकीकरण के अभाव से आती है। कुछ भाग हठीले होते हैं और ग्रहण करने से इंकार करते हैं। उन्हें थोड़ी-थोड़ी करके शिक्षा देनी चाहिये, जैसे बच्चे को पढ़ाया जाता है—और उसी तरह स्थिति थोड़ी-थोड़ी करके सुधरेगी।

७ अप्रैल १९६७

जगत् की वर्तमान स्थिति को देखकर हम कह सकते हैं कि बुरे-से-बुरा हो चुका है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब प्रभु धरती को अपनी भुजाओं में ले लेंगे और "पृथ्वी का रूपांतर हो जायेगा।" क्या वह दिन नजदीक आ रहा है?

हो सकता है कि इस समय वही हो रहा है—लेकिन यह मानव माप के अनुसार नहीं है।

प्रभु का एक मुहूर्त संभवतः हमारे कई वर्षों के बराबर होता है!

१२ अप्रैल १९६७

यद्यपि इस तथ्य में लालित्य और काव्य है कि औपचारिक रूप से हमारे आश्रम के सृजन की कोई तारीख नहीं है, फिर भी क्या सच्ची गुह्य दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि आश्रम का जन्म माताजी के आगमन के साथ हुआ?

आश्रम का जन्म मेरे जापान से लौटने के कुछ वर्षों के बाद १९२६ में हुआ था।

१७ अप्रैल १९६७

प्रभु ने आपसे कहा : "एक दिन तू मेरा सिर होगी, लेकिन अभी के लिये तू अपनी दृष्टि पृथ्वी की ओर घुमा।" ('प्रार्थना और ध्यान' से)

मधुर मां, "तू मेरा सिर होगी" का मतलब क्या है ?

सिर है मौलिक कल्पना करनेवाली 'चेतना'।

२२ अप्रैल १९६७

जब मैं आपके ज्यादा नजदीक होना चाहता हूं तो मैं देखता हूं कि मुझे अपने अहं को जीतना होगा। परंतु जब मैं अपने अहं को जीतने की सोचता हूं तो मुझे लगता है कि मुझे आपके ज्यादा नजदीक होना चाहिये। मैं इस गुत्थी को कैसे सुलझा सकता हूं ?

उसे सुलझाने के लिये भागवत कृपा मौजूद है।

१ मई १९६७

मैं आपका अच्छा बच्चा कैसे बन सकता हूं ?

बिलकुल सरलता के साथ, सीधे-सादे रूप से, अपने-आप होकर।

५ मई १९६७

जब मैं आपको कुछ रुपया-पैसा या कोई और चीज दे पाता हूं तो उससे मुझे बहुत खुशी होती है, और जब मेरी सत्ता का कोई अंग अपने-आपको अर्पित कर पाता है तो मुझे और भी अधिक खुशी होती है। लेकिन इस अनुभव के बावजूद मेरी सारी सत्ता आपको अर्पित नहीं होती। कैसी मूढ़ता है ! यह कैसे बदली जा सकती है ?

हम बहुत-से भिन्न-भिन्न भागों से मिलकर बने हैं जिन्हें चैत्य सत्ता के चारों ओर

एकत्रित करना है—अगर हम उसके बारे में सचेतन हों—या कम-से-कम केंद्रीय अभीप्सा के चारों ओर इकट्ठा करना है। अगर हम यह एकीकरण न कर पायें तो हम इस विभाजन को अपने अंदर लिये रहते हैं।

यह करने के लिये हर विचार, हर भाव, हर संवेदन, हर आवेश, हर प्रतिक्रिया को, प्रकट होने के साथ-ही-साथ, चेतना में केंद्रीय सत्ता या उसकी अभीप्सा के प्रति अर्पित कर देना चाहिये। जो मेल खाता है उसे स्वीकार कर लिया जाता है और जो मेल नहीं खाता उसे अस्वीकार कर दिया जाता, त्याग दिया या रूपांतरित कर दिया जाता है।

यह एक लम्बा प्रयास है जिसमें कई वर्ष लग सकते हैं—लेकिन वह एक बार हो जाये, ऐक्य प्राप्त हो जाये तो रास्ता सरल और तेज बन जाता है।

१० मई १९६७

मैं अनुभव करने की इस आदत से कैसे पिण्ड छुड़ा सकता हूं कि मेरी जो भौतिक चीजें हैं उनका स्वामी मैं ही हूं?

अगर तुम पूरी तरह, समग्र रूप से भगवान् के हो तो जो कुछ तुम्हारा है, जो कुछ तुम्हारी भौतिक सत्ता का अंश है, वह भगवान् का है।

१६ मई १९६७

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि आपने मेरे अंदर जो अग्नि प्रज्वलित की है वह उन सभी चीजों को भस्म कर डालेगी जो मुझे आपसे अलग करती हैं। उसकी परिपूर्ति के लिये मुझे क्या करना चाहिये?

हर बार जब तुम अपने अंदर कोई ऐसी चीज देखो जो इंकार करती या प्रतिरोध करती है तो उसे अग्नि की ज्वाला में फेंक दो, जो अभीप्सा की ज्वाला है।

१९ मई १९६७

क्या मेरे हाथों को सचेतन बनाना संभव है ताकि वे कोई अपूर्ण, अनुचित या गलत चीज न करें? इसका क्या उपाय है, दिव्य जननी?

जब हाथ कुछ काम कर रहे हों तो उनपर एकाग्र होने से यह बिलकुल संभव होता है।

चित्रकारों, मूर्तिकारों, संगीतज्ञों (विशेषकर पियानो बजानेवालों) के हाथ प्रायः बहुत सचेतन और सदा बहुत कुशल होते हैं। यह प्रशिक्षण का सवाल है।

२९ मई १९६७

मैं अपनी एक कठिनाई को जीतना चाहता हूं: जब मैं अपने अंदर दोष या दुर्बलता देखता हूं तो मेरे अंदर कोई चीज उसे उचित ठहराने की कोशिश करती है या मुझे उस ओर ध्यान देने से रोकती है।

यह "कोई चीज" अज्ञानमय आत्मसम्मान का कपट है जिसने अभीतक यह नहीं समझा है कि अपने दोषों को इस आशा से छिपाने की अपेक्षा कि वे दिखायी न देंगे, उन्हें ठीक करने के लिये पहचानना ज्यादा उच्च और उदात्त है।

जैसा कि सभी मनोवैज्ञानिक समस्याओं में होता है, यहां भी सचाई और निष्कपटता, संपूर्ण और दृढ़प्रतिज्ञ निष्कपटता ही सच्चा उपचार है।

१ जून १९६७

कृपया बतलाइये कि मैं अपने अतीत से कैसे पिण्ड छुड़ा सकता हूं, जो इतने जोर से चिपका रहता है।

अतीत से पिण्ड छुड़ाना इतना कठिन काम है कि वह लगभग असंभव मालूम होता है।

लेकिन अगर तुम बिना कुछ बचाये हुए अपने-आपको पूरी तरह भविष्य को **सौंप दो** और अगर यह सौंपना हमेशा नया होता रहे तो अतीत **अपने-आप झड़ जायेगा** और तुम्हारे लिये भार न बनेगा।

१४ जून १९६७

एक सवेरे मैं आपकी पुस्तक 'प्रार्थना और ध्यान' पढ़ रहा था। मैं जानना चाहता था कि कौन-सी गति पहले आती है, "तेरे अंदर निवास करना" या "तेरे लिये जीना"। इससे पहले कि मन उत्तर पाने की खोज पर निकल सके, यह सहज उत्तर आया, "दोनों अवस्थाएं एक-दूसरे की पूरक हैं।"

हां, दोनों पूरक हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे युगपत् हैं। बहुधा, "तेरे

लिये जीना'' पहले आता है और अगर सत्ता एकत्रित और सच्ची हो तो ''तेरे अंदर निवास करना'' तुरंत आ जाता है।

लेकिन निश्चय ही, पहली अवस्था को पूर्ण होने के लिये दूसरी का उपस्थित होना जरूरी है।

२४ जून १९६७

आपके हाथ हमेशा देने के लिये खुले रहते हैं, लेकिन मैं एक छोटा-सा अंश ही पा सकता हूं, क्योंकि मैं काफी ग्रहणशील नहीं हूं।

यह जगत् की अवस्था का ठीक-ठीक चित्र है जो इसलिये दुःख पाता है क्योंकि वह ग्रहणशील नहीं है, जब कि दिव्य प्रेम की ओर खुलने से वह परमानन्द में निवास कर सकता है।

लेकिन इसका एक इलाज है :

निष्कपट और सतत अभीप्सा।

६ जुलाई १९६७

मुझे यह दिखलायी देना शुरू हुआ है कि साधक का व्यक्तिगत प्रयास और उसका परिणाम दोनों भागवत कृपा पर निर्भर होते हैं।

इस बारे में तुम विनोद के साथ कह सकते हो कि हम सभी दिव्य हैं, लेकिन हम मुश्किल से उसे जानते हैं और जिसे हम, 'हम' कहते हैं वह हमारे अंदर वह अंश है जो इस बात से अनभिज्ञ है कि वह दिव्य है।

१३ जुलाई १९६७

धरती पर भगवान् के राज्य को स्थापित करने के लिये कौन ज्यादा धीमा है—मनुष्य या स्वयं भगवान् ?

मनुष्य को लगता है कि भगवान् धीमे हैं।

भगवान् की आंखों में निश्चय ही मनुष्य धीमा है !

लेकिन शायद इन दोनों ही में धीमापन एक-सा नहीं है।

२० जुलाई १९६७

क्या आप कृपया बतलायेंगी कि क्या यह सच है कि बहुधा मृत्यु के बाद आदमी अपनी पुत्री का बालक बनकर लौटता है ?

पहले तो मृत व्यक्ति की पुत्री होनी चाहिये ताकि वह उसका बालक होकर लौट सके।

यह एकदम निर्बाध सत्य नहीं है—उससे बहुत दूर है—लेकिन भारत में ऐसी घटनाएं बहुत होती हैं जहां अभीतक बार-बार पुनर्जन्म लेने का विचार काफी प्रचलित है।

३० जुलाई १९६७

मैंने अपने-आपसे पूछा, "अनिर्वचनीय का वर्णन कैसे किया जा सकता है ?" उत्तर आया, "उसे जी कर, वही बन कर, वही होकर।" माँताजी क्या कहती हैं ?

यह ठीक है।

७ अगस्त १९६७

एक बात मेरी समझ से बाहर है : आप जितना काम करती हैं उसके लिये आप समय कहां से निकाल लेती हैं ? शायद आपके लिये भौतिक समय का अस्तित्व ही नहीं है !

शरीर समय का दबाव सह सकता है क्योंकि वह ठोस रूप से जानता और अनुभव करता है कि वह अपने-आप नहीं जीता और काम करता है, कि केवल परम प्रभु का अस्तित्व है और केवल वही जीते और कार्य करते हैं।

और फिर, सारी सहनशक्ति का रहस्य यही है।

१२ अगस्त १९६७

किसी अज्ञात लेखक का एक मजेदार वाक्य देखिये : "भगवान् की कृपा है कि मैं नास्तिक हूं।"

वाक्य और भी मजेदार होता अगर उसने लिखा होता, "मुझे नास्तिक बनाने के लिये भगवान् को धन्यवाद।"

२२ अगस्त १९६७

जहांतक मैं समझ पाया हूं, आपने कहा था कि सभी आश्रमवासियों के चैत्य पुरुष एक ही परिवार के हैं। इसके बावजूद, हममें बहुत बार सहयोग का अभाव होता है मां, ऐसा क्यों होता है ?

अगर मैंने ऐसा कहा था (संभवतः इन्हीं शब्दों में तो नहीं) तो उसका संकेत एक वैश्व परिवार की ओर हो सकता है जो सभी भेदों और विभिन्नताओं तक के लिये खुला हो।

बहरहाल, आपसी गलतफहमियों और सहयोग का अभाव केवल बाहरी भौतिक और प्राणिक सत्ता से ही आ सकता है और यह सत्ता इसी जीवन में बनती है और यह अभीतक चैत्य के शासन और प्रभाव में नहीं है। जैसे ही तुम अपने चैत्य के साथ एक हो जाओ वैसे ही, आपस में टकराती हुई दुर्भावना के संघर्षों का अस्तित्व नहीं रह सकता।

२४ अगस्त १९६७

हम प्रकाश को पाने के लिये छाया का उपयोग कैसे कर सकते हैं ?

चित्रकार प्रकाश को प्रकट करने के लिये छाया का उपयोग करते हैं।

छाया निश्चेतना का प्रतीक है। दिन में सचेतन होने के प्रयास के बाद मनुष्य रात को इसी में विश्राम करते हैं। जब चेतना सर्वशक्तिमान् बन जायेगी तो छाया की कोई जरूरत न रहेगी और वह लुप्त हो जायेगी।

४ सितम्बर १९६७

कहा जाता है कि तंत्रों में चक्रों को नीचे से खोलने की कुछ विधियां हैं, जब कि पूर्णयोग में माताजी की शक्ति के अवरोहण द्वारा चक्र ऊपर से खुलता है।

चक्रों के खुलने की इन दो पद्धतियों के परिणामों में क्या भेद होता है ?

श्रीअरविंद के पूर्णयोग में कोई कठोर नियम या भेदभाव नहीं है। हर एक अपने पथ का अनुसरण करता है और अपनी अनुभूतियां पाता है। फिर भी, श्रीअरविंद ने बहुत बार कहा और लिखा है कि उनका योग वहीं से शुरू होता है जहां औरों का समाप्त होता है।

कहने का मतलब यह है कि सामान्यतः योग का अर्थ भौतिक चेतना को जगाना और धीरे-धीरे उसे भगवान् की ओर उठाना है। जब कि श्रीअरविंद कहते हैं कि

उनका योग करने के लिये यह जरूरी है कि तुम पहले ही भगवान् को पा चुके होओ और उनके साथ एक हो चुके होओ—तब चेतना सत्ता की सभी अवस्थाओं में से होकर अत्यंत जड़ भौतिक स्तर तक उतरती है और अपने साथ दिव्य शक्ति को लाती है, ताकि शक्ति समस्त सत्ता को रूपांतरित कर सके और अंततः भौतिक शरीर को भी दिव्य बना सके।

२० सितम्बर १९६७

रेडियो के लिये अपने संदेश[1] में आपने यूनिटी (एकता) शब्द की जगह यूनियन (सम्मिलन) कर दिया। मधुर मां, क्या मैं जान सकता हूं कि यह परिवर्तन क्यों किया गया है?

अधिकतर लोग जब "यूनिटी" शब्द सुनते हैं तो वे उसका अर्थ **एकरूपता** समझ लेते हैं और इससे अधिक सत्य से दूर और कोई बात नहीं हो सकती।

२५ सितम्बर १९६७

क्या सहजता सहज रूप से आ जाती है या उसे पाने के लिये कोई तपस्या करनी पड़ती है?

भावों और क्रियाओं में सहजता चैत्य के साथ स्थायी संबंध से आती है, जो विचारों में व्यवस्था लाता है और प्राणिक आवेशों पर अपने-आप नियंत्रण करता है।

३० सितम्बर १९६७

आपने मुझे शरीर में दिव्य चेतना को जगाने का महत्त्व सिखा दिया है। अब मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मेरे शरीर की अभीप्सा को अपनी ओर जगा लें।

शरीर के कोषाणु दिव्य चेतना के लिये प्यासे हैं और जब वे उसके साथ संपर्क में लाये जाते हैं तो उनकी अभीप्सा बहुत तीव्र हो उठती है।

२१ अक्तूबर १९६७

[1] "हे भारत, प्रकाश और आध्यात्मिक ज्ञान के देश! जगत् में अपने सच्चे लक्ष्य की ओर जाग, ऐक्य और सामंजस्य का मार्ग दिखला।" २३ सितम्बर १९६७ को आकाशवाणी-केंद्र पांडिचेरी के उद्घाटन के लिये दिया गया संदेश।

आप जो चाहती हैं केवल वही बनने की अभीप्सा के बारे में मैंने सुना है।

मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ने के लिये सिर्फ यही सबसे अच्छी अवस्था है।

२६ अक्तूबर १९६७

दो बहुत अधिक धनाढ्य पुरुष बहुत धार्मिक और ईमानदार होने का दावा करते हैं। उन्हें अपने हिसाब के अनुसार जो देना है वे उसे चुकाने से इंकार करते हैं। उनमें से एक मेरे साथ उस विषय में बोलता तक नहीं है और दूसरा कहता है, "भगवान् पर भरोसा रखो, तुम अपना धन नहीं खोओगे।"

अगर माताजी इन दोनों को बस इतने समय के लिये ईमानदार बना दें कि वे अपना हिसाब-किताब चुकता कर दें . . .

कहा जाता है कि ईसा रोगियों को स्वस्थ कर देते थे और मुर्दों को भी खड़ा कर देते थे। एक बार उनके आगे उपचार के लिये एक जड़मति को लाया गया तो वे यह कहते हुए खिसक गये कि किसी मूढ़ को बुद्धिमान् बनाना असंभव है।

किसी बेईमान को ईमानदार बनाना इससे भी बढ़कर असंभव चमत्कार है।

८ नवम्बर १९६७

रूपांतर के लिये कौन ज्यादा तेज है : भागवत प्रेम या महाकाली की शक्ति ?

काली की शक्ति की जरूरत उन्हीं लोगों के लिये होती है जो अभीतक दिव्य प्रेम की ओर खुले नहीं हैं। जो दिव्य प्रेम की ओर खुले हैं उन्हें और किसी की जरूरत नहीं है।

११ नवम्बर १९६७

आपकी कृपा से अब मेरा शरीर अपने आलस्य से पिण्ड छुड़ाने के लिये सहयोग दे रहा है। मेरे लिये यह नया अनुभव है कि शरीर में भी अपनी इच्छा-शक्ति होती है।

जब शरीर परिवर्तित हो जाये तो वह जानता है कि सहयोग कैसे किया जाये।

२९ नवम्बर १९६७

अभिव्यक्ति में पहले कौन आया था, देवता या असुर ?

प्राचीनतम परंपरा के अनुसार महाशक्ति के पहले चार निर्गत अंश थे—चेतना, प्रेम, सत्य और जीवन। इन्होंने अपने-आपको अपने परम मूल से काट लिया (अपने-आपको अलग कर लिया) और बन गये निश्चेतना, दुःख, मिथ्यात्व और मृत्यु।

इस हानि की क्षतिपूर्ति के लिये दूसरा अंश निर्गत हुआ। ये हैं देवता।

स्वभावतः, यह कहने का एक ढंग है जो एक ऐसी वास्तविकता के साथ मेल खाता है जिसे शब्दों में रखना कठिन है।

२ दिसम्बर १९६७

रूपांतर बहुत उच्च कोटि की अभीप्सा, समर्पण और ग्रहणशीलता की मांग करता है, है न ?

रूपांतर संपूर्ण और समग्र समर्पण की मांग करता है। परंतु क्या हर एक सच्चे साधक की यही अभीप्सा नहीं है ?

संपूर्ण का अर्थ है ऊपर से नीचे तक सत्ता की सभी अवस्थाओं में, अत्यंत जड़ से लेकर अत्यंत सूक्ष्म तक।

समग्र का अर्थ है क्षैतिज, सभी विभिन्न और प्रायः विरोधी भागों में जिनसे बाहरी सत्ता (भौतिक, प्राणिक और मानसिक) बनती है।

४ दिसम्बर १९६७

माताजी के दिये हुए फूलों की सुगंध प्रायः असाधारण होती है।

फूल बहुत ग्रहणशील होते हैं और जब उनसे प्यार किया जाये तो वे खुश होते हैं।

१५ दिसम्बर १९६७

मैंने इस जीवन में और पिछले जन्मों में भगवान् को बहुत लम्बे समय तक भुलाये रखा। आपकी कृपा की एक बूंद सारे खोये हुए समय की क्षतिपूर्ति कर सकती है।

भूतकाल चाहे जो रहा हो, भगवान् के साथ नाता जोड़ने के लिये समय की नहीं, अभीप्सा की सचाई और निष्कपटता की जरूरत है।

१९ दिसम्बर १९६७

पुराने संतों की कथाओं में प्रायः हमेशा अश्रुओं और परिताप का वर्णन आता है। क्या हमारी भगवान् के लिये अभीप्सा में इनके बिना भी आवश्यक तीव्रता और सचाई आ सकती है ?

अश्रु और परिताप ऐसी दुर्बल और तुच्छ प्रकृति के संकेत हैं जो अभी तक समस्त शक्ति और महिमासहित भगवान् को ग्रहण करने में असमर्थ है। वे केवल अनावश्यक ही नहीं, व्यर्थ और भागवत सिद्धि में बाधक भी हैं।

२३ दिसम्बर १९६७

आप अपने शब्दों में कुछ ऐसी चीज रख देती हैं जिससे हम उस सत्य को भी देख सकते हैं जिसे शायद व्यक्त नहीं कर पाते। वह कौन-सी चीज है ?

चेतना।

२७ दिसम्बर १९६७

मेरा ख्याल है कि हमेशा, हर क्षण, कोई-न-कोई आपको बुलाता रहता है और आप जवाब देती हैं। क्या इससे आपकी नींद या विश्राम में बाधा नहीं पड़ती ?

दिन-रात सैकड़ों पुकारें आती रहती हैं—लेकिन 'चेतना' सदा चौकन्नी रहती और उत्तर देती है।

हम केवल भौतिक रूप से देश और काल द्वारा सीमित होते हैं।

३ जनवरी १९६८

यह कैसे होता है कि आदमी जितना अमीर हो उतना ही बेईमान भी होता है ?

क्योंकि भौतिक धन विरोधी शक्तियों के अधिकार में है—और इसलिये कि वे अभी तक दिव्य शक्तियों के प्रभाव की ओर नहीं पलटी हैं, यद्यपि काम शुरू हो गया है।

वह जीत 'सत्य' की विजय का एक भाग बनेगी।

धन-संपदा को व्यक्तिगत सम्पत्ति न होना चाहिये, उसे सबके हित के लिये भगवान् के अधिकार में होना चाहिये।

४ जनवरी १९६८

जब माताजी कहती हैं कि धन-सम्पदा को व्यक्तिगत सम्पत्ति न होना चाहिये तो मेरा ख्याल है कि जो चीज आनी चाहिये वह है सम्पत्ति-विषयक कानून में परिवर्तन नहीं बल्कि जिनके पास धन है उनकी मनोवैज्ञानिक वृत्ति में परिवर्तन।

निःसंदेह।

केवल मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही एकमात्र समाधान हो सकता है।

६ जनवरी १९६८

आश्रमवासियों के पास अपना धन भगवान् के सुपुर्द करने का एक अच्छा तरीका है, वे उसे माताजी को दे सकते हैं।

लेकिन और लोग यह कैसे कर सकते हैं? क्या यह कहा जा सकता है कि हर एक को सम्पत्ति-भाव दूर कर देना चाहिये और अपने धन को समय-समय पर भीतर से मिलनेवाले भागवत आदेश के अनुसार खर्च करना चाहिये?

मुझे विश्वास है कि अगर कोई मार्ग पर इतना आगे बढ़ चुका है कि यह ज्ञान प्राप्त कर सके कि धन एक निर्वैयक्तिक शक्ति है जिसका उपयोग पृथ्वी की प्रगति के लिये किया जाना चाहिये तो वह व्यक्ति भीतर से इतना विकसित अवश्य होगा कि धन के सर्वोत्तम उपयोग के बारे में ज्ञान पा ले।

८ जनवरी १९६८

परसों जब मैं आपके लिये गुलदान सजा रहा था तो मैंने एक फूल से कहा, "ओह, तुम माताजी के पास जा रहे हो!" और वह सचमुच मुस्कराया। कल और आज भी ऐसा ही हुआ।

यह सचमुच बहुत मजेदार है। वह फूल गुलाब का था या जपा का?

२७ जनवरी १९६८

जपा के फूल ने मुझे यह अनुभूति दी।

हां, यह बहुत सचेतन फूल है, मुझे इसके बहुत-से प्रमाण मिले हैं।

२७ जनवरी १९६८

क्या भगवान् की सतत स्मृति ऐक्य का प्रारंभ है ?

ऐक्य का प्रारंभ सतत स्मृति से भी पहले आता है। जब स्मृति सतत हो तो हम प्रायः एक ऐसी उपस्थिति का अनुभव करते हैं जो अपने-आपको स्मृति पर आरोपित करती है।

२९ जनवरी १९६८

"परात्पर माता" (और रूपांतर के फूल की ऊपरी पंखुड़ी) के बारे में बात करते हुए आपने कहा था, "परात्पर एक ही साथ एक और दो (या द्वैत) दोनों है।" इसका मतलब क्या हुआ ?

सृष्टि के परे है पूर्ण ऐक्य परंतु संभाव्य रूप में उसके अंदर द्वित्त भी है क्योंकि महाशक्ति सृष्टि की आवश्यकताओं के लिये अभिव्यक्त होगी।

५ फरवरी १९६८

पिछले सोमवार को आपने मुझे परात्पर के बारे में बतलाया था जो एक ही साथ एक भी है और दो भी। स्वभावतः मैं इस सच्चे ज्ञान को पाने के लिये सत्य चेतना के आने की प्रतीक्षा करूंगा। लेकिन कल मैंने आपसे जो कहा उसे लिखने का प्रयास किया।

"मन वस्तुओं के बारे में उत्तरोत्तर क्रम में सोचता है। लेकिन ऊपर और परे हर चीज का अस्तित्व एक साथ होता है। एक, एक भी है और दो भी; अभिव्यक्त और अनभिव्यक्त भी, हर चीज का अस्तित्व एक साथ होता है। जब वह सृष्टि में विषय बनता है, अभिव्यक्ति में आता है तो उत्तरोत्तर क्रम होता है, एक, दो . . . लेकिन यह केवल बोलने का एक तरीका है। कोई अनुक्रम नहीं होता, कोई आरंभ नहीं होता। पूर्ण ऐक्य में, परे, हर चीज एक साथ युगपत् रूप से विद्यमान रहती है। इसे समझा नहीं जा सकता। इसे अनुभव करना होता है। तुम इसका अनुभव कर सकते हो।"

कृपया इन पंक्तियों का संशोधन कर दीजिये।

ये ठीक हैं।

९ फरवरी १९६८

निर्गत अंश और रूपायण में क्या फर्क होता है ?

ये शब्द आज के भौतिक जगत् पर लागू नहीं होते।

व्याख्या केवल मोटा अनुमान होगी। फिर भी तुम कह सकते हो कि निर्गत अंश निर्गमन करनेवाले के अपने तत्त्व से बना होता है जब कि रूपायण रूपायण करनेवाले के तत्त्व के बाहर के पदार्थ से बना होता है।

तुलना के लिये हम कह सकते हैं कि निर्गत वस्तु एक बालक की तरह है जो अपनी मां के पदार्थ में से बनता है जब कि रूपायण एक जीवित मूर्ति की तरह है जो रूप देनेवाले के बाहर के द्रव्य से बनी होती है।

स्वभावतः यह बहुत ही मोटी व्याख्या है।

११ मार्च १९६८

मार्ग लम्बा, बहुत लम्बा, लगभग अंतहीन है।

यह सच है कि मार्ग बहुत लम्बा है, लेकिन जो **सचाई के साथ** उसका अनुसरण करता है उसके लिये **सचमुच बहुत मजेदार** है और पग-पग पर तुम्हें अपने श्रम के लिये पुरस्कार मिलता है।

१६ मार्च १९६८

मुझे लगता है कि ओरोविल की भूमि तक अभीप्सा करती है।
क्या यह सच है, मधुर मां ?

हां, स्वयं भूमि में अपनी चेतना है, यद्यपि यह चेतना बौद्धिक रूप में नहीं है और अपने-आपको व्यक्त नहीं कर सकती।

२१ मार्च १९६८

आज आपने मुझे मानव विधान और सत्य के बीच की आधारभूत असंगति दिखला दी है। लेकिन यह एक ऐसी समस्या है जिसका मुझे बहुत अधिक सामना करना पड़ता है।

अभी तक मानवजाति में राजनीति और तथाकथित न्याय सत्य की ओर पूरी तरह बंद

हैं। लेकिन परिवर्तन के लिये उनकी बारी भी आयेगी, शायद हम जितना सोचते हैं उससे जल्दी ही।

२८ मार्च १९६८

क्या हम कह सकते हैं कि सभी अपव्यय चेतना के अपव्यय को प्रतिबिम्बित करते हैं?

किसी भी तरह का अपव्यय निश्चेतना का परिणाम होता है। अपनी पवित्रता में चेतना पूर्ण और भ्रमातीत है।

२ अप्रैल १९६८

उपनिषद् में कहा गया है कि जब आदमी सोता है तो वह शुद्ध सत् में जा पहुंचता है। क्या यह बात केवल योगियों के लिये है या सभी के लिये?

सिद्धांततः यह बात सब पर लागू होती है, लेकिन मानवजाति का एक बहुत बड़ा भाग निश्चेतना में जा गिरता है और कहीं शुद्ध सत् के साथ कोई संपर्क होता भी है तो वह एकदम निश्चेतन होता है। बहुत ही कम लोग इस संबंध के बारे में सचेतन होते हैं। सामान्यतः यह योग का परिणाम होता है।

८ अप्रैल १९६८

(नींद में निश्चेतना के बारे में)

नींद में आंतरिक सत्ताएं सचेतन रूप से सक्रिय हो उठती हैं। जब आदमी जागता है तो वह जाग्रत् सत्ता होती है जो रात की क्रियाओं के बारे में **सचेतन नहीं होती।**

१६ अप्रैल १९६८

कल के लिये जो उद्धरण[1] *चुना गया है उसमें श्रीअरविंद "ऐसे सत्य के बारे में*

[1] "वस्तुओं के आध्यात्मिक क्रम में हम अपनी दृष्टि और अभीप्सा को जितना ही ऊंचा प्रक्षिप्त करें उतना ही अधिक महान् सत्य हमारे ऊपर उतरने की कोशिश करेगा, क्योंकि वह पहले से ही हमारे अंदर उपस्थित है और अपने-आपको उस अवस्था से मुक्त करने के लिये पुकार रहा है जो उसे अभिव्यक्त प्रकृति में छिपाये हुए है।" —श्रीअरविंद

कहते हैं जो हम पर उतरना चाहता है" और जो "पहले से ही हमारे अंदर मौजूद है।" कृपया इस विरोधाभास को समझाइये, जो मेरे ख्याल से केवल ऊपर से दिखायी देता है।

यह विरोधाभास नहीं है।

यह वैसा ही तथ्य है जैसा भगवान् के बारे में है जो हमारी सत्ता के केन्द्र में हैं और साथ ही सृष्टि के परे भी हैं, वे भगवान् जिनकी ओर सारी सृष्टि गति कर रही है, लेकिन अगर वह उन्हें स्वयं अपने अंदर न लिये रहती तो उन तक कभी न पहुंच पाती।

तुम्हें समझने के लिये देश और जड़ भौतिक की धारणाओं के परे जाना चाहिये।

२३ अप्रैल १९६८

आज सवेरे जब मैंने सोचा कि मैं आपको उन बंधनों और आसक्तियों की रात के बारे में लिखूं जो मुझे तीन सप्ताह से घेरे हुए हैं तो मुझे लगा कि वास्तव में ये चीजें लम्बे समय से हैं और अब आपकी कृपा ने उन्हें मेरी नजर के सामने ला रखा है ताकि अगला कदम उठाया जा सके।

मां, रात मेरे लिये पहले ही बहुत अधिक लम्बी हो चुकी है, लेकिन जबतक मैं अपने-आपको आपके चरणों में रख सकूं तो इसका बहुत महत्त्व नहीं है।

मेरे अनुभव के अनुसार, हमें नष्ट करने या निष्कासित करने की कोशिश न करनी चाहिये। तुम्हें अपना सारा प्रयास **सत्य चेतना** के निर्माण और उसे प्रबल करने पर लगाना चाहिये और यह अपने-आप सत्ता के एकीकरण का काम कर देगा।

इस तरह हर चीज जिसे रूपांतरित करना है बिलकुल स्वाभाविक रूप से रूपांतरित हो जायेगी—किसी संघर्ष या हानि के बिना।

१३ मई १९६८

हम उस दिन को कैसे जल्दी ला सकते हैं जब सारी सत्ता कह सके, "मैं आपका हूं, केवल आपका?"

दो क्रियाएं हैं जो व्यवहार में एक बन जाती हैं।

१. उस लक्ष्य को **कभी न भूलो** जिसे तुम प्राप्त करना चाहते हो।

२. अपनी सत्ता के किसी भी भाग को या उसकी किसी भी गतिविधि को अपनी अभीप्सा का विरोध न करने दो।

इसके लिये यह भी जरूरी है कि अपनी रातों के बारे में सचेतन होओ, क्योंकि बहुत बार रात की क्रियाएं दिन की अभीप्सा का विरोध करती हैं और उसके काम को व्यर्थ कर देती हैं।

जागरूकता, सचाई, प्रयास का सातत्य—और भागवत कृपा बाकी सब कुछ कर देगी।

२० मई १९६८

कहते हैं कि चैत्य ज्वाला के प्रकाश में "अच्छी और निर्दोष क्रियाएं" भी अलग-अलग रंग ले लेती हैं।

अच्छे-बुरे की धारणा ही बिलकुल बदल जाती है।

हम सरल रूप में कह सकते हैं कि जो कुछ भगवान् की ओर ले जाता है वह अच्छा है और जो कुछ भगवान् से दूर ले जाता है वह बुरा है।

बहुत-से सद्गुण मनुष्यों को—वे जो कुछ हैं उसी से संतुष्ट करके—भगवान् से दूर ले जाते हैं।

२२ मई १९६८

श्रीअरविंद ने सावित्री में कहा है :

हां, भागवत सूर्य के निकट बहुत-से सुखद मार्ग हैं; लेकिन ऐसे लोग कम ही हैं जो सूर्यालोकित मार्ग पर चलते हों; केवल अंतरात्मा में शुद्ध लोग ही प्रकाश में चल सकते हैं।

अपेक्षित शुद्धि को प्राप्त करना कितना आनंददायक होगा!

जब तुम दुःख-दारिद्र्य में रहनेवाले मनुष्यों के साथ रहते हो तो केवल भागवत कृपा ही यह स्थिति ला सकती है—उनमें भी जो तपस्या द्वारा अपने अहंकार को लुप्त कर चुके हैं।

यह सभी व्यक्तिगत प्रयास के परे है।

२७ मई १९६८

अहंकार को जीतने के लिये सबसे अधिक प्रभावकारी तरीका क्या है?

सरल-से-सरल और सबसे अधिक प्रभावी उपाय है **उसे भगवान् के अर्पण करना;** यह अर्पण जितना निष्कपट और मौलिक होगा उतनी ही जल्दी परिणाम भी आयेगा।

२८ मई १९६८

ऊर्ध्वमुख रहना और सत्य चेतना में निवास करना—दोनों एक-दूसरे के पूरक मालूम होते हैं।

क्या ये एक ही बात को कहने के दो तरीके नहीं हैं? —निश्चय ही, एक ही चीज करने के दो तरीके हैं।

३ जून १९६८

"सावधान रहो! ऊपर देखो" की आगाही देने के लिये, चौकसी के लिये किसे रखना चाहिये?

उसे जिसे साधारणतः अंतःकरण कहा जाता है, लेकिन सचमुच वह चैत्य सत्ता है। और तुम उसकी आवाज तभी सुन सकते हो जब तुम बहुत ध्यान दो, क्योंकि वह कोई शोर नहीं मचाती।

५ जून १९६८

क्या पारदर्शक सचाई अधिक प्रभावी, अनिवार्य साधन है, या यह अपने-आपमें एक उपलब्धि है?

सचाई के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। संपूर्ण सचाई के साथ सब कुछ संभव है।

१२ जून १९६८

अपने अज्ञान के साथ मनुष्य के प्रेम का मूल क्या है?

वह है निश्चेतना।

निश्चेतना समस्त प्रयास का नकार है। निश्चेतना पर (यानी, इस बात की स्वीकृति

कि अभी कोई ऐसी चीज जानने के लिये बाकी है जिसे हम नहीं जानते) भागवत प्रभाव का पहला परिणाम है अज्ञान।

१५ जून १९६८

श्रीअरविंद सावित्री के लक्ष्य की दृढ़ता के बारे में कहते हैं : ''दृढ़ ध्रुवतारे की भांति निर्विकार।''

क्या हम कह सकते हैं कि जो साधक रूपांतर के लिये अभीप्सा करता है उससे ऐसे ही दृढ निश्चय की मांग की जाती है ?

यह सृष्टि का महान् रहस्य है : निर्विकार और फिर भी सदा पुनर्नवीकृत।

१७ जून १९६८

सावित्री कहती है :

''शुद्ध देवों के लिये ही आशा नहीं है, उग्र और अंधकारमय देवता भी, क्रोध के साथ एक ही वक्ष से नीचे कूदे उस चीज को पाने के लिये जिसे श्वेत देव न पा सके थे। वे भी सुरक्षित हैं; एक मां की आंखें उनपर लगी हैं और प्रेम के साथ आगे की ओर फैली हुई उसकी भुजाएं अपने विद्रोही बालकों की कामना करती हैं।''

श्वेत देव किस चीज से वंचित रह गये थे ?

असुरों के परिवर्तन से।

२४ जून १९६८

क्या असुरों की शक्ति भी वैसी अपार नहीं है जैसी देवों की है ?

अशुभ के स्पंदन वस्तुतः शुभ के स्पंदनों से कम शक्तिशाली होते हैं।

२६ जून १९६८

क्या हम कह सकते हैं कि संपूर्ण सचाई पाना और अहंकार का उन्मूलन करना बहुत अधिक अन्योन्याश्रित है ?

केवल परम प्रभु ही पूर्णतया सच्चे हैं।

और जब अहंकार का उन्मूलन हो जाता है तो केवल परम प्रभु का अस्तित्व रह जाता है।

२८ जून १९६८

आध्यात्मिक जीवन में तो बैठ जाना भी नीचे गिरने के समान है।

यह बात इतनी सच्ची है कि हम ठीक-ठीक कह सकते हैं कि सोते समय भी हमें आगे बढ़ना चाहिये।

लेकिन एक समय आता है जब आरोहण पूर्ण विश्राम बन जाता है।

२ जुलाई १९६८

एक बार माताजी ने मुझसे पूर्ण सचाई के बारे में कहा था। पारदर्शक सचाई का क्या मतलब है?

सचाई की तुलना वातावरण या कांच के एक तख्ते से की गयी है। इनमें से कोई अगर पूरी तरह पारदर्शक हो तो वह प्रकाश को विकृत किये बिना निकलने देता है।

उसी भांति सच्ची चेतना दिव्य स्पंदनों को बिगाड़े बिना अपने अंदर से निकल जाने देती है।

८ जुलाई १९६८

क्या कोई एक व्यक्ति रूपांतर प्राप्त कर सकता है, चाहे बाकी सारा विश्व जैसा का तैसा ही बना रहे?

विकास में व्यक्ति धरती से बहुत आगे है, लेकिन जबतक वह धरती पर रहता है तबतक एक हद तक अन्योन्याश्रय रहता है। लेकिन धरती की स्थिति निश्चित रूप से ऐसी हो जायेगी कि एक अतिमानसिक सत्ता जल्दी ही उसपर निवास कर सकेगी।

९ जुलाई १९६८

बुद्ध ने कहा था कि निर्वाण का परिणाम होता है जीवन-मरण से छुटकारा।

लेकिन क्या भगवान् सदा इस बात के लिये स्वतंत्र नहीं होते कि जो चिनगारी उनके अंदर जाकर अपने-आपको बुझा बैठी है उसे फिर से अभिव्यक्ति में भेज दें ?

स्वभावतः, जब कभी तुम कोई नियम बनाते हो तो भूल कर बैठते हो।

और यद्यपि बुद्ध ने फिर से शरीर धारण नहीं किया, फिर भी पार्थिव वातावरण में काम करने के लिये वे यहां लौट आये थे।

२६ जुलाई १९६८

अगर विश्व एक है तो क्या धरती पर केवल एक व्यक्ति की मुक्ति में सभी को मुक्त करने की शक्ति न होगी ?

एकत्व का मतलब है मूल में तादात्म्य; लेकिन अभिव्यक्ति में हर एक व्यक्ति उस एकत्व की ओर सचेतन रूप से लौटने के अपने निजी मार्ग का अनुसरण करता है।

२८ सितम्बर १९६८

१९५३ में माताजी ने कहा था, "आदमी चाहे जिस पथ पर चले, चाहे वह धार्मिक पथ हो या दार्शनिक पथ या यौगिक या रहस्यमय मार्ग, अभीतक किसी ने रूपांतर को चरितार्थ नहीं किया है।"

क्या हम आशा कर सकते हैं कि साधकों ने अब इस लक्ष्य की ओर अच्छी प्रगति कर ली है ?

अब परिस्थितियां ऐसी हैं कि हर सच्चा प्रयास आवश्यक रूप से इस लक्ष्य की ओर अग्रसर होता ही है।

३० सितम्बर १९६८

हम रूपांतर में सहयोग कैसे दे सकते हैं ?

अब चीजें इस तरह व्यवस्थित हैं कि जैसे ही कोई भागवत उषा के लिये किसी भी रूप में सहयोग देता है तो वह अनिवार्य रूप से रूपांतर के कार्य में भी सहयोग देता है।

७ अक्तूबर १९६८

भगवान् लक्ष्य, मार्ग और मार्ग पर चलनेवाले भी हैं। लेकिन क्या वह व्यक्ति भी भगवान् नहीं है जो भगवान् की ओर नहीं बढ़ रहा ?

सभी भगवान् हैं, लेकिन ऐसे बहुत कम हैं जो इसे जानते हों और ऐसे और भी कम हैं जो इसे सचेतन रूप से उपलब्ध करना चाहते हों। यदि सृष्टि का उद्देश्य यह हो कि सब कुछ और सब लोग फिर से **सचेतन रूप से** भगवान् हो जायें तो उस काम की लंबी अवधि और कठिनाइयां समझ में आती हैं।

१४ अक्तूबर १९६८

हम यह आधारभूत उपलब्धि पाना चाहेंगे कि भगवान् हर एक और सब कुछ हैं।

इसके लिये तुम्हें परम देव के साथ तदात्म होना होगा।

एक बार तादात्म्य हो जाने के बाद अगर आदमी सृष्टि की ओर मुड़े तो वह देखता और जानता है कि केवल भगवान् का ही अस्तित्व है—सारतत्त्व में भी और अभिव्यक्ति में भी।

१६ अक्तूबर १९६८

क्या रूपांतर के बिना भी विरोधी शक्तियों के आक्रमणों के प्रति असंक्राम्यता संभव है ?

रूपांतर द्वारा असंक्राम्यता अपने-आप नहीं आ जाती।

असंक्राम्य होने के लिये अभिव्यक्त जगत् से सारे नाते तोड़ देने पड़ते हैं।

बहरहाल, रूपांतर विजय की शक्ति देता है।

१८ अक्तूबर १९६८

क्या अभिव्यक्ति में भी भागवत प्रेम सबके लिये समान है ?

हां, समान और अपरिवर्तनशील।

लेकिन उसे देखने, ग्रहण करने की क्षमता और विकृत करने की आदत हर एक में अलग-अलग होती है।

२२ अक्तूबर १९६८

''आदर्श साधक को बाइबल की भाषा में कह सकना चाहिये; 'प्रभु के लिये मेरे उत्साह ने मुझे निगल लिया है'।'' ('योग समन्वय' से)

क्या इसका अर्थ है तीव्र, सतत और संपूर्ण अभीप्सा ?

हां, इसका अर्थ है कि समस्त सत्ता समर्पण में समा गयी है।

२४ अक्तूबर १९६८

क्या अवचेतना नींद में भी आलेखन करती जाती है ?

अधिकतर लोगों में नींद के समय ठीक वही चीज सक्रिय हो जाती है जो दिन के समय या पहले कभी उनकी अवचेतना में अभिलिखित हुई हो और यही उनके स्वप्न बन जाती है।

२६ अक्तूबर १९६८

अश्वपति बहुत भाग्यवान् थे, उनके लिये : ''हर रोज एक आध्यात्मिक रोमांस, . . . हर घटना एक गहरी अनुभूति थी।'' ('सावित्री' से)

जिनकी अभीप्सा उत्साहपूर्ण है उन सबके लिये यह संभावना खुली है।

१ नवम्बर १९६८

आप हमें जो देती हैं उसे हम कैसे बनाये रख सकते हैं ?

वह चीज चली नहीं जाती, वह अवचेतना में प्रवेश करके वहां कार्य जारी रखती है।

उसके बारे में सचेतन रहने के लिये तुम्हें अपने अंदर अवचेतना के क्षेत्र को कम करना और इस तरह चेतना को बढ़ाना चाहिये।

३ नवम्बर १९६८

अवचेतना के क्षेत्र को कम करने के लिये हमें क्या करना चाहिये ?

धरती पर जीवन का उद्देश्य ही है चेतना में वृद्धि करना। उत्तरोत्तर जीवनों की अनुभूति द्वारा धीरे-धीरे अवचेतना का क्षेत्र कम होता है।

योग द्वारा और अपने अंदर और जीवन में भगवान् को खोजने के प्रयास द्वारा तुम इस काम को काफी तेज चला सकते हो और यह कुछ वर्षों में भी हो सकता है।

५ नवम्बर १९६८

"एक ऐसा ज्ञान जो वही बन गया जो उसने देखा था, उसने पृथक् इन्द्रिय और हृदय का स्थान ले लिया और समस्त प्रकृति को अपने आलिंगन में खींच लिया।" ('सावित्री' से)

क्या श्रीअरविंद यहां तादात्म्य द्वारा ज्ञान की बात कह रहे हैं?

हां, यह बिलकुल यथार्थ वर्णन है।

७ नवम्बर १९६८

"पार्थिव शक्ति की अपेक्षा बहुत बड़ी शक्ति ने उसके अंगों को पकड़ लिया, . . . मनकी तिहरी रज्जु को खोलकर देव दृष्टि की स्वर्गिक विशालता को मुक्त कर दिया।" ('सावित्री' से)

यहां "मन की तिहरी रज्जु" का क्या अर्थ है?

रज्जु मन की सीमाओं का प्रतीक है; और ये तीन हैं—भौतिक मन, प्राणिक मन और मनोमय मन।

९ नवम्बर १९६८

"दिवस निश्चित मार्ग पर यात्री थे और रातें उसकी चिंतनशील आत्मा की सहेलियां थीं।" ('सावित्री' से)

हां, एक ऐसा समय आता है जब कोई भी चीज, निश्चित रूप से कोई भी चीज योग के बाहर नहीं रहती और सभी चीजों और सभी परिस्थितियों में भगवान् की उपस्थिति को पाया और अनुभव किया जाता है।

११ नवम्बर १९६८

"जहां सभी जगत् मिलते हैं वहां एक अंतिम उच्च जगत् दिखलायी दिया

अपनी चरम झलक में, जहां न तो रात है और न निद्रा, परम त्रैत का प्रकाश शुरू हुआ।" ('सावित्री' से)

क्या यह "परम त्रैत" सच्चिदानन्द है?

हां।

१५ नवंबर १९६८

कृष्ण की कृपा से अर्जुन ने विश्व-रूप और विराट् का दर्शन पलक झपकते पा लिया। क्या ही अच्छे गुरु और कितना अच्छा शिष्य!

यह जरूरी नहीं है कि तेजी श्रेष्ठता का चिह्न हो।

ये "तात्कालिक" परिवर्तन अधिकतर बहुत-से जीवनों की तैयारी का परिणाम होते हैं।

१७ नवंबर १९६८

"हमारे शरीर के कोषाणुओं को अमर की ज्वाला को धारण करना चाहिये।" ('सावित्री' से)

क्या आलोकमय शरीर का यही रहस्य है?

यह जो रूपांतर होनेवाला है उसे व्यक्त करने का एक काव्यमय तरीका है। वह इससे ज्यादा जटिल है।

१९ नवंबर १९६८

मां, मुझे लगता है कि जब मनुष्य भगवान् को नहीं स्वीकारता तो यह इतना दुष्टता के कारण नहीं होता जितना अज्ञान के कारण। क्या ऐसा नहीं है?

यह निश्चय ही अज्ञान और जिसे वह नहीं जानता उसके भय के कारण है।

केवल असुर और कुछ महान् विरोधी शक्तियां, यह जानते हुए कि भगवान् कौन हैं, उनका विरोध करती हैं।

२१ नवंबर १९६८

मां, मुझे लगता है कि आह्वान करनेवाली ज्वाला और उत्तर देनेवाली ज्वाला एक और समान ही हैं।

तत्त्वतः वे एक ही हैं, लेकिन उत्तर की बहुलता आह्वान की तीव्रता से कहीं अधिक होती है। उत्तर हमेशा हमारी ग्रहणशीलता से बहुत बढ़-चढ़कर होता है।

२५ नवंबर १९६८

माताजी, क्या हम कह सकते हैं कि पूर्ण ग्रहणशीलता भगवान् के साथ सतत ऐक्य से ही आती है ?

अगर हम "पूर्ण ग्रहणशीलता" उसे कहें जो केवल भगवान् के प्रभाव को स्वीकार करती है, किसी और प्रभाव को नहीं, तो यह निश्चित है—और साथ ही यह पूर्ण शुद्धि है।

यही चीज है जिसके लिये हमें प्रयास करना चाहिये।

२७ नवंबर १९६८

"कोई भी तबतक स्वर्ग में नहीं पहुंच सकता जबतक कि वह नरक को पार न कर ले।" ('सावित्री' से)

फिर भी मां, क्या भगवान् द्वारा चुनी हुई आत्मा औरों की अपेक्षा भिन्न तरीके से नरक में से न गुजरेगी ?

इस उद्धरण का मतलब यह है कि भागवत क्षेत्रों तक पहुंचने के लिये आदमी को धरती पर रहते हुए प्राणिक क्षेत्र में से गुजरना होता है जो अपने कुछ भागों में सचमुच नरक है। लेकिन जो भगवान् के प्रति समर्पण कर देते हैं और उनके द्वारा अपना लिये गये हैं वे चारों ओर भागवत सुरक्षा से घिरे रहते हैं और उनके लिये मार्ग कठिन नहीं होता।

२९ नवंबर १९६८

"जिसका पथ-प्रदर्शन भगवान् करते हैं उसकी असफलता असफलता नहीं होती।" ('सावित्री' से)

क्योंकि यह भी क्रीड़ा का अंग है ?

मानव मन सफलता और असफलता की धारणाएं बनाता है। मानव मन एक चीज चाहता है और दूसरी नहीं। भागवत योजना में हर चीज का अपना स्थान है, अपना महत्त्व है। इसलिये सफलता का महत्त्व नहीं है। महत्त्व है भागवत इच्छा का आज्ञाकारी और हो सके तो **सचेतन** यंत्र बनना।

एकमात्र सच्ची महत्त्वपूर्ण बात है वही होना और वही करना जो भगवान् चाहते हैं।

३ दिसंबर १९६८

"एक आद्या परात्पर शक्ति, माता, सभी जगतों के परे खड़ी हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परात्पर भगवान् को धारण किये रहती हैं।" ('माता' से)

इसी तरह क्या यह कहा जा सकता है कि परात्पर भगवान् मां को अपनी शाश्वत चेतना में वहन करते हैं?

इस विषय में कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

वे सारतत्त्व में और अभिव्यक्ति में **एक** हैं।

५ दिसंबर १९६८

क्या अहंकार अपने विलोपन के लिये राजी नहीं हो सकता?

अहंकार की रचना की गयी थी व्यष्टीकरण के लिये; जब काम पूरा हो जाता है तो यह असामान्य नहीं है कि अहंकार स्वयं अपना विलोपन स्वीकार कर ले।

७ दिसम्बर १९६८

मनुष्य में अधिकार करने का सुख किस चीज का विकृत रूप है मां?

सभी प्रकार का सुख अहंकारमय सीमांकन द्वारा आनंद का विकार है, आनंद ही वैश्व अभिव्यक्ति का प्रयोजन है।

११ दिसम्बर १९६८

"जब हम भोजन करें तो हमें यह जानना चाहिये कि हम अपना भोजन अपने

अंदर की उस परम उपस्थिति को दे रहे हैं . . . ।" ('योग समन्वय' से)

*जब मैं इस **मनोवृत्ति को अपनाता** हूं तो भोजन का स्वाद ज्यादा अच्छा हो जाता है और वातावरण शांत हो जाता है।*

हम जो कुछ भी करें वह उपस्थिति तो हमेशा रहती है और हम अपने अज्ञान, लापरवाही या अन्यमनस्कता के कारण उसका अनुभव नहीं करते। लेकिन जब भी हम ध्यान दें या एकाग्र होवें तो हम सभी चीजों में एक अद्भुत रूपांतर के बारे में सचेतन हो जाते हैं।

१३ दिसम्बर १९६८

क्या सतत उपस्थिति के बारे में सचेतन होने के लिये स्मरण-शक्ति अच्छी सहायिका है?

स्मरण-शक्ति मानसिक क्षमता है और मानसिक चेतना की सहायता करती है। यहां अनुभव और संवेदन का भी सहयोग होना चाहिये।

१७ दिसम्बर १९६८

जब उपस्थिति ठोस हो जाती है तो क्या यह इस बात का सूचक है कि भावना और संवेदन का सहयोग प्राप्त हो गया है?

उपस्थिति का दर्शन पाने के लिये भावना का सहयोग अनिवार्य है और जब संवेदन का सहयोग मिल जाये तो दर्शन ठोस और बोधगम्य हो जाता है।

१९ दिसम्बर १९६८

"भगवान् के रूपांतरकारी मुहूर्त में सभी चीजें बदल जायेंगी।" ('सावित्री' से)

क्या मनुष्य इस मुहूर्त के आने में जल्दी या देर कर सकता है?

पृथक्कारी चेतना इनमें जो आभासी विरोध पैदा करती है उनमें से न एक न दूसरी बल्कि एक तीसरी ही चीज होती है जिसे हमारे शब्द प्रकट नहीं कर पाते।

मानव चेतना की वर्तमान अवस्था में उसके लिये यह सोचना ज्यादा अच्छा है कि

अभीप्सा और मानव प्रयास दिव्य रूपांतर के जल्दी आने में सहायता कर सकते हैं, क्योंकि रूपांतर के लिये प्रयास और अभीप्सा की जरूरत है।

२१ दिसम्बर १९६८

उपनिषद् का कहना है, "जब 'तत्' ज्ञात हो जाये तो सब कुछ ज्ञात हो जाता है।" सब कुछ सारभूत सत्य में ज्ञात होता है या ब्योरे में भी?

अपने सारभूत सत्य में, लेकिन सामान्यतः आदमी आभासी रूप का दर्शन भी बनाये रखता है।

२३ दिसम्बर १९६८

मुझे ऐसा लगता है कि वस्तुओं को विस्तार से जानने के लिये योगी के लिये भी सामान्य यंत्र-विन्यास जरूरी है, लेकिन योगी इस ज्ञान को सारभूत सत्य की कसौटी पर रखता है।

हां, इस तरह भी कहा जा सकता है, लेकिन सबसे बढ़कर तो यह बात है कि बाहरी रूप-रंग के प्रति मनोवृत्ति बिलकुल बदल जाती है।

२५ दिसम्बर १९६८

मां, वस्तुतः बाह्य रूप-रंग के प्रति योगी की क्या मनोवृत्ति होती है?

अंधा होने की जगह स्पष्ट देखने की उपयोगिता।

बाहरी रूप-रंग से भविष्य में धोखा न खाने की उपयोगिता।

अज्ञान और मिथ्यात्व में जीते रहने की जगह जीवन के सच्चे प्रयोजन को जानने की उपयोगिता।

२७ दिसम्बर १९६८

क्या योगी के लिये भ्रामक आभासों का प्रत्यक्ष दर्शन स्वतःचालित होता है?

संभवतः यह योगी और उसकी अवस्था पर निर्भर है।

लेकिन एक बार तुम परम चेतना के साथ एक हो जाओ और जब शरीर का रूपांतर हो रहा हो तो शरीर बाह्य जगत् का अपना स्वतःचालित प्रत्यक्ष दर्शन जारी रखता है; लेकिन यह सामान्य दर्शन की अपेक्षा अधिक पूर्ण होता है, मानों वह अपने अंदर के सारांश को प्रकट कर रहा हो।

२९ दिसम्बर १९६८

तो मां, पूर्ण ज्ञान में निवास करने के लिये भी शरीर का रूपांतर जरूरी है!

निश्चय ही।

श्रीअरविंद के योग में जहांतक संभव हो शरीर का रूपांतर अनिवार्य है क्योंकि इस योग का उद्देश्य भौतिक चेतना से बच निकलना नहीं बल्कि उस चेतना को दिव्य बनाना है।

३१ दिसम्बर १९६८

पत्रमाला १२

पत्रमाला १२

[श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र की एक विद्यार्थिनी के नाम पत्र जिसने माताजी को सोलह वर्ष की उम्र में पत्र लिखना शुरू किया था।]

मधुर मां,

पहले मेरी आदत थी कि सोने से पहले 'सावित्री' या आपकी कोई पुस्तक पढ़ लिया करती थी। लेकिन अब मेरी वह आदत छूट गयी है; अब मैं नियमित रूप से समाधि पर भी नहीं जाया करती। मैं इन चीजों का सच्चा मूल्य नहीं समझती। क्या हमें ये चीजें नियमित रूप से करनी चाहियें या केवल तभी जब इन्हें करने की इच्छा हो? हमें ये चीजें क्यों और कैसे करनी चाहियें?

तुम 'सावित्री' पढ़ती हो अपनी बुद्धि को विकसित करने और गभीरतर चीजों को समझने के लिये।

तुम समाधि पर एकाग्र होती हो भक्ति में प्रगति करने और अपने-आपको श्रीअरविंद के साथ संपर्क में लाने के लिये ताकि उनकी सहायता पा सको।

अगर तुम्हारे लिये इन चीजों का कोई मूल्य है तो तुम्हें इन्हें नियमित रूप से करना चाहिये क्योंकि निश्चेतना का प्रमाद तुम्हें यह करने से रोकता है।

तुम आध्यात्मिक और सचेतन जीवन के लिये जन्मी हो लेकिन, शायद उसे चरितार्थ करने के संकल्प के लिये अभी तुम बहुत छोटी हो।

आशीर्वाद।

२३ जुलाई १९६९

मधुर मां,

हर बार जब मैं अच्छी तरह काम करने का निश्चय करती हूं तो मैं देखती हूं कि मेरा प्रयास दो दिन से अधिक नहीं टिकता। आपका क्या ख्याल है कि मुझे क्या करना चाहिये ताकि मैंने जो करने का निश्चय किया है उसे अच्छी तरह कर सकूं? मुझे लगता है कि मेरे अंदर कोई ऐसी चीज है जो मेरी आज्ञा मानने से इंकार करती है।

हर एक के बारे में यही बात है जबतक कि वह अपनी सारी सत्ता को सचेतन रूप से अपने चैत्य केंद्र के चारों ओर एक न कर ले।

यह एक होना अनिवार्य है यदि तुम अपनी सत्ता के और उसकी समस्त क्रियाओं के स्वामी बनना चाहते हो।

यह एक लंबा और अति सावधानी से करने लायक काम है जिसमें बहुत अध्यवसाय की जरूरत होती है, लेकिन परिणाम कष्ट उठाने लायक है क्योंकि वह केवल अधिकार ही नहीं लाता बल्कि रूपांतर की संभावना और चेतना की दीप्ति भी लाता है।

तुम यह करना चाहती हो?

अगर हां, तो मैं तुम्हारी सहायता करूंगी।

आशीर्वाद।

२८ अगस्त १९६९

मधुर मां,

हम हर क्षण यह कैसे याद रख सकते हैं कि हम जो कुछ भी करते हैं वह आपके लिये होता है? विशेष रूप से जब हम पूर्ण निवेदन करना चाहते हैं, हमें यह कभी न भूलते हुए आगे कैसे बढ़ना चाहिये कि यह सब भगवान् के लिये है?

इसे प्राप्त करने के लिये तुम्हारे अंदर **आग्रही** इच्छा-शक्ति और **बहुत अधिक धैर्य** होना चाहिये। लेकिन एक बार तुम यह करने की प्रतिज्ञा कर लो, तुम्हें सहारा देने और तुम्हारी सहायता करने के लिये भागवत सहायता रहेगी। इस सहायता का अनुभव भीतर हृदय में होता है।

आशीर्वाद।

९ सितम्बर १९६९

मधुर मां,

मैं जन्मदिन का सच्चा अर्थ जानना चाहूंगी क्योंकि यहां उसका बहुत महत्त्व है।

आंतरिक प्रकृति की दृष्टि से व्यक्ति हर वर्ष अपने जन्मदिन पर अधिक ग्रहणशील होता है, अतः हर वर्ष किसी नयी प्रगति में सहायता करने के लिये यह बहुत अच्छा अवसर होता है।

आशीर्वाद।

२५ सितम्बर १९६९

मधुर मां,

आपने मुझे लिखा था कि चैत्य सत्ता के साथ संपर्क में आना आसान नहीं है। आप उसे कठिन क्यों मानती हैं? मैं कैसे शुरू करूं?

मैंने कहा था 'सरल नहीं है' क्योंकि यह सहज रूप से नहीं होता, यह ऐच्छिक है। चैत्य सत्ता का प्रभाव हमेशा विचारों और क्रियाओं पर रहता है, लेकिन व्यक्ति विरले ही उसके बारे में सचेतन होता है, चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन होने के लिये पहले तुम्हें ऐसा करने की चाह करनी चाहिये, अपने मन को जितना हो सके नीरव बनाना चाहिये और अपनी सत्ता के हृदय की गहराई में, विचारों और संवेदनों के परे प्रवेश करना चाहिये, तुम्हें नीरव एकाग्रता की और अपनी सत्ता की गहराइयों में उतरने की आदत डालनी चाहिये।

चैत्य सत्ता का शोध एक निश्चित और बहुत ठोस तथ्य है, जैसा कि जिन लोगों को अनुभव हुआ है वे सब जानते हैं।

आशीर्वाद।

६ अक्तूबर १९६९

मधुर मां,

मैंने देखा है कि मैं अपने भौतिक शरीर को उसकी वास्तविक क्षमता से जरा अच्छा कर सकने के लिये बाधित नहीं कर सकती। मैं जानना चाहूंगी कि मैं उसे कैसे बाधित कर सकती हूं। लेकिन, मधुर मां, क्या अपने शरीर को बाधित करना अच्छा है?

नहीं।

शरीर प्रगति करने में सक्षम है और जो वह पहले नहीं कर सकता था उसे करना धीरे-धीरे सीख सकता है। लेकिन उसकी प्रगति की क्षमता प्राण की प्रगति की कामना और मन की प्रगति की इच्छा से बहुत धीमी है। और अगर प्राण और मन को कार्य के लिये जिम्मेदार बना दिया जाये तो वे शरीर को बहुत तंग करते हैं, उसके संतुलन को नष्ट करके स्वास्थ्य बिगाड़ देते हैं।

इसलिये तुम्हें बहुत धीरज रखना चाहिये और अपने शरीर की लय का अनुकरण करना चाहिये जो ज्यादा विवेकशील है और उसे पता होता है कि वह क्या कर सकता है और क्या नहीं।

स्वभावतः, कुछ शरीर तामसिक होते हैं और प्रगति करने के लिये उन्हें कुछ प्रोत्साहन की जरूरत होती है। लेकिन सभी चीजों में, सभी अवस्थाओं में तुम्हें संतुलन रखना चाहिये।

आशीर्वाद।

१३ अक्तूबर १९६९

मधुर मां,

हम पुनर्जन्म पर क्यों विश्वास करते हैं ? वर्तमान स्थिति से पहले हम क्या थे ?

जिन्हें पिछले जन्मों की याद है उन्होंने पुनर्जन्म की वास्तविकता की घोषणा की है।

ऐसी सत्ताएं हो चुकी हैं और अब भी हैं, जिनकी आंतरिक चेतना इतने पर्याप्त रूप से विकसित है कि वे निश्चित रूप से जानती हैं कि उनकी यह चेतना उनके वर्तमान शरीर से भिन्न शरीरों में अभिव्यक्त हो चुकी है और यह इस शरीर के लोप के बाद भी बनी रहेगी।

यह कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसपर बहस की जाये—जिन्हें यह अनुभव हुआ है उनके लिये यह निर्विवाद अनुभूति है।

आशीर्वाद।

५ नवम्बर १९६९

मधुर मां,

जब हम प्रकृति के बीच में हों तो हमें क्या सोचना चाहिये ? क्या प्रकृति के साथ संपर्क में रहना किसी तरह हमारी सहायता करता है ?

सोचने से प्रकृति के साथ तुम्हारा संबंध नहीं जुड़ सकता क्योंकि प्रकृति नहीं सोचती।

लेकिन अगर तुम गहराई के साथ प्रकृति की सुंदरता का अनुभव करो और उसके साथ नाता जोड़ो तो यह चेतना को विस्तृत करने में सहायता दे सकता है।

आशीर्वाद।

९ नवम्बर १९६९

सामान्यतः प्रकृति से प्रेम शुद्ध और स्वस्थ सत्ता का चिह्न है जो आधुनिक सभ्यता के कारण भ्रष्ट नहीं हुई है। शांत मन की नीरवता में तुम प्रकृति के साथ सबसे अच्छी तरह नाता जोड़ सकते हो।

आशीर्वाद।

१३ नवम्बर १९६९

मधुर मां,

हम ईर्ष्या और प्रमाद से कैसे पिंड छुड़ा सकते या उन्हें ठीक कर सकते हैं ?

स्वार्थ तुम्हें ईर्ष्यालु बनाता है और दुर्बलता तुम्हें आलसी बनाती है।

दोनों ही हालतों में एकमात्र सच्चा प्रभावशाली उपचार है भगवान् के साथ सचेतन ऐक्य। वस्तुतः, जैसे ही तुम भगवान् के बारे में सचेतन और उनके साथ एक हो जाते हो वैसे ही तुम सच्चे प्रेम के साथ प्रेम करना सीखते हो : ऐसा प्रेम जो केवल **प्रेम के आनंद के लिये प्रेम करता है,** जिसे बदले में प्रेम किये जाने की जरूरत नहीं है; साथ ही तुम अक्षय भंडार के उत्स से शक्ति प्राप्त करना सीखते हो और अनुभव से जानते हो कि भगवान् की सेवा में इस शक्ति का प्रयोग करने से तुमने जो कुछ खर्च किया है वह सब और उससे कहीं अधिक प्राप्त करते हो।

मन द्वारा सुझाये गये सभी इलाज, सर्वाधिक प्रदीप्त मन द्वारा भी—वे केवल शामक होते हैं, उपचार नहीं।

आशीर्वाद।

१६ नवम्बर १९६९

मधुर मां,

कभी-कभी मैं नींद में बोलती हूं। यह इस बात का चिह्न है कि मन नियंत्रण-रहित है। है न? तो मुझे सोते समय शांत रहने के लिये क्या करना चाहिये?

साधारणतः रात को जब शरीर सोता है तो मन उसमें से बाहर चला जाता है क्योंकि उसके लिये अधिक समय तक चुपचाप रहना मुश्किल है, इसीलिये अधिकतर लोग नहीं बोलते।

लेकिन ऐसा लगता है कि तुम्हारा मन शरीर में ही रहता है इसलिये तुम्हें उससे कहना चाहिये कि वह पूरी तरह चुपचाप और नीरव रहे ताकि तुम्हारा शरीर भली-भांति आराम कर सके। उसके लिये सोने से पहले जरा एकाग्रता निश्चित रूप से प्रभावकारी होगी।

आशीर्वाद।

२९ नवम्बर १९६९

मधुर मां,

जब शरीर सोया हुआ हो तो क्या मन के लिये शरीर से बाहर जाना अच्छा होता है? मन जाता कहां है?

हर व्यक्ति के लिये अलग-अलग संभावनाएं हैं। जितने व्यक्ति हैं उतने ही उदाहरण होते हैं। लेकिन हर एक सीख सकता है कि उसके आराम के लिये सबसे अच्छी अवस्थाएं कौन-सी हैं।

तुम जैसे अपने दिनों के बारे में सचेतन रहती हो उसी तरह अपनी रातों और अपनी नींद के बारे में भी सचेतन रह सकती हो। यह आंतरिक विकास और चेतना के अनुशासन की बात है।

आशीर्वाद।

१ दिसम्बर १९६९

मधुर मां,

"सचेतन होने" से आपका क्या मतलब है? क्या अपने अंदर भागवत उपस्थिति के बारे में सचेतन होना ही एकमात्र चीज है या अपनी गतिविधियों, अपनी वाणी आदि के बारे में सचेतन होना भी महत्त्व रखता है?

तुम विश्वास रखो कि भागवत उपस्थिति के बारे में सचेतन होना अपने-आपमें तुम्हारी सत्ता की सभी बातों में बहुत बड़ा परिवर्तन ला देता है और समस्त मानसिक, प्राणिक और भौतिक क्रिया पर एक असामान्य नियंत्रण ला देता है।

और यह नियंत्रण, तुम बाह्य साधनों से जो कुछ पा सकते हो उससे अनंतगुना शक्तिशाली और प्रकाशमान होता है।

आशीर्वाद।

९ दिसम्बर १९६९

मधुर मां,

क्या हमारा प्राण केवल कामनाओं, स्वार्थपूर्ण भावों आदि से ही बना है या उसमें कुछ अच्छी चीजें भी हैं?

ऊर्जा, बल, उत्साह, कलात्मक रुचि, साहस, शक्तिमत्ता आदि भी उसमें हैं—अगर हम उनका ठीक तरह से उपयोग करना जानें।

परिवर्तित और भागवत इच्छा को समर्पित प्राण, सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय पानेवाला साहसी और शक्तिशाली यंत्र बन जाता है। लेकिन पहले उसे अनुशासन में रखना होगा और इसके लिये वह तभी तैयार होता है जब भगवान् उसके स्वामी हों।

आशीर्वाद।

११ दिसम्बर १९६९

मधुर मां,

जब श्रीअरविंद चेतना के परिवर्तन की बात करते हैं तो उनका अर्थ क्या होता है ?

सामान्य अज्ञानभरी मानव चेतना से निकलकर भागवत उपस्थिति के ज्ञान पर आधारित यौगिक चेतना में जाना।

आशीर्वाद।

१३ *दिसंबर* १९६९

मधुर मां,

जल्दी सोना और जल्दी उठना क्यों ज्यादा अच्छा है ?

सूर्यास्त के समय एक तरह की शांति धरती पर उतरती है और यह शांति नींद में सहायक होती है।

सूर्योदय के समय एक जोरदार ऊर्जा धरती पर उतरती है और यह ऊर्जा काम के लिये सहायक होती है।

अगर तुम देर से सोओ और देर से जागो तो तुम प्रकृति की शक्तियों का विरोध करते हो और यह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण बात नहीं है।

आशीर्वाद

२१ *दिसंबर* १९६९

मधुर मां,

क्या ज्योतिष तथा अन्य विद्याएं हमेशा ठीक-ठीक भविष्यवाणियां करती हैं या मनुष्य अभीतक यह करने में असमर्थ है ?

मनुष्य जो कुछ करता है उसके पीछे उसकी अक्षमता तो रहती ही है। केवल वही जो भगवान् के बारे में सचेतन हो चुका है और उनका कर्तव्यनिष्ठ यंत्र बन चुका है, वही भूल-भ्रांति से बच सकता है, बशर्ते कि वह केवल भागवत आदेश के अनुसार ही काम करे और उसमें कोई व्यक्तिगत चीज न जोड़ दे।

यह कहना पड़ेगा कि यह आसान नहीं है। इसे ठीक तरह से वही कर सकता है जिसमें अहंकार बाकी न रहा हो।

आशीर्वाद।

२५ *दिसंबर* १९६९

मधुर मां,

ज्ञान और बुद्धि क्या हैं ? क्या हमारे जीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है ?

ज्ञान और बुद्धि यथार्थ रूप में मनुष्य में उच्चतर मन की वे क्षमताएं हैं जो उसे पशु से अलग करती हैं।

ज्ञान और बुद्धि के बिना आदमी आदमी नहीं, आदमी के शरीर में पशु होता है।

आशीर्वाद।

३० दिसंबर १९६९

मधुर मां,

क्या नयी जाति में हमारे शरीर का रूप बदल जायेगा ?

अतिमानसिक सत्ता और मनुष्य के बीच अवश्य कोई ऐसा अंतर होगा जिसकी तुलना मनुष्य और सबसे अधिक विकसित वानर के शरीर से की जा सकती है। लेकिन यह अंतर क्या होगा यह हम तबतक नहीं जान सकते जबतक यह नयी जाति पृथ्वी पर प्रकट न हो जाये।

आशीर्वाद।

१३ जनवरी १९७०

मधुर मां,

खेल-कूद और शारीरिक प्रशिक्षण में क्या फर्क है ?

खेल में सब तरह के खेल, प्रतियोगिताओं, साम्मुख्यों आदि की गिनती होती है जो प्रतियोगिता पर आधारित होते हैं, जिनमें स्थान और पुरस्कार आदि मिलते है।

शारीरिक प्रशिक्षण का अर्थ है मुख्य रूप से शरीर के विकास और संरक्षण के लिये सब प्रकार के व्यायाम।

स्वभावतः, यहां हमने दोनों को मिला दिया है परंतु यह मुख्य रूप से इसलिये है **क्योंकि मनुष्यों को, विशेष रूप से बाल्यावस्था में, प्रयास करने के लिये कुछ उत्तेजना की जरूरत होती है।**

आशीर्वाद।

१४ जनवरी १९७०

मधुर मां,

यहां अपने कप्तानों और अध्यापकों की ओर हमारी वृत्ति कैसी होनी चाहिये ?

आज्ञाकारी, इच्छुक और स्नेहमयी वृत्ति। वे तुम्हारे बड़े भाई-बहन हैं जो तुम्हारी सहायता करने के लिये बहुत कष्ट उठाते हैं।

आशीर्वाद।

१ फरवरी १९७०

मधुर मां,

स्रष्टा ने इस जगत् और मानवजाति की रचना क्यों की है ? क्या वह हमसे कुछ आशा रखता है ?

जगत् स्वयं वही है। उसकी इच्छा है कि सब कुछ—हम सब, सारा जगत् और पूरा विश्व—फिर से वही होने के बारे में सचेतन हो जाये।

आशीर्वाद।

५ फरवरी १९७०

पत्रमाला १३

पत्रमाला १३

[श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र के एक विद्यार्थी के नाम पत्र जिसने १६ वर्ष की उम्र में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।]

मधुर मां,

हमें भिखारियों को पैसे देने चाहियें या नहीं ?

सुसंगठित समाज में भिखारी होने ही नहीं चाहियें।

लेकिन जबतक वे हैं, तुम्हें जो ठीक लगे वही करो।

देने और न देने दोनों के लिये काफी अच्छे कारण हैं।

आशीर्वाद।

८ जुलाई १९६९

ऐसा कोई भी नहीं है जिसके लिये भगवान् को पाना असंभव हो।

कुछ लोगों के लिये बहुत-बहुत जन्म लग जायेंगे जब कि ऐसे लोग भी हैं जो इसी जन्म में उन्हें पा लेंगे। यह संकल्प का प्रश्न है। स्वयं तुम्हें चुनाव करना होगा।

लेकिन मुझे कहना चाहिये कि वर्तमान समय में परिस्थितियां विशेष रूप से अनुकूल हैं।

आशीर्वाद।

२२ जुलाई १९६९

मधुर मां,

सचमुच "भगवान् को पाने" का क्या अर्थ है ?

इसका अर्थ है अपने अंदर या आध्यात्मिक शिखरों पर भगवान् के बारे में सचेतन होना और एक बार तुम उनकी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो जाओ तो अपने-आपको पूरी तरह उनके अर्पित कर देना ताकि उनकी इच्छा से भिन्न तुम्हारे अंदर कोई इच्छा न रहे और अंत में अपनी चेतना को उनकी चेतना के साथ एक कर देना। यह है "भगवान् को पाना"।

आशीर्वाद।

२३ जुलाई १९६९

मधुर मां,

जब हम सोते हैं तो हमारी चेतना बाहर चली जाती है, है न? लेकिन मैं औरों के स्वप्न में दिखायी देता हूं। तो होता क्या है? क्या चेतना अपने भाग कर लेती है या औरों के स्वप्न केवल उनकी अपनी कल्पनाएं होते हैं?

बहुधा प्राणिक चेतना शरीर में से बाहर जाती है और वही मनुष्य के आकार और रूप-रंग का आभास रखती है। अगर कोई किसी और के बारे में स्वप्न देखता है तो इसका मतलब यह होता है कि दोनों रात को मिले थे और बहुत संभव है कि प्राणमय जगत् में मिले हों : लेकिन यह कहीं और भी, सूक्ष्म शरीर में या मन में भी हो सकता है। स्वप्नों में बहुत प्रकार की संभावनाएं हैं।

आशीर्वाद।

१ अगस्त १९६९

मधुर मां,

रात सूर्योदय से ठीक पहले अधिक-से-अधिक अंधेरी क्यों होती है? वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से?

क्योंकि अंधेरा प्रकाश को आने से रोकने की कोशिश करता है।

आशीर्वाद।

११ अगस्त १९६९

मधुर मां,

सोने के लिये आधी रात से पहले का समय उसके बाद के समय की अपेक्षा ज्यादा अच्छा क्यों होता है?

क्योंकि प्रतीक रूप से, आधी रात से पहले के घंटों में सूर्यास्त हो रहा होता है जब कि आधी रात के बाद के पहले घंटे से ही उसका उदय शुरू होता है।

आशीर्वाद।

२२ अगस्त १९६९

प्रेम केवल एक है, भागवत प्रेम, शाश्वत, वैश्व, सब मनुष्यों और सभी वस्तुओं के लिये एक समान।

मनुष्य (मानव सत्ता) सब प्रकार के भावों को, सभी कामनाओं, आकर्षणों, प्राणिक लेन-देन, सेक्स-संबंध, आसक्ति, मित्रता और अन्य बहुत-सी चीजों को "प्रेम" कहता है।

लेकिन यह सब प्रेम की छाया तक नहीं हैं, उसके विकृत रूप तक नहीं हैं।

ये सब मानसिक, प्राणिक, भावुकतामय या सेक्स के क्रिया-कलाप हैं, उससे बढ़कर कुछ नहीं!

आशीर्वाद।

६ सितंबर १९६९

मधुर मां,

कामना और अभीप्सा में, स्वार्थ और आत्म-सिद्धि में क्या फर्क है?

कामना प्राणिक गति है, जब कि अभीप्सा चैत्य गति है।

अगर तुम्हें सच्ची, निःस्वार्थ और निष्कपट अभीप्सा का अनुभव हो जाये तो तुम यह प्रश्न पूछ भी नहीं सकते क्योंकि अभीप्सा का स्पंदन प्रदीप्त और अचंचल होता है, उसका कामना के स्पंदन के साथ कोई संबंध नहीं होता जो आवेशभरा, अंधेरा और प्रायः उग्र होता है।

स्वार्थ का अर्थ है सब कुछ अपने लिये चाहना, अपने सिवाय और कुछ न समझना। औरों की उसी हद तक परवाह करना जिस हद तक वे तुम्हारे लिये जरूरी या महत्त्वपूर्ण हों। फ्रेंच में आत्म-सिद्धि का अर्थ होता है अपनी सत्ता के अंदर भागवत केंद्र को पाना। अंग्रेजी में साधारणतः आत्म-परिपूर्ति का अर्थ होता है "सफल होना"। श्रीअरविंद अपने लेखों में "आत्म-सिद्धि" का उपयोग करते हैं आत्मा को पाने या सिद्ध करने के अर्थ में, यानी अपने अंदर भगवान् के बारे में सचेतन होना और उनके साथ एक हो जाना।

आशीर्वाद।

१४ सितंबर १९६९

मधुर मां,

हम अपनी सत्ता को एक कैसे कर सकते हैं?

पहला चरण है, अपने अंदर गहराई में कामनाओं और आवेशों के पीछे एक ज्योतिर्मयी चेतना को पाना जो हमेशा उपस्थित रहती और भौतिक सत्ता को अभिव्यक्त करती है।

साधारणतः लोग इस चेतना की उपस्थिति के बारे में केवल तभी अभिज्ञ होते हैं जब वे किसी संकट के आमने-सामने हों या उनका किसी अप्रत्याशित घटना या बड़े दुःख से पाला पड़ा हो।

तब तुम्हें उसके साथ सचेतन संपर्क में आना और जब मरजी हो तब यह कर सकना सीखना चाहिये। बाकी सब पीछे-पीछे आ जायेगा।

साधारणतः व्यक्ति इस ज्योतिर्मयी उपस्थिति को सौर चक्र के पीछे हृदय में पाता है।

आशीर्वाद।

२० सितंबर १९६९

मधुर मां,

प्राण को किसी अच्छी चीज में बदलने का क्या परिणाम होगा, दूसरे शब्दों में कहें तो क्या परिवर्तन होगा ?

प्राण सभी बुरे आवेगों, समस्त दुष्टताओं, भीरुता, दुर्बलता और धन-लोलुपता का आधान है।

जब प्राण परिवर्तित हो जाता है तो आवेश बुरे होने की जगह अच्छे हो जाते हैं, दुष्टता भलाई में बदल जाती है और धन-लोलुपता की जगह लेती है उदारता; दुर्बलता गायब हो जाती है, बल और सहन-शक्ति उसका स्थान ले लेते हैं और भीरुता के स्थान पर साहस और ऊर्जा आ जाते हैं।

क्रिया में शक्ति का निवास-स्थान है शुद्ध प्राण।

आशीर्वाद।

२० अक्तूबर १९६९

मधुर मां,

मैंने अपने साथियों और मित्रों के साथ कभी इस विषय पर बातचीत नहीं की कि हम यहां धरती पर किसलिये हैं, परंतु मैंने इस विषय में सोचा है और मुझे जो एकमात्र उत्तर मिला वह यह है कि हम यहां आश्रम में तो भगवान् को धरती पर प्रकट करने के लिये हैं। लेकिन एक प्रश्न बना रहता है, अगर सब कुछ भगवान् है, यहांतक कि विरोधी शक्तियां भी भगवान् हैं और अगर भगवान् ने ही सब कुछ रचा है और वह सब कुछ कर सकता है तो फिर वह इतना अधिक समय क्यों लगाता है और ऐसे पेचीदे रास्ते क्यों अपनाता है ?

उसे निश्चेतन चीजें बनाकर उन्हें फिर से सचेतन बनाने में क्या मजा आता है ? और ये सब दुर्भाग्य और दुःख-कष्ट क्यों हैं ?

यह ऐसा प्रश्न है जिसे सभी चिंतनशील मनुष्यों ने पूछा है।

कुछ लोगों ने समस्या को ज्यादा गहराई में सोचा और अपने-आपसे पूछा है कि क्या मनुष्य, जो इतने छोटे और सीमित हैं, वे चीजों को उस रूप में देख सकते हैं जैसी वे सचमुच हैं; और ज्यादा अच्छी तरह समझ सकने की आशा में उन्होंने दिव्य दृष्टि की खोज की है, एक सार्वभौम और सच्ची दृष्टि की जो योग का परिणाम होती है। और जिन्हें अपने प्रयास में सफलता मिली है उन्होंने देखा है कि जब हम भगवान् के साथ एक हो जाते हैं तो वस्तुओं के बारे में हमारी दृष्टि बिल्कुल बदल जाती है और वे सब एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भगवान् के साथ एक हो जाओ, तब तुम समझोगे।

आशीर्वाद।

२८ अक्तूबर १९६९

मधुर मां,

कहीं और जाने से आदमी अपने आध्यात्मिक लाभ क्यों और कैसे खो बैठता है ? व्यक्ति सचेतन प्रयास कर सकता है और आपका संरक्षण तो हमेशा रहता ही है, है न ?

अपने मां-बाप के यहां जाने का अर्थ होता है उस प्रभाव की ओर लौटना जो ज्यादा प्रबल हो और ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं जहां मां-बाप तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति करने में सहायक होते हैं, क्योंकि वे सामान्यतः सांसारिक प्राप्ति में अधिक रस लेते हैं।

जिन माता-पिता को मूलतः आध्यात्मिक उपलब्धि में रस होता है वे अपने बच्चों को अपने पास नहीं बुलाते।

आशीर्वाद।

८ नवंबर १९६९

मधुर मां,

हमें खेल-कूद की प्रतियोगिता या प्रदर्शनों में क्यों भाग लेना चाहिये ?

क्योंकि इससे अधिक प्रयास करने और इस तरह ज्यादा तेज प्रगति करने का अवसर मिलता है।

१६ नवंबर १९६९

मधुर मां,

मैं अपनी सत्ता को एक करने की ओर का दूसरा चरण जानना चाहूंगा। आपने मुझे पहले चरण के बारे में बतलाया था।

सत्ता को एक करने के काम में ये चीजें आती हैं :

१ —अपनी चैत्य सत्ता के बारे में अभिज्ञ होना।

२ —जैसे-जैसे तुम अपनी समस्त गतिविधियों, आवेशों, विचारों और इच्छा की क्रियाओं के बारे में अभिज्ञ होते जाओ, वैसे-वैसे उन्हें चैत्य सत्ता के आगे रख दो ताकि वह इन गतिविधियों, आवेशों, विचारों और इच्छा की क्रियाओं में से जिसे चाहे स्वीकार या अस्वीकार करे। जिन्हें स्वीकार कर लिया जाये उन्हें रखा और क्रियान्वित किया जायेगा और जिन्हें अस्वीकार किया जाये उन्हें चेतना से भगा दिया जायेगा ताकि वे कभी वापिस न आ पायें।

यह एक लंबा और अति सावधानी से करने लायक काम है और इसे समुचित ढंग से करने में बरसों लग सकते हैं।

आशीर्वाद।

८ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

हमें दर्शन का दिन, ५ दिसंबर, ९ दिसंबर और अपना जन्मदिन कैसे मनाना चाहिये ?

सामान्य ज्ञान की अपेक्षा अधिक सत्य ज्ञान की खोज में।

५ और ९ यह समझने में कि मृत्यु क्या है।

जन्मदिन जीवन के प्रयोजन का पता लगाने में।

आशीर्वाद।

१३ दिसंबर १९६९

(आश्रम के क्रीड़ांगण में दुर्घटनाओं के बारे में)

मुझे नहीं लगता कि कहीं और की अपेक्षा यहां ज्यादा दुर्घटनाएं होती हैं। निश्चय ही

यहां कम होनी चाहियें परंतु उसके लिये यहां पढ़नेवाले बच्चों को चेतना में विकसित होने के लिये प्रयास करना चाहिये। (यह ऐसी चीज है जो और कहीं की अपेक्षा यहां ज्यादा आसानी से की जा सकती है) दुर्भाग्यवश ऐसे कम ही हैं जो इसे करने का कष्ट उठाते हैं। इस तरह उन्हें यहांपर जो सुंदर अवसर दिया गया है उसे वे खो बैठते हैं।

२२ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

जिन लोगों ने अपनी चेतना को विकसित कर लिया है उनमें और जिन्होंने नहीं किया उनमें क्या फर्क है ?

जिन्होंने कर लिया है, और **उसे अच्छी तरह** किया है, वे सचेतन हो जाते हैं और बाकी मानवजाति के विशाल बहुमत की भांति अर्द्ध चेतन रहते हैं।

चेतना, **सत्य** चेतना व्यक्ति के निजी स्वभाव पर और बड़ी हद तक घटनाओं पर, अधिकार देती है।

२३ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

क्या आपका ख्याल है कि आधी रात के अनुष्ठान देखने के लिये गिरजा-घर जाना अच्छा है ?

गिरजाघर क्यों जाओ ? क्या तुम ईसाई हो या ईसाई होना चाहते हो ?

श्रीअरविंद ने अपना सारा जीवन मनुष्यों को धर्मों के बंधन से छुड़ाने में लगाया। क्या तुम एक बचकानी, निरर्थक उत्सुकता के लिये उनके काम का विरोध करना चाहते हो ?

अभी तक जितने भी गये हैं, बिना आज्ञा लिये गये हैं क्योंकि उन्होंने अनुभव किया था कि आज्ञा नहीं मिलेगी।

२५ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

'भागवत मुहूर्त' में श्रीअरविंद कहते हैं, ''ऐसे मुहूर्त आते हैं जब आत्मा

मनुष्यों के बीच घूमती है और प्रभु का श्वास हमारी सत्ता के जलों पर फैला रहता है। और ऐसे मुहूर्त भी होते हैं जब वह पीछे हट जाती है और मनुष्यों को अपने ही अहं के बल या दुर्बलता के भरोसे काम करने के लिये छोड़ दिया जाता है।" और अपने एक पत्र में आपने कहा है कि हमें अपने अहं पर नहीं बल्कि चैत्य पर आश्रित रहना चाहिये। मां, क्या आप मुझे यह समझा सकेंगी !

बात ऐसी है कि हम ऐसे काल में नहीं हैं जब मनुष्य अपने ही बल-बूते पर छोड़ दिये गये हैं। भगवान् ने अपनी चेतना को उन्हें प्रकाश देने के लिये नीचे भेजा है और जो भी उससे लाभ उठा सकते हैं उन्हें उससे लाभ उठाना चाहिये।

आशीर्वाद।

२९ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

आपने कल जो कहा था उसके बारे में : क्या भगवान् ने अपनी चेतना नीचे जमीन पर नहीं भेजी थी ? लेकिन सारी सृष्टि में भगवान् शुरू से थे, ठीक है न ?

हां।

तो फिर आदिम मानव अपने ही साधनों पर क्यों छोड़ दिये गये ?

आदिम मानव पशु के इतने अधिक निकट थे कि वे आंतरिक भगवान् के साथ नाता जोड़ने के योग्य न थे। धीरे-धीरे, हजारों वर्ष के आरोहणकारी विकास द्वारा मनुष्यों ने सचेतन होना सीखा है। अब वे कहीं अधिक ऊंची ऐसी चेतना को प्रकट करने में समर्थ हैं जो पूरी तरह अतिमानव में कार्य करेगी। इसीलिये यह चेतना नीचे धरती पर उतरी है ताकि उन सबमें कार्य कर सके जो उसे ग्रहण करने के लिये तैयार हैं।

आशीर्वाद।

३० दिसंबर १९६९

मधुर मां,

"जगत् एक महान् परिवर्तन के लिये तैयारी कर रहा है। क्या तुम सहायता करोगे ?"[1]

[1] माताजी का १९७० का नये साल का संदेश।

यह महान् परिवर्तन क्या है जिसकी आप बात कर रही हैं और हम उसमें कैसे सहायता कर सकते हैं ?

यह महान् परिवर्तन है धरती पर एक ऐसी नयी जाति की अभिव्यक्ति जो मनुष्य के आगे ऐसी ही होगी जैसा मनुष्य पशु के आगे है। इस नयी जाति की चेतना अब धरती पर कार्यरत हो गयी है—उन सबको प्रकाश देने के लिये जो उसे ग्रहण करने और उसकी ओर ध्यान देने योग्य हैं।

आशीर्वाद।

२ जनवरी १९७०

मधुर मां,

मृत्यु के समाचार को कैसे लिया जाये, विशेषकर जब मृत व्यक्ति हमारा निकटस्थ हो ?

परम प्रभु से कहो, "तेरी इच्छा पूर्ण हो" और जितना हो सके उतने शांत रहो।

अगर बिछुड़ा हुआ व्यक्ति तुम्हें प्यारा हो तो तुम्हें उसपर अपने प्रेम को शांति और स्थिरता में एकाग्र करना चाहिये क्योंकि यही चीज गये हुए व्यक्ति को सबसे अधिक सहायता दे सकती है।

आशीर्वाद।

१६ जनवरी १९७०

मधुर मां,

हमें फिल्में कैसे देखनी चाहियें ? अगर हम पात्रों के साथ एकात्म हो जायें तो अगर फिल्म दुःखभरी है या सनसनीखेज है तो हम उसमें इतने डूब जाते हैं कि हम रोने लगते या डर जाते हैं और अगर हम उससे अलग रहें तो हम उसे पूरी तरह सराह नहीं सकते। तो हमें क्या करना चाहिये ?

प्राण ही उससे विचलित और प्रभावित होता है।

अगर तुम मानसिक रूप से देखो तो वही रस नहीं आता; विचलित हुए या दुःख पाये बिना तुम शांत भाव से फिल्म के मूल्य को परख सकते हो, देख सकते हो कि क्या फिल्म अच्छी बनी है, उसमें अभिनय अच्छा है या उसके दृश्यों में कलात्मक मूल्य है।

पहली स्थिति में तुम "अच्छे दर्शक" होते हो, दूसरी हालत में तुम अधिक शांत रहते हो।

आशीर्वाद।

३० जनवरी १९७०

मधुर मां,

अगर हम अखबार न पढ़ें तो हमें यह कैसे पता लगेगा कि और देशों में या स्वयं हमारे देश में क्या हो रहा है? उनके द्वारा हमें कुछ थोड़ा अंदाज तो मिल ही जाता है न या उन्हें बिल्कुल ही न पढ़ना ज्यादा अच्छा है?

मैंने यह नहीं कहा कि तुम्हें अखबार पढ़ने ही नहीं चाहियें। मैंने कहा था कि तुम जो कुछ पढ़ो उसे आंखें मूंदकर मान न लो। तुम्हें जानना चाहिये कि सच्चाई एकदम अलग है।

आशीर्वाद।

४ फरवरी १९७०

मधुर मां,

जब हम अखबार पढ़ते हैं तो घटनाओं की सच्चाई को कैसे जान सकते हैं; संसार के सत्य को जानने का सबसे अच्छा तरीका क्या है?

सबसे अच्छा तरीका है स्वयं अपने अंदर सत्य को पाना—तब हम 'सत्य' को, वह जहां कहीं होगा, देख सकेंगे।

आशीर्वाद।

५ फरवरी १९७०

पत्रमाला १४

पत्रमाला १४

[श्रीअरविंदाश्रम की एक साधिका के नाम]

हम पृथ्वी के इतिहास के एक संक्रमणकालीन क्षण में हैं। यह शाश्वत काल में केवल एक क्षण है, लेकिन मानव जीवन की तुलना में यह मुहूर्त लंबा है। जड़-भौतिक अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिये तैयार करने के लिये बदल रहा है, परंतु मानव शरीर काफी नमनशील नहीं है और प्रतिरोध करता है; इसी कारण अबोधगम्य अव्यवस्थाओं और रोगों की संख्या बढ़ती जा रही है और चिकित्साशास्त्र के लिये एक समस्या बन गयी है।

इसका उपाय है कार्यरत दिव्य शक्तियों के साथ ऐक्य और विश्वास तथा शांतिभरी ग्रहणशीलता जो कार्य को ज्यादा सरल बना देंगे।

१८ नवंबर १९७१

जो आजकल प्रगति करना चाहते हैं उनके लिये बहुत विशेष अवसर है क्योंकि रूपांतर शुरू होता है नयी शक्तियों की क्रिया की ओर चेतना के खुलने से। इस तरह व्यक्तियों को भागवत प्रभाव के प्रति अपने-आपको खोलने का अनोखा और अद्‌भुत अवसर प्राप्त है।

२० नवंबर १९७१

व्यक्तिगत जीवन का प्रयोजन है भगवान् को खोजने और उनके साथ एक होने का आनंद। जब तुम यह बात समझ लो तो तुम सभी कठिनाइयों को पार करने की शक्ति पाने के लिये तैयार होते हो।

२२ नवंबर १९७१

निम्न प्रकृति पर विजय किसी भी बाह्य सफलता की अपेक्षा अधिक गहरा और स्थायी आनंद देती है।

२४ नवंबर १९७१

श्रीअरविंद ने हमें कुछ अद्‌भुत चीजें बतलायी हैं जिन्हें भविष्य धरती पर लायेगा और

हमें प्रोत्साहन दिया है कि हम अपने-आपको उसके लिये तैयार करें।

२७ नवंबर १९७१

हर एक के अंदर अपने अहंकार होते हैं और सभी अहंकार एक-दूसरे से टकराते रहते हैं। आदमी स्वतंत्र सत्ता तभी बन सकता है जब वह अहंकार से पीछा छुड़ा ले।

स्वतंत्र होने के लिये तुम्हें पूरी तरह केवल भगवान् का ही होना चाहिये।

३ दिसंबर १९७१

जीवन की कठिन घड़ियों में हर एक का अत्यावश्यक कर्त्तव्य है भगवान् के प्रति समग्र, अप्रतिबंध आत्म-निवेदन में अपने अहंकार पर विजय पाना। तब भगवान् तुमसे वही करवायेंगे जो तुम्हें करना चाहिये।

४ दिसंबर १९७१

परम प्रभो, अनंत प्रज्ञा,

इस संकटमय घड़ी में जब अहंकार टकरा रहे हैं और अपने अधिकार पर डटे हैं, केवल तेरी शरण में ही सुरक्षा है !

वर दे कि हमारे अंदर कोई भी चीज तेरी इच्छा की परिपूर्ति में बाधक न हो।

वर दे कि हम तेरी इच्छा की परिपूर्ति में सचेतन और प्रभावकारी सहयोगी बनें।

५ दिसंबर १९७१

धरती पर कठिन घड़ियां मनुष्यों को अपने तुच्छ निजी अहंकार को जीतने और सहायता तथा प्रकाश के लिये केवल भगवान् की ओर मुड़ने को बाधित करने के लिये आती हैं। मनुष्यों की बुद्धिमत्ता अज्ञानमय है। केवल भगवान् जानते हैं।

७ दिसंबर १९७१

हमारी मानव चेतना में ऐसी खिड़कियां हैं जो शाश्वत में खुलती हैं। लेकिन मनुष्य साधारणतः इन खिड़कियों को सावधानी से बंद रखते हैं। हमें उन्हें पूरी तरह खोल देना और शाश्वत को आजादी से अपने अंदर आने देना चाहिये ताकि वह हमें रूपांतरित कर सके।

खिड़कियां खोलने के लिये दो शर्तें जरूरी हैं :

१. तीव्र अभीप्सा।

२. अहंकार का उत्तरोत्तर विलय।

जो सचाई के साथ काम में लगते हैं उनके लिये भागवत सहायता निश्चित है।

८ दिसंबर १९७१

व्यष्टिगत सत्ता को बनाने के लिये अहंकार जरूरी था, अतः उसका नाश कठिन है। इसका एक बहुत अच्छा यद्यपि ज्यादा कठिन समाधान है, उसे रूपांतरित करके भगवान् का यंत्र बनाना।

जो अहंकार परिवर्तित और पूरी तरह भगवान् को निवेदित हो जाते हैं वे विशेष रूप से शक्तिशाली और प्रभावी यंत्र बन सकते हैं।

प्रयास कठिन है और एक संपूर्ण और दृढ़ सचाई की मांग करता है, लेकिन जिनमें प्रबल इच्छाशक्ति, तीव्र अभीप्सा और निष्कंप सचाई हो उनके लिये यह काम हाथ में लेने योग्य है।

जैसे-जैसे क्रिया आगे बढ़ती है, हर व्यक्ति के लिये तरकीब क्रियान्वित होती जाती है क्योंकि हर अहंकार का अपना स्वभाव होता है और हर एक को विशेष तरकीब की जरूरत होती है। सबके लिये जो गुण अनिवार्य हैं वे हैं संपूर्ण अध्यवसाय और सचाई। अपने-आपको धोखा देने की जरा-सी वृत्ति सफलता को असंभव बना देती है।

९ दिसंबर १९७१

तुम्हारे लिये शुरू करने का सबसे अच्छा तरीका है अपनी चैत्य सत्ता को खोजो और उसे अपनी सभी आंतरिक गतिविधियों का साक्षी बनाकर उसपर एकाग्र होओ, तुम्हें जो कुछ करना और जो नहीं करना चाहिये उसे उसका निर्णायक बनाओ और अपनी बाह्य प्रकृति को उसके निर्णय के आधीन बनाने की कोशिश करो।

११ दिसंबर १९७१

चैत्य सत्ता दिव्य उपस्थिति का व्यक्तिगत कोष है।

वह सभी विचारों के परे हमारे अंदर की गहराई में पायी जाती है।

११ दिसंबर १९७१

चैत्य के संदेश मानसिक रूप में नहीं आते। वे भाव या तर्क-वितर्क नहीं होते। उनका अपना स्वभाव होता है, मन से एकदम अलग, एक ऐसे भाव की तरह जो अपने-आपको समझता और क्रिया करता है।

अपनी प्रकृति के अनुसार चैत्य निश्चल, स्थिर, प्रकाशमय, समझदार, उदार, विस्तृत और प्रगतिशील होता है। वह सदा समझने और प्रगति करने का प्रयास करता है।

मन वर्णन करता और व्याख्या करता है।

चैत्य देखता और समझता है।

१३ दिसंबर १९७१

चैत्य धरती पर अपने उत्तरोत्तर जीवनों में प्रगतिशील रूप के बारे में सचेतन होता है इसलिये उसे अपने पिछले जीवनों की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की याद होती है।

चैत्य ने पृथ्वी पर अपने इन भौतिक जीवनों में जितना अधिक भाग लिया उसकी स्मृतियां उतनी ही अधिक और यथार्थ होंगी।

१४ दिसंबर १९७१

मनुष्यों के बीच में अकेलेपन का अनुभव करना इस बात का चिह्न है कि तुम अपनी सत्ता के अंदर भगवान् की उपस्थिति के साथ संपर्क पाने की आवश्यकता अनुभव कर रही हो। अतः तुम्हें नीरवता में एकाग्र होना चाहिये और सभी मानसिक क्रियाओं के परे भीतर की गहराइयों में प्रवेश करके अपनी चेतना की गहराइयों में भागवत उपस्थिति को खोज निकालना चाहिये।

१६ दिसंबर १९७१

एक ऐसा क्षण आता है जब भागवत उपस्थिति के बिना जीवन असह्य हो उठता है। अतः अपने-आपको पूरी तरह भगवान् को सौंप दो तो तुम प्रकाश में उठ आओगी।

१७ दिसंबर १९७१

भगवान् के साथ सचेतन सायुज्य का एक क्षण, चाहे जितना भी प्रबल प्रतिरोध क्यों न हो, उसे छिन्न-भिन्न कर सकता है।

१८ दिसंबर १९७१

नीरवता में अधिकतम ग्रहणशीलता रहती है और निश्चल-नीरवता में बड़े-से-बड़ा कार्य किया जाता है।

आओ हम नीरव होना सीखें ताकि प्रभु हमारा उपयोग कर सकें।

१९ दिसंबर १९७१

जब हम अपनी चेतना से समस्त पराजयवाद को निकाल फेंकेंगे तो हम सिद्धि की दिशा में एक बहुत बड़ी छलांग लगायेंगे।

भागवत कृपा में अपनी श्रद्धा को पूर्ण करके हम अवचेतना के पराजयवाद पर विजय पा सकेंगे।

२० दिसंबर १९७१

भौतिक जगत् के दुःख-दैन्य को समाप्त करने के लिये, जो अवचेतन निराशावाद का कारण हैं, भगवान् के साथ पूर्ण ऐक्य और संपूर्ण अभिव्यक्ति ही अनन्य उपाय हैं। केवल भगवान् के साथ पूर्ण ऐक्य में ही चेतना का शाश्वत आनंद में आविर्भाव हो सकता है। और यह सचेतन ऐक्य ही पार्थिव जीवन का सच्चा लक्ष्य है।

२१ दिसंबर १९७१

यह जानना कि हम क्यों जीते हैं : भगवान् की खोज और उनके साथ सचेतन ऐक्य।

एकमात्र इसी उपलब्धि पर एकाग्र होने की अभीप्सा करना।

सभी परिस्थितियों को इस लक्ष्य तक पहुंचने के साधन में रूपांतरित करना जानना।

२२ दिसंबर १९७१

प्रार्थना

प्रभो, मेरे अंदर तुम्हें जानने की तीव्र इच्छा जागे।

मैं अपना जीवन तुम्हारी सेवा के लिये अर्पित करने की अभीप्सा करती हूं।

२४ दिसंबर १९७१

अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये जो अच्छी-से-अच्छी चीज हम कर सकते हैं वह है अपने अंदर समस्त अहंकार पर विजय पाना और इस रूपांतर के लिये सतत प्रयास करना। मानव अहं इस कारण अपदस्थ होने से इंकार करता है कि और लोग रूपांतरित नहीं हुए हैं। लेकिन वही दुर्भावना का गढ़ है, क्योंकि हर एक का कर्तव्य है और लोग क्या करते हैं उसकी परवाह किये बिना अपने-आपको रूपांतरित करना।

अगर लोग जानें कि यह रूपांतर, अहंकार का लोप, सतत शांति और आनंद का एकमात्र मार्ग है तो वे आवश्यक प्रयास करने के लिये तैयार हो जायेंगे। तो उनके अंदर यह विश्वास जागना चाहिये।

हर एक से बार-बार कहना चाहिये : अपने अहंकार को लुप्त कर दो तो तुम्हारे अंदर शांति का राज्य होगा।

भगवान् की सहायता हमेशा सच्ची अभीप्सा को उत्तर देती है।

२५ *दिसंबर* १९७१

मनुष्य अपने जीवन में जैसी मनोवृत्ति अपनाते हैं उसके अनुसार उन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है :

१ —वे जो स्वयं अपने लिये जीते हैं। वे हर चीज के बारे में अपने संबंध में ही सोचते हैं और उसीके अनुसार कार्य करते हैं। मनुष्यों की बहुत बड़ी संख्या इसी तरह की है।

२ —ऐसे लोग जो अपना प्रेम किसी और मनुष्य को देते और उसीके लिये जीते हैं। परिणाम-स्वरूप हर चीज स्वभावतः उस व्यक्ति पर निर्भर होती है जिसे प्रेम के लिये चुना जाता है।

३ —ऐसे लोग जो अपना जीवन मानवजाति की सेवा के लिये अर्पित करते हैं मानवजाति की किसी ऐसी सेवा द्वारा जो निजी संतोष के लिये न होकर, बिना हिसाब-किताब के और कार्य से किसी निजी लाभ की आशा किये बिना, सचमुच दूसरों के लिये उपयोगी हो।

४ —ऐसे लोग जो अपने-आपको पूरी तरह भगवान् को देते हैं और केवल उन्हींके लिये और उन्हींके द्वारा जीते हैं। इसका मतलब होता है भगवान् को पाने के लिये आवश्यक प्रयास करना, उनकी इच्छा के बारे में सचेतन होना और ऐकांतिक रूप से उनकी सेवा के लिये कार्य करना।

पहली तीन श्रेणियों में आदमी स्वभावतः दुःख-दैन्य और निराशा के स्वाभाविक नियम के आधीन होता है।

केवल अंतिम वर्ग में—अगर तुम उसे पूरी सच्चाई के साथ चुनो और अखूट

धीरज के साथ उसके पीछे लगे रहो—तो तुम पूर्ण परिपूर्ति और सतत प्रकाशमान शांति की निश्चिति पाते हो।

२६ दिसंबर १९७१

सुखी होने के लिये मत जिओ, भगवान् की सेवा करने के लिये जिओ। तब तुम जो सुख भोगोगे वह सभी आशाओं से बढ़कर होगा।

२८ दिसंबर १९७१

हम पृथ्वी के इतिहास के एक निर्णायक मुहूर्त में हैं। वह अतिमानव के आने की तैयारी कर रहा है और इस कारण जीवन की प्राचीन पद्धति अपना मूल्य खोती जा रही है। हमें इसकी नयी मांगों के बावजूद साहस के साथ भविष्य के मार्ग पर आगे बढ़ते चलना है। जो तुच्छताएं एक समय सही जा सकती थीं वे अब नहीं सही जा सकतीं। जो आनेवाला है उसे ग्रहण करने के लिये हमें अपने-आपको विस्तृत करना चाहिये।

२९ दिसंबर १९७१

सृष्टि का परिणाम है चेतना का ब्योरेवार गुणन।

जब समग्र की दृष्टि और सभी ब्योरों की दृष्टि एक सक्रिय चेतना में मिलकर एक हो जायेंगी तो सृष्टि अपनी प्रगतिशील पूर्णता प्राप्त कर लेगी।

८ जनवरी १९७२

देश और काल में किन्हीं दो मनुष्यों की एक-सी चेतना नहीं होती और इन सभी चेतनाओं का योगफल भागवत चेतना की एक आंशिक और घटी हुई अभिव्यक्तिमात्र होता है।

इसीलिये मैंने "प्रगतिशील पूर्णता" कहा, क्योंकि ब्योरे की चेतना की अभिव्यक्ति अनंत और अविरत होती है।

९ जनवरी १९७२

पहली शर्त है कि अपने निजी हितों को लक्ष्य न बनाओ।

पहले गुण जिनकी जरूरत है वे हैं: बहादुरी, साहस और अध्यवसाय।

और फिर इस बारे में सचेतन होना कि तुम्हें जो जानना चाहिये उसकी तुलना में तुम कुछ भी नहीं जानते, तुम्हें जो करना चाहिये उसकी तुलना में तुम कुछ भी नहीं कर सकते, तुम्हें जो होना चाहिये उसकी तुलना में तुम कुछ भी नहीं हो।

तुम्हारी प्रकृति में जिस चीज की कमी है उसे प्राप्त करने के लिये, जो अभीतक तुम नहीं जानते उसे जानने के लिये, जो अभीतक तुम नहीं कर सकते उसे करने के लिये एक अपरिवर्तनशील संकल्प होना चाहिये।

निजी कामनाओं के अभाव से आनेवाली ज्योति और शांति में तुम्हें सदा प्रगति करते रहना चाहिये।

तुम अपना कार्यक्रम बना सकते हो :

''हमेशा अधिक अच्छा और आगे !''

और केवल एक ही लक्ष्य हो : भगवान् को जानना ताकि उन्हें अभिव्यक्त कर सको।

दृढ़ बने रहो और तुम आज जो नहीं कर सकते उसे कल कर पाओगे।

११ जनवरी १९७२

माताजी, क्या अपने अंदर रोगमुक्त करने की क्षमता विकसित करना संभव है ?

सिद्धांत रूप में, सचेतन रूप से दिव्य शक्ति के साथ एक होने से सब कुछ संभव है।

लेकिन उपाय खोजना होगा और यह व्यक्ति और स्थिति पर निर्भर है।

पहली शर्त है ऐसी भौतिक प्रकृति का होना जो औरों से ऊर्जा खींचने की जगह ऊर्जा देती है।

दूसरी अनिवार्य शर्त है यह जानना कि ऊपर से, अक्षय, निर्वैयक्तिक स्रोत से ऊर्जा को कैसे खींचा जाये।

१२ जनवरी १९७२

इस तरीके से तुम जितना अधिक खर्च करते हो उतना अधिक पाते हो, और एक ऐसा बरतन बनने की जगह जो अपने-आपको देकर खाली कर लेता है, एक अक्षय धारा बन जाते हो।

दृढ़ अभीप्सा द्वारा ही तुम सीखते हो।

१३ जनवरी १९७२

सुखी तथा सफल जीवन के लिये सच्चाई, नम्रता, अध्यवसाय और प्रगति के लिये कभी न बुझनेवाली प्यास जरूरी हैं। सबसे बढ़कर यह कि तुम्हें विश्वास हो कि प्रगति क़ी संभावना असीम है। प्रगति यौवन है; तुम सौ वर्ष की उम्र में भी युवक हो सकते हो।

१४ जनवरी १९७२

जब शरीर बढ़ती हुई पूर्णता की ओर सतत प्रगति करने की कला सीख ले तो हम मृत्यु की अनिवार्यता पर विजय पाने के पथ पर अग्रसर होंगे।

१६ जनवरी १९७२

अगर चेतना के विकास को जीवन का मुख्य उद्देश्य मान लिया जाये तो बहुत-सी कठिनाइयों को अपना समाधान मिल जायेगा।

बूढ़ा होने से बचने का सबसे अच्छा उपाय है प्रगति को अपने जीवन का उद्देश्य बनाना।

१८ जनवरी १९७२

सदा सीखना, बौद्धिक नहीं, मनोवैज्ञानिक रूप से, स्वभाव में प्रगति करना, अपने अंदर गुण पैदा करना और दोष ठीक करना ताकि हर चीज हमें अज्ञान और अक्षमता से मुक्त करने के लिये अवसर हो सके—तब जीवन बहुत अधिक रुचिकर और जीने योग्य बन जाता है।

२७ जनवरी १९७२

श्रीअरविंद धरती पर अतिमानसिक जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा करने आये। उन्होंने केवल अभिव्यक्ति की यह घोषणा ही नहीं की बल्कि आंशिक रूप से अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और हमारे आगे उदाहरण रखा कि हमें अपने-आपको इस अभिव्यक्ति के लिये तैयार करने के लिये क्या करना चाहिये। जो सबसे अच्छी चीज हम कर सकते हैं वह यह है कि उन्होंने हमसे जो कुछ कहा है उस सबका अध्ययन करें, उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिये तैयार करें।

इससे जीवन को अपना सच्चा अर्थ मिलता है और यह हमें सभी विघ्न-बाधाओं को जीतने में सहायता देगा।

आओ, हम नयी सृष्टि के लिये जियें और हम युवा रहते और प्रगति करते हुए अधिकाधिक मजबूत बनते जायेंगे।

३० जनवरी १९७२

वे ऊर्जाएं जिनका उपयोग मनुष्य प्रजनन के लिये करते हैं और जिनका उनके जीवनों में इतना अधिक महत्त्व है, उनका इसके विपरीत उदात्तीकरण करके, प्रगति और उच्चतर विकास के लिये उपयोग होना चाहिये ताकि नयी जाति के आगमन की तैयारी हो। लेकिन उससे पहले प्राण और भौतिक को समस्त कामनाओं से मुक्त होना चाहिये अन्यथा महाविपदा को निमंत्रण देना समझो।

३१ जनवरी १९७२

पहली चीज जो भौतिक चेतना को समझनी चाहिये वह यह है कि जीवन में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे सब इस तथ्य से आती हैं कि हमें जिस सहायता की आवश्यकता है उसके लिये हम ऐकांतिक रूप से भगवान् पर निर्भर नहीं रहते।

केवल भगवान् ही हमें वैश्व प्रकृति की यांत्रिकता से मुक्त कर सकते हैं। और यह मुक्ति नयी जाति के जन्म और विकास के लिये अनिवार्य है।

पूर्ण विश्वास और कृतज्ञता के साथ अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण करने से ही कठिनाइयों पर विजय मिलेगी।

१ फरवरी १९७२

जीवन में शांति और आनंद के लिये आवश्यक शर्त है पूरी सच्चाई के साथ वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं। लगभग सभी मानव दुर्गतियां इस तथ्य से आती हैं कि हमें प्रायः हमेशा यह विश्वास होता है कि हम भगवान् की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि हमें क्या चाहिये और जीवन को हमें क्या देना चाहिये। अधिकतर मनुष्य चाहते हैं कि दूसरे मनुष्यों को उनकी प्रत्याशाओं की पुष्टि करनी चाहिये और परिस्थितियों को उनकी कामनाओं की पुष्टि करनी चाहिये—इसीलिये वे कष्ट भोगते और दुःखी रहते हैं।

कामनाओं के लोप से जो शांति और निश्चल आनंद प्राप्त होता है वह तभी आता है जब हम अपने-आपको पूरी सच्चाई के साथ भागवत इच्छा के अर्पण कर देते हैं।

चैत्य सत्ता इस बात को निश्चय के साथ जानती है; इसलिये अपने चैत्य के साथ

एक होकर हम उसे जान सकते हैं। लेकिन पहली शर्त है अपनी कामनाओं के आधीन न होना और उन्हें अपनी सत्ता का सत्य न मान बैठना।

४ फरवरी १९७२

हर एक के लिये पहली आवश्यकता है उसका अपना रूपांतर और जगत् की सहायता करने का सबसे अच्छा तरीका है अपने-आप भगवान् को उपलब्ध करना।

५ फरवरी १९७२

हमारी सत्ता की गहराइयों में, चिंतन की नीरवता में एक ज्योतिर्मयी शक्ति हमारी चेतना में एक विशाल और ज्योतिर्मयी शांति की बाढ़ ले आती है जो सभी तुच्छ प्रतिक्रियाओं पर अभिभूत होती है और हमें भगवान् के साथ ऐक्य के लिये तैयार करती है—जो वैयक्तिक जीवन का एकमात्र प्रयोजन है।

६ फरवरी १९७२

अतः, जीवन का प्रयोजन और उद्देश्य दुःख और संघर्ष नहीं बल्कि एक सर्वशक्तिमान् और सुखी उपलब्धि है।

बाकी सब कुछ दुःखद भ्रम है।

७ फरवरी १९७२

जब पहले मानवजाति की रचना हुई तो अहंकार एक करनेवाला उपकरण था। सत्ता की विभिन्न अवस्थाएं अहं के चारों ओर वर्गीकृत थीं; लेकिन अब जब अतिमानसिकता के जन्म की तैयारी हो रही है, अहंकार को लुप्त होना और चैत्य सत्ता को स्थान देना होगा जो धीरे-धीरे भागवत हस्तक्षेप द्वारा मानव सत्ता में भगवान् को अभिव्यक्त करने के लिये निर्मित हो चुकी है।

चैत्य के प्रभाव तले ही भगवान् मनुष्य में अभिव्यक्त होते हैं और इस तरह अतिमानवता के आगमन की तैयारी करते हैं।

चैत्य अमर है और चैत्य द्वारा धरती पर अमरता को प्रकट किया जा सकता है।

तो अब महत्त्वपूर्ण काम है अपने चैत्य को पाना, उसके साथ एक होना और उसे अहंकार का स्थान लेने देना। अहंकार या तो परिवर्तित होने या लुप्त हो जाने के लिये बाधित होगा।

८ फरवरी १९७२

पथ पर मनुष्य जो पहली चीज सीखता है वह यह है कि देने का आनंद पाने के आनंद से कहीं अधिक बढ़कर है।

तब तुम धीरे-धीरे सीखते हो कि अपने-आपको भूल जाना निर्विकार शांति का स्रोत है। बाद में इस आत्म-विस्मृति में तुम भगवान् को पाते हो और वे ही सदा बढ़ते रहनेवाले आनंद का स्रोत हैं।

श्रीअरविंद ने एक दिन मुझसे कहा था कि अगर मनुष्य यह जान लें और उन्हें इसपर विश्वास हो जाये तो वे सबके सब योग करना चाहेंगे।

९ फरवरी १९७२

मानव चेतना इतनी ज्यादा भ्रष्ट है कि मनुष्य भगवान् के प्रति सच्चे समर्पण से प्राप्त होनेवाले ज्योतिर्मय आनंद की अपेक्षा अहंकार के दुःख-दैन्य और उसके अज्ञान को अधिक पसंद करते हैं। उनका अंधापन इतना अधिक है कि वे परीक्षण करने से भी इंकार करते हैं और दुःख-दैन्य से पिंड छुड़ाने के लिये प्रयास करने की अपेक्षा अपने अहं के आधीन होना ज्यादा पसंद करेंगे।

वे इतने अंधे हैं कि अपने-आपको भगवान् के अर्पित करने की जगह वे भगवान् को अपने अहंकार का दास बनाने से भी संकोच न करेंगे—यदि ऐसी बात संभव हो सके।

१० फरवरी १९७२

परम प्रभो, हमें नीरव होना सिखला। इस नीरवता में हम तेरी शक्ति पा सकें और तेरी इच्छा को समझ सकें।

११ फरवरी १९७२

हम भगवान् के सच्चे सेवक बनना चाहते हैं।

''परम प्रभो, पूर्ण चेतना, केवल तुम ही सचमुच जानते हो कि हम क्या हैं; हम क्या कर सकते हैं, हम जैसे तुम्हारी सेवा करना चाहेंगे उस तरह करने के योग्य बनने के लिये हमें क्या प्रगति करनी चाहिये। हमें अपनी संभावनाओं के बारे में सचेतन बनाओ, साथ ही हमारी कठिनाइयों के बारे में भी ताकि हम निष्ठा के साथ तुम्हारी सेवा करने के लिये उनपर विजय पा सकें।''

परम सुख है भगवान् के सच्चे सेवक बनने में।

१४ फरवरी १९७२

जो लोग हमेशा प्रगति करते रहना चाहते हैं उनके लिये प्रगति करने के तीन मुख्य मार्ग हैं :

१ —अपनी चेतना के क्षेत्र को विस्तृत करना।

२ —हम जो कुछ जानते हैं उसे ज्यादा अच्छी तरह और ज्यादा पूर्णता के साथ समझना।

३ —भगवान् को पाना और उनकी इच्छा के प्रति अधिकाधिक समर्पण करना।

दूसरे शब्दों में इसका अर्थ हुआ :

१ —यंत्र की क्षमताओं को सदा समृद्ध करते रहना।

२ —इस यंत्र की क्रियाशीलता को सदा बिना रुके पूर्ण बनाते रहना।

३ —इस यंत्र को भगवान् के प्रति अधिकाधिक ग्रहणशील और आज्ञाकारी बनाते रहना।

अधिकाधिक चीजों को समझना और करना सीखना। अपने-आपको ऐसी चीजों से शुद्ध करना जो तुम्हें भगवान् के प्रति संपूर्ण समर्पण करने से रोकती हैं। अपनी चेतना को भागवत प्रभाव के प्रति अधिकाधिक सचेतन और ग्रहणशील बनाना।

हम कह सकते हैं : अपने-आपको अधिकाधिक विस्तृत करना, अपने-आपको अधिकाधिक गहरा बनाना, अपने-आपको अधिकाधिक पूर्ण रीति से अर्पित करना।

१५ फरवरी १९७२

जिसे सामान्यतः निष्ठा कहा जाता है वह है सतर्कता के साथ अपने दिये हुए वचनों को पूरा करना। लेकिन एकमात्र सच्ची दृढ़ निष्ठा है भगवान् के प्रति निष्ठा—और हम सबको सच्चे और अविच्छिन्न प्रयास के साथ इसी निष्ठा को पाना चाहिये।

जब सारी सत्ता, अपने सभी भागों और सभी क्रियाओं में समस्त सच्चाई के साथ कह सके :

"तुम जो चाहो, तुम जो चाहो।"

तब तुम सच्ची निष्ठा के मार्ग पर होते हो।

१७ फरवरी १९७२

धरती पर जीवन तत्त्वतः प्रगति का क्षेत्र है लेकिन जो कुछ प्रगति करनी है उसके लिये जीवन कितना संक्षिप्त है !

अपनी तुच्छ कामनाओं को संतुष्ट करने में अपना समय बरबाद करना निरी मूर्खता है। सच्चा सुख तभी मिल सकता है जब तुम भगवान् को पा लो।

१९ फरवरी १९७२

परम प्रभो ! ऐसी पूर्णता जो हमें बनना है, ऐसी पूर्णता जिसे हमें अभिव्यक्त करना है।

यह शरीर तुम्हारे द्वारा ही जीवित है और बारंबार तुमसे कहता है :

"जो तुम चाहो, जो तुम चाहो।"

उस दिन तक जब वह स्वतः ही जान सकेगा कि तुम्हारी इच्छा क्या है क्योंकि उसकी इच्छा पूरी तरह तुम्हारी इच्छा के साथ एक होगी।

२३ फरवरी १९७२

वर दो कि मैं तुम्हारी उपस्थिति के बारे में सचेत हो सकूं।

९ मार्च १९७२

प्रभो ! हम अनुनय करते हैं कि हमारे अंदर कोई चीज तुम्हारी उपस्थिति को अस्वीकार न करे और हम वही बन सकें जो तुम हमें बनाना चाहते हो; वर दो कि हमारे अंदर सब कुछ तुम्हारी इच्छा का अनुमोदन करे।

१२ मार्च १९७२

प्रभो, हमें अपने चिंतन की नीरवता प्रदान करो, ऐसी नीरवता जो तुम्हारी प्रभावी उपस्थिति से भरपूर हो।

१३ मार्च, १९७२

वर दो कि हमारी नीरवता तुम्हारी उपस्थिति से भर जाये और हम उसके बारे में पूरी तरह सचेतन हों।

वर दो कि हम जान सकें कि तुम ही हमारा जीवन हो, हमारी चेतना और हमारी सत्ता हो, और तुम्हारे बिना सब कुछ भ्रांति है।

१४ मार्च १९७२

वर दो कि हम तुम्हारी शाश्वत चेतना के साथ एकात्म हो सकें ताकि हम सचमुच जान सकें कि अमरता क्या है।

१६ मार्च १९७२

अमरता की तैयारी के लिये शरीर की चेतना को अपने-आपको पहले शाश्वत चेतना के साथ एकात्म करना चाहिये।

१७ मार्च १९७२

एक पंद्रह वर्ष की लड़की ने पूछा, ''सत्य क्या है ?''

मैंने उत्तर दिया, ''परम प्रभु की इच्छा।''

यह चिंतनात्मक ध्यान के लिये विषय है।

१८ मार्च १९७२

जिस सत्य को जानने के लिये मनुष्य ने व्यर्थ की खोज की है वह नयी जाति, कल की जाति, अतिमानव का जन्मसिद्ध अधिकार होगा।

सत्य के अनुसार जीना उसका जन्मसिद्ध अधिकार होगा।

आओ, हम नयी सत्ता के आने की तैयारी के लिये अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करें। मन को निश्चल-नीरव होना चाहिये, उसका स्थान सत्य चेतना—ब्योरों की चेतना के साथ समस्वर समग्र की चेतना ले ले।

१९ मार्च १९७२

अनुक्रमणिका

अंत:करण
सामान्य, की आवाज २३३
द्वारा जीवन का पथ-प्रदर्शन ३२२
की अवहेलना ३२२
और चैत्य सत्ता ३५१
अंतरात्मा २६३, २७३
की ओर पीठ कर लो तो ६७
का समर्पण और भगवान् के दर्शन १५१
के अंदर ही अचंचलता १६३
की क्या भूमिका है ? २१४
को पाने का अर्थ २१४
दिव्य चिंगारी है २३१
भगवान् का अंश है २३२, २३३
का प्रभाव २३२
की आवाज २३३, [४३]
का समस्त सत्ता पर शासन तभी २३३
जानता है दूसरे को क्या पाने की जरूरत है २७७
क्या हर एक में नहीं है ? ३२३
के बारे में सचेतन हर एक नहीं ३२३
के पथ-प्रदर्शन में चलनेवाले बहुत कम ३२३
की चेतना के बारे में अभिज्ञ होना और भगवान् के साथ एक होना क्या एक ही बात है ? ३३४
में जो शुद्ध ३५०

सूचना

ऐसे पढ़ें :—

१. **दूसरे**	**अतिमानसिक शक्तियां**	**क्रिया**
-ों से	-यों के	-ओं समस्त
दूसरों से	अतिमानसिक शक्तियों के	समस्त क्रियाओं

२. जिस वाक्य के शुरू में (') है वह अपने-आपमें स्वतंत्र वाक्य या पद है। उसे मूल शब्द के साथ मिलाकर न पढ़ें, बस, मूल शब्द के साथ उसका संबंध समझ लें। 'उदाहरण', 'प्रतीक', 'साधक' (पत्रों के लिखने वाले) के नीचे के लगभग सभी वाक्य स्वतंत्र हैं।

३. कहीं-कहीं अधिक स्पष्टता के लिये लिखा है दे० 'योग' यौगिक जीवन भी, दे० 'आश्रम' खर्च भी, इसका मतलब है **योग** के नीचे का वह वाक्य देखें जो यौगिक जीवन से और **आश्रम** के नीचे का वह वाक्य देखें जो खर्च से शुरू होता है।

४. पृष्ठ-संख्या के बाद अ का मतलब है वह प्रसंग उस पृष्ठ के अंत से शुरू होकर, बस, अगले पृष्ठ के आरंभ तक ही गया है। और दे० का मतलब है देखो, टि० का मतलब है टिप्पणी।

५. [ ] में पृष्ठ-संख्या का मतलब है कि गौण या अवांतर रूप से वह बात वहां भी है।

६. जहां कहीं वाक्य-रचना मूल शब्द के साथ संगत न जान पड़े, वहां मूल शब्द के आगे कोष्ठ में जो शब्द दिया गया है उसके साथ मिलाकर पढ़ने से वह संगत बन जायेगी।

७. वाक्य के अंत में (,) का मतलब कि मूल शब्द को वहां अंत में पढ़ें।

८. लगातार के वाक्यों (running) में (;) के बाद के वाक्य को मूल शब्द के साथ पढ़ें, पर यदि पहले (:) हो, और पृष्ठ-संख्या के बाद (;) न होकर (,) दिया हो तो मूल शब्द को (:) तक के वाक्य के साथ मिलाकर अगला वाक्य पढ़ें।

९. मूल शब्द के आगे या उसके वाक्यों में जो पृष्ठ-संख्याएं होती हैं वहां मूल शब्द का कोई भी पर्याय हो सकता है। यह बात 'भगवान्' शब्द पर विशेष रूप से लागू होती है। वहां ईश्वर, परमेश्वर, प्रभु, परम प्रभु आदि कुछ भी हो सकता है।

(दे० 'चैत्यसत्ता', 'भगवान्' भी)
अंतर्दर्शन
पहाड़ियों और जीवन-सरिता का ८७-८
अंतर्दृष्टि [आंतरिक दृष्टि]
श्रेष्ठ, बाहरी दृष्टि की अपेक्षा ३८
अंतर्भास
एक प्रभावकारी तरीका, जानने का ४१
अंतर्भासात्मक क्रिया-कलाप
मानसिक क्रिया-कलाप के स्थान पर ३१२
अंतर्भासात्मक मन
में विरोधों का समन्वय २०१
अंधकार [अंधेरा] १९
का शासन ६
(दे० 'प्रकाश', 'प्रलोभन' भी)
अंध-विश्वास
'राहुकाल १५, १७अ
अकेलापन ३९४ दे० 'रिक्तता' भी
अक्षमता [असामर्थ्य] ३९९
के सुझाव १२४
का प्रश्न नहीं, साधना में १२७
का अनुभव आगे बढ़ने के लिये २९७
अखबार पढ़ना ३८८
अग्नि [आग]
वैदिक, और चैत्य ज्वाला १९४
(दे० 'अभीप्सा' भी)
अचंचलता [स्थिरता] ५०, ५८, ११९, १२१, १५५, २११, २१६, २५५, ३१९
पाने के लिये आराम चाहिये ४९
खो बैठना, स्नायुएं थकी हों तो ७७
के साथ मैं उस सबको स्वीकार नहीं कर सकता जो हो रहा है १४५
अंतरात्मा में ही पायी जा सकती है १६३
को उतारना २१६
संगीत के प्रभाव से २२०
(दे० 'मन' भी)
अच्छा १९७अ
अच्छे और बुरे
की जांच १११, ३५०
प्रभावों को अलग करना १२६
अज्ञान
और दुर्घटना २९
से निकलकर सत्य में प्रवेश १५२
मानव, की रचनाएं हैं पथ की कठिनाइयां २१२
से चिपका रहता है मनुष्य २७०
और भूल २८४
के ही मत होते हैं २९८
और निश्चेतना ३५१अ
के कारण भगवान् का अस्वीकार ३५८
और अक्षमता से मुक्ति ३९९
और भगवान् के प्रति समर्पण ४०२
अतिचेतना २१९
अतिमानव
की 'परम क्षमताएं' २२३
की चेतना ३८६
के आने की तैयारी ३९७
का जन्मसिद्ध अधिकार ४०५
अतिमानवता
के आगमन की तैयारी ४०१
अतिमानस
और अधिमानस २२०
के अवतरण के बाद भी क्या अभीतक कोई व्यवस्थित अधिमानसिक या अतिमानसिक सत्ता नहीं है? २२२
का अवतरण (२९ फरवरी १९५६) २२२टि०, २९८-९
अतिमानसिक अभिव्यक्ति २१३
अतिमानसिक चेतना २३८
की स्थिति १९६७ में ३३१
अतिमानसिक जगत् [नया जगत्] २७९
की अभिव्यक्ति की घोषणा ३९९
अतिमानसिक ज्योति २३८
की ओर मुड़ी हुई चेतना : अर्थ ७३

अतिमानसिक शक्तियां
और सौंदर्य ७३
-यों के अग्रदूतों का अवतरण २९८
अतिमानसिक शरीर
वृद्धावस्था के अधीन नहीं ३०१
अतिमानसिक सत्ता
की 'परम क्षमताएं' २२३
जल्दी धरती पर निवास करेगी ३५३
अतिमानसिक सौंदर्य
भौतिक में : मतलब ७२अ
अतीत [भूतकाल]
'पीछे मुड़कर देखना प्रगति के लिये १७
'जो कुछ हो चुका उसपर कुछ समय बाद नजर डालने का लाभ ६४
अपना, भूल जाना चाहिये १७४
को अगर मिटा सको २४६अ
से पिंड छुड़ाना ३३७
और भगवान् से नाता ३४३
अदृष्ट
, अप्रत्याशित, अज्ञात हर क्षण सामने : इसका इलाज क्या है ? १८
अधिकार
अपनी निम्न प्रकृति पर १०९
आपने-आप पर नहीं तो औरों पर नियंत्रण कैसे . . . १८८
अपूर्णताओं पर ३२७
करने का सुख ३६०, [१६३]
अपनी सत्ता पर ३६८
निजी स्वभाव और घटनाओं पर ३८५
(दे० 'प्रभुत्व' भी)
अधिमानस
का क्या काम है ? २२०
के अनुरूप क्षेत्र : अर्थ २२०-१
पर प्रभुत्व : मतलब २२०-१
अधैर्य [अधीर]
: सावधानी का अभाव १६
होने की जरूरत नहीं १२५, १२७
अध्ययन [पढ़ना, पढ़ाई] १३५
की रुचि १८५
में व्यस्त रखना मन को १८६
बंद कर देने की जगह किताबें सावधानी से चुनना १८६
तेजी से, जटिल वर्णन लांघते हुए १८६
उपन्यास, और जासूसी कहानियां १८७, १४८-९, २६१
श्रीअरविंद और माताजी की पुस्तकों का २१७-८ दे० 'श्रीअरविंद' भी
ध्यान और एकाग्रता के साथ विचार को विकसित करने के लिये २२८
और सिर में 'धूसर' द्रव्य २६१
में अनियमितता २७२
(दे० 'माताजी', 'सावित्री' भी)
अध्यवसाय १३५, २५५
और कठिनाइयां १२४
के साथ विजय निश्चित १२४
के साथ काम [प्रयास] १३२, २२१, २५५
और कठिन काम १७१
और चैत्य सत्ता का विकास २३२
का अभाव : उपाय २५२
और प्रगति २६६
और भगवान् के लिये जीना २७४
आत्म-प्रवंचना को पकड़ने के लिये २७६
और निम्न प्रकृति पर स्वामित्व २८१
सत्ता के एकीकरण के लिये ३६८
अहं के नाश के लिये ३९३
अनिवार्य गुण ३९३, ३९७
सुखी और सफल जीवन के लिये ३९९
(दे० 'सहिष्णुता' भी)
अध्यापक
अगर आदर चाहता है १८८
'पहले अपने ऊपर नियंत्रण १८८
'विद्यार्थियों की अनुशासन-हीनता १८८
'छोटे बच्चों के साथ बहुत धैर्य १८८
और विद्यार्थियों की रुचि २४४

-ों और कप्तानों के प्रति वृत्ति २९७-८, ३७५
अनियमितता २७२, ३६७
अनुकंपा
के लिये असमर्थ १७७
दूसरों के लिये १७९
(दे० 'भागवत अनुकंपा' भी)
अनुभूति [अनुभव]
के बारे में बात करना २१, ८०
पहले की तरह दोबारा कभी नहीं [५५]
करने की क्षमता को बाहर छितराने की जगह भीतर मोड़ो : मतलब ८६
के आगमन को तेज करने के लिये ९२
प्रबल, के लिये लालसा १३८
और मन की क्रिया २११
द्वारा ही भगवान् को जान सकते हो २२४
द्वारा सोचना २२८, २२९
कि भगवान् तुम्हारे अंदर कार्य कर रहे हैं २५१
उतनी ही जल्दी आयेगी २७४
श्रीअरविंद के योग का आरंभ-बिंदु २९३
सहज, और मानसिक रूपायण २९३
पर कभी अविश्वास न करो २९३
और स्वप्न में फर्क कैसे करें ? २९४
हितैषी भगवान् की लीला का, और अपनी अयोग्यता एवं असामर्थ्य का, युगपत् २९७
चाहिये, शब्दों का महत्त्व नहीं २९९
सच्ची आध्यात्मिक, पाने के लिये २९९
(दे० 'जीवन', 'भागवत उपस्थिति', 'माताजी' [की उपस्थिति] भी)
अनुशासन १३५
आश्रम में दे० 'आश्रम'
के बिना : तुम जीवन में कुछ नहीं पा सकते ११५, भौतिक स्तर पर कुछ भी चरितार्थ करना असंभव, १७०, कुछ भी नहीं किया जा सकता २५४
और सफलता ११५
भौतिक ११८
-हीनता विद्यार्थियों की १८८
है एक सारा जीवन ही २५४
में लाना अपने जीवन को २७१
'अनुशासित करना एक क्रिया को २७१
(दे० 'आध्यात्मिक अनुशासन', 'प्राण' भी)
अपने-आप
के साथ बहुत व्यस्त रहना ११२, ११३, १२२अ, १६६, २८७
को बंद रखते हो १२०, [८७, ३९२]
को पाना १४४
को न बड़ा मानो, न छोटा १६७, [१६६]
में हम कुछ भी नहीं १६७
को विश्व के केंद्र में न रखना २४७
को विकसित और पूर्ण बनाना ३२७
होना ३३५
(दे० 'अधिकार', 'आत्म- . . . ' के अंतर्गत भी)
अपव्यय
को रोकने की कोई नहीं सोचता ३१
का कारण ४०
निश्चेतना का परिणाम ३४८, [३१३अ]
अभिव्यक्ति
क्रमिक है २९७
और ऐक्य ३४६, ३५४
का प्रयोजन ३६०
(दे० 'अतिमानसिक अभिव्यक्ति', 'नयी अभिव्यक्ति', 'सृष्टि' तथा 'भौतिक सत्ता' भी)
अभीप्सा ५५, ८०, १४८, १६८, २३५, २९९, ३०२
की तीव्रता द्वारा विजय जल्दी २२; की सचाई विजय का आश्वासन १३५; बनाये रखो, विजय निश्चित १४८, [२४९]
तीव्र [प्रबल] : फल २२, २७३, ३२८, ३९३
प्रकाश के फिर से आने की ९२
सच्ची, निष्कपट : फल १३५, १६०, २२९,

२५२, ३०४, ३२८, ३४३, ३९६ दे० 'सचाई' भी
विश्वासपूर्ण [निष्कपट] और ग्रहणशीलता ११६, ३३८
हर तुम्हारी, में होती हूं मैं १५०
हर सच्ची, को : उत्तर १६०, सहायता ३९६
उच्च, रखना अच्छा निद्रालुता से १६१
केवल भगवान् : के लिये १६५, की ओर मुड़ी हुई १६८, की उपलब्धि पर एकाग्र होने की ३९५
की आग [ज्वाला] : १७१, २८३, २८६, में फेंक देना प्रतिरोध करनेवाली चीज को ३३६
[चाह] चैत्य सत्ता से सचेतन होने या पाने की २०९, २७९, ३६९
मन की अचंचलता में से कैसे ? २११
में जो सच्चे हैं वे यहां बने रहेंगे २२९
और मनोवैज्ञानिक गुण २५२
उच्चतम, के प्रति अबाध उत्सर्ग २५६
तीव्र, तामसिक स्थिति [जड़ता] का इलाज २७३, २८६
प्रगति के लिये २८२, २८३, [२५२]
भूल न दोहराने की २९४
क्या शुद्धीकृत कामना है ? २९९
से इच्छा-शक्ति और चेतना की शक्ति की प्राप्ति ३०४
बाह्य : मतलब ३३३
केंद्रीय, के चारों ओर इकट्ठा करना सत्ता के भागों को ३३६
कोषाणुओं की ३४१
केवल वही बन जाने की जो माताजी चाहती हैं ३४२
में तीव्रता क्या अश्रुओं और परिताप के बिना भी आ सकती है ? ३४४
और दृष्टि को जितना ही ऊंचा प्रक्षिप्त करें उतना ही ऊंचा सत्य हमारे ऊपर . . . ३४८ टि०
का विरोध न करने दो अपनी सत्ता के किसी भाग को ३५०
निर्विकार, फिर भी सदा पुनर्नवीकृत ३५२
उत्साहपूर्ण, और हर रोज एक आध्यात्मिक रोमांस ३५६
रूपांतर के जल्दी आने में सहायक ३६२
और कामना में क्या फर्क है ? ३८१
तीव्र, शाश्वत की ओर खुलने . . . ३९३
(दे० 'चाहना' तथा 'भगवान्' भी)

अभ्यास
नियमित २५४, २९५
अल्पजीवी प्रणों से मूल्यवान् २५४
एकाग्रता और इच्छा-शक्ति बढ़ाने का २९५
मानसिक जड़ता से छुटकारे के लिये ३१२
(दे० 'योगाभ्यास' भी)

अमरता
और शाश्वत चेतना ४०४, ४०५
(दे० 'चैत्यसत्ता', 'शरीर' भी)

अमरीका वियतनाम में ३१२-३

अर्जुन को विश्व-रूप दर्शन ३५८

अर्पण
काम में १६८
सत्ता का, कैसे करूं ? १७१
जब सचाई के साथ . . . २००
सब, प्रभु को ही जाता है २२७
निःशेष, भागवत कृपा को २४६
श्रीअरविंद के काम के प्रति २८८
सारी सत्ता का, करने के लिये ३३५-६
अहं का, दे० 'अहं'
'निवेदन', जो कुछ करते हैं उसका ३६८
भगवान् को पाने के लिये ३७९
(दे० 'समर्पण' तथा 'भगवान्', 'भागवत इच्छा' भी)

अवचेतना १८
और निश्चेतना क्या है ? २१९
और पूर्वजानुरूपता २६२
और स्वप्न ३५६
के क्षेत्र को कम करना ३५६-७
के पराजयवाद पर विजय ३९५

अवतार कलियुग में २५३
अवलोकन (अपना, अपनी गतिविधियों का) ५८, १६७, [३१०]
'देखना दोषों और दुर्बलताओं को ६०
'आत्मनिरीक्षण उपयोगी तभी १६६
छिछला २६८
और प्राण पर प्रभुत्व २७९
सत्य के स्वागत के लिये २९०
निष्कपट २९४
अवसाद [विषाद, उदासी]
को कभी स्वीकार न करो ६१
के सुझाव ६१; के चोर सुझाव ६९
को झाड़ फेंको १११
क्योंकि स्नायुएं मजबूत नहीं ११२; प्राणिक कामना की अपूर्ति से १२५
का उपचार ११२, ११८, १३५
और शांत सहिष्णुता १३५
से भगवान् के पास नहीं पहुंच सकते १६१
पर वशित्व एकांतवास से ! १७७
हमेशा विवेकहीन होता है १८४
योग का सबसे सूक्ष्म शत्रु १८४
अव्यवस्था
और मिथ्यात्व २९०
और सामंजस्य ३००
और सत्य की शक्ति का दबाव ३१६
(दे० 'व्यवस्था' भी)
अशुभ
मानव, में भगवान् का ही सहारा १७२
के स्पंदन, और शुभ के स्पंदन ३५२
असंतोष २८, ६३, १६६
का रहस्य ६२
तब गायब हो जायेगा ६२
का विष ६९
असंभव कुछ भी नहीं १४७, १५३, १७३
असफलता
के सुझाव १२४
भगवान् के पथ-प्रदर्शन में जब ३५९-६०
असामंजस्य
और मिथ्यात्व २९०
आश्रम में ३०२
असुर [दैत्य]
और देवता २५०, ३४३, ३५२
और भगवान् ३५८
अहं [अहंकार]
की विजय और अपव्यय ३१
और प्रशंसा की चाह ९३, २५०
को गायब हो जाना चाहिये ११९, को परिवर्तित और लुप्त होना होगा ४०१
अपनी तन्मयता का केंद्र १६६
के बिना देना जानना १६९
और वह कार्य न कर सकने का भय जो भगवान् चाहते हैं १७३
'मैं' को अपदस्थ कर शांति, आनंद पाना २०३
'मैं' कहलानेवाली समस्या से ऊबी नहीं हूं २०५
की इच्छा-शक्ति को कैसे दूर करें ? २११-२
के मूल्यांकन दे० 'मूल्यांकन'
और कामनाएं २२९
में हमेशा लेने की वृत्ति २३०
से मुक्ति २३३, २८२; का अतिक्रमण २९२; पर विजय २६९, ३३५, ३९२, ३९६; पर विजय और दुःख-समाप्ति २६९; को जीतने का प्रभावकारी तरीका ३५०अ; का उन्मूलन और संपूर्ण सचाई ३५२अ; क्या अपने विलोपन के लिये राजी नहीं हो सकता ? ३६०; का नाश : अपेक्षित चीजें ३९३
और अंतरात्मा २३३
अगर जरा विनयी हो सके २४६
और हीनता-ग्रंथि २५०, २८७
-मय लक्ष्य और उत्सर्ग २५१
और संवेदनशीलता २८२
और विकसित व्यक्तित्व २८२

और अपनी प्रगति में व्यस्तता २८५
से आता है अपने-आपको दोष देना और अपनी आलोचना करना २८७
का अर्पण भगवान् को ३५१
की रचना का प्रयोजन : व्यष्टीकरण, ३६०, ३९३; एक करनेवाला उपकरण ४०१
हर एक के अंदर अपना ३९२
और स्वतंत्रता ३९२
परिवर्तित, भगवान् का शक्तिशाली यंत्र ३९३
का अपदस्थ होने से इंकार कि और लोग रूपांतरित नहीं हुए ३९६
को चैत्य सत्ता को स्थान देना होगा ४०१
और भगवान् के प्रति समर्पण ४०२

आ

आंतरिक आवाज ४३, [२३३]
आंतरिक खुशी
को बनाये रख सको तो २००
(दे० 'काम' भी)
आंतरिक सत्ता
पर एकाग्र होना इंद्रियों के बोध में रहने की जगह ८६
नींद में सक्रिय ३४८
आंद्रे के नाम माताजी के पत्र ३-९
आकर्षण ३८१
नर और नारी का १६५, २९० दे० 'स्त्री' भी
और विकर्षण १८४
आजादी दे० 'स्वतंत्रता'
आज्ञापालन [आज्ञाकारिता] २७, ४४
आत्म-अतिक्रमण के लिये योग ३१७
आत्म-केंद्रितता
में से कैसे निकलें २४७
आत्मज्ञान २३२
आत्मदान [अपने-आपको दे देना]
और ग्रहणशीलता ६२, ३०९
और उद्‌घाटन ९१
बिना कुछ बचाये १६७
और 'बड़े काम' करना १६९
कठिनाइयों से निकलने की तरकीब १९२
की अभीप्सा के साथ माताजी के पास जाना २४६
(दे० 'देना', 'अर्पण', 'उत्सर्ग', 'समर्पण' भी)
आत्म-निंदा
'निंदा (अपनी) बहुत अधिक १६६
आत्मनिरीक्षण दे० 'अवलोकन'
आत्म-प्रभुत्व [आत्माधिकार] २३२
में प्रगति का अवसर हर चीज २७०
(दे० 'अधिकार', 'स्वामित्व' भी)
आत्म-प्रवंचना [अपने-आपको धोखा देना] २७५, २८१, ३९३
को कैसे खोजें ? २७५-६
आत्म-प्रेम बड़ी बाधा है १९
आत्म-विस्मृति [अपने-आपको भूल जाना] २८७
काम पर एकाग्र होकर ११३
सभी बीमारियों का इलाज १६६
निर्विकार शांति का स्रोत ४०२
में भगवान् को पाते हो ४०२
आत्मसंयम २३२
बोलने में ३१, [३११]
और थकान और आराम ४८अ
और सुख एवं शांति १२३
बच्चों के साथ १८७, १८८
और क्रोध ३११
और चेतना का विस्तार ३२०
आत्मसम्मान [स्वमान]
क्रुद्ध ६६; क्षुब्ध १८०
के कारण दोषों को छिपाना ३३७
आत्मसात् करने का काल २३५
आत्मसिद्धि २१३
का अर्थ ३८१

आत्मा
की इच्छा का अनुसरण करने की छूट २५६
(दे० 'शरीर' भी)
आदत
किसी बुरी, को निकालना २३०
कोई, ऐसी नहीं जिसे बदला न जा सके २७२
-ें अच्छी, का त्याग : मतलब २९५
आदर १८८
के साथ जीना सीखना, चीजों के साथ २३९
आध्यात्मिक अनुशासन १३०, २७९
आध्यात्मिक उड़ान के क्षण २८५
आध्यात्मिक चेतना २१२
आध्यात्मिक जीवन
और आश्रम-जीवन १३०
जीना : सदा भागवत उपस्थिति की अभिज्ञता १४५
और भोज १८३
और शारीरिक सुख-सुविधाएं २७५
में बैठ जाना गिरने के समान ३५३
के लिये जन्मी हो, लेकिन . . . ३६७
(दे० 'योग' यौगिक जीवन भी)
आध्यात्मिक ज्योति १२६
आध्यात्मिकता
को जीवन से अलग करना ३१०
आध्यात्मिक परिवर्तन
और चैत्य परिवर्तन २०९
आध्यात्मिक पुकार २३४
आध्यात्मिक प्रगति दे० 'प्रगति', 'प्रयास'
आध्यात्मिक मार्ग पर पहला कदम २५९
आध्यात्मिक रोमांस ३५६
आध्यात्मिक विकास
और कार्यक्रम की यांत्रिक कठोरता २९४
आध्यात्मिक शक्ति
ही प्राण पर शांति आरोपित कर सकती है ११४
आध्यात्मिक सत्य
ही जीवन का आधार हो २९२
आध्यात्मिक सहायता २०५
आनंद १३९
सच्चा, अपरिवर्तनशील, पाने के लिये ५७
उत्सर्ग से ९१; निम्न प्रकृति पर विजय से ३९१
इस, विश्राम, विजय के आश्वासन को सावधानी से बनाये रखो . . . ११३
चैत्य सत्ता साथ लेकर आती है १२४, [२६९]
खोजने में, प्रतीक्षा करने में . . . १६३
देने में, प्रियजनों को खुश करने में १९८
उपस्थिति का, तुम में सदा बना रहे १९९
का अद्भुत जगत् : २३७अ, को बुलाने के लिये २३८, के नीचे उतरने के परिणाम २३८
माताजी के पास आते हुए २४६
अवर्णनीय, हृदय में : कारण २६४
, उल्लास, हर्ष, सुख—में क्या फर्क है? २७६
का विकार है सुख ३६०
ही वैश्व अभिव्यक्ति का प्रयोजन ३६०
शाश्वत का आविर्भाव ३९५
का स्रोत ४०२
(दे० 'काम', 'भगवान्', 'शांति' भी)
आराधना
कर्म में २०
देवताओं की नहीं, केवल परम प्रभु की २५०
आराम
आत्मसंयम रखने के लिये ४९
और थकान ७४
(दे० 'विश्राम' भी)
आरोहण [उड़ान]
उच्चतर चेतना में २६, [२८५]
'चढ़ना तब आसान १९४
पूर्ण विश्राम बन जाता है ३५३
(दे० 'चेतना' अपनी भी)

आलस्य [प्रमाद]
और मन में गड़बड़ १०६
की बीमारी आश्रम में १७०
के बहाने २४५
से छुटकारा २५२, ३७०अ
'शिथिलता के बारे में सावधान २६८
'सावित्री' पढ़ने और 'समाधि' पर जाने में ३६७
'आलसी बनाती है तुम्हें दुर्बलता ३७१
(दे० 'तमस्' भी)
आलोचना १७५
पर कान न देना ऐसे लोगों की ५६, २५१
दूसरों की १७९, २५४, २५५, २६२
अतिरंजित, प्रगति में सहायक नहीं २५१
किसी की, तबतक नहीं २५५
अपनी, और अहंकार २८७
आवश्यकता [जरूरत] दे० 'कामना', 'माताजी'
आवेग १८३
पर संयम १२३
आवेश से हमारा मतलब १६५
आशा
सुखद भविष्य का निर्माण करती १७४
न खोनी चाहिये १८२
आश्रम [श्रीअरविंदाश्रम, यहां]
'प्रारंभिक दिन ३-७; (साधकों की संख्या ३, ४, ५, ७; मकान ३, ४, ५, ७, ३६; कर्मचारी ५; विभिन्न विभाग ५; वार्षिक खर्च ७)
'संगठन की केंद्र माताजी ३
'मुख्य मकान ३
'संस्था ४-५
'शांति का घनीकरण, एक और ही जगत् ७
का जीवन : ७, के लिये निश्चित होने के लिये जो चीज जरूरी है १३०, युद्ध के दिनों में १३१, की परिस्थितियां सामान्य नहीं १७४, ३०७, को हल्के-फुल्के ढंग से . . . २४७; तुम युवाओं का २६८, बहुत आसान २७३
में स्वतंत्रता ७, २५६, २६५, ३१०, ३१४
'अनुशासन ७, २३७, २६५, [३०८]; नियंत्रण ३१४
की मैं स्वामिनी नहीं हूं ७
श्रीअरविंद का है ७
'प्रॉस्पेरिटी २७ टि०
-वासियों को जेब खर्च ५६ टि०
'खर्च और अपव्यय ३१; आर्थिक संकट और फालतू खर्च ३१९
जब दर्शकों से भरा होता है ९२
'शक्ति के सागर में नहाते हो ११०; ऊर्जा में स्नान करते हो ११६; कला की क्षमता को विकसित करने के लिये बाहर की अपेक्षा ज्यादा अच्छी स्थिति १२५; सीखने की सभी संभावनाएं ३१४; ठोस और साकार सहायता प्राप्त १७७
'कामनाएं पूरी न करने के लिये संघर्ष १२५
छोड़कर जाना १३४, २८६-७
में तुम अकेले नहीं हो, मुझे अपना समय सब में . . . १५४
किसी से प्रेम करने का स्थान नहीं १६५
में बिना काम के लोग १७०
'बाल्कनी दर्शन २१५-६
बच्चों के आने से पहले का और बाद का २३७, ३०८
में साधना [योगाभ्यास] २३७, २६७, ३०८; में गंभीरता से योग करनेवाले ३१३
में शारीरिक प्रशिक्षण दे० 'शारीरिक प्रशिक्षण'
'श्मशान का कर्मकांड २५२
के संगठन में बहुत-सी गांठें २५४; असामंजस्य ३०२; -वासी एक ही चैत्य परिवार के हैं तो यह सहयोग का अभाव क्यों ३४०

'हम कुछ ऐसी चीज करना चाहते हैं जो, अभीतक धरती पर अस्तित्व नहीं रखती २५६
'हम जो करना चाहते हैं उसका कहीं अन्यत्र उदाहरण ढूंढ़ना २५६
में महामारी २७८; पर आक्रमण (१९६५ में) २९१, २९१टि०
को जो होना चाहिये उससे वह बहुत दूर है २७८; का वातावरण मिथ्यात्व के लिये अभेद्य नहीं २९१
नये जगत् का पालना है २७९
के बारे में कोई पूछे तो जवाब २७९अ
का भोजन २८०
समाज के लिये क्या कर रहा है? २८५; में विशेष क्षमतावाले लोगों का अपनी मुक्ति के लिये बस जाना क्या मानवजाति की बड़ी हानि नहीं? २९१
में रहने के सौभाग्य का उपयोग हम कैसे कर सकते हैं? २८९अ; में दिये गये अनोखे विशेषाधिकार का हम दुरुपयोग क्यों करते हैं? ३१३अ
'हमारा लक्ष्य २९१, २९२
के प्रति, आनेवालों का, पहले अहोभाव बाद में अन्य भाव ३०१-२
में क्या कोई श्रेणिबद्ध दल है? ३०५
में हर एक समाधान किये जाने के लिये किसी असंभवता का प्रतिनिधि : मतलब ३०६
और समाज के रीतिरिवाज ३०७
अब पृथ्वी पर जीवन का प्रतीकात्मक निरूपण ३०८
में हर चीज को स्थान बशर्ते . . . ३०८
का सच्चा बालक : के गुण ३२१
से बाहर जाने पर रिक्तता का अनुभव ३२३
में छोटे-छोटे दल और समितियां ३२५अ
का जन्म ३३४अ
'समाधि पर जाना ३६७
के क्रीड़ांगण में दुर्घटना ३८४अ
में चेतना के विकास का सुअवसर ३८५
आसक्ति [चिपक] ३८१
के बिना जीवन १४६
के सूचक हैं आकर्षण-विकर्षण १८४
अपने दुःख, तुच्छता, दुर्बलता, अज्ञान और सीमाओं से २७०
पर विजय : उपाय २८१
को नष्ट करना ३४९
आह्वान
और उसका उत्तर ३५९
(दे० 'अभीप्सा', 'पुकार' भी)

इ

इंदिरा गांधी २८४
इच्छा
दूसरे की, को अभिभूत करने की शक्ति ४५
निम्न प्रकृति की, की संतुष्टि १०९
अपनी, को नहीं, माताजी की इच्छा को शासन करने देना १३६
अचंचल, द्वारा कारा को तोड़ना १४८
(दे० 'इच्छा-शक्ति', 'संकल्प', 'भागवत इच्छा' तथा 'भगवान्', 'माताजी' भी)
इच्छा करना
समझने से ज्यादा अच्छा १९
इच्छा-शक्ति ४२, ६३, १६८,
मानव, के पीछे अन्य शक्तियां ९
की एकाग्रता द्वारा विजय जल्दी २२
सचेतन, का उपयोग ९९
को प्रशिक्षित . . . १३५
को लगाना होगा : धीरज के लिये १३५, चैत्य सत्ता बनने के लिये २३२, अहं के नाश के लिये ३९३
अहं की, को कैसे दूर करें? २११-२
को कैसे बढ़ायें २९५

और चेतना की शक्ति की कमी ३०४
आग्रही, चाहिये ३६८
(दे० 'इच्छा', 'संकल्प', 'माताजी' भी)
इष्टदेवता पारिवारिक ३१६
ईमानदार ३६, [१३२], २७९, ३४२
ईर्ष्या ११९, १६६
बुरा वातावरण बना देती है १०८
से कैसे पिंड छुड़ायें ? २८४-५, ३७०अ
ईसा ३०३
के आगे जब जड़मति को लाया गया ३४२

उ

उच्चतर चेतना ५०
में उठना २६
की ओर छलांग २०२
में समस्याओं का समाधान २०२
क्या है ? २०२-३
, शुद्ध प्रेम और भागवत ज्ञान २०२अ
तक पहुंचने का तरीका २०३
और अपने-आपको जानना २६८
(दे० 'उद्घाटन' भी)
उच्चतर शक्तियां दे० 'शक्तियां'
उत्सर्ग [आत्मोत्सर्ग] १५०
के साथ की गयी क्रिया में ऊर्जा का पूरा-पूरा उपयोग २३
प्रेममय, का प्रतीक है राधा १६३
भाव से करना, जो कुछ करना २५१, २७४
किसी वास्तविक चीज को दिया गया है यह अनुभव २७४
पूर्ण, के लिये कम लोग तैयार २८७
दिन का २९४
(दे० 'अभीप्सा', 'आनंद', 'कठिनाई', 'भगवान्' भी)
उदासीनता [उदासीन] १६७
·घृणा के स्थान पर ७१
की स्थिति से पूर्ण समता की ओर १६१
औरों के कष्ट के बारे में संज्ञाहीन, १७७
दुर्व्यवहार के बारे में १८०
मानसिक ३११अ
उदाहरण [दृष्टांत, घटना, रूपक, उपमा . . .]
कपड़े धोने के साबुन की पर्ची १३
नयी कापी शुरू कर दी, पहली खतम नहीं की १४
सीमेंट तैयार करने में उसकी धूल जानवरों के भोजन में १४
स्नानागार बड़ा करने के बारे में १४; स्नानागार का काम २३-४
बेकरी की मेज की मरम्मत १४
भोजनालय की मरम्मत का काम १४अ; रसोईघर : चूल्हों की ऊंचाई ३१अ
चमगादड़ों को मारना १५
सोलिप्सम १५, १५टि०
मेज के साथ उग्र व्यवहार १८
खिड़कियां बंद नहीं होतीं २५
नापने का फीता २८अ
कशीदाकारी का फ्रेम . . . २९
झूलती हुई छलनी के लिये फ्रेम २९
झूला २९
आलमारी के खाने छोटे-छोटे टुकड़ों से बनवाये ३१
घड़ी के लोलक की कहानी ३७-८
फ्रेंच मुहावरा : बिल्ली बिल्ली ही है ३८
'क' के कमरे में डिस्टेंपर करने की बात ३८
एक सहकारी के साथ संपर्क से सिरदर्द ४२-३
कमरे से कीलें निकालने की बात ४५-७
'आरोग्य हाऊस' की आलमारी पर रोगन ४७
जैसे कोई बालक या पशु कारण जाने बिना प्रसन्न और विश्वस्त होता है ५५
जैसे मांसपेशियों को कसरत द्वारा प्रशिक्षित

किया जा सकता है १३५
छोटा बच्चा जैसे मां की गोद में चिपट जाता है १५१
जैसे जो आज किया जा सकता है उसे कल पर टालना १५३
शराबी में शराब के लिये, व्यभिचारी में स्त्रियों के लिये, जुआरी में जूए के लिये आवेश १६५
पहनने के कपड़ों की तरह उन्हें बाहर की चीज समझना १६५
अगर हृदय सतत नियमित रूप से धड़कने के अनुशासन के आगे न झुके १७०
शराबी होने से बचने के लिये शराब पीना, हत्यारा होने से बचने के लिये हत्या करना १७६
उत्तर की ओर सिर करके नहीं लेटना चाहिये १९१
अचार की बोतल १९८, २०१
रुग्ण दांत को निकाल फेंकने में देर नहीं लगानी चाहिये २०३
मकान पर ऊंचा मीनार . . . नींव शब्दों का भंडार २२८
तकलीफ, जैसी दांत उखाड़ने से २३०
गली-कूचों के नटखट लड़कों जैसी रुचि २३७
पुराने कैलैंडरों का क्या करें ? २३८
कहानी : मूर्तिकार और शिलाखंड की २६६
दयनीय दृश्य एक आदमी का . . . भगवान् की लीला २६७
जैसे लकड़ी का तख्ता पानी पर तैरता है २८९
सुंदर गुलाब को देखकर भगवान् की उपस्थिति का आभास ३१७
गाड़ी के टायरों की बुरी हालत थी ३२५
जैसे बच्चे को पढ़ाया जाता है ३३४
वातावरण या कांच का तख्ता ३५३
आधी रात के अनुष्ठान देखने गिरजाघर जाना ३८५
ऐसा बरतन जो अपने-आपको देकर खाली कर लेता है ३९८
सौ वर्ष की उम्र में भी युवक ३९९
(दे० 'अंतर्दर्शन', 'कार्यकर्ता', 'प्रतीक', 'फूल', 'माताजी', 'श्रीअरविंद', 'साधक' (पत्रों के लिखने वाले), 'सूर्य' भी)
उद्घाटन [खोलना, खुलना, खोलो, खुलो] २०, १९३
हृदय के, से प्रेम की प्यास शांत ३९
सत्ता के बंद द्वारों को, मैं वहां प्रतीक्षा कर रही हूं ४८
उच्चतर चेतना-[प्रकाश, शक्ति] की ओर ५०, ५८, १३८; आध्यात्मिक शक्ति की ओर ११४; माताजी के प्रेम की ओर ११६; श्रीअरविंद और माताजी : की सहायता और रक्षा को ओर १२७, प्रभाव की ओर १५५; माताजी की सहायता की ओर १७३; भागवत ज्ञान की ओर २०२अ; भागवत कृपा की ओर २०६; भागवत प्रभाव की ओर २३४, ३९१; दिव्य प्रेम की ओर ३३८; नयी शक्तियों की क्रिया की ओर ३९१
द्वारा तमस् [जड़ता] से छुटकारा ५८, १३८
और : ग्रहणशीलता ६२, ९१, शक्ति ग्रहण करना ११०, ऊर्जा एवं शांति ग्रहण करना १३६, सहायता पाना १५८, १७३
और आत्मदान [उत्सर्ग] ९१
कठिनाई की ओर १०८
में सहायता आंतरिक स्थिति बतलाने से १२८, १३७; दोष-स्वीकृति से १५९
कठिन इसलिये लगता है कि . . . १३६
से दूरी (माताजी से) गायब १४८
निष्क्रिय, सब प्रकार के प्रभावों के प्रति १७८
खिड़कियों को शाश्वत की ओर ३९२

'खिड़कियां खोलने की दो शर्तें ३९३
उद्देश्य दे० 'लक्ष्य'
उपनिषद् ३४८, ३६२
उपन्यास पढ़ना १८७, २६१
उपलब्धि [उपलब्ध करना] ११७
अगर यहींतक सीमित रहे . . . १४४
का क्षेत्र १५३
, समझना और मूल्यांकन करना २५६
कि भगवान् हर एक और सब कुछ है ३५५
एकमात्र इसी, पर एकाग्र ३९५
उपस्थिति दे० 'भागवत उपस्थिति', 'माताजी' (की उपस्थिति)
उषा
जो चली नहीं जाती ३३३
भागवत, में सहयोग ३५४
ऊर्जा १६८, १८३
का पूरा-पूरा उपयोग २३
शाश्वत स्रोत से ११०, ३९८, स्रोत कभी न सूखनेवाला है १३६
में स्नान करते हो ११६
और विश्राम ११७, १३९
को प्रशिक्षित किया जा सकता है १३५
द्वारा अवसाद का त्याग १३५
ग्रहण करना, अपने को खोलकर १३६
को अपने अंदर कैसे खींचें ? २१०
के अन्य रूप २१०
ऊपर से खींचना और रोग-मुक्ति ३९८
प्रजनन में प्रयुक्त, का उदात्तीकरण ४००
(दे० 'शक्ति' भी)

ए

एकत्व दे० 'ऐक्य'
एकांतवास और कठिनाई १७७
एकाग्रता ३२, ८०
भौतिक सत्ता की, और थकान २३
ज्ञेय वस्तु पर ४१
हृदय में १३८, १५०अ; हृदय में और नीरवता २८८
का अर्थ ध्यान नहीं, बल्कि . . . १६८
द्वारा चैत्य सत्ता से संपर्क २०९
द्वारा ऊर्जा के साथ संपर्क २१०
द्वारा नीरवता को उतारना २१६
संगीत सुनने में २१७
के साथ पढ़ना विचार को विकसित करने के लिये २२८
के साथ करो, जो कुछ करो २४४
से सिरदर्द २७९
को कैसे बढ़ायें ? २९५
सोने से पहले दे० 'नींद'
नीरव, की आदत ३६९
(दे० 'काम', 'दर्शन' भी)
एकीकरण (सत्ता का) २३५, ३४९
उच्चतम चेतना के चारों ओर २०५
का अभाव, और अग्रहणशीलता ३३४
चैत्य केंद्र के चारों ओर ३३५अ, ३६७अ, [२६२]
सत्य चेतना के निर्माण से ३४९
कैसे करें ? ३८१
में आवश्यक चीजें ३८४
एटिला (हूणों का राजा) ३२
ऐक्य [एकत्व, एकता]
बाहरी प्रकृति के साथ १४६
दिव्य चेतना में आधारित १४८
पाने का निश्चित साधन १५३
भगवान् के साथ: १५४, काम करते हुए भी १६८, का ही जब मूल्य २९५अ, और सतत स्मृति ३४६, और प्रेम ३७१, और दुःख-दैन्य ३९५ दे० 'भागवत शक्ति' भी
पूर्ण, सच्चा १५४, १६३, ३४६
के लिये काम करती है चैत्य सत्ता १६२ दे० 'चैत्यसत्ता' भी

की चेतना में प्रवेश, लीला को समझने के लिये २६७
की चेतना में निवास, भागवत कृपा को देखने के लिये २८०
परम, की उपलब्धि और ईर्ष्या से छुटकारा २८५
और एकरूपता ३४१
मूल में, और अभिव्यक्ति में ३५४
(दे० 'प्रेम', 'भगवान्', 'सृष्टि' भी)

ओ

ओरोवील ३४७

क

कठिनाई (-यां/-यों) ८३, १०८
पर विजय से सुख ३०
औरों की, के बारे में बातचीत ५९
हर एक की अपनी होती हैं ६५
'विश्वस्त और प्रसन्न रहो ६५
का उपचार ९३; 'बादल गायब १९८; समाधान ३९९
पर विजय के लिये: माताजी की शक्ति ग्रहण करना ११३, अध्यवसाय १२४, धीरज रखना १३४, श्रीअरविंद की आज्ञा मानना १३७, खोलना और भागवत कृपा पर विश्वास १७३, यह दोहराना . . . १७३, आत्मदान और समर्पण १९२, ४००, प्रेम १९६, २०२, जीवन का प्रयोजन [अर्थ] मिल जाना ३९१, ३९९, सचेतनता ४०२; पर विजय [५५], १५८, १७७
उत्सर्ग का जीवन, और साथ ही प्राणिक सुख-संतोष का जीवन जीने की १२६-७
में से गुजरने में सहायता काम से १२८
के बावजूद साहस बनाये रखो १३४; का सामना साहस के साथ, और अभीष्ट ऐक्य १५३
आयें तो यह न सोचो कि मैं नाराज हूं १३८
अपने अंदर से आती है १७७; का कारण, अपने अंदर ढूंढ़ना [२६९]
से बाहर निकलने का तरीका १९२, २०२, २१२
में उचित मनोवृत्ति २५९
की अभिज्ञता और उन्हें बदलना २६४
के अंकुश और तमस् २७३
ग्रहणशीलता की कमी की ३३४
में अत्यावश्यक कर्तव्य ३९२
आती हैं इसलिये कि . . . ३९२, ४००
(दे० 'चीज', 'दोष', 'मार्ग', 'मुस्कान' भी)
कपट २४६, ३३७
'पाखंडी होने से सच्चा, स्पष्टवादी होना अच्छा २५८
कप्तान (शारीरिक प्रशिक्षण के) २४५
की पोशाक २६३
का हस्तक्षेप २६५
(दे० 'अध्यापक' भी)
करना [करो]
वही जो तुम लज्जित हुए बिना मेरे सामने कर सकते हो १२२; और नहीं करने का सामान्य नियम १२२, २९०, [३८४], ३९३
जो कुछ, पूरी एकाग्रता के साथ करो २४४
'व्यक्तिगत अहंकारमय लक्ष्य के लिये न करो २५१, [३९७]
उत्सर्ग भाव से २५१, २७४ [२३]
अच्छे-से-अच्छा: २५९, २६८, २७०, [३९८], और परिणाम प्रभु के हाथों में . . . २५९
जो, भगवान् को अर्पित करते चलो २७४
'व्यक्तिगत फल की कामना न करो २७४
वही जो भगवान् चाहते हैं ३६०; जो तुम्हें चाहिये, भगवान् तुमसे वही करवायेंगे ३९२
मूल्य की चीजों को नियमित रूप से ३६७

जो चाहिये उसकी तुलना में कुछ भी नहीं . . . ३९८, [१६६]
'कर नहीं सकते जो आज, उसे कल कर पाओगे ३९८
(दे० 'काम' भी)
कर्म दे० 'काम', 'क्रिया'
कर्म [कर्म-फल]
और रोग, दुर्घटना आदि ३००
और दंड ३२६
का परम परिणाम ३२६
(दे० 'करना', 'कुकर्म' भी)
कर्मकांड आश्रम-श्मशान का २५२
कल्पना ६४
और तमस् [नीरसता] ५८
व्यर्थ की, का प्रभुत्व १३८
तथाकथित प्राणिक सत्ताओं की १७७
द्वारा विचार को मां के पास भेजना २१४
(दे० 'बालक', 'सपना' भी)
काम [कार्य, कर्म] २०, २३, २४, २९, ३०, ४८
में कर्तव्यनिष्ठा से इंकार २५अ
और ध्यान २६, १६८
देना आठ वर्ष से कम के बच्चे को २८
'काफी समय नहीं बचता ३२
अतिरिक्त, के लिये दुगना वेतन ३५
में योजना-संबंधी और कार्यकर्ताओं-संबंधी कठिनाइयां ३६-७
'साथी कार्यकर्ता से जब मतभेद ४४
को व्यक्तिगत प्रश्नों से अलग देखना ४५
अच्छा, और ज्यादा बोलना ५०
भगवान् के लिये करना, शरीर से प्रार्थना करना है ७१टि०
नियमित, और सत्ता का संतुलन ७२
और थकान ७४; जब स्नायुएं थकी हों ७७
सारा दिन ७५अ
ज्यादा अच्छा करने के लिये अपने किये को अनकिया करना ७८
जो करना हो खुशी से करो १०५
आनंद से किया गया . . . १०५
में लग जाओ परवाह न करो कि तुम खुशमिजाज हो या बदमिजाज ११३
पर एकाग्र होकर अपने-आपको भूल जाना ११३
अगर रोज आठ-नौ घंटे करो ११३
द्वारा सुख-शांति १२३
के बीच दुःख आ जाता है १२३
में ही संतुलन और आनंद १२३
सहायता करेगा कठिन घड़ियों में से गुजरने में १२८
चेतना, ईमानदारी, अध्यवसाय के साथ करो तो मेरी उपस्थिति को निकट . . . १३२
का अनुशासन और नया जीवन १३५
जो किया जाना है वह सभी संभव प्रतिरोधों के बावजूद किया जायेगा १४३
करते हुए भी भगवान् के साथ ऐक्य १६८
नहीं, व्यर्थ की बक-बक भगवान् से दूर ले जाती है १६८
और काम के पीछे की वृत्ति [भाव] १६९, १८६
निःस्वार्थ १६९
बड़ा और छोटा १६९
नहीं, कर्मगत भाव माताजी के नजदीक लाता है १६९
आश्रम में १७०
'चीज जितनी कठिन हो उतना ही उसे सफलता के साथ पूरा करने का संकल्प होना चाहिये १७१
'चीजों को अच्छी तरह करने का संकल्प बनाये रखो १७३; अच्छी तरह करने का संकल्प अधिक नहीं टिकता ३६७
काफी न दिया जाये मन को तो १८६
के विवरण द्वारा माताजी से संपर्क १९२
का कोई मूल्य नहीं, सिवा माताजी का सच्चा

बालक बनने के १९५
यह, लंबा है २३२, २३५, २७६, २८१, ३२४, ३३६, ३६८, ३८४; इस, में समय लगता है १२७अ, २१४
का कुछ अंश देना भगवान् को २३३
सामान्य औसत का : कारण २४४
चेतना को बदलने के, में तुरंत लग जाओ २४५
व्यक्तिगत, के कारण सामुदायिक काम में बाधा नहीं पड़नी चाहिये २४५
तब सत्य के अनुसार होगा २४९
का संपादन, और शेखी बघारना २५३
सामंजस्य का, तेजी से होगा यदि . . . २५४; जो जरूरी, सामंजस्य के लिये ३०२
हमारा वैतनिक मजदूरों से अच्छा होता है, क्यों ? २५९अ
करने का जिस क्षण निश्चय कर लिया तभी से उसे अच्छे-से-अच्छा करो २७०
करो निःस्वार्थ भाव से २७९
'क्रिया-कलाप के सरलीकरण की प्रवृत्ति २८१
और पूर्णयोग ३१८
मानसिक अचंचलता में से निकले बिना ३१९
का आदर्श ३१९
उपयोगी, और दल बनाना ३२६
सबसे महत्त्वपूर्ण ३२७; जो अब महत्त्वपूर्ण है ४०१
जीवन में अपने, का निश्चय ३२७
सबके सचेतन रूप से भगवान् हो जाने का ३५५
सब भगवान् के लिये है इसे हर क्षण कैसे याद रख सकते हैं ? ३६८
(दे० 'करना', 'भागवत कार्य' तथा 'अर्पण', 'कामना', 'चीज', 'नीरवता', 'भागवत इच्छा', 'माताजी' भी)
कामना १८४, २३४, २५६, ३८१
-एं हैं तो सच्ची घनिष्ठता नहीं १६
और आवश्यकता २६-७, २१२, २७५
तुरंत काम पूरा करने की २९
का दास १०५; के अधीन न होना, उन्हें अपनी सत्ता का सत्य न मानना ४०१
सामान्य जीवन में, और आश्रम में १२५
तब गायब १६५, २२९
उग्र १६५
के अनुसार : मूल्यांकन २१२, निर्णय २९८
-ओं की केंद्रीय ग्रंथि २२९
का त्याग : २४६, २४६टि०; से मुक्त होना चाहिये प्राण और भौतिक को पहले ४००
की पूर्ण तुष्टि २४६, २४६टि०
फिल्में देखने की २५९
को जीतने का संकल्प २७९
को जीतने का उपाय २८१
पर बैठ रहना २८१
प्राणिक और रूपांतर की शक्ति २९९
की उपस्थिति को जानना ३१८
के अभाव से आनेवाली ज्योति और शांति में प्रगति करना ३९८; के लोप से जो शांति और आनंद प्राप्त होता है वह तभी . . . ४००
को संतुष्ट करने में समय बरबाद ४०३
(दे० 'इच्छा', 'अभीप्सा' भी)
कार्यकर्ता
वफादार, महान् विजय के २८
कार्यकर्ता (मजदूर)
पर एकाग्रता, सचेतनता के लिये २३
पर पकड़ और क्रोध २५
'लुहार की आंख में लोहे का टुकड़ा घुस गया २९
कम करने के बारे में ३६-७
को निकालना कि वह हंसा था ४०
'गृह-विभाग से निकाले गये लड़के को क्या मैं अपने विभाग में रख लूं ? १०१-२

कार्यकर्ता (साथी)
के साथ व्यवहार ४३
से जब मतभेद ४४
से मैत्रीपूर्ण संबंध का प्रयास ५०
से परेशानी : रोग और इलाज ५०
काली
दंड देती है, लेकिन प्रेम के साथ १३४
पारिवारिक ३१७
की जरूरत उन्हीं लोगों को ३४२
(दे० 'भागवत प्रेम' भी)
काली-पूजा-दिवस २५५
कुकर्म
-ों का क्या चैत्य सत्ता पर कोई असर होता है ? २३२
कुरुक्षेत्र का युद्ध २५२
कूए (डा०) की पद्धति ७४
कृतज्ञता
भगवान् के प्रति, न कि मनुष्य के २९२
प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीका २९२, ३९६
केनेडी २५५
कोषाणु दे० 'शरीर'
क्यूबा २५५
क्रांति
नहीं कहा जा सकता उसे, जिसे हम लाना चाहते हैं १४३
(दे० 'युद्ध' भी)
क्रिप्स (सर स्टेफर्ड) २९६टि०
क्रिप्स प्रस्ताव २९६, २९६टि०
क्रिया
एक, को अनुशासित करना २७१
-कलाप का सरलीकरण २८१
-कलाप और मानसिक नीरवता ३१९
-ओं समस्त, पर नियंत्रण ३७२
(दे० 'भागवत क्रिया' तथा 'अंतर्भासात्मक क्रिया-कलाप' भी)
क्रोध [गुस्सा], चिड़चिड़ापन ६६
का परिणाम २४-५
न करने का प्रण २५
और मजदूरों पर पकड़ २५
के स्पंदन ३०
में अपना मुंह ही न खोलो ३१
कभी न करो ५६, १८८
आ जाये तो ५६
'क्षुब्ध होना, भूल १७२
को वश में रखना अच्छी बात १८०
कहां से आता है ? ३११
आत्मसंयम के अभाव का चिह्न ३११
क्लांति
, तनाव, श्रांति का प्रभावकारी इलाज २१६
क्षमा
करती हूं, लेकिन तुम्हें भी . . . १२०, १२१
और प्रेम २०२
भूल-भ्रांतियों को मिटा देना है २८४

ख

खेलकूद
और शारीरिक प्रशिक्षण में क्या फर्क है ? ३७४
की प्रतियोगिता या प्रदर्शनों में क्यों भाग लेना चाहिये ? ३८३अ
खोज
सत्य की अभिव्यक्ति की २२
मजेदार ३११

ग

गांधी (महात्मा, मोहनदास कर्मचंद) ५
गीता-प्रबंध २२३, ३०२, ३०३टि०
गुण १२१
माताजी का यंत्र बनने के लिये १२०; माताजी का ही होने के लिये [३५०]
मनोवैज्ञानिक, को प्रशिक्षित . . . २५२
और दोष वैश्व शक्तियों की लीला हैं २५६
सबसे जरूरी, ३१८
आश्रम का सच्चा बालक के ३२१

बहुत से, भगवान् से दूर ले जाते हैं ३५०
जो अनिवार्य अहं के नाश के लिये ३९३
पहले, जिनकी जरूरत है ३९७
सुखी तथा सफल जीवन के लिये [३९९]
(दे० 'विरोधी शक्ति' भी)
गुरु १९६, १९७, २८३
गुह्य कार्य माताजी की नींद में ४
गुह्य क्रिया और सेंट जांविऐव ३२
गुह्य पद्धतियां और अधिमानस २२०
गुह्य विद्या सच्ची ४५
गुह्य शक्तियां और श्रीअरविंद ३३
ग्रहणशीलता [ग्रहण करना] १८, [६३], ३५५
का अभाव शारीरिक चेतना में, और रोग २१; विश्वास और शांति भरी : उपाय रोगों का ३९१
माताजी के रूपायण के बारे में ३९
शक्ति के प्रति ११०
ऊर्जा को ११६, १३६, [३९८]
बाल्कनी दर्शन पर २१६
और प्रगति करने की इच्छा २३४, ४०३
भागवत प्रभाव के प्रति २३४, ४०३
अपने जन्मदिन पर २८७, ३६८
को कैसे बढ़ा सकते हैं ? ३०९
और आत्मदान ३०९, [९१]
की कमी : कारण ३३४
का अभाव : फल और इलाज ३३८
और आह्वान का उत्तर ३५९
पूर्ण, ३५९
अधिकतम, नीरवता में ३९५
के लिये अपने-आपको विस्तृत करना ३९७
(दे० 'उद्घाटन', 'मस्तिष्क' भी)
ग्रां रिव्यू ५

घ

घटना
(का जिक्र आंद्रे के पत्र में) पर माताजी की टिप्पणी ७-८, ८-९
एक ही, एक के लिये अच्छी, दूसरे के लिये खराब २१५
पर अधिकार ३८५
घृणा
प्रेम का उल्टा रूप है ७१
के स्थान पर सच्ची वृत्ति ७१

च

चक्र
-ों को खोलना, तंत्रों में और पूर्णयोग में ३४०-१
चरित्र
के अनेक प्रकार २६४
बदलना ३२४
(दे० 'स्वभाव' भी)
चाहना [चाहो]
केवल उसी को २३९
और प्राप्ति २९९
आग्रह के साथ ३०७, ३१२
वही, जो भगवान् चाहते हैं ४००
(दे० 'अभीप्सा', 'बनना' भी)
चिंता ८१
चिकित्सक दे० 'डाक्टर'
चिड़चिड़ापन ६६
चित्र
जिस लोक से आते हैं ११०
माताजी के भिन्न-भिन्न २१८
चीज [वस्तु]
-ों को उच्चतर चेतना से देखना २६, २६८
किसी भी, को फेंके बिना, सभी को जुटाकर रखने का सिद्धांत ४०
'व्यवस्था और क्रम का अभाव ४०
' ठीक पहले की तरह दोबारा नहीं आया करतीं ५५
जो गायब हो जानी चाहिये गायब हो जायेगी केवल वही बनी रहेगी जो अच्छी है ६४, ६५

˘, जो सबसे खराब हैं ६६; भद्दी और निकृष्ट ११९
-ों के चरितार्थ होने में समय लगता है ८१; ˘ तभी चरितार्थ होती हैं जब वे किसी आंतरिक सत्य की अभिव्यक्ति हों १७२
˘ सुंदर, गंदी चीजों से अधिक मजबूत हैं और वे निश्चय ही विजयी होंगी ८४
˘ जो दुनियाभर की धन-संपदा से अधिक मूल्यवान् हैं ११३
-ों इन, के गायब होने में लंबा समय लगता है १२७अ
-ों के साथ व्यवहार में अनाड़ीपन : उपचार १७०
-ों का आदर करना २३८-९
-ों का उपयोग २३९; (मेज के साथ व्यवहार १८)
˘, जो न करनी चाहियें, न चाहते हुए भी हम उन्हें करते हैं, क्यों ? और इससे कैसे बच सकते हैं ? ३०४
कौन-सी, तुम्हारे अंदर सबसे महत्त्वपूर्ण है, जिसके बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता ३१०अ
(दे० 'काम', 'जगत्', 'दृष्टि', 'नियमितता', 'प्रगति', 'प्रयास', 'प्रेम', 'भागवत उपस्थिति', 'संकल्प', 'सीखना', 'स्वामी' भी)

चीन की धमकी भारत को २५५

चुप रहना
में खतरा नहीं, जब कि बोलने पर . . . १८१
नेताओं पर टिप्पणी करने की जगह २५५
विभागाध्यक्षों या बड़ों की भूलों पर २९७-८

चेतना
को मन से अलग कर लो ५८
धूमिल, आश्रम में दर्शकों से ९२
जो निरंतर तुम्हारे पास रहती है और मेरे प्रेम की शुभ-चिंता को लाती है १०९, पुकारों को उत्तर देती है ३४४
का उत्थान १५१अ
गहरी, में निवास १६१
सामान्य, में जा गिरने की प्रवृत्ति से अपने को अलग कर लेना ज्यादा अच्छा १७८
मनुष्य में/की २१९, २९९
की समान ऊंचाई पर रहना क्यों संभव नहीं होता ? २३५
अपनी, को ऊंचा उठाने का द्रुत उपाय २३९
को बदलना और श्रेष्ठजन बनना २४५
में प्रगति का अवसर, हर चीज २७०
उच्चतर क्षेत्र में स्थापित करना २८१
को विस्तृत करना २८५, ३७०; का विस्तार जरूरी ३२०; के क्षेत्र को विस्तृत करना ४०३
जिसमें भगवान् के साथ ऐक्य का ही मूल्य है २९५अ
की ये दो स्थितियां युगपत् और पूरक तभी जब चेतना का आसन मन के परे . . . २९७
ऊपरी, और सूक्ष्मतर ३०७
जब सर्वशक्तिमान्, तो छाया . . . ३४०
निश्चेतना बन गयी ३४३
अपनी पूर्णता में, भ्रमातीत ३४८
सच्ची : पारदर्शक ३५३
को बढ़ाना, माताजी जो देती हैं उससे सचेतन होने के लिये ३५६
की दीप्ति लाता है यह ३६८
का परिवर्तन : अर्थ ३७३
को जिन्होंने विकसित कर लिया है उनमें और जिन्होंने नहीं किया उनमें क्या फर्क है ? ३८५
नयी जाति की ३८७
का शाश्वत आनंद में आविर्भाव तभी ३९५
का ब्योरेवार गुणन ३९७
किन्हीं दो मनुष्यों की समान नहीं ३९७
ब्योरे की, की अभिव्यक्ति अनंत, अविरत ३९७
के विकास को अगर जीवन का उद्देश्य मान लिया जाये तो बहुत-सी कठिनाइयों . . . ३९९
में ज्योतिर्मयी शांति की बाढ़ ४०१

(दे० 'अतिमानसिक चेतना', 'आध्यात्मिक चेतना', 'चैत्य चेतना', 'भागवत चेतना', 'भौतिक चेतना', 'शाश्वत चेतना', 'सत्य चेतना' तथा 'अतिमानव', 'आश्रम', 'इच्छा-शक्ति', 'काम' भी)

चैत्य केंद्र दे० 'एकीकरण'

चैत्य चेतना २१२

और बाहरी चेतना १५६

का विवेक २६६

चैत्य ज्वाला और वैदिक अग्नि १९४

चैत्य परिवर्तन दे० 'आध्यात्मिक परिवर्तन'

चैत्य पुरुष

को पा लो तो मुझे भी अपने अंदर पा लोगे १५५

सतत भगवान् के संपर्क में १५६

सोया नहीं है, संबंध नहीं बना है क्योंकि . . . १५६

दुःखी नहीं होता १५६

आश्रमवासियों के ३४०

चैत्य व्यक्तित्व

को कैसे विकसित करें? २०९-१०

चैत्य सत्ता

जब सतह पर १२४

और आनंद १२४, ४००; और प्रसन्नता १५६; और सच्चा सुख २६९

और मन-प्राण १५६

सक्रिय माताजी के हस्तक्षेप से १५७

और प्राण १६२

और शरीर की अमरता १८२, ४०१

के साथ सचेतन संपर्क: २०९, के लिये [शर्तें] २१३, ३६९, निश्चयात्मक होता है २३१, और आत्मावलोकन २६८, आसान नहीं, क्यों? ३६९, और सत्ता का एकीकरण ३८४

का प्रभाव २०९, २३१, ३६९

के विकास की शर्तें २०९अ, २३१-२

और अंतरात्मा २३१, २३१अ, २४८, ३३१-२

और कुकर्म (निम्नतर बुरा जीवन) २३२

की अवनति २३२

का पथ-प्रदर्शन २३३

ही सच्चे प्रेम को जानती है २३७

को पाने का द्रुत उपाय २३९, [२७९]

की खोज [शोध] २६९, ३६९, ३९३

के साथ ऐक्य का फल २६९, ३४०, ४००अ, [१५६, १६२]

भूल नहीं करती २८४

की आवाज २८४, ३५८; के संदेश और मानसिक विचार ३९३-४

के चारों ओर भिन्न-भिन्न भागों को एकत्रित करना ३३५अ

और सहजता ३४१

और अंतःकरण ३५१

से सचेतन विरले ही ३६९

के सामने रखना अपनी समस्त गतिविधियों को ३८४, ३९३

दिव्य उपस्थिति का कोष ३९३, [२०९]

की प्रकृति ३९४

अहं के स्थान पर ४०१

को पाना महत्त्वपूर्ण काम ४०१

(दे० 'अंतरात्मा' भी)

चैत्य स्मृति ३२४-५, ३९४

छ

छाया ५१, ३४०

ज

जगत् [दुनिया, संसार] १०६, ११४, १४४, १७७, ३३४

की स्थिति: ६, [७-८, ८-९], और उपचार ६; की यह अस्तव्यस्तता सत्य के अवतरण की तैयारी है या विरोधी शक्तियों का विद्रोह ३०४, [३१६]

को देखने के तरीके १४७

में हर चीज: अनवरत परिवर्तन में है १४७,

[५५], संतुलन और असंतुलन का प्रश्न है ३००, मिली-जुली है ३०२
से बाहर जाना १५३
आनंद का २३७-८
कुरूप है, दुःख से भरा है ऐसा अनुभव २९७
का अस्तित्व प्रमाणित करता है कि भगवान् का अस्तित्व है ३१७
स्वयं वही (स्रष्टा) है ३७५
एक महान् परिवर्तन के लिये तैयारी कर रहा है, क्या तुम सहायता करोगे ? ३८६
की सहायता : तरीका ४०१
(दे० 'अतिमानसिक जगत्', 'सूक्ष्म जगत्', तथा 'दुःख-कष्ट', 'भगवान्', 'मूर्खता' भी)

जड़ता २९०
का उपचार १३८, २८६
पूर्ण, का संकेत २८६
सबसे बुरी है २८६
मानसिक, ३११अ

जड़ भौतिक
में जब अतिमानसिक शक्तियां उतरेंगी ७३
में भागवत चेतना को लाना १७१
घनीभूत ऊर्जा है २१०
बदल रहा है ३९१

जन्म
उच्चतर शरीर में, तभी १५२अ
इसी, में सिद्धि की संभावना १५३
इसी, में या अनेक जन्मों में भगवान् को पाना २२७, ३७९
सत्य जीवन में : शर्तें २७३
पिछले, और चैत्य स्मृति ३२४-५
-ों पिछले, का ज्ञान ३२७

जन्मदिन
का क्या मतलब है ? २८७; का सच्चा अर्थ ३६८
पर विशेष ग्रहणशीलता २८७, ३६८
पर माताजी के भेजे कार्ड ३२१अ
कैसे मनाना चाहिये ? ३८४

जन्मपत्री और योग-साधना १९१अ

जप
और ऊर्जा २१०
का उपयोग २८३-४

जल्दबाजी : सावधानी का अभाव १६

जांविऐव (सेंट) ३२

जागरूकता [सावधानता, सतर्कता] १६, २४, ३५०
अदृष्ट, अप्रत्याशित के सामने १८
विरोधी शक्तियों के मामले में १७५
छिछोरेपन, शिथिलता के बारे में २६८
आत्म-प्रवंचना की खोज में २७६

जानना [जानने]
छत में तरेड़ को ४१
के तरीके ४१
अपने लिये २५०
अपने-आपको २६८
कामना की उपस्थिति को ३१८
कि हम क्यों जीते हैं ? ३९५
जो चाहिये उसकी तुलना में तुम . . . ३९८
के लिये संकल्प, उसे जो तुम नहीं जानते अभीतक ३९८
भागवत इच्छा को ४००अ
जान सकें कि तुम ही हमारा जीवन, चेतना, सत्ता हो ४०४, [१६७]
(दे० 'ज्ञान', 'समझना' तथा 'भगवान्' भी)

जासूसी कहानियां पढ़ना ३४८-९

जिंजी ३२०

जिम्नास्टिक्स
मानसिक १८५
की नयी क्रिया में डर २७५

जीवन ७८
ऐसा नहीं, जैसा उपन्यासों में चित्रित ५७
दैनंदिन, कष्टों से भरा है ५७
में सफल वही ११५, १२५, ३९९
में अनिवार्य गुण १२१

में नियमितता और स्वास्थ्य १२४
नये, में सहायक चीजें १३५
की मूर्खताओं से प्रभावित कैसे १४५
में शुष्कता : कारण १६१
शुद्ध, दिव्य १७८
के अनुभवों द्वारा चैत्य व्यक्तित्व विकसित २०९
में अनिवार्य चीजें सीखने में कितने समय और प्रयास . . . २२१
में त्रासदियां २८०
का अच्छे-से-अच्छा उपयोग २९०
का आधार आध्यात्मिक सत्य हो २९२
समस्त योग है ३१०
मुक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण, के लिये ३२०
मृत्यु बन गया ३४३
का उद्देश्य [लक्ष्य] ३५६, ३९५, ३९९ दे० 'लक्ष्य' भी
व्यक्तिगत, का प्रयोजन ३९१, ४०१
असह्य भागवत उपस्थिति के बिना जब ३९४
जीना भगवान् की खोज और उनके साथ सचेतन ऐक्य के लिये ३९५ दे० 'भगवान्' भी
में मनोवृत्ति के अनुसार मनुष्यों के चार वर्ग : जीते हैं जो—स्वयं अपने लिये, दूसरे के प्रेम के लिये, मानवजाति की सेवा के लिये, भगवान् के लिये ३९६
की प्राचीन पद्धति अपना मूल्य खोती जा रही है ३९७
तब बहुत रुचिकर ३९९
को सच्चा अर्थ मिलता है ३९९
में शांति और आनंद : शर्त ४००
कितना संक्षिप्त है जो प्रगति करनी है उसके लिये ४०३
(दे० 'आध्यात्मिक जीवन', 'दिव्य जीवन', तथा 'अनुशासन', 'आश्रम', 'कठिनाई', 'काम', 'कामना', 'पृथ्वी', 'प्रकृति', 'प्रगति', 'संघर्ष' भी)

जोखिम हर अग्रगति के भाग ३१०
ज्योति
के साथ संपर्क से आनंद १३९
कामना के अभाव से ३९८
(दे० 'अतिमानसिक ज्योति', 'आध्यात्मिक ज्योति', 'प्रकाश' भी)
ज्योतिर्मयी चेतना [उपस्थिति]
अंदर की, के साथ संपर्क ३८१अ
ज्योतिष [ज्योतिषी] २८४, ३७३
ज्ञान १४०
भौतिक मानसिक, पर ही निर्भर ३८
को भी जोड़ना सब को सुखी देखने के भावों के साथ १७९
, तत्वमीमांसा और नीतिशास्त्र १८५
छिछला और अपूर्ण १८६
भागवत, और शुद्ध प्रेम २०२अ
जानता है, अज्ञान के ही मत होते हैं २९८
तादात्म्य द्वारा ३५७
जब 'तत्' का, तो सब कुछ सारभूत सत्य में ज्ञात होता है या ब्योरे में भी ? ३६२
पूर्ण, में निवास के लिये शरीर का रूपांतर जरूरी ३६३
और बुद्धि क्या है ? इनकी भूमिका क्या है ? ३७४
(दे० 'जानना', 'समझना', तथा 'जन्म' भी)
ज्ञानमार्ग और परात्पर भगवान् २३६
ज्ञानयोग और भक्तियोग २२२

झ

झगड़े
-ों से ऊपर है सच्चा दिव्य प्रेम १६३
मूर्खताभरी चीज १८०
झूठ बोलना यहां, संकटपूर्ण १८१

ड

डटे रहना
प्रतिरोध को जीतने के संकल्प में १२८

अध्ययन में १३५
और सफलता १७२
प्राण जब हड़ताल करे १८४
डॉक्टर [चिकित्सक]
'रोगियों के बारे में बातचीत ५९
-ों की अक्षमता २८०-१

त

तंत्र
और अधिमानस २२०
'चक्रों को खोलना ३४०
तत्त्वमीमांसा और 'लाइफ डिवाइन' १८५
तपस्या दे० 'प्रयास'
तमस् [२८३]
और नीरसता ५८
और कल्पना ५८
से छुटकारा ५८
और सत्त्व में संघर्ष १४६
मन में, और जासूसी कहानियां २४९
पढ़ाई में २७२
'तामसिक स्थिति का इलाज २७३
आधार शरीर का २७५
'तामसिक प्रवृत्ति : सरलीकरण की २८१
और आश्रम का अनोखा अवसर ३१३अ
(दे० 'जड़ता', 'नीरवता', 'शरीर' भी)
तादात्म्य
द्वारा सब कुछ जाना जा सकता है, पर यह करना आसान नहीं ४१
भागवत चेतना के साथ, और आनंद ५७
आंतरिक, द्वारा माताजी से निकटता ११४
संगीत की रचना के साथ २१७
भगवान् के साथ ३५५
द्वारा ज्ञान ३५७
तारीख
३-३-३३, २-२-२२, ४-४-४—७२
४-५-६७—३२४
१-२-३४, २-३-४५, ४-५-६७—३२४टि०
तुच्छता [क्षुद्रता] ८५
अब नहीं सही जा सकती ३९७
त्याग
अच्छी आदतों का : मतलब २९५
की जरूरत तबतक, जबतक तुम मार्ग पर नहीं २९५-६
(दे० 'कामना' भी)
त्रासदियां उनके लिये हैं जो २८०

थ

थकान
भौतिक सता की एकाग्रता से २३
और क्रोध २४अ
'आत्मसंयम और शांति खो बैठना ४८अ
'जल्दी सोया करो ४९
के लिये आराम ७४, [४९]
के लिये कूए की पद्धति ७४
स्नायुओं में, देर में सोने से ७७
के समय किया गया काम ७७
प्राण के विद्रोह से १०५
'भौतिक अनुशासन पालना ११८
निष्क्रियता से १३७

द

दंभ और हीनता-ग्रंथि २५०
दयाभाव में सच्ची महानता २०
दर्प [गर्व, घमंड] ५०, १६६
का गलत भाव ५९
क्रुद्ध, ६६
और दुःख ६७
प्रहारों को निमंत्रित करता है ८५
विनाश की ओर ले जाता है ९३
प्रगति को रोक देता है ११९
और विनय १६६
के साथ 'बड़े काम' करना १६९
दर्शन
के बाद एकाग्र रहना ८०

'बाल्कनी-दर्शन २१५-६
दर्शन-दिवस ७९टि०
२४ अप्रैल, के लिये अपने-आपको कैसे तैयार करूं ? ३१०अ
, और ५ व ९ दिसंबर कैसे मनाना चाहिये ? ३८४
द लास्ट फुटस्टेप्स २४४
दवाइयों
के बिना काम चलाने के लिये १८२
दिखावा ९३
कभी न करो २८२
दिव्य आलिंगन विस्तार द्वारा २३७
दिव्य चेतना दे० 'भागवत चेतना'
दिव्य जीवन
और मानव जीवन की क्षमता १४७
बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं, भीतरी स्थिति पर निर्भर १७८
दिव्य जीवन [*लाइफ डिवाइन*]
पढ़ना १८५, २२७
(दे० 'उद्धरण' भी)
दिव्यीकरण २८२
दुःख-कष्ट [दुःख, दुःख-दर्द, कष्ट] ३७, ६०, ६१, ६७, ६८, ८७, १६२, २७०, ३४३
जगत् के : का उपचार १८-९, को गायब करने के लिये काम कर रही हूं ६८, को समाप्त करने का अनन्य उपाय ३९५; जगत् में, क्योंकि वह ग्रहणशील नहीं ३३८
'रोना १९, ६६
से भरा है : जीवन ५७, जगत् २९७
विद्रोह से ११४
तब समाप्त ११४, २६९
शरीर के स्वस्थ न रहने से १२२
और काम १२३
और मृत्यु पर विजय में विश्वास नहीं १४७
और चैत्यपुरुष १५६
'दुःखी होना और रोना-धोना जितना अधिक उतने ही मुझसे दूर १६२
औरों के, बारे में संज्ञाहीन, उदासीन १७७
दूसरों के, में सहायता तुम तभी १७९
से निकलने की एक ही तरकीब १९२
पथ के २१२
अहंकार से रंगा हुआ २६९
से चिपका रहता है मनुष्य २७०; को पसंद करते हैं मनुष्य समर्पण के आनंद से ४०२
सुख का साथी २७६, [१२७]
'दर्द का अनुभव न करने के लिये स्नायु का मस्तिष्क से . . . ३०१
और अनुकंपा और कृपा ३२०
'भौतिक कष्ट रूपांतर के कार्य का एक भाग, उन्हें शांति के साथ स्वीकार . . . ३२८
जीवन का प्रयोजन नहीं ४०१
(दे० 'माताजी', 'दूसरे' भी)
दुर्घटना
कामना और अज्ञान से २९
और कर्म-फल ३००
का कारण और उपचार ३००
आश्रम के क्रीड़ांगन में ३८४अ
दुर्बलता [कमजोरी]
को देखना और सुधारना ५८
को देखना उपयोगी, लेकिन केवल उन्हीं को नहीं ६०
ही चंचलता का कारण ११७
पर विजय पाना [जीतना] १३८, ३३७
भावुक, को दूर फेंक दो १६२
का विचार बुरी चीज १७३
से आंखें न मूंदनी चाहियें २७६
को उचित ठहराना ३३७
आलसी बनाती है ३७१
(दे० 'निम्न प्रकृति' भी)
दुर्भाग्य २१४
दुर्भावना
और काली १३४
का गढ़ ३९६
दुष्टता भलाई में परिवर्तित ३८२

दूसरे [और, किसी]

-ों के साथ व्यवहार करते हुए यह न भूलना चाहिये कि हर एक में अपने दोष होते हैं २०; -ों के साथ संबंध में तुम सबको बहुत बदलना और सीखना है ३५; -ों के साथ संपर्क उपयोगी १८०

कमीने हैं इसलिये तुम भी . . . २७

-ों से मिलने पर स्पंदनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ३०; -ों से मिलने पर उठनेवाले गलत निम्नतर संवेदनों का उपचार ३३२

की इच्छा को अभिभूत करने की शक्ति ४५

-ों से उच्च होने का भाव ४९

कैसा व्यवहार करते हैं इसे बहुत अधिक महत्त्व देना ४९

-ों के लिये कष्ट उठाना कभी व्यर्थ नहीं ७६

-ों के साथ बातें, दर्शन के बाद ८०

-ों से न बोलना ८०

जो कहते हैं या मानते हैं उसकी चिंता न करो १५९, १८०, १९९, २६८

-ों के कष्ट से उदासीन १७७

-ों के साथ रहते हुए उनसे प्रभावित हुए बिना रह सकना १७८

-ों से अपने-आपको अलग कर लेने की प्रवृत्ति १७८, [१७७]

-ों तक शांति और सुख का संचार १७९

-ों के दुःख-दर्द में सहायता १७९

-ों का दुर्व्यवहार जब तुम निर्दोष १८०

की आलोचना दे० 'आलोचना'

-ों के बारे में फैसला १८०

-ों को जांचना २५०, मूल्यांकन २५५

-ों को कुछ-न-कुछ कहने को अवश्य मिल जायेगा २५८

लोग दर्पण हैं २७८, ३२१

-ों में जो चीज तुम्हें सबसे अधिक धक्का पहुंचाती . . . ३२१, [२७७अ]

रूपांतरित नहीं हुए यह कारण देना ३९६

के प्रेम के लिये जीना ३९६

-ों से अपनी प्रत्याशाओं की पुष्टि चाहना ४००

(दे० 'बोलना', 'नियंत्रण', 'प्रशंसा', 'स्वप्न' भी)

दृढ़ता

और प्रगति २६६

और लक्ष्य-प्राप्ति ३९८

दृष्टि

सार्वभौम और सच्ची, वस्तुओं के बारे में ३८३

समग्र और सभी ब्यौरों की ३९७

(दे० 'अंतर्दृष्टि' भी)

देना [देने] १६४, १६९

में बड़ा आनंद १९८

अपना दोष, बुराइयां, गंदगी २२९-३०

भगवान् को जो तुम्हारे पास है या जो तुम करते हो या जो तुम हो २३३

मांगने की जगह २६६

का आनंद पाने से अधिक ४०२

(दे० 'आत्मदान' तथा 'अहं', 'प्रेम' भी)

देवता

अधिमानस के २२०

'अमरदेवों के प्याले से पीना २३५

और दैत्य [असुर] २५०, ३५२

-ओं को पूजने की जरूरत नहीं २५०

पहले, या असुर ? १३, ४३

दोष

हर एक में अपने २०

-ों और कठिनाइयों पर एकाग्र न होओ ६३, [६०]

-ों अपने, को देना २२९-३०

-ों अपने, को पकड़े रहना २२९-३०

-ों औरों के, की आलोचना दे० 'आलोचना'

-ों अपने, को सुधारना २५४, ३९९

और गुण २५६

-ों पर रोना नहीं, उपचार करना २६९

दूसरों के, से जो धक्का २७७अ, ३२१

देना अपने-आपको २८७
का परिणाम ३००
या दुर्बलता को उचित ठहराना : कारण और उपचार ३३७
(दे० 'माताजी' भी)

ध

धन [पैसा, रुपया]
रिश्तेदार द्वारा भेजे, को स्वीकार करना २०४-५
'संपत्ति में से भगवान् को कुछ देना २३३
सब अर्पण कर जरूरत की चीजें मांग लूं या जरूरत के लायक रख कर बाकी अर्पण कर दूं ? २५८
मांगते हुए सकुचाहट (माताजी से) २६५अ
'अमीर जितना, उतना ही बेईमान—क्यों ? ३४४
विरोधी शक्तियों के अधिकार में ३४४
को व्यक्तिगत संपत्ति न होना चाहिये ३४४-५
-संपत्ति-विषयक एकमात्र समाधान ३४५
एक निर्वैयक्तिक शक्ति है ३४५
के सर्वोत्तम उपयोग का ज्ञान ३४५
देना भिखारियों को ३७९
-लोलुपता की जगह उदारता ३८२
(दे० 'आश्रम' खर्च भी)
धर्म [धार्मिकता] २९२
और अधिमानस देव २२०
के बंधन और श्रीअरविंद ३८५
धैर्य [धीरज]
न खोना, सब ठीक हो जायेगा ५५
खो बैठना, स्नायुएं थकी हों तो ७७
चीजों के चरितार्थ होने में ८१
और कठिनाइयां १३४
धरने के लिये इच्छा-शक्ति को लगाना होगा १३५
विरोधी शक्तियों के साथ लड़ाई में १७५
छोटे बच्चों के साथ १८८
लक्ष्य को पाने के लिये २९९
पूर्ण निवेदन के लिये ३६८
शरीर में प्रगति के लिये ३६९
(दे० 'अधैर्य' भी)
ध्यान ३३, २८५
और काम २६, १६८
के निश्चित घंटे रखने की अपेक्षा निरंतर एकाग्र वृत्ति १६८
और ऊर्जा २१०
द्वारा अचंचलता, स्थिरता, शांति और नीरवता को उतारना २१६
माताजी के चित्रों के सामने २१८
संगीत के साथ २१९
अपने कमरे में, और खेल के मैदान में—क्या फर्क है ? २५७
यांत्रिक बन गया है २६३
के लिये 'शांति', 'नीरवता' शब्दों का जप २८३
में निर्विचार होने का प्रयास २८८
के लिये प्रयास २८९
में हृदय की गहराइयों में प्रवेश नहीं कर पाता ३०६अ
और पूर्णयोग ३१८
की नीरवता को क्रिया-कलाप में ३१९

न

नमनीयता अदृष्ट, अप्रत्याशित के सामने १८
नम्रता दे० 'विनय'
नयी अभिव्यक्ति [नयी सृष्टि] २९१, ३०६, ४००
'नूतन उपलब्धि में भाग लेने के लिये २९७
के विशेष मुहूर्त में हैं हम ३२७
के लिये तैयार . . . ३९१, ३९९
नया जगत् दे० 'अतिमानसिक जगत्'
नयी जाति
में क्या शरीर का रूप बदल जायेगा ? ३७४

और मनुष्य ३८७
की चेतना अब कार्यरत ३८७
के लिये प्रजनन-ऊर्जा का उदात्तीकरण ४००
का जन्मसिद्ध अधिकार ४०५
नया जीवन १३५
के लिये तैयार नहीं वे ३०७
नयी शक्ति [नूतन शक्ति]
के विरुद्ध प्रतिरोध ३०६
-यों की ओर खुलना और रूपांतर ३९१
नयी सत्ता
के आगमन की तैयारी ४०५
नया साल [नया वर्ष]
मुबारक (एक साधक को) २७३
का संदेश दे० 'संदेश'
नरक में से गुजरना ३५९
नि:स्वार्थ
कर्म १६९
भला पूरी तरह कौन? २५८
भाव से काम करना २७९
निम्न प्रकृति
का स्वामी १०९, २८१
पर पूरा अधिकार १०९; 'निम्न सत्ता पर अधिकार १४४
की इच्छा की संतुष्टि १०९
का उपचार १६७
और विरोधी शक्तियां १७६
को जीतना १७७; पर विजय से बाह्य सफलता की अपेक्षा गहरा आनंद ३९१
'निम्न सत्ता की दुर्बलताओं और कामनाओं को जीतने की आजादी २५६
के कारण है बच्चों में यह अनिश्चितता और इस तरह जाना २८६-७
नियंत्रण
नींद [स्वप्न] पर २२अ, २१३
औरों पर [बच्चों पर] १८७, १८८
प्राणिक आवेशों पर ३४१
समस्त क्रियाओं पर ३७२
(दे० 'अधिकार', 'प्रभुत्व' भी)
नियम
, नियम होता है १७
नगर पालिका का १०१
जब कोई बनाते हो ३५४
नियमितता
और स्वास्थ्य १२४
मूल्य की चीजों में ३६७
निराशा १२७
और दु:ख के चोर-सुझाव ६८-९
-भरे विचार १७४
-वाद का कारण : दु:ख-दैन्य ३९५
निर्गत अंश
चार, महाशक्ति के ३४३
और रूपायण में क्या फर्क है? ३४७
निर्णय [फैसला]
भौतिक ज्ञान के आधार पर ३८
'निर्णायक माताजी ४५
दूसरों के बारे में १८०
करना दूसरों के लिये २५०
करना और मत होना २९८
(दे० 'मूल्यांकन' भी)
निर्वाण
-गत चिनगारी को क्या भगवान् फिर से अभिव्यक्ति में . . . ३५३अ
निवेदन (दे० 'अर्पण', 'उत्सर्ग', 'देना')
निष्क्रियता
और मन में खराबी १०६
और थकान १३७
निश्चय दे० 'संकल्प'
निश्चिति
की शांति १०७, १६०
भगवान् द्वारा स्वीकारे जाने की १६०
विजय की १६१, १७३
और माताजी की उपस्थिति १६१
कि सब ठीक हो जायेगा १७४
का प्रकाश १९९

पूर्ण परिपूर्ति और प्रकाशमान शांति की ३९७
निश्चेतना ३४३
और सत्ता का तामसिक भाग १४६
और अवचेतना २१९
, अवचेतना, अतिचेतना २१९
में डूब जाते हो नींद में २४८, ३४८
और मिथ्यात्व २९२
और भागवत कृपा का अपव्यय ३१४; और किसी भी तरह का अपव्यय ३४८
का प्रतीक है छाया ३४०
और अज्ञान ३५१अ
का प्रमाद और अनियमितता ३६७
निष्ठा सच्ची ४०३
नींद [सोना]
माताजी की ३-४
'सोया करो जल्दी ४९
से उठने पर सिर में शोर ६३अ
रात को देर से, और थकान ७७, [४९]
में डर ८९-९०
अच्छी तरह १०९, [३९, ४९]
में माताजी को याद रखना १७६
में खतरा होने पर माताजी को बुलाना १७६, [९०]
उत्तर की ओर सिर करके १९१
पर नियंत्रण २१३
के क्रिया-कलाप का मूल्यांकन २१७
से पहले एकाग्रता: फल २४८, ३३१, ३७१; से पहले माताजी और श्रीअरविंद पर एकाग्र ३०९अ
में निश्चेतना में २४८, ३४८
में भागवत शक्ति के संपर्क में २४८; शुद्ध सत् में ३४८
से पहले सारे दिन पर नजर २९४
में अवांछनीय स्थानों पर न जाने का तरीका ३१०
में आंतरिक सत्ताएं सक्रिय ३४८
में भी क्या अवचेतना आलेखन . . . ३५६
में बोलना : उपचार ३७१
में मन बाहर चला जाता है ३७१
के बारे में सचेतन ३७२
जल्दी, और उठना जल्दी क्यों अच्छा है? ३७३
में प्राणिक चेतना बाहर चली जाती है ३८०
के लिये आधी रात से पहले का समय बाद के समय की अपेक्षा ज्यादा अच्छा क्यों होता है? ३८०
(दे० 'स्वप्न' तथा 'प्रगति' भी)
नीरवता [निश्चल-नीरवता, मानसिक नीरवता] २०
और प्रत्याशा का वर्ष ५०
भीतरी, में से मुझे पुकारो १५५
बाल्कनी-दर्शन के समय २१६
भौतिक चेतना की : मतलब २१६
ठोस, सकारात्मक को उतारना २१६
संगीत सुनने में २१७, २१९अ
श्रीअरविंद-साहित्य पढ़ने में २१८
आलोकमय, और तामसिक २६१
का जप ध्यान के लिये २८३-४
समझना तामसिक मंदता को २८४; और मानसिक जड़ता ३१२
और ध्यान २८८, २८९, ३१९
तब अपने-आप आ जाती है २८८
प्राप्त करने के लिये २८९
और चैत्य सत्ता से संपर्क ३६९
में प्रकृति के साथ नाता ३७०
और भागवत उपस्थिति ३९४, ४०४
में अधिकतम ग्रहणशीलता ३९५
में बड़ा-से-बड़ा कार्य ३९५
में ज्योतिर्मयी शांति की बाढ़ ४०१
नीरव होना सिखला प्रभो ४०२
में तेरी शक्ति पा सकें, तेरी इच्छा को समझ सकें ४०२
प्रदान करो प्रभो ४०४
और नयी सत्ता ४०५

(दे० 'शांति' भी)

नीरसता

तमस् से आती है ५८

से छुटकारा ५८

नैतिकता एक ढाल है ३१२

न्याय और सत्य ३४७अ

न्यू एज ऐसोसियेशन ३२६

प

परम आविष्कार ८

पराजयवाद अवचेतना के, पर विजय ३९५

पराप्रकृति क्या है ? २२१

परिवर्तन

यह, तुम पर बाहर से आया है ६९

'बदलना भीतर को १३४

अधिकतम अद्‌भुत १४३

अनवरत, में है हर चीज १४७, [५५]

'बदलना छिछोरेपन को १५७

'बदलना अपने-आपको २४५

'बदल नहीं पाता मनुष्य इसी कारण २७०

प्रकृति के 'परम और आमूल', को मनुष्य तभी देखेंगे २९९

धरती के वातावरण में, जब-जब भागवत सत्य या शक्ति की कोई अभिव्यक्ति . . . ३०५अ

'बदलना चरित्र को ३२४

मनोवैज्ञानिक, धन-संपत्ति के विषय में ३४५

तात्कालिक, बहुत जीवनों का परिणाम ३५८

महान्, और नयी जाति ३८७

(दे० 'आध्यात्मिक परिवर्तन' तथा 'अहं', 'आदत', 'चेतना', 'जगत्', 'प्राण' भी)

परिस्थिति

पर निर्भर नहीं, भीतरी स्थिति पर निर्भर : शुष्कता १६१, दिव्य जीवन १७८

-यां आश्रम की दे० 'आश्रम'

कठिन : निकलने का उपाय १७७

अवांछनीय, से बचना अच्छा १८४

एक ही, अच्छी या बुरी २१५

इन्हीं, में तुम ज्यादा अच्छा कर सकते हो जबतक यह प्रमाणित न कर दो . . . २५५

-यों पर निर्भर नहीं सच्चा सुख २६९

-यों को सरल बनाने की प्रवृत्ति २८१

-यां आज की : और रूपांतर ३५४, विशेष अवसर ३९१

-यां वर्तमान, विशेष अनुकूल भगवान् को पाने के लिये ३७९

-यों सभी, को भगवान् तक पहुंचने के साधन के रूप में रूपांतरित करना जानना ३९५, [३५७]

से अपनी कामना की पुष्टि चाहना ४००

पशु दे० 'बैल', 'मनुष्य'

पश्चात्ताप ४२

पांडिचेरी

आदर्श विश्राम-स्थल ६अ

'यहां भी विनाश की शक्तियां ८

(दे० 'संदेश' भी)

पाकिस्तान का भारत पर हमला ३०२टि०

पाप और योग १३

पीटना और अपनी पिटाई १३

पुकार

कभी व्यर्थ नहीं जाती १७२

आध्यात्मिक २३४

(दे० 'आह्वान', 'माताजी' भी)

पुनर्जन्म

अपनी पुत्री में, का विचार ३३९

पर हम विश्वास क्यों करते हैं ? ३७०

(दे० 'जन्म' भी)

पुरुष

और स्त्री का आकर्षण १६५, २९० दे० 'स्त्री' भी

संबंधी मानसिक व्याख्या ३३३

(दे० 'प्रकृति' भी)

पूर्णता २९७, ३९७

की कमी के बारे में अभिज्ञता और प्रगति ३०

और थकी स्नायुएं ७७
की ओर प्रगति : परिस्थितियों में सुधार २१५
व्यक्तित्व की : अहं विरल २८२
के लिये योग ३१६, ३१७
का मार्ग खोल दे ऐसा काम ३२७
ऐसी, जो हमें बनना है ४०४
पूर्णयोग [श्रीअरविंद का योग] २१०, २२२
के लिये अपेक्षित निश्चय २६०
की साधना-पद्धति २७८
हमने शुरू कर दिया है इसका निश्चित चिह्न क्या है? २९३
-मार्ग का आरंभ-बिंदु २९३
-मार्ग पर सच्चे सीमा-चिह्न २९३
का मानसिक और शारीरिक शिक्षा की तरह क्या कोई विधिवत् क्रम नहीं है? २९४
में कर्म और ध्यान ३१८
और अन्य योग ३४०-१
में शरीर का रूपांतर अनिवार्य ३६३
का उद्देश्य ३६३
पृथ्वी [धरती]
राजनीतिक और सामाजिक मिरगी के दौर में ८
पर जीवन हमेशा दुर्व्यवस्थापूर्ण ८
का इतिहास : निश्चेतना से शुरू २१९, में हम संक्रमणकालीन क्षण में ३९१, निर्णायक मुहूर्त में ३९७
और अधिमानस-देव २२०
का वातावरण और अतिमानस २२२, [३५३]
का रूपांतर : और आश्रम-साधक २९१, ३०६, का मुहूर्त ३३४; की स्थिति और रूपांतर ३५३
पर भगवान् के राज्य को स्थापित करने में कौन धीमा है मनुष्य या भगवान्? ३३८
पर जीवन का उद्देश्य ३५६
पर कठिन घड़ियां . . . ३९२
(दे० 'व्यक्ति' भी)
पेरी मेसन २४८
पैगंबर के शब्द के लिये पुकार ३०३
पोशाक को महत्त्व देना २६३
प्यास ३९९
तब शांत होगी २१, ३९
प्रकाश ५१, ९२
अभी प्रकट नहीं हुआ ८
की ओर खुलना और तमस् ५८
को ग्रहण करने के लिये ६२
के बालक हो तुम १०९
और अंधकार १३७, ३८०
पाओगे शांति में १४०
ज्ञान लायेगा १४०
के लिये तैयार होते हो तब १६७
सचेतन निश्चिति का १९९
और छाया ३४०, [५१]
में चल सकते हैं वे ही ३५०
में उठ जाओगी तब ३९४
(दे० 'ज्योति' भी)
प्रकृति ३२७
के विधान ३८
जटिल है : सत्य-मिथ्या, शुभ-अशुभ मिले रहते हैं ६०
का रूपांतर ६०, १६७
बाहरी के साथ ऐक्य आनंद की जगह दुःख लाता है १४६; बाहरी, में जीवन को सरल बनाने की प्रवृत्ति २८१; बाह्य, को चैत्य निर्णय के अधीन बनाना ३९३
और पराप्रकृति २२१
जड़भौतिक, प्राणिक, मानसिक २२१
पुरुष की क्रियाशील शक्ति २२१
मानव, और प्रेम २६०
मानव, अपूर्णताओं से बनी है २९२
मानव, के विकास पर केंद्रित होना ३२७
का अध्ययन और भगवान् पर विश्वास ३१७
के साथ संपर्क से सहायता ३७०
से प्रेम स्वस्थ सत्ता का चिह्न ३७०

के साथ नाता नीरवता में ३७०
की शक्तियों का विरोध है देर से सोना और देर से जागना ३७०
(दे० 'भौतिक प्रकृति' तथा 'नीरवता', 'परिवर्तन', 'शक्तियां' भी)
प्रगति [उन्नति, आगे बढ़ना] १०५, २२९, २५१, २७३
और पीछे मुड़कर देखना १७
और सुख ३०
और पश्चात्ताप ४२
'आगे बढ़ना होगा, पीछे लौटना असंभव ६९
और प्रहार ८५
को रोकनेवाली चीजें ११९, २३०
भले प्रत्यक्ष न हो १२५
का क्षेत्र : भौतिक जीवन १५३, ४०३
और दोष दिखलाना १५७
'आगे बढ़ रहे है या नहीं यह पूछना १७१; हम कर रहे हैं या नहीं इसे कैसे जान सकते हैं २८२-३
पूर्णता की ओर, और परिस्थितियों में सुधार २१५
करने की इच्छा : आवश्यक २३४, का फल २३४, अधिक भागवत जीवन की ओर ३०८
करने की इच्छा में सच्चा हो तो २५२, २८२
करने के लिये जो चाहिये २६६; 'उत्तरोत्तर बढ़ते चलने के लिये २८३
का अवसर हर चीज २७०
के लिये प्रयास उस चीज को रुचिकर बना देता है २७०
और शारीरिक सुख-सुविधा २७५
समग्रता में, और सरलीकरण २८१
सीधी लीक पर, विरल २८३
अपनी ही, में व्यस्त रहना क्या अहंकार नहीं? २८५
के लिये यहां जो व्यक्तिगत प्रयास २९१; और आश्रम ३०८
आध्यात्मिक : २९२, और मां-बाप ३८३
करने की विधि श्रीअरविंद-योग में २९४
की शक्ति पाने के लिये अपनी अयोग्यता, असामर्थ्य का अनुभव करना २९७
और संकट व जोखिम ३१०
हर एक करे, जितनी अधिक सचाई के साथ हो सके ३२८
सोते समय भी ३५३
अपने जन्मदिन पर ३६८
करने में शरीर सक्षम है ३६९; शरीर की, और मृत्यु ३९९
तेज, का अवसर खेलकूद की प्रतियोगिता व प्रदर्शन ३८३अ
का विशेष अवसर आजकल ३९१
'हमेशा अधिक अच्छा और आगे! ३९८
के लिये न बुझनेवाली प्यास ३९९
की संभावना असीम है ३९९
यौवन है ३९९
को जीवन का उद्देश्य बनाना ३९९
करना स्वभाव में ३९९
'तुम्हारी सेवा करने के योग्य बनने के लिये हमें क्या प्रगति करनी चाहिये इसे तुम ही जानते हो प्रभो ४०२
के तीन मार्ग ४०३
(दे० 'जीवन', 'प्रयास' भी)
प्रजनन-क्रिया और नयी जाति ४००
प्रण [प्रतिज्ञा]
और अभ्यास २५४
पूरी करना २९९
प्रतिरोध १४३
को जीतने के संकल्प में डटे रहो १२८
प्रेम का, कोई नहीं कर सकता १९६
से जब पिंड छुड़ाना हो २०३
नूतन शक्ति के विरुद्ध जब ३०६
अभीप्सा की ज्वाला में फेंक दो ३३६
छिन्न-भिन्न तब ३९४

प्रतीक
गरुड़ १२६
चन्द्रमा १२६
सांप २४३
प्रत्यावर्तन : कारण और उपचार १२४
प्रभुत्व
अध्यवसायपूर्ण प्रयास के द्वारा २२१
(दे० 'अधिकार', 'आत्म-प्रभुत्व' भी)
प्रमाद दे० 'आलस्य'
प्रयास ५०, ३५०, ३९६
अभिव्यक्ति के लिये १२९
प्रगति करने का, और उदासीनता १६७
तो क्या छोड़ देना चाहिये कि चीज कठिन है ? १७१
में आग्रहशील और सफलता २१४
-ों को आध्यात्मिक प्रगति पर केंद्रित करने की जगह . . . २६८
का उत्साह कम, और कठिनाइयों के अंकुश २७३
व्यक्तिगत, और समर्पण २८८-९; व्यक्तिगत, और भागवत कृपा ३३८, ३५०
और ध्यान २८९
कभी नीरव नहीं होता २८९
चरित्र बदलने के लिये ३२४
सत्य चेतना के निर्माण पर ३४९
हर सच्चा, रूपांतर की ओर अग्रसर ३५४
मानव, रूपांतर को जल्दी . . . ३६२
करने के लिये उत्तेजना की जरूरत, बाल्यावस्था में ३७४
अहं के नाश का, जिन चीजों की मांग करता है ३९३
अपना अच्छे-से-अच्छा, आओ, करें, ४०५
(दे० 'अध्यवसाय' तथा 'प्रगति', 'प्रार्थना', 'सत्ता' भी)
प्रलोभन
(अंधेरे में गिरने के) के आगे न झुको १३२
से बचना ज्यादा अच्छा १८४
प्रशंसा (दूसरों से)
पाने की चाह ९३, २५०
प्रसन्नता [खुशी] ५५, ६५, १०५, ११६, १५६, १९५, २००
प्रहार
-ों को निमंत्रण ८५
-ों का उपयोग प्रगति के लिये ८५
(दे० 'माताजी' भी)
प्राण
का विद्रोह १०५, १३६-७; की हड़ताल १८४
पर शांति आध्यात्मिक शक्ति द्वारा ११४
'परेशानी को न सह सकना १२३
के सुख १२६अ
बहुत तंग करनेवाला है १३७
'सिखाना कि वह गृहस्वामी नहीं १३७
को रोकने का तरीका १३७; में लगाम लगाने का अर्थ १८३; पर मन का आधिपत्य : मतलब १८३अ; प्राणिक आवेशों पर नियंत्रण ३४१; अनुशासन के लिये तभी तैयार जब भगवान् उसके स्वामी हों ३७२
अविकसित, और प्रबल अनुभूतियों की लालसा १३८; अपरिष्कृत, और अश्लील उपन्यास १८७
में व्यवस्था, प्रकाश, शांति के लिये १३८; को विकसित करने और उस पर प्रभुत्व पाने के लिये २७९
और चैत्य पुरुष १५६, ३४१
'प्राणिक प्रेम १६२, १६४
किन-किन चीजों का स्थान है १८३; सभी बुरे आवेगों का आधान ३८२; में अच्छी चीजें भी १८३, ३७२
की कामनाओं को जीतने के लिये अच्छा भौतिक संतुलन और स्वास्थ्य जरूरी १८४
और शरीर का तमस् २७५; और शरीर की प्रगति की क्षमता ३६९

और क्रोध ३११
के कुछ भाग सचमुच नरक हैं ३५९
जो परिवर्तित और भागवत इच्छा को समर्पित ३७२; के परिवर्तन के परिणाम : बुरी चीजों की जगह अच्छी चीजें ३८२
और फिल्म देखना ३८६
(दे० 'नींद', 'मन' भी)
प्राणायाम [सांस के यौगिक व्यायाम] २१०
प्रार्थना १८-९
प्रभो . . . वर दे . . . १८, ५०, १९१, २०५, ३९२, ३९५, ४०२, ४०४
की प्रभावोत्पादकता २२
उद्धत ३१
जांविऐव की : कृपा का हस्तक्षेप ३२
शरीर से करना ७१टि०
-एं धर्मों की २२०
काफी नहीं, अध्यवसाय के साथ प्रयास भी करना चाहिये २५५
छोटी चीजों, स्वार्थभरे लाभों के लिये २५८
और उत्तर ३२८ दे० 'अभीप्सा' भी
प्रेम ७१
भगवान् के साथ दे० 'भगवान्'
की प्यास कैसे शांत हो ? ३९
सच्चा, वह है . . . १०९; सच्चा, क्या है तभी जान सकोगे १११; सच्चा, दिव्य, सभी झगड़ों से ऊपर है १६३; सच्चा, और भावुकता १६३, १६४; सच्चा, चैत्य सत्ता में ही २३७; सच्चा, अंतरात्मा में २७७; करना सच्चे प्रेम के साथ ३७१; सच्चा, एक ही है २७७; केवल एक है भागवत प्रेम ३८०
जो अपने-आपको को देना चाहता है उसकी अभीप्सा १४८
चैत्य और प्राणिक माताजी के प्रति १६२
शुद्ध, अनासक्त, और सुख १६३; शुद्ध, तुम्हारा मार्ग हो २०२; शुद्ध, और उच्चतर चेतना और भागवत ज्ञान २०२अ
कब्जा करना नहीं, देना है १६४
उग्र, बेरोक अगर अनुभव नहीं होता १६४
प्राणिक, चैत्य, दिव्य १६४
बहुत ही भद्दा, अहंकार भरा १६४
करने का स्थान नहीं, आश्रम १६५
आवेगपूर्ण १६५
शुष्कता के पीछे १९३
के सतत कार्य का प्रतिरोध कोई नहीं कर सकता १९६
ही मार्ग है और लक्ष्य भी १९७
अपने, के प्रति : निष्ठा बनाये रखो १९९, सच्चे रहो २०२
और क्षमा २०२
हर चीज से : दिव्य आलिंगन २३७
श्रीअरविंद से सचाई के साथ २४५, २८८
करने के तथ्य में ही सुख २५७; के आनंद के लिये प्रेम ३७१
और मानव संबंध २६०
और फ्रांसिस थॉमसन की कविता २७०
मानव, को सच्चे प्रेम की ओर कैसे मोड़ सकते हैं ? २७७
जिससे, करते हो उसी के जैसे बनते जाते हो २७७
और ऐक्य का विधान, और रुद्र का ऋण ३०३
दुःख बन गया ३४३
कहता है मनुष्य जिन चीजों को ३८१
किसी और के, के लिये जीना ३९६
(दे० 'भागवत प्रेम', 'माताजी' (का प्रेम), 'माताजी' (के लिये प्रेम) भी)

फ

फल [परिणाम] दे० 'करना', 'कर्म'
फिल्म
'सिनेमा में जाना नगर के २५४
देखना २५८अ, ३८७-८
फूल
आइरिस : सौंदर्य का अभिजात्य ८२

टाइगर क्लॉ प्लांट : स्वर्ग के पक्षी ८४
लाल गुलाब : भगवान् के लिये प्रेम में बदले मानव आवेश १६५
गुलाब का ३१७
-ों की (माताजी के दिये) सुगंध ३४३
बहुत ग्रहणशील ३४३
मुस्कराया ३४५
जपा का ३४५
रूपांतर का ३४६
फ्रांस ३५
'फ्लर द लीस' ८२
फ्रांसिस थौमसन २७०
फ्रेंच
सीखना अनिवार्य नहीं ३५
का अभ्यास ७०
पढ़ना २९५
फ्लोबेर १८७

ब

बनना [होना]
होगा उसे अब सचेतन और स्वेच्छापूर्ण जो सहजवृत्तिमूलक था ६९
वही, की चाह जो भगवान् चाहते हैं १६७, ३४२, ३६०
अच्छे-से-अच्छा, की कोशिश करो २६८
अपना-आप, सरल, सीधे-सादे रूप में ३३५
जो चाहिये उसकी तुलना में तुम कुछ भी नहीं हो ३९८
है जो हमें, ऐसी पूर्णता प्रभो ! ४०४
'बन सकें वही जो तुम हमें बनाना चाहते हो ४०४
बलवान्
सत्ता हमेशा स्थिर रहती है ११७
को सफलता १२५
बहादुरी [हिम्मत] २६६, ३९७
बाइबिल ८
बालक [बच्चे, विद्यार्थी]
आठ वर्ष से कम के, को काम देना २८
की कल्पनाएं ५७
'तुम मेरी बच्ची हो ६७
जब हठ ठानते हैं ८९
प्रकाश के हो तुम १०९
माताजी का दे० 'माताजी'
के लिये खेल चुनना १८६अ
-ों को डांटना १८७
-ों को नियंत्रित करना १८७, १८८
-ों पर उग्रता का प्रयोग १८८
'कक्षा में व्यवस्था रखना १८८
पाठ नहीं सीख पाते . . . बहुत धैर्य १८८
-ों का प्रवेश आश्रम में जिस क्षण से २३७, ३०८
-ों में रस उत्पन्न कर सकना २४४, २४५
'छोटे लड़के-लड़कियों में भेद-भाव २६२, २६४
-ों का आश्रम छोड़कर जाने के पीछे कारण २८६-७
आश्रम का सच्चा, के गुण ३२१
-ों का मां-बाप के यहां जाने का अर्थ ३८३
-ों को यहां सुंदर अवसर ३८५
(दे० 'उदाहरण', 'प्रयास' भी)
बाहर
से आती है हर चीज ३२१
के बारे में हमारी दृष्टि हमारी आंतरिक सत्ता का प्रतिबिंब है ३२१
बुद्ध ३०३, ३५३, ३५४
बुद्धि
सामान्य, का अभाव ८
एक मध्यस्थ १८५
और मन भगवान् के बारे में कुछ नहीं समझ सकते २१२
को विकसित करने के लिये २७९, ३६७
की भूमिका ३७४, [१८५]
(दे० 'बौद्धिक . . .' भी)
बूढ़ा होना : बचने का उपाय ३९९

बेचैनी : उपचार १४०
बैल
-ों के लिये रस्सी ९७
-ों का भारवहन ९७
-ों को यह आदमी पसंद नहीं ९८
-ों के साथ व्यवहार ९८, ९९
-ों की दुम मरोड़ना ९८
-ों को डरा-धमका कर वश में करना ९८
-ों को आराम की जरूरत ९९, १००
-ों के लिये चक्की चलाने का काम ९९
'पशुओं के त्योहार का दिन, सींग रंगने की बात ९९-१००
-ों से ज्यादा काम लेना १००
बीमार : उपचार १०१
बोलना [बातचीत]
अनुभूतियों के बारे में २१, ८०
के पीछे का भाव महत्त्वपूर्ण २१
'उत्तर देने में जागरूकता २४
में आत्मसंयम का अभाव ३१, [३११]
'मुंह ही न खोलो तब ३१
नहीं एक भी वाक्य बिना जरूरत के ३२; तभी जब अनिवार्य हो २२८
ऊंची आवाज में ३२
का अहवाल ठीक-ठीक ३४
'किसी ने जो कुछ कहा है उसे किसी और के आगे न दोहराओ ४७
ज्यादा, और काम ५०; 'व्यर्थ बक-बक भगवान् से दूर ले जाती है, काम नहीं १६८
औरों के बारे में ५९
'एक ही बात को अलग-अलग तरह से कहना सीखना ७१
औरों के साथ, दर्शन के बाद ८०
'चुपचाप होकर अपनी अभीप्सा में केंद्रित रहना ८०
'वही चीजें कहनी चाहियें जिन्हें तुम चरितार्थ होते देखना चाहते हो १७१
और चुप रहना १८१
कम, विचार को विकसित करने के लिये २२८
नींद में ३७१
(दे० 'शब्द' तथा 'चुप रहना' भी)
बौद्धिक प्रशिक्षण
अनिवार्य, लेकिन . . . १८५
मन से ऊपर उठने में बाधक १८५
बौद्धिक व्यायाम २६१

भ

भक्त
के भगवान् १६०
का भगवान् के लिये प्रेम २७७
की वृत्ति, और भगवान् ३३२
भक्तियोग और ज्ञानयोग २२२
भगवान्
के साथ प्रेम करने का अर्थ २५; के लिये प्रेम में बदले मानव आवेश : मतलब १५५; के लिये प्रेम १६५, २०३, २७७; से गहरे प्रेम में अनुभव कि भगवान् ऐकांतिक रूप से हमारे हैं, यह नहीं कि हम उनके हैं—ऐसा क्यों ? २३०; के लिये प्रेम कामना और अहंकार के बिना जब २३६; ही पूर्ण प्रेम २३७; से प्रेम नहीं तो उनसे लड़ने . . . २८६
की सेवा और ध्यान २६; की सेवा अधिक पूर्ण कैसे ? ३३१; की सेवा में शक्ति के प्रयोग से शक्ति की प्राप्ति ३७१; की सेवा के लिये जिओ, सुखी होने के लिये नहीं ३९७; के सच्चे सेवक बनना चाहते हैं हम ४०२
से कोई चीज छिपाना २६
पर संपूर्ण भरोसा में आनंद २६; जो चाहते हैं वही चाहना जीवन में शांति और आनंद की शर्त ४००; पर ऐकांतिक रूप से निर्भर नहीं, तभी कठिनाइयां ४००; की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानने का विश्वास, और मानव दुर्गतियां ४००
की सहायता पर श्रद्धा रखो ३२; ही स्वस्थ कर सकते हैं उन्हीं की सहायता खोजना १७२;

को सहायता के लिये बुलाना दोष का उपचार करने के लिये २६९; की सहायता न मिलने की शिकायत, मनुष्य को २९७

के प्रति उत्सर्ग [अर्पण, सौंपना, दे देना अपने-आपको] : से शक्ति का नवीकरण : व्याख्या ५७, और खुलना ९१, का जीवन और प्राणिक सुख-संतोष का जीवन चाहना १२६अ, और प्रकृति का रूपांतर १६७, तो औरों की प्रशंसा की परवाह नहीं २५०, **का अर्थ** २५१, कैसे करें ? २५१, और शरीर के भय पर विजय २७५, दिन का २९४, अपने अहं का ३५१, कठिन घड़ियों में आवश्यक कर्तव्य ३९२, और प्रकाश में उठना ३९४, का जीवन जीनेवाले लोग ३९६, और कठिनाइयों पर विजय ४०० दे० 'अर्पण' भी

'अनंत' और व्यक्ति के संबंध : दो रूपक ५७

की खोज और प्राप्ति जब सबसे महत्त्वपूर्ण हो १३०; के साथ ऐक्य का ही जब मूल्य २९५अ; को खोजना जीवन का प्रयोजन ३९१

'शाश्वत' को जो चुनता है उसे 'शाश्वत' ने चुन लिया है : इसे कभी न भूलो १३४, तब औरों के बारे में क्या होगा ? २२७; शाश्वत सद्वस्तु और भौतिक सत्ता २१३; 'शाश्वत' के आगे सभी समान : धूलिकण या तारे १४७; 'शाश्वत' को खिड़कियां खोलकर अपने अंदर आने देना ३९२-३

मुझसे क्या चाहते हैं ? १४४

को पाना [पाने] : १५०, के लिये दुःख-दुर्बलता को फेंक देना होगा १६२, इसी जन्म में या अनेक जन्मों में २२७, ३७९, की सम्मिलित अभीप्सा (मानव-प्रेम) २७७, असंभव नहीं ३७९, की परिस्थितियां वर्तमान में विशेष अनुकूल ३७९, **का क्या अर्थ है ?** ३७९, के लिये आवश्यक प्रयास करना ३९६, पहली आवश्यकता ४०१

को सभी चीजों में और सब जगह देखना १५०; हर एक और सब कुछ हैं, की उपलब्धि के लिये ३५५ दे० 'विचार' भी

के साथ एक होना [सचेतन ऐक्य] : के दो तरीके १५०अ, काम करते हुए भी १६८, की आवश्यकता और खालीपन २६३, लक्ष्य २९२, का ही जब मूल्य २९५अ, का सरल तरीका ३३४, का प्रारंभ है क्या सतत स्मृति ? ३४६, ईर्ष्या और प्रमाद का उपचार ३७१, भगवान् को पाना है ३७९, सृष्टि [लीला] को समझने के लिये ३८३, [२६७], जीवन का प्रयोजन [लक्ष्य] ३९१, ३९५, और प्रतिरोध ३९४, समस्त दुःख-दैन्य का उपाय ३९५, के लिये तैयार करती है नीरवता ४०१, आत्म-विस्मृति में ४०२, प्रगति का मार्ग ४०३, और सच्चा सुख ४०३

की भुजाओं में १५१

के दर्शन १५१

चैत्य सत्ता में सतत उपस्थित १५६; और चैत्य सत्ता २३१; मनुष्य में अभिव्यक्त चैत्य के द्वारा ४०१

की उपस्थिति दे० 'भागवत उपस्थिति'

की ओर जाने के मार्ग अनंत १५९; के पास नहीं पहुंच सकते ऐसे १६१, [१६०]; की ओर जाना मन या हृदय के द्वारा २३६

की ओर जाने के तरीके पर निर्भर कि तुम भगवान् से क्या पाते हो १५९अ; के निकट जिस किसी भाव से जाओ . . . मतलब २२७; तुम्हारी अभीप्सा के अनुसार तुम्हारे साथ ३३२-३

डरावने १६०

मित्र और रक्षक रूप में १६०

हर सच्ची अभीप्सा का उत्तर देते हैं १६०

को पूरे हृदय से जो कुछ दिया जाता है १६०

ने तुम्हें स्वीकार कर लिया है इस निश्चिति की शांति १६०

ही हमारे जीवन के जीवन . . . १६७, ४०४

और एकाग्रता १६८

की ओर खुले मानव यंत्रों द्वारा सब कुछ कर दे १७४

की शक्ति दे० 'भागवत शक्ति'

की ओर मुड़ा रखो मन और हृदय को २०३

ने हम सब के लिये जो नियत किया है वही होगा २०४

अंतरस्थ [व्यष्टिगत] के साथ संपर्क [नाता] २०९, २५३, ३८६

हमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे लिये क्या अच्छा और जरूरी है २१२; ही जानते और देखते हैं—वे ही सत्य हैं २५५; केवल, जानते हैं ३९२; ही जानते हैं कि हम क्या हैं और क्या कर सकते हैं ४०२

ने अपना मार्ग इतना कठिन क्यों बनाया है? २१२; 'स्रष्टा' ने जगत् की रचना क्यों की? ३७५; ऐसे पेचीदा रास्ते क्यों अपनाता है, ये सब दुर्भाग्य, दुःख-कष्ट क्यों हैं? ३८२-३ दे० 'सृष्टि' भी

को जानने के लिये २१२, २२४; की लीला को समझने के लिये २६७, ३८३; को जानना : लक्ष्य ३९८

के सचेतन संपर्क से अनन्य आनंद २१२; के साथ संपर्क नींद में दे० 'नींद'

और अंतरात्मा २१४, २३१, २३२, २३३, ३३४

के बारे में क्या ठीक धारणा बनाना संभव है? २२३अ

के लिये कुछ करने का मतलब है उन्हें ऐसा कुछ देना . . . २३३

परात्पर : से संपर्क कैसे? २३५-६; एक ही साथ एक और दो हैं : मतलब ३४६; और आद्या परात्पर शक्ति, माता ३६०

हर चीज का आलिंगन करते हैं, हमें भी सर्वालिंगनकारी . . . अर्थ २३६-७

उन चीजों में भी जिन्हें हम फेंक देते, पैरों से कुचलते . . . २३८अ

और देवता २५०

स्वयं तुम्हारे अंदर कार्य कर रहे हैं यह जानना और अनुभव करना २५१

की इच्छा, एकमात्र शुभ २६५; की इच्छा का ही पालन करना चाहो तो २९५; की इच्छा है कि . . . ३७५; की इच्छा की पूर्ति में हमारे अंदर कोई चीज बाधक न हो ३९२; की इच्छा की पूर्ति में हम सचेतन सहयोगी बनें ३९२; की इच्छा के बारे में सचेतन होना ३९६; की इच्छा को समझ सकें ४०२; की इच्छा, और सत्य ४०५

के लिये जीना : सत्य-जीवन में जन्म २७३; **के लिये जीने का अर्थ** २७४; के लिये जीना और भगवान् के अंदर निवास—कौन-सी गति पहले? ३३७अ; के लिये जीना [३९५], ३९६

जब केवल एक शब्द या भाव होता है २७४

और आनंद २७६ [२६, २१२, ३९१, ४००]

सबसे बड़ा अहंकारी २८५

में कोई रस नहीं, एक भाग को २८६

के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना २९२

की बात नहीं सुनते मनुष्य २९६

और रायें ३१३

में विश्वास के बिना योग कैसे? ३१६-८

में विश्वास का मतलब ३१७

'तत्' के सिवाय और कुछ नहीं ३१७-८; 'तत्' के ज्ञात हो जाने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है ३६२

क्या अन्याय के लिये दंड देते हैं? ३२६

को चाहना पूर्ण रूप से ३३१

का मुहूर्त ३३४

के हो अगर तुम, तो जो कुछ तुम्हारा है वह भगवान् का है ३३६

का राज्य धरती पर स्थापित करने में कौन धीमा—मनुष्य या भगवान्? ३३८

'अवर्णनीय' का वर्णन कैसे? ३३९

का ही अस्तित्व है ३३९, ३५५

और माताजी के शरीर की सहनशक्ति ३३९
की कृपा है कि मैं नास्तिक हूं ३४३
और अश्रु एवं परिताप ३४४
और धन ३४४
हमारी सत्ता के केंद्र में हैं और सृष्टि के परे भी ३४९
और अच्छा व बुरा ३५०
ही पूर्णतया सच्चे हैं ३५३
क्या स्वतंत्र नहीं कि वे निर्वापित चिनगारी को फिर से अभिव्यक्ति में भेज दें ? ३५४
की ओर जो नहीं बढ़ रहा क्या वह भगवान् नहीं है ? ३५५
सभी हैं लेकिन . . . ३५५
के साथ तादात्म्य एक बार जब ३५५
के लिये मेरे उत्साह ने मुझे निगल लिया है : अर्थ ३५६
'परम त्रैत' क्या सच्चिदानंद है ? ३५८
को स्वीकार न करने का कारण ३५८
और असुर एवं विरोधी शक्तियां ३५८
के प्रभाव को ही स्वीकार करना ३५९
के प्रति समर्पित भागवत सुरक्षा से घिरे . . . ३५९; केवल तेरी शरण में ही सुरक्षा ३९२
ने अपनी चेतना को नीचे भेजा है . . . जो उससे लाभ उठा सकते हैं . . . ३८६
का ही होना : स्वतंत्र होना ३९२
तब तुमसे वही करवायेंगे जो तुम्हें करना चाहिये ३९२
हमारा उपयोग कर सकें इसके लिये ३९५
को संबोधित प्रार्थना दे० 'प्रार्थना'
ही हमें वैश्व प्रकृति की यांत्रिकता से मुक्त . . . ४००
को अपने अहं का दास बनाना ४०२
'तुम जो चाहो, तुम जो चाहो' ४०३
के प्रति निष्ठा ४०३
के बिना सब कुछ भ्रांति है ४०४
(दे० 'अंतरात्मा', 'अतीत', 'अभीप्सा', 'अमरता', 'असफलता', 'करना', 'काम', 'बनना', 'रिक्तता', 'विचार', 'समर्पण' भी)

भय [डर]
न होना चाहिये ९०, १७४; किसी चीज से न करो १३४, १६०, २२९
स्वप्न में : ९०, १७६, २४३; और माताजी को बुलाना ९०, १७६
न करो, कृपा साथ है १३४; को जीतना कृपा पर विश्वास से १८१
बाधाओं से, और माताजी की भुजाएं १३९
और अहंकार (वह कार्य न कर सकने का) १७३
की जगह पूर्ण विश्वास १७३, १८१
-हीन की ही विजय १७४
बुरा सलाहकार है १७४
चुंबक की तरह काम करता है १७४
और रोग १८१
और विरोधी शक्तियां १७६, ३०५
भूत से २११
पुरुष को, स्त्री से २६२
शरीर का २७५
क्यों लगता है ? ३०५
नहीं होता उनमें, जो शुद्ध हैं ३०५

भविष्य
सुखद, और आशा १७४
पर केंद्रित होना ३२७, [३३७]
और श्रीअरविंद ३९१
के मार्ग पर बढ़ते चलना है ३९७

भविष्यवाणी (ज्योतिष की)
लाल बहादुर शास्त्री और इंदिरा गांधी के बारे में २८४
की भूल-भ्रांति से वही बच सकता है जो . . . ३७३

भागवत अनुकंपा ३२०, ३२०टि०

भागवत इच्छा [भगवान् की इच्छा]
और माताजी की इच्छा १४३
की ही विजय होगी १४३
हम से जो चाहती है वही होने की चाह

१६७ दे० 'बनना' भी
को व्यक्त करने के लिये कर्म १६९; और मनुष्यों के कर्म ३१२
की ओर मोड़ना प्राण की कामनाओं, ऊर्जाओं, आवेगों, प्रेरणाओं को १८३; के प्रति समर्पित प्राण ३७२
के अर्पण करना : अहं की इच्छा को २१२, अपने-आपको ४००, से शांति और आनंद ४००
का सचेतन यंत्र २३३; का सचेतन यंत्र न कि सफलता ३६०
से सचेतन २५१
के प्रति समर्पण से व्यवस्था, शांति, संतुलन ३००
को जानने की शर्त ४००अ
(दे० 'माताजी' भी)

भागवत उपस्थिति [भगवान् की उपस्थिति, उपस्थिति, आंतरिक उपस्थिति, दिव्य उपस्थिति]
और आत्मदान ९१
से भरी है हर चीज ११०
की उपलब्धि और पार्थिव रूपांतर १४४
की अभिज्ञता (सदा, सभी चीजों में) और आध्यात्मिक जीवन १४५
श्रद्धा का विषय या कल्पना नहीं, ठोस तथ्य है १४९अ
हृदय में एकाग्रता से १५१
को अनुभव न करने का कारण १५६, ३६१
को पाने का मूल्य : रिक्तता १६०; के संपर्क में आने की आवश्यकता का संकेत : अकेलापन ३९४
का आनंद तुम्हारे अंदर बना रहे १९९
का आदर करना चीजों में २३९
और भौतिक सत्ता ३३३
का अनुभव और सतत स्मृति ३४६; के बारे में सचेतन होने के लिये क्या स्मरण-शक्ति अच्छी सहायिका है ? ३६१
को सभी चीजों और सभी परिस्थितियों में पाना और अनुभव करना ३५७
ठोस, भावना और संवेदन के सहयोग से ३६१
से सचेतनता का फल : नियंत्रण ३७२
से सचेतन हो जाओ तो अपने को उनके अर्पित . . . ३७९
'ज्योतिर्मयी चेतना की उपस्थिति ३८१अ
और चैत्य सत्ता ३९३
के बिना जीवन जब असह्य ३९४
से सचेतन हो सकूं, वर दो ४०४
को हमारे अंदर कोई चीज अस्वीकार न करे ४०४
से भरपूर नीरवता ४०४
(दे० 'माताजी' (की उपस्थिति) भी)

भागवत उषा दे० 'उषा'

भागवत कार्य
में तब स्थान पा लोगे १४४
के लिये तैयार . . . २८७
(दे० 'श्रीअरविंद' के काम, 'माताजी' का कार्य भी)

भागवत कृपा
से सहायता मांगना तकलीफ में २६
का हस्तक्षेप ३२
में ही पूर्ण सहारा पायें ५०
पर श्रद्धा : अनुभूति के वापस आने के लिये ५५, और मुक्ति १७२, उसकी तुम्हें रूपांतरित करने की शक्ति पर १९५, और पराजयवाद पर विजय ३९५
'माताजी की कृपा १३४
हमेशा काम कर रही है १४४; हर चीज के पीछे है २८०
और जड़भौतिक जगत् एवं मनुष्य १४४
के योग्य मूल्य चुकाना १६०
पर ध्यान, चांदनी के बारे में सोचने की अपेक्षा १६८
पर विश्वास : और कठिनाइयों को पार करना १७३, भय के स्थान पर १८१, शारीरिक भय के

लिये २७५
को नीचे पुकारता है माताजी का प्यार १९६
मौजूद है, द्वार खोलो, स्वागत करो २०६
को ग्रहण करना और बनाये रखना कठिन २३४-५
पाने के लिये जो-जो चाहिये २३५
द्वारा भले के लिये-सब किया गया है यह वृत्ति २५९
और योग्यता ३०३
और आश्रम में योग ३१३
का अपव्यय ३१३अ
और भागवत अनुकंपा में क्या फर्क है? ३२०, ३२०टि०
गुत्थी सुलझाने के लिये ३३५
और व्यक्तिगत प्रयास ३३८, ३५०
और शुद्धि ३५०
बाकी सब कुछ कर देगी ३५०
भागवत क्रिया
को धीमा करने की कोशिश ताकि २८७
भागवत चेतना [दिव्य चेतना]
के साथ तादात्म्य और आनंद ५७
और सच्चा प्रेम १११
में आधारित ऐक्य १४८
को जड़भौतिक में लाना कठिन प्रयास १७१
के लिये अभीप्सा कोषाणुओं की ३४१
और मानव चेतनाएं ३९७
(दे० 'शाश्वत चेतना' भी)
भागवत प्रभाव
की ओर खोलनेवाली चीज २३४
के प्रति खुलने का अद्भुत अवसर ३९१
के प्रति ग्रहणशील ४०३, [२३४]
भागवत प्रेम [दिव्य प्रेम] १९९
और पीड़ा एवं दुःख-दर्द १८-९, ३३८
और आत्म-प्रेम १९
मैं तुझे नमन करती हूं २०
मैं ही बचाने की शक्ति ६७
को छोटा न समझो ९३अ
सभी झगड़ों से ऊपर है १६३
तुम्हारा लक्ष्य हो २०२
और मानव प्रेम २६६, ३८०अ
की ओर खुलना : परमानंद ३३८
और काली ३४२
सबके लिये समान है ३५५, ३८०
को देखने व ग्रहण करने की क्षमता ३५५
(दे० 'प्रेम', 'माताजी' का प्रेम)
भागवत मुहूर्त
के आने में क्या मनुष्य जल्दी या देर कर सकता है? ३६१अ
(दे० 'मुहूर्त' भी)
भागवत मुहूर्त ३८५
भागवत शक्ति [दिव्य शक्ति]
और कठिनाइयों पर विजय ११३
पर भरोसा रखो कि वह सब कुछ व्यवस्थित कर दे १७४
पर कोई हदबंदी नहीं १८२
और सीमाओं से छुटकारा २५२
और रूपांतर ३४१
के साथ ऐक्य और रोग-मुक्ति ३९१, ३९८
(दे० 'आध्यात्मिक शक्ति', 'महाशक्ति' तथा 'नींद', 'परिवर्तन' भी)
भागवत सहायता
और पूर्ण आत्मनिवेदन ३६८
का अनुभव हृदय में ३६८
निश्चित, उनके लिये ३९३
हमेशा सच्ची अभीप्सा को उत्तर देती है ३९६
भागवत सुरक्षा से घिरे रहते हैं वे ३५९
भाग्य २१४-५
भारत २५३
की प्रतिभा के प्रतिनिधि ५
को चीन की धमकी २५५
के नेताओं की आलोचना २५५
दुरवस्था में से कब निकलेगा? २९६
के लिये क्रिप्स प्रस्ताव २९६, २९६टि०

-पाक युद्ध : युद्ध-विराम ३०३, माताजी का संदेश भारत सरकार को ३०३टि०
का क्या स्थान है जगत् की इस अस्तव्यस्तता में ? ३०४
संसार का गुरु बने, इसके लिये ३१६
-सरकार में अस्तव्यस्तता क्यों ? ३१६
में पुनर्जन्म का विचार ३३९
हे, जाग, ऐक्य का मार्ग दिखला ३४१टि०
भावना दे० 'संगीत', 'स्वामी'
भावुकता १६२
और सच्चा प्रेम १६३, १६४
और शुष्कता १६४
भाषा सीखना ९०
भिखारी
-यों को पैसे देने चाहियें या नहीं ? ३७९
भीतर
को बदलना १३४
जाओ, चैत्य पुरुष को पा लो १५५
भीरुता के स्थान पर साहस ३८२
भूत भ्रामक आभास है २११
भूतकाल दे० 'अतीत'
भूल [गलत क्रिया]
-नों से रक्षा का नियम १११
˜, लोग चाहे जो करें, वे मुझे परेशान या नाराज नहीं कर सकतीं १३४
से आंख न मूंदना २७६
हमने की है, इसे कैसे जान सकते हैं ? २८४
अज्ञान के कारण जब २८४
न दोहराने की अभीप्सा २९४
˜, विभागाध्यक्ष या बड़े जब करें २९७-८
न चाहते हुए भी हम क्यों करते हैं ? इससे कैसे बचा जाये ? ३०४
-भ्रांति (भविष्यवाणी की) से वही बच सकता है . . . ३७३
भूल जाना अपने-आपको दे० 'आत्म-विस्मृति'
भूलना
कभी नहीं कि तुम कहां हो २८९अ
नहीं यहां जीवन के लक्ष्य को २९०
भोग से ऊपर होना १४६
भोज
और आध्यात्मिक जीवन १८३
के लिये निमंत्रण और भीतरी वृत्ति २६९
भोजन
के लिये लालच १०५, २६९
और स्वास्थ्य १२२
के बिना काम चलाने के लिये १८२
'भूख के कारण अपराध-बोध क्यों १८३
जिनके लिये महत्त्वपूर्ण २८०, [१८३, २६९]
के गुण और मात्रा का प्रबोध २८०
परम उपस्थिति को ३६०अ
भौतिक चेतना [शारीरिक चेतना]
में गलत वृत्ति और रोग २१
की नीरवता : मतलब २१६
जो कुछ है २१६
और शरीर २१६
को विस्तृत करें ताकि मेरी भौतिक उपस्थिति का लाभ उठा सकें ३२३
और योग ३४०
और श्रीअरविंद का योग ३६३
शाश्वत चेतना के साथ एकात्म ४०५
भौतिक प्रकृति
ऐसी, जो औरों से ऊर्जा खींचने की जगह ऊर्जा देती हो ३९८
भौतिक सत्ता
की एकाग्रता और थकान २३
और शाश्वत सद्वस्तु २१३
और अतिमानसिक अभिव्यक्ति २१३
में योग ३३३
अज्ञानमय ३३३
और दिव्य उपस्थिति ३३३
और चैत्य ३४०
(दे० 'शरीर' भी)

म

मन

में महत्त्वाकांक्षा ५०

को स्थिर करना ५८, ६७; की स्थिरता और प्रकाश ६२; को भटकने न दो २०५

चंचल, का धंधा ६२, [५८]; की चंचलता और उपस्थिति १४९; 'मानसिक हलचल और उच्चतर चेतना २०३; की क्रिया और अनुभूति २११

जड़-भौतिक, का शोर (यांत्रिक विचार) ६४

के विकास की ओर ध्यान दो ११३

और चैत्य पुरुष १५६

तुम्हारा, जल्दी उत्तेजित : कारण १७२

को अचंचल, स्थिर बनाओ १७२; को पूरी तरह अचंचल रखना कठिन १८६, [३७१]; में अचंचल रहें और अभीप्सा करें—यह कैसे? २११; अचंचल, और मानसिक नीरवता ३१९

और प्राण १८३अ, ३११

और बौद्धिक प्रशिक्षण १८५

को व्यस्त रखना १८६, [१०६]

को काफी काम न दिया जाये तो १८६

में भी विकृतियां १८७

बच्चों का १८८

भौतिक १९१

का स्वभाव : कुतूहली २११

से परात्पर भगवान् को पाना २३६

में तमस् और जासूसी कहानियां २४९

जितना सोचता है चीजें उतनी कटी-छटी नहीं हैं २६४; उत्तरोत्तर क्रम में सोचता है ३४६; की सफलता-असफलता की धारणाएं ३६०

और शरीर २७५, ३६९, ३७१

को विचारों से खाली कैसे करें? २८८

'मानसिक नीरवता २८९ दे० 'नीरवता' भी

की एकाग्रता और इच्छा-शक्ति को कैसे बढ़ायें? २९५

की तिहरी रज्जु : अर्थ ३५७

के सुझाव शामक, उपचार नहीं ३७१

सोते समय शरीर से बाहर चला जाता है ३७१

सोते समय कहां जाता है? ३७१अ

(दे० 'मस्तिष्क', 'मानसिक ...' तथा 'चेतना', 'सत्य- चेतना', 'निष्क्रियता' भी)

मनुष्य [आदमी, मानव सत्ता]

जो पशुओं के साथ क्रूर १०२

जो बहुत संवेदनशील १२६

भागवत कृपा को नहीं चाहते १४४; सुख, आनंद, शांति के वरदानों से भागते हैं १७

में निश्चेतना, अवचेतना, अतिचेतना २१९

के विभिन्न मनोवैज्ञानिक भाग कौन-से हैं? २२३

इतना दुर्बल कि वह पढ़ी पुस्तक या देखी तस्वीर से प्रभावित २६२

कोई भी दो, अभिन्न नहीं २६४; -ों किन्हीं दो, की चेतना एक-सी नहीं ३९७

चिपका रहता है अपने दुःख, तुच्छता, दुर्बलता, अज्ञान और सीमा से २७०

निष्काम २७६

बहुत-से हिस्सों से बना है २८३, ३३५

और भगवान् २९२; की बुद्धिमत्ता और भगवान् ३९२

की शिकायत : सहायता नहीं मिलती २९७

हर, का इस जीवन में प्राप्य एक लक्ष्य ३०१

'हम सभी दिव्य हैं, लेकिन अपनी दिव्यता से अनभिज्ञ ३३८

मूढ़, को बुद्धिमान् बनाना ३४२

बेईमान, को ईमानदार बनाना ३४२

और पशु ३७४

अब के, और आदिम मानव ३८६

और नयी जाति ३८७

-ों के चार वर्ग ३९६

का विश्वास कि हम भगवान् की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं ४००

अधिकतर, जो चाहते हैं ४००

हर एक, की पहली आवश्यकता ४०१
का अंधापन ४०२
(दे० 'व्यक्ति', 'पुरुष', 'मानव ...' के अंतर्गत, तथा 'दिव्य जीवन', 'भागवत मुहूर्त' भी)
मनोमय कोष
के सतही रूप के सूक्ष्म दीर्घीकरण—का क्या अर्थ है? २१०
मनोवृत्ति [वृत्ति] २०२
माताजी के साथ बात करने में २४
सच्ची, घृणा के स्थान पर ७१
सच्ची, कोई भी नहीं इनमें से निम्न प्रकृति के प्रति १६७
और कर्म दे० 'काम'
यौगिक जीवन में १६९
सच्ची, हो तो हर चीज सीखने का अवसर २५९
जो आध्यात्मिक मार्ग पर अनिवार्य २५९
और भोजन का निमंत्रण २६९
विभागाध्यक्षों या बड़ों की भूलों या अन्याय के प्रति २९७-८
के अनुसार भगवान् दूर या नजदीक ३३२
बाह्य ३३३
कप्तानों और अध्यापकों के प्रति ३७५
(दे० 'माताजी', 'योगी', 'रोग', 'स्त्री' भी)
मस्तिष्क [दिमाग] ११३, १६१
की रचना और अध्ययन १८५
का व्यायाम और तत्त्वमीमांसा १८५
की ग्रहणशीलता इससे सरल २१८
में 'धूसर' द्रव्य से मुक्ति कैसे? २६१
की अस्तव्यस्तता का एक कारण २६१
और दर्द ३०१
महत्त्वाकांक्षा
का रोग ५०
और पुकार २३४
महानता सच्ची २०
महाभारत २९१
महाशक्ति
के चार निर्गत अंश ३४३
और सृष्टि ३४६
माताजी [मां, मैं]
और आश्रम ३, ७
बहुत व्यस्त ३, ५; मेरा काम न बढ़ाने के बारे में सोचते हों, ऐसे लोग ज्यादा नहीं ७९; इतने काम के लिये आप समय कहां से निकाल लेती हैं? ३३९
की नींद ३-४
कभी चेतना नहीं खोती ४
के 'वार्तालाप' ४
निराशावादी नहीं हूं ६
से जरूरत की चीजें मांगना १६, २६-७, २५८, २६५अ, २६७; से मांगना भीख मांगना नहीं २६७
के एक स्टूल को श्रीअरविंद की चीजों के लिये सुरक्षित पेंट से रंग दिया गया १६-७
सोओ [जागो] मधुर मां को हृदय में लिये हुए २०; मुझे हमेशा हृदय में रखो ताकि ... १९८
का लिखा औरों को दिखलाना २०, ११६; के कहे या लिखे को औरों को बतलाना १०८; के पत्रों में शक्ति ११६; की टिप्पणियां : शब्दों के पीछे गहरी चीज २६६; मेरे उत्तर तुम्हारे मन को खोलने के लिये ... २७६; के शब्दों में चेतना ३४४
हर एक के साथ एक ही तरह से व्यवहार नहीं करती २०, १५९
दृश्य, को प्रार्थना जब संबोधित २२
के साथ बातचीत : उचित वृत्ति २४, [३४, ३८-९] दे० नीचे (के साथ ...) भी
के बारे में बात करना ३४
का बरतने का तरीका ३७अ
की अंतर्दृष्टि ३७, ३८
के इर्द-गिर्द के लोगों का भौतिक विधान में विश्वास ३८

के इर्द-गिर्द के लोगों की चेतना ३८अ
के प्रति सारी गलतफहमी और संकोच की जड़ ३८, उसका उपाय ३९
को पुकारना [बुलाना] ४१, ९०, १७६
के प्रति तीव्र पुकार ४१, तीव्र प्रार्थना ३२८; नीरवता की गहराई में से मुझे पुकारो १५५; पुकार का ठोस उत्तर देना चाहती थी २०१, दिन-रात सैंकड़ों पुकारें ३४४
का स्पष्ट बोल विश्वास का प्रमाण ४४
निर्णायक ४५-६, निर्णय करने का तरीका ४७
प्रश्न पूछती हूं जानकारी पाने के लिये ४६
पहले से बना कोई विचार, पसंद नहीं ४६
नाराज नहीं हूं ४८, १०६, ११८, १२९, १३८
के साथ आजादी से बोलना ५६, [३९]; को तकलीफ देनेवाली चीजों को बतलाना ६०, ६६; से सब कुछ खुलकर कह देना ६२; को अपना दुःख बतलाना ८३; स्पष्टवादिता ९३; को अपनी आंतरिक स्थिति बतलाना १२८; को अपना बुरा भाव या विचार बतलाना १५९
के सामने दोष-स्वीकृति [५६], ६०, १५९
का ऑरगन बजाना ५९
गंभीर ! ६०, १०६
की इच्छा-शक्ति का उपयोग करना ६३; की इच्छा को शासन करने देना १३६
पर विश्वास और श्रद्धा खो बैठने का परिणाम ६३
को कह देना काफी नहीं है, इच्छा करनी चाहिये कि ये गायब हो जायें ६६
तुम्हें बचाना चाहती हूं, पर तुम्हें मुझे यह करने देना चाहिये ६७
सारी दुनिया के दुःख-दर्द को गायब करने के लिये काम कर रही हूं ६८
को लिखना ७०, ७१, ७८, ८१; को लिखना संपर्क बनाये रखने के लिये ७८; से भौतिक संपर्क कापी के द्वारा १९२
कशीदाकारी की साड़ियां पहनना ७३, ९३; लेसवाले गाऊन और कशीदे की साड़ियां ९०अ; गाऊन पर छोटे-छोटे गुलाब ७३अ
'नन्हीं मुस्कान' के काम पर गर्व ७७
का बालक, श्रीअरविंद का बालक भी है ८१; का अतिप्रिय बालक बनने के लिये १०९; का अच्छा बालक १४९; का बालक बनना सभी चीजों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण १९५; का (सु)पुत्र १९७; का अच्छा बच्चा बनने के लिये ३३५
को कष्ट : हमारे दुःख से ८३, हमारे न खाने से ११७; दुःखी, हमारे भटक जाने से १५४
जान-बूझकर प्रहार नहीं करती ८५; प्रहार तभी करती हूं १५८
तुम्हें गोद में लेती हूं ८७
की भुजाओं में ९०, १०७, १०८, ११२, ११४, ११९, १२५, १३९, १४०, १९४; 'तुम मुझे अपनी भुजाओं' में ले लेने दो तब चढ़ना आसान हो जायेगा १९४
का संरक्षण ९०, ३२०, ३२५
दुनिया की बेवकूफी और अंधेपन के बारे में सोच रही थी १०६
के हृदय में १०७, १०८, ११२, ११४, ११६, १३९, १४०, १५४, तुम ही वहां से भाग जाओ तो . . . १४०
तुम्हारे लिये जो चाहती हूं १०९, ११५, १२१, १३९, १४०, १५४
तुम्हारा केवल भला चाहती हूं १०९
तुम्हारी निम्न प्रकृति की इच्छा को संतुष्ट नहीं कर सकती १०९
बचपन में अपनी पढ़ाई-लिखाई में लगी रहती थी ११२-३
अपनी मां के प्रति कृतज्ञ अनुशासन सिखाने के लिये ११२-३
अपनी शांति में तुम्हें लपेटे रहती हूं ११३, १२०; की शांति से सचेतन होने के लिये दोहराओ . . . १२२

पर एकाग्र होओ तो ११४
की ओर अपने विचारों को मोड़ना ११४; तुम्हारे हर विचार और अभीप्सा में हूं जिसे तुम मेरी ओर मोड़ते हो १५०; पर विचारों को एकाग्र करना १५५, २१४
तुम्हारी सच्ची मां हूं जो तुम्हारे अंदर की सच्ची सत्ता को जन्म देगी ११५
का यंत्र होने के लिये १२०; का अच्छा यंत्र शरीर कैसे बन सकता है ? ३३३
जानती हूं तुम्हारे लिये सच्चा जीवन, सच्ची नियति क्या है लेकिन . . . १२७
को चाहने का भाव बहका भी सकता है १३०; के बारे में सोचते समय बाहरी व्यक्तित्व के बारे में नहीं . . . २१३
प्रणाम और मुलाकातें बंद श्रीअरविंद की हड्डी टूटने के बाद १३०
की कृपा १३४
का कार्य मनुष्यों पर निर्भर नहीं १४३
और भागवत इच्छा १४३
के साथ : संबंध सच्चा होना चाहिये १४८, चैत्य संबंध ३२२, मानसिक और प्राणिक संबंध ३२३; से चैत्य प्रेम और प्राणिक प्रेम १६२; के साथ सच्चा ऐक्य १६३
को खोने का सवाल ही नहीं १४९
मेरे बारे में सोच ही न पाते अगर मेरी चेतना में उपस्थित न होते १५०
केवल तुम्हारे लिये नहीं हूं १५४
के हस्तक्षेप से चैत्य सत्ता सक्रिय १५७
द्वारा दोष दिखलाने को पसंद न करना १५७, १५८
तुम्हारी अपेक्षा तुम्हें ज्यादा अच्छी तरह जानती हूं और तुमसे प्रेम करती हूं १५९
तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानती हूं कि तुम्हारे लिये क्या अच्छा है १५९
'लोग सोचते हैं आप उन्हींको बुलाती हैं जो दूर से आपकी कृपा को ग्रहण नहीं कर सकते १५९
के कामों के कारण को जानना १५९
का अनुभव : शारीरिक रूप से काम करते हुए भी भगवान् के साथ ऐक्य का १६८, आसक्ति के बारे में ३४९
के दिये काम में आनंद और माताजी से प्रेम सत्ता के किस भाग को ? १६९
की भरसक सेवा, लेकिन आज का भरसक . . . १७०
से लेते-लेते और बदले में कुछ न देने से थक गया हूं १९२
जो कहती हूं मेरा वही आशय होता है १९३
मेरे प्रेम में निवास करो और सुखी रहो, कोई चीज मुझे इससे ज्यादा खुश नहीं कर सकती १९५; मुझे बहुत खुशी होगी, अपनी आंतरिक खुशी बनाये रखो तो २००
अपने दिये के बदले में कुछ नहीं मांगती १९६
'मैं कहलानेवाली समस्या' से नहीं ऊबी हूं २०५
के भिन्न-भिन्न चित्रों के सामने ध्यान २१८
के संगीत के साथ ध्यान २१९-२०
को देखकर खुशी होने की जगह बेचैनी क्यों ? २४६
के पास आते हुए तीव्र आनंद का अनुभव कैसे पा सकता हूं २४६
'सुना है आप चाहती हैं कि केवल आपकी और श्रीअरविंद की पुस्तकें पढ़ी जायें २७२
का परामर्श हर व्यक्ति के लिये उसके अनुकूल २७२
की भौतिक अस्वस्थता ३२७-८
'तू मेरा सिर होगी' : मतलब ३३५
का ही होने के लिये दो क्रियाएं ३४९-५०
जो देती हैं उसे बनाये रखने के लिये ३५६
का शरीर बार-बार कहता है : 'जो तुम चाहो, जो तुम चाहो' ४०४
(दे० 'घटना', 'चेतना', 'जन्मदिन', 'नींद', 'शांति', 'स्वप्न' भी)

माताजी (की उपस्थिति) ४१, १२३, २९२
का अनुभव : १०६, १०८, [११२], १५० पाने के लिये ८६, ११४, ११९, १२१, १३२
से सचेतनता : ११३, १४९, १६१, १६२, का फल १६२
को खो बैठना : कारण १४९
का भान और संकट ३२५
माताजी (से दूरी, अलगाव)
का भाव १२५, १५१, १९३
तब गायब १४८
का कारण शरीर को समझना १५२
जितना दुःखी होओगे उतना १६२
वाली चीज को अभीप्सा की अग्नि में फेंक दो ३३६
माताजी (के निकट, नजदीक; से निकटता)
रखेंगी ये चीजें ११३
विचारों को माताजी : की ओर मोड़कर ११४, पर एकाग्र करके १५४अ
सच्ची, तादात्म्य द्वारा ११४
आने के लिये तुम्हें चढ़कर . . . १५१
आने की इच्छा के पीछे सत्य १५३अ
'भौतिक निकटता १५४; शारीरिक संपर्क ३२२-३
दूर रहते हुए भी १५४-५
, पर सोचना और चीजों के बारे में १५४
तब, जो चीज कहने में डर लगता है उसे बतला देने पर १५९
और काम १६९
और अहं पर विजय ३३५
माताजी (का प्रेम) ११९, १५९, २९२
बाहरी चिह्न क्यों चाहते हो ? ३४
पर संदेह न करो ६९; में विश्वास को कभी न खोना ११७; पर शंका : 'परीक्षण' १९९-२००
हमेशा तुम्हारे साथ है : ६९, ८३, ९२, ११४, ११६, १३९, प्रगति में सहायता के लिये ६९, कठिनाई में से बाहर निकलने में मदद के लिये ८३, बुरे समय को पार करने में मदद के लिये ९२, लेकिन तुम्हें अपनी ओर से अपने-आपको खोलना . . . ११६
सच्चा, तुम्हारे लिये है १०९
उस तरह नहीं, जैसा तुम समझते हो १११
को धकेल न दो ११७
तुम्हें कभी नहीं छोड़ता ११८, १२९
तुम्हें घेरे रहता है १३९
के साथ बांध लेने की प्रतीक्षा में १९४
में निवास करो, सुखी रहो १९५
और आशीर्वाद : कभी नहीं छोड़ते १९५, गुरु की तरह नहीं, मां की तरह हैं १९६
ही एकमात्र रहस्य और जादू है १९६
बच्चों की सहायता और रक्षा के लिये भागवत कृपा को नीचे पुकारता है १९६
को अपनी ढाल बना लो २००
के बारे में विश्वस्त रहो २००
तुम्हें लक्ष्य तक ले जाना चाहता है २०३
की विजय निश्चित है २०३
सतही गतियों पर निर्भर नहीं २०५
माताजी (के लिये प्रेम) १६९, १९८
की प्यास ३९
चैत्य और प्राणिक १६२
माताजी (की सहायता) १३५, १७३
हमेशा तुम्हारे साथ है ६२
पाने के लिये ६२, १४०, १५८
नहीं दे पाती, तुम बंद . . : ८७
कैसे, जब विश्वास नहीं १२०, १५८
पर निर्भर रह सकते हो १२७; से विश्वस्त रह सकते हो १७२, २००
को मांगते संकोच न करो १२७
आंतरिक, पर ही निर्भर रहना होगा १३०
प्रगति में १५७; जो गतिविधियां भगवान् के विरुद्ध हैं उनपर विजय पाने के लिये १५८; प्रयास में सहारा देने के लिये १७२; आध्यात्मिक सहायता की जब जरूरत हो २०५; बदलनेवाली चीज को बदलने के लिये २२९; अपनी सत्ता का स्वामी बनने के लिये ३६८

अंदर, बाहर, सब जगह २०३
सच्चे और ईमानदार को २७९
से सचेतन होना ३२८
(दे० 'माताजी' (का प्रेम), 'माताजी' (तुम्हारे साथ हूं), 'श्रीअरविंद और माताजी' भी)

माताजी (तुम्हारे साथ हूं) ११२, ११६, १२९, १९५
लेकिन बुलाना कभी न भूलना ४१, [९०]
काम में, आराम में, नींद में, जागरण में ८२; संघर्ष और विजय में ८३; चित्रकला और संगीत में १०७; प्रयास और अभीप्सा में १३६, १४८; काम में, चेतना में १५५
तुम्हारे लिये शांति, अचंचलता, शक्ति लाती हूं १२१
यह न भूलो और केवल वही करो जो लज्जित हुए बिना . . . १२२
सहायता और सहारा देने के लिये १२३, १३२, १३६
पथ-प्रदर्शन और रक्षा करने के लिये १३६, १७४, [३२५]
इसलिये मेरी उपस्थिति का अनुभव . . . १०६, १४९
किसी क्षण भी तुम्हें नहीं भूलती १४९

माताजी (तुम्हारे हृदय में हूं) [४८], १५५
मुझे पकड़ने के लिये दूर न जाना होगा ८६
मेरी उपस्थिति से सचेतन होना चाहिये ११३
ताकि खुश रहो ११६
काफी गहरे जाओ तो मुझे वहां पाओगे १२९, १५०, [१५५]
भगवान् की ओर ले जाना चाहती हूं १५४

मानव चेतना
में ऐसी खिड़कियां हैं जो शाश्वत में खुलती हैं ३९२
इतनी भ्रष्ट कि . . . ४०२

मानवजाति
को चलाते रहने के लिये बच्चे पैदा करना ६
की सेवा करने की विशेष क्षमतावाले लोग जब आश्रम में . . . २९१
की सेवा के लिये जीना ३९६
और अहं और चैत्य सत्ता ४०१
'विशेष मुहूर्त में हैं हम दे० 'मुहूर्त'

मानव प्रकृति दे० 'प्रकृति'

मानव प्रेम दे० 'प्रेम', 'भागवत प्रेम'

मानव संबंध
में सारी बात यह है कि . . . १११
सभी अच्छे हैं, लेकिन . . . २६०
में जिस चीज की जरूरत है २९२
(दे० 'दूसरे' भी)

मानसिक उदासीनता ३११अ

मानसिक क्रिया-कलाप ३१२

मानसिक जड़ता ३११अ
से कैसे पिंड छुड़ा सकते हैं? ३१२

मानसिक रूपायण
को प्रतिरूपायण से नष्ट करना २८अ
इसी तरह काम करते हैं १७१
और अनुभूति २९३

मानसिक व्याख्या ३३३

मार्ग [पथ, रास्ता]
एक ही खुला है : आगे बढ़ना ६९
पर/की कठिनाइयां १२४, २१२
पर जो करना बाकी है उसकी तुलना में कुछ भी नहीं किया १६६
हमारा, बहुत लंबा है १७१, ३४७
है प्रेम और लक्ष्य भी प्रेम १९७
पर सहायता जिससे २००
हर एक, की अपनी मांगें २१३
सरल, कहीं नहीं ले जाते २३२
का अनुसरण और आध्यात्मिक पुकार २३४
पर सच्चे सीमा-चिह्न २९३
पर होने का मतलब २९५अ
का अनुसरण यदि सचाई के साथ २९९, ३४७
सभी, लक्ष्य तक ले जाते हैं तब २९९

हर एक अपना खोजे, इसके लिये जो-जो चाहिये २९९; हर एक व्यक्ति का अपना निजी ३५४
तब सरल और तेज ३३६, ३४२
उसके लिये बहुत मजेदार ३४७
सूर्यालोकित, पर चलना ३५०
में बैठ जाना [३५३]
(दे० 'आध्यात्मिक मार्ग' तथा 'भगवान्' भी)
मिथ्यात्व ३४३
की सेवा से इंकार ही उपचार ६
और विरोधी शक्ति १७५
और झूठ बोलना १८१
की घुस-पैठ से रक्षा २००
की पहचान २९०
और आश्रम २९१
और निश्चेतना २९२
और भारत २९६
का रूपांतरित होने से इंकार ३१६
मुक्ति [मोक्ष] २७१
आध्यात्मिक : जगत् से बाहर जाना १५३
की घड़ी तब नजदीक १७२
के लिये नहीं आश्रम २९१
एक व्यक्ति की, क्या सभी को मुक्त . . . ३५४
वैश्व प्रकृति की यांत्रिकता से, और नयी जाति ४००
मुस्कान
और मेरे साथ आजादी से बोलना ५५अ
तुम्हें अपना बल देती है ६१
ही तुम्हारी शक्ति थी ६३
और कठिनाइयां ६३, ९३, २०५
और दुष्ट सुझाव ६९
बादलों को छितरा देती है ९३, २०५
मुहूर्त [क्षण, काल]
विशेष, में हैं हम ३२७, [३८६]
पृथ्वी के रूपांतर का ३३४
प्रभु का ३३४
संक्रमणकालीन, में हैं हम ३९१
निर्णायक, में हैं हम ३९७
(दे० 'भागवत मुहूर्त' भी)
मूर्खता [मूढ़ता] ८५, १०६, १४५
का शासन जगत् पर १७
की जड़ अवचेतना में १८
मूल्यांकन [जांचना]
अपना १६६, [१६७]
अहं के २१२
करना औरों का २५०, २५५; मानवीय २६८; हमारा २९७अ
करने से मुक्त कर देगा वह २५५
करना, और समझना, और उपलब्ध करना २५६
(दे० 'श्रीअरविंद' भी)
मूसा के विधान २७०
मृत्यु ३४३
के साथ समाप्त सिद्धि की संपूर्ण संभावना १५३
'रूपांतरित हो जाऊं या समाप्त हो जाऊं १५३
और शरीर का रूपांतर ३००
और पुनर्जन्म ३३९
के समाचार को कैसे लिया जाये ? ३८७
'मृत व्यक्ति की सहायता ३८७
पर विजय ३९९, [१४७]
मोलिएर की कृतियां १८७
मौन उच्चतम प्रेरणाओं का स्रोत १८६

य

यंत्र
माताजी का, होने के लिये १२०
भागवत इच्छा का २३३, ३६०
माताजी का, शरीर कैसे बन सकता है ३३३
को समृद्ध, पूर्ण, ग्रहणशील बनाना ४०३

यंत्रणा [यातना]
न दो अपने-आपको ८३, ९२, १३२, १३४, १७४
युद्ध ९
या क्रांति की तरह उग्र होता है क्या वह परिवर्तन (भागवत सत्य की अभिव्यक्ति रूप) ३०६
या क्रांति क्या सत्य के अवतरण का चिह्न है ? ३०६
(दे० 'लड़ाई' भी)
'यूनिटि' की जगह 'यूनियन' क्यों ? ३४१
यूरोप ६, ३१६
योग ४८
और पाप १३
का फल पाने में समय लगता है १२५
के लिये अनिवार्य चीज १४५, २१६
'यौगिक जीवन इसपर निर्भर कि . . . १६९ दे० 'आध्यात्मिक जीवन' भी
का शत्रु है अवसाद १८४
और जन्मपत्री १९२
द्वारा ही अहं को दूर . . . २११
क्रियात्मक मनोविज्ञान २२७
और आध्यात्मिक पुकार २३४
और नगर के सिनेमा में जाना २५४
का क्या अर्थ है ? २६७; का सामान्यतः अर्थ ३४०
- पद्धति हर एक, के परिणाम २७८
और जप २८३
सचेतन और अचेतन ३०८-९
है समस्त जीवन ३१०
कोई कैसे कर सकता है भगवान् में विश्वास किये बिना ? ३१६-८
शरीर में ३२२
और काम ३२७
भौतिक सत्ता में ३३३
का परिणाम सोते समय शुद्ध सत् के साथ संपर्क ३४८
द्वारा अवचेतना के क्षेत्र को कम करने का काम तेज ३५७
द्वारा सार्वभौम और सच्ची दृष्टि ३८३
तब सब करना चाहेंगे ४०२
(दे० 'पूर्णयोग', तथा 'आश्रम', 'संघर्ष' भी)
योग-समन्वय २११, २२३, २९४
(दे० 'उद्धरण' भी)
योगी १०९
औरों से प्रभावित नहीं १७८
को सब मल स्वीकार और हजम कर सकना चाहिये—भला क्यों ? १७९
की बाह्य रूप-रंग के प्रति मनोवृत्ति ३६२-३
योग्यता नहीं, कृपा ३०३
यौवन
'प्रगति यौवन है ३९९
और नयी सृष्टि ४००

र

रवींद्रनाथ (ठाकुर) ५
राजनीति
मिथ्यात्व में डूबी हुई है ३१२
और सत्य ३४७अ
रात
सूर्योदय से पहले अधिक-से-अधिक अंधेरी क्यों होती है ? ३८०
(दे० 'नींद' भी)
राधा १६३
राय [मत]
और ज्ञान २९८
और सत्य ३१३
राहुकाल का अंधविश्वास १५, १७
रिक्तता [खालीपन, अकेलापन]
और भागवत उपस्थिति १६०, ३९४
की गहराई में भगवान् १६०
अंतरात्मा को जानने की आवश्यकता २६३
'रीच फॉर द स्काई' (फिल्म) २६०

रुचि [रस]

-कर बना देता है यह चीज को २७०

उत्पन्न करना बच्चों में २४४, २४५

रुद्र का ऋण ३०३

रूपांतर ५५, १९५

'रूपांतरित हो जाऊं या समाप्त १५३

अपनी प्रकृति का १६७; समस्त सत्ता का ३४१

और आश्रम २९१, ३०६

शरीर का ३००, ३४१, ३५८, ३६३

और मृत्यु ३००

व्यक्तिगत और सामाजिक ३०४

और माताजी की भौतिक अस्वस्थता ३२७-८

और भौतिक कष्ट ३२८

के लिये कौन तेज : भागवत प्रेम या महाकाली की शक्ति ? ३४२

जिस चीज की मांग करता है ३४३

तब स्वाभाविक रूप से, बिना संघर्ष या हानि के ३४९

एक व्यक्ति का, और धरती ३५३

के लिये अब परिस्थितियां और सच्चा प्रयास ३५४

में हम सहयोग कैसे दे सकते हैं ? ३५४, [२८८]

और विरोधी शक्तियों के प्रति असंक्राम्यता ३५५

को व्यक्त करने का काव्यमय तरीका ३५८

के जल्दी आने में सहायक चीजें ३६२, ३९२

की भी संभावना लाता है यह ३६८

शुरू होता है इससे ३९१

के लिये अद्‌भुत अवसर ३९१

अहं के, के लिये सतत प्रयास और कृतज्ञता ३९६

अपना, पहली आवश्यकता ४०१

(दे० 'दूसरे', 'पृथ्वी', 'प्रकृति', 'भागवत उपस्थिति', 'भागवत कृपा' भी)

रोग [बीमारी]

कारण : विद्रोह या गलत वृत्ति २१

माताजी को न बताना ३३

मनोवैज्ञानिक और शारीरिक ६७-८

इलाज : हवा और धूप १०१, अपने-आपको भूल जाना १६६ दे० 'व्यवस्था' भी

परिणाम : ऊर्जा-विहीनता १०८अ

-मुक्त करने के लिये हमेशा साथ हूं, लेकिन तुम्हें भी . . . ११९

और भगवान् की सहायता [१७२]

और बुरे सुझाव १८१

और भय १८१

'दवाइयां और श्रद्धा १८२

'कोई चीज असाध्य नहीं १८२

और भगवान् की शक्ति १८२

और आंतरिक शांति [१८२]

और विरोधी आक्रमण २४३

'महामारी आश्रम में २७८

और कर्म-फल ३००

-ों की संख्या में बढ़ती : उपाय ३९१

- मुक्त करने की क्षमता ३९८

(दे० 'सिरदर्द' भी)

ल

लक्ष्मीबाई (महारानी) २५३

लक्ष्य [उद्देश्य] १३४, १९७

सृष्टि का २६३, ३५५

तक पहुंचने की जल्दी में कोई चीज भूली न जाये २८७

हमारा २९१, २९२

तक ले जाते हैं सभी मार्ग २९९

एक निश्चित, इस जीवन में ३०१, [२६३] दे० 'जीवन' भी

को कभी न भूलो ३४९, [२९०]

की दृढ़ता ३५२

न बनाओ अपने निजी हितों को ३९७

केवल एक ही : भगवान् को जानना ३९८

(दे० 'चरित्र', 'पूर्णयोग' भी)
लड़के-लड़कियां २६०
- यों छोटे, में भेदभाव २६२, २६४
लड़ाई
एक ही, को बार-बार जीतना होता है १७५
(दे० 'युद्ध', 'झगड़े' भी)
लाल बहादुर शास्त्री २८४
लोभ [लालच] दे० 'भोजन', 'प्रलोभन'

व

वर्ल्ड यूनियन ३२६
वाणी दे० 'बोलना'
वातावरण
आश्रम का [७], २९१
अपना जिन स्पंदनों से १३, ३०
का प्रभाव ३०
बुरा, बनाती है उनकी ईर्ष्या १०८
का मूल्य व्यक्ति के मूल्य पर निर्भर ३०४
(दे० 'परिवर्तन', 'पृथ्वी' भी)
वार्तालाप ४, १४५, १८५
(दे० 'उद्धरण' भी)
विकास २१९
अधिमानस देव और, २२०
सामूहिक, और सृष्टि २६३
मानव प्रकृति का ३२७
व्यक्ति का, और धरती का ३५३
आरोहणकारी, और अतिमानव ३८६
(दे० 'आध्यात्मिक विकास', तथा 'चेतना', 'चैत्य व्यक्तित्व', 'चैत्य सत्ता', 'बुद्धि', 'मन', 'विचार' भी)
विचार
- ों और भावों के दरवाजे बंद चोर सुझावों के लिये ६८
- ों बुरे, को बुहार फेंकना चाहिये १२०
बुरे, माताजी को बतलाना १५९
दुर्बलता का, बुरी चीज १७३
निराशाभरे, को खदेड़ देना चाहिये १७४
कि अमुक वस्तु में और मुझ में भेद नहीं—क्योंकि भगवान् सबमें हैं—का क्या परिणाम आयेगा? १७८
को कैसे विकसित किया जाये? २२८
- ों द्वारा सोचना २२८-९
- ों बुरे का उफान : बाहर कैसे निकलूं? २४४
एक, फिर उसका विरोधी विचार, फिर दोनों में समन्वय २६१
को विस्तृत करना जरूरी २७६
- ों से खाली कैसे करें मन को २८८, [२८९]
(दे० 'सोचना', तथा 'माताजी' भी)
विजय [जीत]
के दिन को जल्दी ला सकते हैं २२
महान्, के वफादार कार्यकर्ता २८
(बाधाओं पर) निश्चित, पर अटल श्रद्धा ५५
'जीतेंगे श्रीअरविंद ५५
सुंदर चीजों की, गंदी चीजों पर ८४
में भी माताजी साथ ८४
का आश्वासन बनाये रखो माताजी की निकटता के लिये ११३
अध्यवसाय के साथ १२४
की निश्चिति मस्तिष्क में भगवान् के पास पहुंचने के लिये १६१
की निश्चिति रहती है स्थिर और धैर्यपूर्ण विश्वास में १७३
उसीकी होती है जो भयहीन है १७४
परम, पर विश्वास और विरोधी शक्तियां १७५
(विरोधी शक्तियों के आक्रमणों पर), की शक्ति देता है रूपांतर ३५५
अवचेतना के पराजयवाद पर ३९५
(दे० 'अभीप्सा', 'अहं', 'कठिनाई', 'कामना', 'दुर्बलता', 'निम्न प्रकृति', 'प्रतिरोध', 'मृत्यु', 'सत्य' भी)
विज्ञान (आधुनिक) और जड़भौतिक २१०

विद्रोह
और रोग २१
'विद्रोही बनकर सहायता ग्रहण न कर पाओगी ६२, ६६
के लिये दरवाजा न खोलो ६३
और चिड़चिड़ापन सबसे खराब चीज ६६
का अर्थ है दिव्य प्रेम का अस्वीकार ६७
मनोवैज्ञानिक बीमारी है ६८
प्राण का : परिणाम और कारण १०५, से पिंड छुड़ाने में सहायता १३७
मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ चीज ११४
छोड़ देने का परिणाम ११४
और काली १३४
चिह्न, विरोधी शक्ति की क्रिया का १७५

विधान
प्रकृति का, और योग ३८
स्वाधीनता में उन्मुक्त : मतलब २७०-१
और सत्य २७१
आत्मारोपित, में जो त्रुटिपूर्ण . . . २७१
(दे० 'वैश्व विधान' भी)

विधि-विधान को जीवन २५२

विनय [नम्रता] २४६
सच्ची १६६
'विनम्र उतने ही अधिक तब १६६
और भागवत कृपा २३५
और सुखी, सफल जीवन ३९९

विनाश
जब चरम सीमा पर ६
की शक्तियां ८
(दे० 'अहं', 'दर्प' भी)

वियतनाम में अमरीका ३१२

विरोध का समन्वय २०१

विरोधी शक्तियां/-यों
'भगवान्-विरोधी शक्तियां ९
को प्रलोभन न देना चाहिये १४
के आक्रमण के चिह्न १९; की क्रिया के तीन चिह्न १७५
की वह-की-वही चालाकियां १९
को निरपेक्ष सत्य की शुचिता ही जीत सकती है ४७; के मामले में जिन गुणों की जरूरत है १७५; को दूर रखने के लिये १७७; के प्रति असंक्राम्यता और रूपांतर ३५५
का जाल और स्त्री-आकर्षण १७६
से भयभीत न होना, माताजी को सहायता के लिये बुलाना १७६; की खोज है भय ३०५
को तृप्त करना १७६
के बारे में कम सोचना १७७
और अंत:करण की राय की अवहेलना ३२२
और भगवान् ३५८
(दे० 'जगत्', 'धन' भी)

विवाह [शादी]
'पुनर्विवाह कार्यकर्ता का २८
करना है तो आश्रम छोड़ना पड़ेगा १२५
एक भयंकर बंधन १२५
का सच्चा महत्त्व क्या है ? २५८

विवेक
अच्छे और बुरे प्रभावों के बीच १२६
आंतरिक, और माताजी से पैसा मांगना २६६

विवेकानंद ३२६

विश्राम ३९
और माताजी के नजदीक होना ११३
एकाग्र ऊर्जा से आता है ११७
जिसमें से सच्ची ऊर्जाएं आती हैं १३९
पूर्ण, बन जाता है आरोहण ३५३
(दे० 'आराम' भी)

विश्व दे० 'जगत्', 'अपना-आप'

विश्वरूप-दर्शन अर्जुन को ३५८

विश्वास
न खोना बाधा आने पर ३६
योग करते हुए भी प्रकृति के विधान पर ३८
रखो अनुभूति के वापस आने पर ९२
रखो तुम मजबूत, अचंचल बनोगे ११७
नहीं, तो माताजी की सहायता कैसे . . . १२०, १५८

जितना अधिक रखोगे उतनी ही जल्दी लक्ष्य तक जा पहुंचोगे १३४
माताजी की सहायता में १७२; कि माताजी की शक्ति साथ रहेगी २२९
में ही विजय की निश्चिति १७३
खो बैठना, और विरोधी शक्ति १७५
विश्वस्त रहना और श्रद्धा रखना अच्छा लेकिन विरोधी शक्तियों के मामले में . . . १७५
रखो, सब ठीक होगा २२९
संपूर्ण, कृपा को पाने के लिये २३५
भगवान् में, के बिना योग कैसे ? ३१६-८
और श्रद्धा ३१७
जागना चाहिये लोगों में कि . . . ३९६
कि प्रगति की संभावना असीम है ३९९
(दे० 'श्रद्धा', तथा 'पुनर्जन्म', 'भागवत कृपा' भी)

विष्णु १२६
का विधान और रुद्र का ऋण ३०२अ

विस्तार [विस्तृत करना, विस्तारित करना]
अपने-आपको बृहत् चेतना में ५१
चेतना, समझ, अनुभूति का : दिव्य आलिंगन २३७
चेतना को, और ईर्ष्या से छुटकारा २८४अ
चेतना का, और आत्मसंयम ३२०
चेतना का, जरूरी मुक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण जीवन के लिये ३२०
भौतिक चेतना को, माताजी की भौतिक उपस्थिति का लाभ उठाने के लिये ३२३
चेतना का प्रकृति के साथ संपर्क से ३७०
अपने-आपको आगामी को ग्रहण करने के लिये ३९७
चेतना के क्षेत्र को [अपने-आपको], और प्रगति ४०३

वृत्ति दे० 'मनोवृत्ति'

वैश्वभाव द्वारा ईर्ष्या से छुटकारा २८५

वैश्वविधान
भागवत अनुकंपा और भागवत कृपा ३२०टि०

व्यक्ति
और 'अनंत' ५७
, अंतरात्मा और भगवान् २१४
एक ही टुकड़े का बना हुआ नहीं है २३५
का विकास और अहंकार २८२
और वातावरण ३०४
एक, का रूपांतर और धरती ३५३
हर एक, का निजी मार्ग ३५४
(दे० 'मनुष्य', 'पुरुष' भी)

व्यक्तित्व
बाहरी, और शाश्वत सद्वस्तु २१३
पृथक्, का भाव, कामनाओं की ग्रंथि २२९
विकसित, और अहंकार २८२
किससे बनता है ? २९८
(दे० 'चैत्य-व्यक्तित्व' भी)

व्यवस्था
और क्रम का अभाव, अपव्यय का कारण ४०
और स्वाधीनता २७१
और सत्य २७१, २९०
, शांति, संतुलन बढ़ाते चलो : रोग और दुर्घटना का उपचार ३००
(दे० 'अव्यवस्था' भी)

व्यष्टीकरण
अहं की रचना का प्रयोजन ३६०, ३९३, [४०१]

श

शक्ति
का सतत नवीकरण ५७
अर्जित करना यहां कठिन नहीं ११०
के सागर में नहाते हो यहां ११०
प्राप्त करना अक्षय उत्स से ३७१
(दे० 'ऊर्जा', 'आध्यात्मिक शक्ति', 'नयी शक्ति', 'भागवत शक्ति', 'महाशक्ति' भी)

शक्तियां
विनाश की ८

भगवान्-विरोधी और भागवत कार्य की पूरक ९
-यों दिव्य, को ग्रहण करना ६३
-यों अतिमानसिक, की अभिव्यक्ति ७३
-यों उच्चतर, का काम १३८
अप्रकाशित प्रकृति की, और आकर्षण १६५
वैश्व, और गुण व दोष २५६
(दे० 'विरोधी शक्तियां' भी)

शब्द
-ों के चुनाव और लहजे पर बहुत कुछ निर्भर ४३
-ों द्वारा सोचने की जगह विचारों द्वारा सोचना २२८-९
-ों का चयन और विचार २२८, २२९
-ों का महत्त्व नहीं, महत्त्व है अनुभूति की सच्चाई का २९९
(दे० 'माताजी' भी)

शरीर १२२
से प्रार्थना करना ७१टि०
और तमस् ७५; तामसिक न रहेगा माताजी का काम करने से १७०; के तमस् को झाड़ फेंकने के लिये २७५; की दुर्बलता, निश्चेतना, तमस् का उपचार ३३३; तामसिक, को प्रोत्साहन की जरूरत ३६९
को 'आत्मा' मानने से इंकार १४४अ
तुम्हें मुझसे अलग रखता है : मूढ़ता १५२
अगला, ज्यादा अच्छा होगा : भूल १५२अ
के कोषाणुओं : में शांति, अनाड़ीपन का उपचार १७०; की साधना अनिवार्य ३३३; को पारदर्शक बनाना ३३३; में दिव्य चेतना के लिये अभीप्सा ३३३, ३४१; को अमर की ज्वाला को धारण . . . ३५८
की अमरता १८२, ४०५, [३९९, ४०१]
मानव, में निश्चेतना, अवचेतना, अतिचेतना २१९
'शारीरिक सुख-सुविधा और आध्यात्मिक जीवन २७५
हर नयी चीज से डरता है २७५
के भय पर विजय २७५
और मन २७५, ३६९, ३७१
को वश में रखो, विकसित करो २७९
के रूप को इच्छानुसार बदलना, मृत्यु के बिना ३०० दे० 'रूपांतर' भी
अतिमानसिक ३०१
में योग और माताजी के साथ भौतिक संबंध ३२२
के अंदर अंतरात्मा ३३२
आपका अच्छा यंत्र कैसे बन सकता है? ३३३
समय का दबाव सह सकता है तब ३३९
को ताकि शक्ति दिव्य बना सके ३४१
का सहयोग ३४२
को बाधित करना क्या अच्छा है? ३६९
की प्रगति की क्षमता ३६९
का रूप, नयी जाति के ३७४
काफी नमनशील नहीं ३९१
का प्रतिरोध रोगों की बढ़ती संख्या का कारण ३९१
की मृत्यु पर विजय ३९९
की चेतना दे० 'भौतिक चेतना'
और भोजन दे० 'भोजन'
में रोग दे० 'रोग'
का स्वास्थ्य दे० 'स्वास्थ्य'
(दे० 'भौतिक सत्ता' तथा 'माताजी' भी)

शांति १८, ३१
का घनीकरण आश्रम में ७
, शांति, मेरे बालक १९, १०९, ११२
तेरी, मेरे अंदर है मधुर मां २०
के स्पंदन ३०
शांत रहो ३२, ११६, १३२, १६३
खो बैठा हूं ४८अ, १२२अ
मानसिक, का अनुभव ५५, ९२
और नीरवता : की प्रतिष्ठा ९०, के आगमन को तेज करने के लिये ९२

अमिश्रित, ताकि पाओ १०७
निश्चिति और मेरे ऊपर विश्वास की १०७
तुम्हें मजबूत और आनंदपूर्ण बनायेगी १०८
हमेशा तुम्हारे साथ है १०९
सर्वदा मेरे साथ रहे मां १०९; ऊर्जा और प्रेरणा दो मुझे ११०; शांत बनाओ मुझे १४०
शाश्वत स्रोत से ११०
आंतरिक नीरवता और बाह्य स्थिरता की ११२
मैं तुम्हें लपेटे रहती हूं, तुम्हें उसे बनाये रखना सीखना चाहिये ११३
प्राण में, और आध्यात्मिक शक्ति ११४
और आनंद : में निवास करोगे तब ११४, का एकमात्र मार्ग ३९६, के लिये आवश्यक शर्त ४००
विचारों को मां की ओर मोड़कर ११४
से सचेतन होने के लिये दोहराओ ... १२२; , शांति, हे मेरे हृदय—इसे दोहराओ १४०
और सुख : काम और आत्मसंयम के द्वारा १२३, का औरों तक संचार करना १७९, का सबसे अच्छा उपाय २९२
ग्रहण करो अपने-आपको खोलकर १३६
माताजी की इच्छा को शासन करने देने से १३६
हृदय की गहराइयों में मौजूद है १३८
, विश्राम माताजी की भुजाओं में १३९
तुम्हारे ऊपर है, उसे प्रवेश करने दो १४०
में तुम प्रकाश पाओगे १४०
इस निश्चिति की कि भगवान् ने तुम्हें स्वीकार कर लिया है १६०
और सच्चा ऐक्य १६३
को कोषाणुओं में बुलाना अनाड़ीपन के लिये १७०
कठोरता की नहीं : मतलब १७७
आंतरिक, रोगों का उपचार १८२
और चैत्य सत्ता का विकास २०९अ
को अपने अंदर उतारना २१६
और शब्दों द्वारा सोचना २२८
शब्द का जप और ध्यान २८३
सच्ची, तबतक नहीं हो सकती ३०२
प्रकाशमान, की निश्चिति ३९७
कामनाओं के अभाव [लोप] से ३९८, ४००
ज्योतिर्मयी, की बाढ़ नीरवता में ४०१
निर्विकार, का स्रोत ४०२
(दे० 'माताजी' भी)

शांतिनिकेतन ५

शारीरिक प्रशिक्षण
के २ दिसंबर के कार्यक्रम : बहुत-सी चीजों में सामान्य प्रदर्शन की जगह दो-एक चीजों में अच्छा प्रदर्शन ... २४९अ, २५६, के बारे में आलोचनाएं २५१
का ऐसा कार्यक्रम जो सभी को संतुष्ट करे २५३
और खेलकूद ३७४
का अर्थ ३७४

शाश्वत चेतना
अपने अंदर लिये रहते हैं १४९
के साथ एकात्म ४०४, ४०५

शाश्वत स्रोत दे० 'ऊर्जा'

शास्त्र
ब्राह्मणों के, भ्रष्ट और मरणासन्न हैं २७०
का सत्य और अनुभूति २९३टि०

शिकायत दुर्बल ही करते हैं १९३

शिथिलता दे० 'आलस्य'

शिथिल होना
सीखना होगा मानसिक नीरवता पाने के लिये २८९

शुद्ध
नहीं इतना आश्रम का वातावरण कि मिथ्यात्व के लिये अभेद्य हो सके २९१
करना अपने को असामंजस्य से ३०२
जो हैं उनमें डर नहीं होता ३०५

अंतरात्मा में, ही प्रकाश में चल सकते हैं ३५०
करना अपने को ऐसी चीजों से जो तुम्हें समर्पण से रोकती है ४०३

शुद्धि
और भागवत कृपा ३५०
पूर्ण, ३५९

शुभ
एकमात्र सच्चा, २६५
(दे० 'अशुभ' भी)

शुष्कता
बाहरी परिस्थिति पर नहीं, आंतरिक स्थिति पर निर्भर १६१
तुम भावुकता के अभाव को तो नहीं कहते ? १६४
के पीछे सच्चा प्रेम १९३

शेखी बघारना
और कार्य संपादित करना २५३

श्रद्धा
का अभाव शारीरिक चेतना में २१
भगवान् की सहायता पर और काम ३२
को वापस ले आना ही इलाज ६३
भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता पर : पूर्ण उपलब्धि के लिये ११७, [रोग-निवारण के लिये] १८२
और विश्वास हृदय में भगवान् तक पहुंचने के लिये १६१
और दवाई १८२
न खोनी चाहिये, कोई चीज असाध्य नहीं १८२
बनाये रखो—से मतलब १९५
कि भगवान् के बिना जगत् हो ही नहीं सकता ३१७
जीवित ज्ञान है ३१७
के अनुपात में संरक्षण ३२०
(दे० 'विश्वास', तथा 'भागवत कृपा' भी)

श्रीअरविंद २१७, २३४, २७०, २८५, ३१०, ३३१, ३७३, ४०२
और आश्रम ३, ७
की शक्तियों के बारे में कोई पूछे तो ३३-४
तुम्हारे रूपांतर के लिये कार्य कर रहे हैं ५५
जीतेंगे, इसमें शंका नहीं ५५
के इस वचन को न भूलो १३४
प्राण को रोकने के बारे में १३७
की आज्ञा मानना १३७
गुरु १९७
की पुस्तकों को पढ़ना २१८, २२७, २४८, २५५, २८८
की पुस्तकों को समझना २१८, २७१; ने जो लिखा है उसे अलग-अलग नहीं लेना चाहिये २४७; का कथन सोते मनों को जगाने के लिये विरोधाभास है २५०; ने अमुक विषय पर जो कहा है उसे जानने के लिये २८९
की ओर आदर के साथ जाना २३०; के निकट आने के तरीके २८८
के कमरे में बैठकर ध्यान की अनुमति २३३
की झलक पाने एवं उनके संपर्क में रहने के लिये २४५ दे० 'स्वप्न' भी; के साथ संपर्क समाधि पर ३६७
से प्रेम करना और उनके आदर्श के अनुसार जीना २४५, २८८
में विनय २५३
की किताबें पढ़ो, जवाब २८०
का मूल्यांकन २८८
को कौन समझ सकता है, उनकी शिक्षा असीम है २८८; को समझने के लिये ३४९
के काम में योगदान २८८, ३९९; के काम का विरोध ३८५
'हमारा लक्ष्य, इसके प्रथम सूत्र २९२
और क्रिप्स-प्रस्ताव २९६, २९६टि०
और धर्म ३८५
और भविष्य ३९१
धरती पर जिस काम के लिये आये थे ३९९
(दे० 'माताजी', 'श्रीअरविंद और माताजी' भी)

श्रीअरविंद और माताजी

'हमारी शक्ति और सहायता [रक्षा, आशीर्वाद] हमेशा तुम्हारे साथ है ९०, १२५, १२७, १२८, तुम्हें उनका उपयोग करना सीखना होगा १२५

'हम जिस चीज को धरती पर लाना चाहते हैं उसे 'क्रांति' नहीं कहा जा सकता १४३

के अंदर प्रेम और आत्मोत्सर्ग के द्वारा भगवान् को पाना १५०

के प्रभाव की ओर मन और हृदय को खुला रखो १५५

से दूरी का अनुभव, विरोधी शक्ति की क्रिया का चिह्न १७५

की पुस्तकें कैसे पढ़नी चाहियें ? २१७-८

'श्रीअरविंद की ओर जाने की अपेक्षा माताजी की ओर जाना ज्यादा आसान क्यों है ? २३०

के प्रतीक सब चीजों पर छापे जाते हैं . . . २३८-९

श्रीकृष्ण [कृष्ण] २५३, ३५८

श्रीमाताजी दे० 'माताजी'

श्रेणीबद्ध दल

का मतलब ३०४

के चरितार्थ होने में बाधाएं ३०५

श्रेष्ठजन बनना २४५

श्रेष्ठता

सच्ची २०

'उच्चतर या निम्नतर कोई भी नहीं भगवान् के आगे ४९

का चिह्न तेजी नहीं ३५८

स

संकट

के भाव को गंभीरता से लेना ३९

हर अग्रगामी गति के भाग. ३१०

और 'उपस्थिति' ३२५, ३८२

संकल्प [निश्चय]

ठीक उत्तर के लिये २४

में डटे रहो (प्रतिरोध को जीतने के) १२८

कठिन चीज को सफलता के साथ करने का १७१

चीजों को अच्छी तरह करने का १७३

को नया करना कि आगे से तुम अपने लिये नहीं भगवान् के लिये जिओगे २७४

कामनाओं को जीतने का २७९

लक्ष्य-प्राप्ति के लिये २९९

आध्यात्मिक जीवन को चरितार्थ करने का ३६७

काम अच्छी तरह करने का, अधिक नहीं टिकता ३६७

भगवान् को पाने का इसी जन्म में या . . . ३७९

अधिक प्राप्त करने, अधिक जानने, अधिक करने का ३९८

संगीत

किसीके, की भावनाओं में प्रवेश २१६-७

माताजी के, के साथ ध्यान २१९-२०

का भावनाओं पर प्रभाव २१९अ

संघर्ष ८३, ४०१

जीवन में, कामनाएं पूरी करने के लिये और योग में, कामनाएं पूरी न करने लिये १२५

प्राण के सुख पाने के लिये १२७

छोड़ देने के प्रलोभन के आगे न झुको १३२

सत्ता के सात्त्विक और तामसिक भाग में १४६

आपस में, और चैत्य सत्ता ३४०

संतुलन

सत्ता का, नियमित कार्य पर आधारित ७२

काम में पा सकते हो १२३

अपना, और सच्चा ऐक्य १६३

सभी चीजों में, सभी अवस्थाओं में ३६९

संतोष

सामान्य जीवन के १२६अ

संतुष्ट न होओ झूठे आभासों से २८२

संदेश
आशीर्वाद-दिवसों पर दिये जानेवाले, कैसे चुने जाते हैं ? २३३अ
नये वर्ष १९६१ का २३७अ
कप्तानों के नाम श्रेष्ठजन बनने के लिये २४५
नये वर्ष १९६५ का २९०
भारत के प्रधानमंत्री और सेनापति को ३०३टि०
२४ नवंबर १९६६ का ३२०टि०
आकाशवाणी-केंद्र पांडिचेरी के उद्‌घाटन के लिये ३४१
नये वर्ष १९७० का ३८६
संदेह [शंका]
के भाव से किया गया परीक्षण ३८
का विष ६९
माताजी के प्रेम पर १९९-२००
एक विष है २०५
संपत्ति दे० 'धन'
संबंध दे० 'कार्यकर्ता', 'दूसरे', 'माताजी', 'मानव-संबंध'
संभव
सब कुछ है यदि सातत्य और सचाई . . . २९९
सब कुछ है संपूर्ण सचाई के साथ ३५१
(दे० 'असंभव' भी)
संरक्षण
माताजी का ९०, ३२०, ३२५
(दे० 'भागवत सुरक्षा' भी)
संवेदन
उग्र, उपचार नहीं १३८
प्राण के क्षेत्र की चीज है १६५
-ों से बरतने का तरीका १६५
निम्नतर या गलत उठना दूसरों से मिलने पर ३३२
और 'उपस्थिति' ३६१
(दे० 'स्पंदन' भी)
संवेदनशीलता
'अतिसंवेदनशीलता अधिकतम गलत-फहमियों का कारण ४९
और कष्ट २८२
के भिन्न-भिन्न प्रकार २८२
सचाई [निष्कपटता]
'सच्चे बनो [रहो] १५, ४६३अ, १३३, २६३
'निष्कपट होना ज्यादा अच्छा चालाक होने से २५
निरीक्षकों में ३६
अवचेतन, को ढक देता है संदेह ३८
की हर एक से मांग १३३
अभीप्सा को, विजय का आश्वासन है १३५; अभीप्सा में, आनंद-जगत् को बुलाने के लिये २३८; से चाहना सत्य को ३०७ दे० 'अभीप्सा' भी
विरोधी शक्तियों के मामले में १७५, [४७]
सभी क्रियाओं में चैत्य सत्ता के विकास के लिये २०९अ
के साथ हाथ में लेना चैत्य सत्ता बनने के काम को २३२
इस लंबे काम [मार्ग] में २३२, २७६, २८१, ३२४, ३६७, [३९३]
के साथ श्रीअरविंद से प्रेम २४५
और सत्य के अनुसार कार्य २४९
अपने लिये जान सकने के लिये २५०
ध्यान में २६३
और भगवान् के लिये जीना २७४
आत्म-प्रवंचना को ढूंढ़ने के लिये २७६
निम्न प्रकृति का स्वामी होने के लिये २८१
अनुभूति की, का महत्त्व, शब्दों का नहीं २९९
कामना की उपस्थिति को जानने के लिये ३१८
सब गुणों से जरूरी गुण ३१८
चरित्र बदलने में ३२४

अधिकतम, के साथ प्रगति ३२८

सभी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उपचार ३३७

माताजी का ही होने के लिये ३५०

के बिना कुछ नहीं किया जा सकता, सचाई के साथ सब कुछ संभव है ३५१, [२९९]

और अहंकार का उन्मूलन ३५२अ; अहंकार को परिवर्तित करने के लिये ३९३

पारदर्शक : मतलब ३५३

और भागवत सहायता ३९३, [२७९]

सुखी और सफल जीवन के लिये ३९९

(दे० 'कपट' तथा 'अभीप्सा', 'अर्पण', 'अवलोकन', 'प्रगति', 'माताजी' (की सहायता), 'मार्ग' भी)

सचेतनता ३६

और वशित्व ९०

: मतलब १४५, ३७२

काम में २५९अ

की कमी ३०८

माताजी की सहायता के बारे में ३२८

माताजी जो देती हैं उसके बारे में ३५६

भागवत उपस्थिति के बारे में ३७२ दे० 'माताजी' (की उपस्थिति) भी

और चेतना का विकास ३८५

जानने, करने और होने के बारे में ३९८

भागवत प्रभाव के प्रति ४०३

(दे० 'स्वप्न' भी)

सत्ता

सतही, को हस्तक्षेप करके प्रयास को बिगाड़ न देना चाहिये १३५

सच्ची, द्वारा निम्न सत्ता पर अधिकार १४४

मेरी सच्ची, कहां है ? १४४

में पुराने तत्त्व १४६

को विभक्त करनेवाली चीज १४६

का एकीकरण दे० 'एकीकरण'

का निःशेष समर्पण और भगवद्दर्शन १५१

शुद्ध, सभी परिस्थितियों में शुद्ध रहती है १७८

के भाग और आत्मसात्करण २३५

के हठीले भागों को शिक्षा ३३४, [१७३]

को रूपांतरित करना ३४१

की विभिन्न अवस्थाएं और अहं ४०१

(दे० 'अतिमानसिक सत्ता', 'आंतरिक सत्ता', 'चैत्य सत्ता' भी)

सत्य २२

'बातें ठीक बतलानी चाहियें ३४

निरपेक्ष, और विरोधी शक्तियां ४७, [१७५]

की वाणी कि सब ठीक हो जायेगा १३२टि०

अपनी सत्ता के, को केवल अभिव्यक्त ... १३३

और मिथ्यात्व १८१; और मिथ्यात्व की पहचान का नियम २९०

के आवास में ले चलो मुझे १९४

इस, को अपनी ढाल बना लो २००

और ज्ञानयोग २२२

के अनुसार कार्य २४९

और विधान २७१

के आगमन को नमस्कार २९०

का स्वागत : करने लायक सबसे अच्छी चीज २९०

की सेवा : उसे जीना और चाहना ३०७

और रायें ३१३

की शक्ति के दबाव के कारण अस्तव्यस्तता ३१६, [३०४]

की विजय निश्चित ३१६; की विजय का एक भाग धन पर जीत ३४४

और अंतःकरण का पथ-प्रदर्शन ३२२

मिथ्यात्व बन गया ३४३

और राजनीति एवं न्याय ३४७अ

महान्, हमारे ऊपर उतरने की कोशिश करेगा क्योंकि वह पहले से ही अंदर उपस्थित है : विरोधाभास ३४८-९

सारभूत, और आभासी रूप ३६२
और अखबार पढ़ना ३८८
क्या है ? ४०५
और नयी जाति [अतिमानव] ४०५
(दे० 'आध्यात्मिक सत्य' तथा 'अज्ञान', 'अभीप्सा', 'युद्ध' भी)
सत्य-चेतना
के निर्माण पर सारा प्रयास ३४९
में निवास और ऊर्ध्वमुख रहना एक ही चीज ३५१
मन के स्थान पर ४०५
सत्य-जीवन में जन्म : शर्तें २७३अ
सत्य युग २९१
सद्भावना [सद्भाव] २५, २३८
में सच्ची महानता २०
के स्पंदन ३०
अज्ञानपूर्ण : मतलब २६५
का अर्थ २६५
मनुष्यों के साथ संबंध में २९२
सपना -ों सुंदर, को सिद्ध करना ७५
सफलता ११५, २१४
बलवान्, साहसी, सहिष्णु को १२५
और धीरज १३४
और डटे रहना १७२
और असफलता ३६०
बाह्य, और निम्न प्रकृति पर विजय ३९१
(दे० 'जीवन' भी)
सफाई निरीक्षण पर निर्भर ९८
समझना
अच्छा है, इच्छा करना ज्यादा अच्छा है १९
मूल्यांकन करने से कठिन २५६
ज्यादा पूर्णता के साथ उसे जो हम जानते हैं ४०३
(दे० 'जानना' तथा 'भगवान्', 'श्रीअरविंद' भी)
समता
और उदासीनता १६१, ३१२
(दे० 'अचंचलता' भी)
समर्पण (भगवान् के, भगवान् की इच्छा के, प्रति)
पूर्ण, भगवान् के साथ एक होने के लिये १५१
बच्चे का-सा १५१; 'बिल्ली के बच्चे की वृत्ति २८९
बिना कुछ बचाये १६७
अहंकार का १७३; अहंकार की इच्छा-शक्ति का २१२
की कठिनाई १९१
पूर्ण, कठिनाइयों में से निकलने का तरीका १९२
और तपस्या [व्यक्तिगत प्रयास] २८८-९
प्रथम सूत्र, [आध्यात्मिक] जीवन का २९२
उपचार, रोग, दुर्घटना आदि का ३००
संपूर्ण और समग्र : अर्थ ३४३
समस्त सत्ता का जब ३५६
और भागवत सुरक्षा ३५९
के आनंद से दुःख-दैन्य के आनंद को पसंद करना ४०२
अधिकाधिक, प्रगति का एक मार्ग ४०३
(दे० 'अर्पण' भी)
समाज
के रीतिरिवाज और आश्रम ३०७
सहजता
चैत्य के साथ संबंध से ३४१
सहयोग [सहायता]
परस्पर, मनुष्यों के साथ संबंध में २९२
आपसी, का अभाव, और चैत्य सत्ता ३४०
शरीर का ३४२
रूपांतर में ३५४, [२८८]
सहायता
(दे० 'आध्यात्मिक सहायता', 'भागवत सहायता', 'माताजी' (की सहायता) तथा 'आश्रम', 'काम', 'जगत्', 'भगवान्', 'भागवत कृपा', 'माताजी' (का प्रेम), 'माताजी' (तुम्हारे साथ हूं)

सहिष्णुता [सहनशक्ति]
और सफलता १२५
और गड़बड़ या अवसाद १३५
शरीर की, का रहस्य ३३९
(दे० 'अध्यवसाय' भी)
साधक
होने का लाभ ही क्या यदि . . . ९९
'हर एक से बस उतनी ही मांग . . . १६०
नहीं होता क्या निष्काम मनुष्य ? २७६
वह है जो . . . २७६
तबतक निम्न प्रकृति के दोषों के साथ संघर्षरत अपूर्ण मनुष्य २९२
'हर एक के लिये सबसे अच्छी बात ३२८
'अच्छे-से-अच्छी चीज जो हम कर सकते हैं ३९६, ३९९
'हर एक का कर्तव्य ३९६
(दे० 'भूलना' भी)
साधक (पत्रों के लिखनेवाले)
की फ्रेंच अफसर से बातचीत श्रीअरविंद के बारे में ३३
को उसकी अवचेतन गतिविधियों के बारे में जब माताजी ने अभिज्ञ किया ४४
आप चाहती हैं मैं दुःख भोगूं ? ६८
कशीदे की साड़ी के लिये प्रेम की मांग ७१
ब्लाऊजों पर इस्त्री ७५
माताजी के लिये 'शेमीज' काटी ७५
आंख में दर्द ७६
कशीदाकारी की साड़ी ७८
के लिये बहुत बड़ी प्रतिज्ञा दर्शन-दिवस पर ७९
'आइरिस' की साड़ी पर काम ८१
मैं शैतान हूं न ! ८३
की स्वर्ग-पक्षी की साड़ी और 'क' का ब्लाऊज ८४
पत्र वापस क्यों नहीं लौटाया ? ८७
के लिये प्रतिज्ञारूप अंतर्दर्शन ८८
कपड़ा रंगने में विषमताएं ८८, ८९
परदार सांपोंवाले चित्र की साड़ी पर काम ८८
नन्हीं मुस्कान का शुभ जन्म दिवस ९४
नन्हीं मुस्कान की अमूल्य सहायता ९४
संगीत-पाठ के बाद बेचैनी १०५
'हमने' लिफाफे पर चित्रकारी की १०७
ऊर्जा-विहीन होने का अनुभव १०८अ, १३६
के चित्र जापानी चित्रों जैसे ११०
को सांत्वना किसीके साथ मैत्री टूट जाने पर ११०-१
के बजाते समय माताजी ने उसके पीछे गरुड़ और महल तथा नदी को देखा : मतलब १२६
मैं नीचे जा रहा हूं १२७
मेरा पथ कौन-सा है ? १२७
की कविता रुक जाने का कारण १२८, १२९
का आश्रम छोड़ने का निश्चय १२९
मैं संसार को नहीं चाहता, मैं तुम्हें चाहता हूं १३०
तीन वर्ष के लिये लखनऊ जाकर संगीत सीखना १३०-१
फरवरी में पांडिचेरी आना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं १३०
में तीव्र संघर्ष १३२
के अंदर रूपांतर १४४
सारा जगत् मेरे विरुद्ध है मैं निराश हूं १४७
माताजी को जीवन अर्पित, अपनी चिंता किये बिना अचंचल और स्थिर १५८अ
पानी पर खेलती हुई चांदनी के बारे में सोचना १६८
चीजें मेरे हाथ से खराब हो जाती हैं १७०
'क' ने चीनी का कटोरा तोड़ दिया १७१
मुझे सर्दी हो गयी है, क्या मैं स्नान करूं १८१
तब फिर गुरु के बिना कैसे काम . . . १९७
कुपुत्र तो हुआ करते हैं पर कुमाता कभी नहीं १९७

वृत्तियों में गृह-युद्ध २०१

इस योग की मैं अत्यंत आवश्यकता अनुभव नहीं करता २०४

के लिये इस वर्ष का कार्यक्रम २०५

सांपों से संबंधित स्वप्न २४३

कमरे के गलियारे में बिजली के लैंप की मांग २४६

दोष स्वीकार करूं या भूत को मिट जाने दूं ? २४६अ

२ दिसंबर के प्रदर्शन के सफल होने की प्रार्थना २५१

'क' ने 'ख' को पीटा २५४

'क' को दर्शन न देने की बात २५५

भारत के नेताओं में ऐसी रीढ़ की हड्डी नहीं . . . २५५

एक मित्र से प्रेम २५७

चुपचाप बैठने की इच्छा, पर समय नष्ट करने का डर २६१

अध्यापक का भाषण : कठिन परीक्षाओं के लिये तैयार रहो २६८

किसीने अपनी मुसीबतों के लिये अपने को दोषी कहा २६८

मैं पहली दिसंबर के कार्यक्रम के लिये तैयार नहीं २७०

क्या आप मुझे लेकर अनुशासित करेंगी ? २७१

सभी जगह देर से जाने की आदत २७२

की सावित्री के उद्धरणोंवाली कापी २७२

सूत्रों के अनुवाद की कापी २७३

बिजली के पंखे की मांग २७४

सभी क्रिया-कलाप छोड़कर काम में सारा समय लगाने की प्रवृत्ति २८१

क्या सौ वर्ष का बूढ़ा अपने शरीर को पच्चीस वर्ष के युवक जैसा बना सकेगा ? ३००

दुर्भाग्यों से आप मेरी रक्षा . . . अधिकारी नहीं हूं ३०३

क्या मैं योग कर रहा हूं ३०८

को कलकत्ता से अधिक अध्ययन के लिये निमंत्रण ३१४-५

'क' जिंजी में एक झील में डूबकर मर गया . . . ३२०

मेरा 'काम' है क्या ? ३२१

के बंधन और आसक्तियां ३४९

साधना १२७

की महत्त्वपूर्ण बात १४९

और जन्मपत्री १९२

कोषाणुओं की, अनिवार्य ३३३

की पहली शर्त, पहले गुण, और फिर, तथा कार्यक्रम ३९७-८

(दे० 'पूर्णयोग' भी)

सामंजस्य

'वैश्व सामंजस्य ७३

और स्वास्थ्य १८१

अंतर्भासात्मक मन में २०१

'आनंद जगत्' के उतरने पर २३८

और सत्य २९०

के स्पंदन और असंतुलन के स्पंदन ३००, [३०]

(दे० 'काम' भी)

सालाम्बो १८७

सावधानी

काम में १६

का अभाव १६

सावित्री

पढ़ना २२७, ३६७

पर माताजी की टिप्पणी २७२

(दे० 'उद्धरण' भी)

साहस १६६, ३८२

न खोना बाधा आने पर ३६

न खोना चाहिये सब ठीक हो जायेगा ५५

और सफलता १२५

बनाये रखो कठिनाइयों के बावजूद १३४

के साथ कठिनाई का सामना १५३

साहसहीन लोगों के लिये भी १८०

और सत्य के अनुसार कार्य २४९
जरूरी गुण ३९७
सिरदर्द
सहकारी के साथ संपर्क से ४२-३
और भौतिक अनुशासन का पालन ११८
और भौतिक जीवन में नियमितता १२३अ
हृदय में एकाग्र होने से २७९
सिलवियु क्रेसियुनस २४४
सीखना २२१
सुखी बनाता है ३०
किसी चीज को अगर पूरी तरह से नहीं १८६
का अवसर हर चीज २५९
सदा, से जीवन रुचिकर ३९९
सीमा दे० 'भागवत शक्ति'
सुंदरता [सौंदर्य]
अतिमानसिक, भौतिक में ७२-३
और भगवान् में विश्वास ३१७
(दे० 'चीज' भी)
सुख
'सुखी बनाती हैं जो चीजें ३०, ३९९
सुंदर सपनों को सिद्ध करने से ७५
सच्चा १०७, २६९, ४०३; सच्चा, और चैत्य सत्ता २६९, [१२४]
'सुखी रहना, और उपस्थिति ११९
'सुखी कभी नहीं रहता वह १२२अ
प्राण के १२६अ
के साथ दुःख १२७, २७६
शुद्ध, अनासक्त प्रेम का १६३; प्रेम करने के तथ्य में २५७
सुखी रहो १९५
-सुविधा और आध्यात्मिक जीवन २७५
'सुखी होने के लिये मत जिओ ३९७
वह, सभी आशाओं से बढ़कर ३९७
'सुखी तथा सफल जीवन ३९९
परम ४०३
(दे० 'आनंद', 'शांति', 'दूसरे' भी)
सुझाव
अंधविश्वास के १५
-ों के दो प्रकारों में भेद कैसे करें? ४२
अवसाद के, मूढ़ताभरे ६१
विरोधी ६६
दुःख, निराशा, आत्मघात के ६८-९
अक्षमता और असफलता के १२४
बुरे, बीमारी के १८१
सूक्ष्म जगत् में भी चोर ६८
सूर्य
ज्यादा तेजी से चमकता है वर्षा के बाद १९
जैसे बादलों को छितरा . . . ९३, २०५
हृदय में उदित होते, का चिंतन करो अवसाद को झाड़ फेंको १११
'सूर्यास्त और सूर्योदय का समय धरती के लिये ३७३
सृष्टि
का लक्ष्य [उद्देश्य] २६३, ३५५
भगवान् की ओर बढ़ रही है २६३, ३४९
और ऐक्य और द्वित्त ३४६
का महान् रहस्य ३५२
का परिणाम ३९७
की प्रगतिशील पूर्णता ३९७
नयी, दे० 'नयी अभिव्यक्ति'
सेवा दे० 'भगवान्', 'माताजी', 'मानवजाति', 'सत्य'
सैनिक संगठन
श्रेणीबद्ध संगठन होता है ३०४
सोचना [सोचो]
तब किसी और चीज के बारे में १०६
से बचो, जब तुम किसी के बारे में अच्छी बात नहीं सोच सकते १७१
केवल वही, जो तुम होना चाहते हो १७४
'सोचे-समझे बिना आदमी जो करता है १८७
विचारों द्वारा २२८-९
केवल **उसी** के बारे में २३९

स्पष्टता से २६१, [२२८]
(दे० 'मन', 'विचार' तथा 'माताजी' (के निकट) भी)

सोलमिएक ८

सौभाग्य और दुर्भाग्य २१४-५

स्त्री [नारी]
के प्रति मनोवृत्ति १७६
से भय २६२
(दे० 'पुरुष' भी)

स्नायु
-एं थक जाती हैं देर में सोने से ७७
'दुःखी और उदास रहते हो क्योंकि स्नायुएं मजबूत नहीं ११२
और संवेदन १६५
(दे० 'दुःख' भी)

स्पंदन
अपने, और अपना वातावरण १३, ३०
-ों द्वारा फर्क करना, सुझावों के प्रकारों में ४२
सच्चे, बुरे के स्थान पर २३०
सामंजस्य के, और असंतुलन के ३००
अशुभ के, और शुभ के ३५२
दिव्य, और सचाई ३५३
(दे० 'संवेदन' भी)

स्पष्टवादिता
माताजी के साथ ९३
'स्पष्टवादी होना अच्छा पाखंडी होने की अपेक्षा २५८

स्मरण-शक्ति
और सतत उपस्थिति ३६१

स्मृति
सतत, भगवान् की ३४६
(दे० 'चैत्य स्मृति' भी)

स्वतंत्रता [स्वाधीनता]
माताजी के साथ काम में ३९
'आजादी जिसकी मैं बात कर रही हूं वह है . . . २५६
और विधान २७०-१
सच्ची २८६
और प्रगति ३१०
और अहं ३९२
'स्वतंत्र होने के लिये ३९२
(दे० 'आश्रम' भी)

स्वप्न [रात, रात की क्रियाएं]
-ों में मैं ऐसी चीजें क्यों करता हूं जिसे मैं जागते हुए न करूंगा? २२अ
-ों पर नियंत्रण २३, २१३
'दुःस्वप्न से डर १७६ दे० 'भय' भी; 'दुःस्वप्न : मानसिक खमीर २५७
-ों में, चाहने पर, माताजी को देख सकना : २१३, दो चीजें जरूरी २१४; में माताजी को देखा २६१, ३११; में माताजी और श्रीअरविंद को देखने का उपाय ३०९अ
को याद रखना २१३, ३३१
अच्छे और बुरे में फर्क कैसे करें? २१७
में सांप २४३
की क्रिया २५७, ३५६
और अनुभूति में भेद २९४
-ों से सचेतन ३३१, ३५०, ३७२
-ों से जाग्रत् सत्ता सचेतन नहीं ३४८
-ों से कम लोग सचेतन ३४८
'दिन की अभीप्सा का विरोध ३५०
और अवचेतना ३५६
किसी और के बारे में देखना ३८०
(दे० 'नींद', 'सपना' भी)

स्वभाव ३२७
अपने, के अनुसार जब कार्य २४९
पर अधिकार ३८५
में प्रगति करना ३९९
(दे० 'चरित्र' भी)

स्वर्ग
तक पहुंचने के लिये नरक को पार करना : मतलब ३५९

स्वामी

अपनी सत्ता का १०९, ३६८

अपनी भावनाओं और प्रतिक्रियाओं के जबतक नहीं १७९

निम्न प्रकृति का २८१

अपनी भौतिक चीजों का मैं ही हूं इस भाव से कैसे पिंड छुड़ाऊं ? ३३६

स्वार्थ

'स्वार्थी लोग २३३

ईर्ष्यालु बनाता है ३७१

और आत्मसिद्धि में क्या फर्क है ? ३८१

का अर्थ ३८१

स्वास्थ्य

'भौतिक अनुशासन पालन करना ११८

'खुली हवा में कसरत और प्रचुर भोजन १२२

'भौतिक जीवन में नियमितता १२४

'स्वस्थ कर सकते हैं केवल भगवान् ही १७२

गहरे सामंजस्य की अभिव्यक्ति, गर्व की चीज १८१

और कामनाओं पर विजय १८४

ह

हाथ

'हस्तरेखाएं क्या हमारे भूत, वर्तमान, भविष्य को प्रतिबिंबित कर सकती हैं ? २५९

को सचेतन बनाना ३३६अ

हिटलर ९

हीनता-ग्रंथि

के पीछे अहंकार २५०, २८७

हृदय १७०

को कैसे खोलूं ? ९१ दे० 'उद्घाटन' भी

में काफी गहरे जाओ तो . . . १२९

की गहराइयों में : शांति मौजूद है १३८, ज्योतिर्मयी चेतना [उपस्थिति] ३८१अ

अचंचल, और योग १४५

को ज्यादा खोलो दूरी गायब हो जायेगी १४८

में एकाग्रता दे० 'एकाग्रता'

की गहराइयों में प्रवेश : और उपस्थिति १५१, ३९४, नहीं कर पाता ३०६अ, और चैत्य सत्ता से सचेतनता ३६९

की रिक्तता १६०

में श्रद्धा-विश्वास रखना चाहिये १६१

शुष्क और कठोर १६४; पत्थर का बना लगता है मेरा १९६

को पत्थर में बदल लिया है जिन्होंने १७७

भगवान् के प्रेम और प्रकाश से भरा है मेरे बालक का १९८

तुम्हारा मधुर स्थान है तुम्हारे प्रेम के कारण १९८

से आती है अभीप्सा . . . २११

और मन २११

द्वारा अंतर्यामी भगवान् को ढूंढ़ना २३६

तब शांत रहेगा २५९

(दे० 'माताजी', 'माताजी' (तुम्हारे हृदय में हूं), भी)

होना दे० 'बनना'

उद्धरण

उपनिषद् ३६२
गीता-प्रबंध ३०२, ३०२-३
दिव्य जीवन २१०, २१६, २२०, २२१अ
प्रार्थना और ध्यान १७, १८, २०, [२२], २६, ४८, ३३३, ३३५, ३३७
भागवत-मुहूर्त ३८५-६
माता ३६०
योग पर पत्र ३२०टि०
योग-समन्वय ३५६, ३६०अ
वार्तालाप ४, ३०५अ
विचार और सूत्र २४७टि०, २५०, २५०टि०, २७०, २७१, २८६टि०, २९३टि०
श्रीअरविंद के पत्र २८९, [२९२, ३०२], ३२४, ३३१, [३४८टि०]
सावित्री ३५०, ३५२, ३५६, ३५७, ३५७अ, ३५९, ३६१

विषय-सूची

पत्रमाला १ (१९२७-१९३८) ३

ये पत्र माताजी ने अपने पुत्र आंद्रे को लिखे थे।

पत्रमाला २ (१९३१-१९४०) १३

ये पत्र एक साधक को लिखे गये थे जो उन्नीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशक के शुरू में आश्रम के भवन-निर्माण का अध्यक्ष था।

पत्रमाला ३ (१९३१-१९४९) ५५

ये पत्र 'नन्हीं मुस्कान' को लिखे गये थे जो बहुत वर्ष तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रही और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयी।

पत्रमाला ४ (१९३२-१९३४) ९७

ये पत्र आश्रम के एक साधक को लिखे गये थे जो तीसरे दशक में श्रीअरविंदाश्रम की गायों, बैलों और गाड़ियों की देखभाल करता था। (ये सभी पत्र अंग्रेजी में लिखे गये थे)

पत्रमाला ५ (१९३२-१९३७) १०५

ये पत्र एक युवा साधक को लिखे गये थे जिसने युवावस्था में ही संगीत, चित्रकला और काव्य का शिक्षण प्राप्त किया और बाद में श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र में संगीत का अध्यापक बन गया।

पत्रमाला ६ (१९३३-१९४९) १४३

ये पत्र एक साधक को लिखे गये थे जो बाद में श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र में अध्यापक बन गया था।

पत्रमाला ७ (१९३५-१९४०) १९१

ये पत्र एक साधक को लिखे गये थे जो उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक में श्रीअरविंदाश्रम में दांतों का डॉक्टर था और १९३८ से १९५० तक श्रीअरविंद की व्यक्तिगत सेवा में रहा था।

पत्रमाला ८ (१९५९-१९६०) २०९

ये पत्र श्रीअरविंदाश्रम के शारीरिक-शिक्षण-विभाग के एक युवा कप्तान को लिखे गये थे।

पत्रमाला ९ (१९६०-१९६३) २२७
ये पत्र श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र के एक युवा अध्यापक को लिखे गये थे।

पत्रमाला १० (१९६१-१९७०) २४३
ये पत्र श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र के शारीरिक-शिक्षण-विभाग के एक कप्तान को लिखे गये थे।

पत्रमाला ११ (१९६६-१९६९) ३३१
ये पत्र श्रीअरविंदाश्रम के एक साधक को लिखे गये थे।

पत्रमाला १२ (१९६९-१९७०) ३६७
ये पत्र श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र की एक विद्यार्थिनी को लिखे गये थे।

पत्रमाला १३ (१९६९-१९७०) ३७९
ये पत्र श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र के एक विद्यार्थी को लिखे गये थे।

पत्रमाला १४ ३९१
ये पत्र श्रीअरविंदाश्रम की एक साधिका को लिखे गये थे।

अनुक्रमणिका ४०७

उद्धरण ४७२

ISBN 81-7060-069-3